UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186719

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—43—30-1-71—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 T83K Accession No. P.G. H1363

Author त्रिपाठी, रामनरेश - संपा

Title कविता कौमुदी · 1954 ·

This book should be returned on or before the date last marked below.

प · भाग - 1 ·

कविता-कौमुदी

पहला भाग

[हिन्दी के प्राचीन कवि]

●

सम्पादक

रामनरेश त्रिपाठी

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ॥

सर्वोदय साहित्य मंदिर,
कोठी, (बसस्टैण्ड,) हैदराबाद द.

प्रकाशक

नवनीत प्रकाशन, बंबई

प्रकाशक
नवनीत प्रकाशन
३४१, तारदेव, बंबई

आठवाँ संशोधित संस्करण

पहला	संस्करण १९१७	१०००
दूसरा	संस्करण १९१८	१५००
तीसरा	संस्करण १९२०	२०००
चौथा	संस्करण १९२३	२०००
पाँचवाँ	संस्करण ?	?
छठा	संस्करण ?	?
सातवाँ	संस्करण १९४६	?
आठवाँ	संस्करण १९५४	२०००

मूल्य : आठ रुपये

मुद्रक
रामप्रताप त्रिपाठी
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

विषय-सूची

भूमिका १
प्रस्तावना १५

हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास

भाषा १९
हिन्दी का पुराना नाम ३४
हिन्दी-गद्य ४०
हिन्दी-पद्य ४९
हिन्दी और वैष्णव ५१
हिन्दी और बँगला ५३
हिन्दी और मराठी ५४
हिन्दी और गुजराती ५७
हिन्दी और जैन ५८
हिन्दी और सिक्ख ६०
हिन्दी और मुसलमान ६१
हिन्दी और उर्दू ६५
हिन्दी-कविता ८७
हिन्दी की वर्तमान दशा ११३

कविता-कौमुदी

१—चंदबरदाई ११५
२—अमीर खुसरो १३०
३—विद्यापति ठाकुर १४२

४—कबीर साहब	१४६
५—रैदास	१८१
६—धर्मदास	१८४
७—गुरु नानक	१८७
८—सूरदास	१६१
९—मलिक मुहम्मद जायसी	२१४
१०—नरोत्तमदास	२२०
११—मीराबाई	२२६
१२—हितहरिवंश	२३५
१३—नरहरि	२३६
१४—हरिदास	२४२
१५—नन्ददास	२४५
१६—तानसेन	२५०
१७—टोडरमल	२६२
१८—बीरबल	२६३
१९—तुलसीदास	२६६
२०—बलभद्र मिश्र	३१२
२१—दादूदयाल	३१४
२२—गंग	३२०
२३—हरिनाथ	३२५
२४—रहीम	३२६
२५—केशवदास	३४४
२६—पृथ्वीराज और चम्पादे	३५१
२७—देवीदास	३५६
२८—उसमान	३६७
२९—मलूकदास	३६६
३०—प्रवीनराय	३७२

३१—मुबारक ३७५
३२—रसखान ३७७
३३—सेनापति ३८०
३४—सुन्दरदास ३८५
३५—बिहारीलाल ३९१
३६—चिंतामणि ४०२
३७—भूषण ४०३
३८—मतिराम ४१३
३९—कुलपति मिश्र ४१६
४०—जसवंतसिंह ४१८
४१—बनवारी ४१९
४२—गोपालचंद्र मिश्र ४२२
४३—बेनी ४२७
४४—सुखदेव ४३१
४५—सबलसिंह चौहान ४३३
४६—कालिदास त्रिवेदी ४३५
४७—आलम और शेख ४३७
४८—लाल ४४०
४९—गुरु गोविन्दसिंह ४४१
५०—घनआनन्द ४४४
५१—देव ४४७
५२—श्रीपति ४५२
५३—वृन्द ४५४
५४—बैताल ४६२
५५—उदयनाथ (कवीन्द्र) ४६५
५६—नेवाज ४६६
५७—रसलीन ४६८

५८—घाघ और लालबुझक्कड़ ४६६
५९—दास ४७६
६०—रसनिधि ४७८
६१—नागरीदास और बनीठनीजी ४८०
६२—चरनदास ४८५
६३—तोष ४९०
६४—रघुनाथ ४९१
६५—गुमान मिश्र ४९३
६६—दूलह ४९४
६७—गिरिधर कविराय ४९५
६८—सूदन ५०२
६९—सीतल ५०४
७०—ब्रजवासीदास ५०६
७१—सहजोबाई ५०८
७२—दयाबाई ५१०
७३—ठाकुर ५१२
७४—बोधा ५१४
७५—पदमाकर ५१६
७६—लल्लूलालजी ५२५
७७—जयसिंह ५२६
७८—रामसहायदास ५२८
७९—ग्वाल ५२९
८०—दीनदयाल गिरि ५३५
८१—विश्वनाथसिंह ५४२
८२—पजनेस ५४५
८३—शिवसिंह सेंगर ५४७
८४—रघुराजसिंह ५४८

८५—द्विजदेव ५५५
८६—रामदयाल नेवटिया ५५७
८७—लक्ष्मणसिंह ५६१
८८—गिरिधरदास ५६४
८९—लछिराम ५६८
९०—गोविन्द गिल्लाभाई ५७०

कौमुदी-कुञ्ज

घनाक्षरी ५७३
सवैया ५९०
छप्पय ५९९
दोहे ६०१
बरवै ६१०
पद ६१३
पहेलियाँ-बुझौवल ६२१
खेती की कहावतें ६३३
लोकोक्तियाँ ६६२

भूमिका

काव्य साहित्य का उत्तम अंग है। काव्य से मनुष्य को जैसा अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है, वैसा और किसी प्रकार के साहित्य से नहीं। काव्य का एक छोटा-सा पद श्रोताओं में इतना अधिक प्रभाव उत्पन्न कर सकता है, जितना किसी वाग्मीवर का लम्बा-चौड़ा व्याख्यान नही। काव्य से आनन्द और उपदेश दोनों प्राप्त होते हैं। काव्य के रूप में नीति के वचन जितना आकर्षण उत्पन्न करते हैं, उतना तत्वज्ञान के रूप में नहीं। आख्यायिकाओं द्वारा दिये गये उपदेश में भी वह माधुर्य नहीं, जो काव्य के उपदेश में है। काव्य कवि के हृदय का गान है, उसकी बुद्धि का सौन्दर्य है। जिस कवि का हृदय जितना ही सुन्दर होता है, वह उतना ही मधुर गान कर सकता है। वह गान भक्तों के मुख से सुन कर भगवान् तक रीझ जाते हैं। भगवान् कहते हैं—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद !

श्रीमद्भागवत।

काव्यशास्त्र के आचार्यों ने काव्य के भिन्न-भिन्न लक्षण बतलाये हैं। किसी ने रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है; किसी ने चमत्कार-युक्त उक्ति को काव्य माना है; किसी ने मनोहर अर्थ उत्पन्न करने वाले शब्दों को काव्य कहा है; और किसी ने शब्द और अर्थ दोनों को काव्य कहा है। यह तो ठीक है कि शब्द और अर्थ परस्पर अभिन्न हैं, इसलिये शब्द और अर्थ दोनों मिलकर ही काव्य कहलाता है। पर शब्द और अर्थ काव्य का शरीर

मात्र है, काव्य की आत्मा तो रस है। चाहे गद्य हो या पद्य, जिस संदर्भ में रस प्रवाहित हो, वर्णन इतना सुन्दर हो कि पढ़ते ही मन उसमें तल्लीन होकर एक प्रकार के अलौकिक आनन्द का अनुभव करने लगे, वह काव्य है। काव्य में शब्द-चमत्कार और अर्थ-चमत्कार दोनों होने चाहियें। किन्तु अर्थ-चमत्कार प्रधान है, शब्द-चमत्कार गौण। केवल शब्द के आडम्बर से काव्य नहीं बन सकता। छंद उत्तम हो, शब्द-संगठन ललित हो, अनुप्रास कर्णप्रिय हों, पर रस का अभाव हो तो वह रचना काव्य नहीं, केवल पद्य है। वह कान को प्रिय लग सकती है, हृदय को नहीं; काव्य तो हृदय की वस्तु है।

रस क्या वस्तु है? रस का साधारण अर्थ है स्वाद। पाठक या श्रोता के हृदय में वासना-रूप से स्थित हर्ष, शोक, भय, विस्मय, हास आदि जब कवि की चमत्कारयुक्त वाणी से जागृत होते हैं, तब उसे एक अपूर्व आनन्द का अनुभव होने लगता है। वह आनन्द ऐसा अद्भुत होता है कि मन उस समय उसी में लीन हो जाता है, उसे अपने अन्य सब व्यापार भूल जाते हैं। जैसे योगी समाधि में ब्रह्मानन्द-सुधा के पान में तन्मय हो जाता है, और अन्य विषय व्यापार भूल जाता है, वैसा ही आनन्द काव्य से सहृदय मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होता है। उसी अलौकिक आनन्द को रस कहते हैं। जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से स्थायीभाव व्यक्त होता है, तब रस की उत्पत्ति होती है।

जिससे भावना स्पष्ट हो, वह विभाव कहलाता है। विभाव दो प्रकार का होता है, आलम्बन और उद्दीपन। जिसके आश्रय से रस की स्थिति हो, उसे आलम्बन, और जिससे रस का उद्दीपन होता है, उसे उद्दीपन विभाव कहते हैं। जिन चिह्नों के द्वारा रस का अनुभव होता है, उन्हें अनुभाव कहते हैं। अनुभाव भाव का कार्य-रूप है। हास्य, मधुर संभाषण और स्नेहयुक्त दृष्टि-निक्षेप आदि अनुभाव कहलाते हैं। जो भाव रसों में संचार करते हैं, वे संचारी भाव कहलाते हैं; और जो भाव रसों में स्थिर रहते हैं, वे स्थायी भाव कहलाते हैं। रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, ग्लानि, आश्चर्य

और निर्वेद ये नौ स्थायी भाव हैं। इन्हीं से क्रमशः शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त ये नौ रस उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक रस के उत्पन्न होने में विभाव, अनुभाव और संचारी का स्थायीभाव के साथ रहना आवश्यक है। संचारी भाव को व्यभिचारी भाव भी कहते हैं। व्यभिचारी भाव के ३३ भेद हैं। यथा––निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, श्रम, मद, धृति, आलस्य, विषाद, मति, चिंता, मोह, स्वप्न, विबोध, स्मृति, अमर्ष, गर्व, उत्सुकता, अवहित्थ, दीनता, हर्ष, व्रीड़ा, उग्रता, निद्रा, व्याधि, मरण, अपस्मार, आवेग, त्रास, उन्माद, जड़ता, चपलता और वितर्क। ये स्थायीभाव रूपी समुद्र में छोटी-बड़ी लहरों के समान उठते और नष्ट होते रहते हैं। इनका प्रभाव चिरस्थायी नहीं होता। हृदय-हीन जड़ पुरुष के हृदय में काव्य से रस उत्पन्न नहीं होता।

रस के साथ ही काव्य में गुण की भी आवश्यकता है। शब्द और अर्थ गुणयुक्त होने चाहियें। गुण रस से पृथक् नहीं रह सकता। गुण रस का धर्म है। गुण के तीन भेद हैं––माधुर्य, ओज और प्रसाद। अनुस्वार-युक्त वर्णों का अधिक प्रयोग, टवर्ग का बिल्कुल अभाव और समास की न्यूनता कविता का माधुर्य गुण है। संयुक्ताक्षर, रेफ और टवर्ग का अधिक प्रयोग, दीर्घ समास-युक्त उद्धत रचना में कविता का ओज गुण कहा जाता है। और जो शब्द-योजना और समास मनोहर हों और सुनते ही जिनका अर्थ समझ में आ जाय, उनमें प्रसाद-गुण कहा जाता है।

काव्य की भाषा सदा अर्थ का अनुसरण करती हुई होनी चाहिये। शृंगार, करुण, हास्य और शांत रस के वर्णन में माधुर्य-गुण-युक्त भाषा का और अद्भुत, वीर, रौद्र, भयानक और वीभत्स रस में ओज-गुण-युक्त भाषा का प्रयोग करना चाहिये। तुलसीदास की कविता में माधुर्य और चंद और भूषण की कविता में ओज गुण की अच्छी बहार देखने को मिल सकती है। प्रसाद की आवश्यकता तो सब रसों में रहती है। प्रसाद-गुण से रहित काव्य को तो काव्य कहना ही न चाहिये।

संस्कृत में काव्य का माधुर्य देखना हो तो जयदेव-रचित गीत-गोविन्द में देखिये —

उन्मदमदनमनोरथ पथिकवधूजनजनितविलापे।
अलिकुलसङ्कुलकुसुमसमूहनिराकुलवकुलकलापे ।।

**

पतति पतत्रे विचलित पत्रे शंकित भवदुपयानम्।
रचयति शयनं सचकित नयनं पश्यति तव पन्थानम् ।।

कितनी मधुर शब्द-योजना है! कितना सरल प्रवाह है। माधुर्य गुण हिन्दी-कविता में भी है। देखिये:—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि ।।

**

कबहुँक हौं इहि रहनि रहौंगो।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो ।।
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान सम सीतल मन परगुन अवगुन न कहौंगो ।।
परिहरि देह जनित चिंता दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु इहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो ।।

**

यह तो गुणों की बात हुई। काव्य में दोष का भी विचार बहुत आवश्यक है। शब्द-दोष, अर्थ-दोष, रस-दोष आदि कई प्रकार के दोष हैं। श्रुतिकटुत्व, अश्लीलता, ग्राम्यता, अप्रसिद्धता, संदिग्धता, क्लिष्टता, पुनरुक्ति, छंदो-भंग, यतिभंग आदि दोषों से बचना चाहिये।

काव्य में अलंकार की भी अवश्यकता है। कोशवदास ने कहा है—

भूषन बिना न सोहई, कविता बनिता मित्र।

गुण और अलंकार में भेद है। गुण रस के बिना नहीं रहते, पर अलंकार रस के बिना भी रह सकते हैं। अलंकार रस के सहायक होते हैं। शब्द और अर्थ में उत्कर्ष प्रदान कर वे रस की वृद्धि करते हैं। पर जहाँ रस नहीं, वहाँ केवल अलंकार भी उक्ति में वैचित्र्य उत्पन्न कर देते हैं।

रस के सहायक छंद भी हैं। मंदाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, शिखरिणी और मालिनी छंद में शृंगार, शांत और करुण रस अधिक मनोहर हो जाते हैं। भुजंगप्रयात, वंशस्थ और शार्दूलविक्रीडित में वीर, रौद्र और भयानक रस विशेष प्रभावोत्पादक हो जाते हैं। हिन्दी-छन्दों में सवैया और बरवै में शृंगार, करुण और शांत रस, छप्पै में वीर, रौद्र और भयानक रस, घनाक्षरी, दोहा, चौपाई और सोरठा में प्रायः सभी रस उद्दीप्त होते हैं। सवैया और बरवै में वीररस का काव्य नीरस हो जायगा।

काव्य में विरोधी और सहायक रसों का भी ध्यान रखना चाहिये। वीर या रौद्ररस के वर्णन में शृंगार, हास्य और करुण रस की उपस्थिति से रस की सिद्धि नहीं हो सकती। हास्यरस से शृंगाररस वृद्धि पाता है, पर वीभत्स, भयानक और करुण रस से उसकी सिद्धि में बाधा पहुँचती है। हास्यरस करुणरस का घातक है। कवि ही नहीं, अच्छे वक्ता भी रसों के शत्रुओं और मित्रों की जानकारी से अपने विषय को बहुत प्रभावोत्पादक बना लेते हैं।

आगे के कोष्ठक में यह विषय अधिक स्पष्ट कर दिया जाता है:—

संख्या	रस	रस के मित्र	रस के शत्रु
१	**शृंगार**	हास्य, अद्भुत	करुणा, वीभत्स, रौद्र, वीर, भयानक
२	हास्य	शृंगार, अद्भुत	भयानक, करुण, वीर
३	अद्भुत	भयानक	रौद्र
४	शांत	करुण	वीर, शृंगार, रौद्र, हास्य, भयानक
५	रौद्र	भयानक	हास्य, शृंगार, अद्भुत
६	वीर	रौद्र	शान्त, शृंगार

संख्या	रस	रस के मित्र	रस के शत्रु
७	करुण	शांत	हास्य, शृंगार
८	भयानक	अद्भुत, रौद्र, वीर	शृंगार, हास्य, शान्त
९	वीभत्स		शृंगार

कवि कौन है? कवि सृष्टि के सौन्दर्य का मर्मज्ञ है। वह एक ऐसा यंत्र है, जिसके द्वारा सृष्टि का सौन्दर्य देखा जाता है। कवि सौन्दर्य का उपभोग करता है, और जब उन्मत्त हो जाता है, तब उसके प्रलाप रूप में उसकी उन्मत्तता का कुछ प्रसाद सहृदय जनों को भी मिल जाता है। वह प्रलाप ही काव्य है।

तत्ववेत्ता और कवि में अन्तर है। तत्ववेत्ता मस्तिष्क का निवासी है और कवि हृदय का। हृदय त्रिगुणात्मक सृष्टि का केन्द्र है। कवि उसी केन्द्र में स्थित हो कर सृष्टि का निरीक्षण करता है। हृदय मनुष्य-मात्र के पास हैं, पर कुछ तो हृदय के मर्म को समझते ही नहीं; कुछ समझते तो हैं, पर उनकी वाणी में इतनी शक्ति नहीं होती कि वे उसे प्रकट कर सकें। कवि हृदय की बातें समझता भी है और उसे कह भी सकता है। साधारण जन और कवि में यही अन्तर है।

कवीनां मानसं नौमि तरन्ति प्रतिभाम्भसि।
यत्र हंसवयांसीव भुवनानि चतुर्दश॥

अर्थात् कवि के हृदयरूपी मानसरोवर को मैं नमस्कार करता हूँ; जिसके प्रतिभारूपी जल में चौदहों भुवन हंस की तरह तैरा करते हैं।

अंग्रेज़ कवि शेक्सपियर ने कहा है:—

The lunatic, the lover and the Poet,
Are of imagination all compact.

अर्थात् पागल, प्रेमी और कवि, इनकी कल्पनायें एक-सी होती हैं।

कवि जब एक अलौकिक आनन्द की दशा में जागृत होता है, तब लोग उसे पागल कहते हैं। प्रेमी की भी ऐसी ही दशा होती है। पर प्रेमी अपने

आनन्द को प्रकट नहीं कर सकता; वह एकान्त में अकेले आनन्द का अनुभव करना पसन्द करता है। और कवि स्वयं अनुभव कर के दूसरों को बाँटता भी है। दोनों में यही अन्तर है। दोनों का अन्तर इस शैर से और भी साफ़ हो जाता है:—

इश्क कहता है कि आलम से जुदा हो जाओ।
हुस्न कहता है जिधर जाओ नया आलम है।।

प्रेमी इश्क का उपासक होता है और कवि हुस्न का।

कवि की कोई बात सौन्दर्य-हीन नहीं होती, सब में कुछ नकुछ चमत्कार होता है। उसकी दृष्टि साधारण लोगों की दृष्टि से भिन्न होती है। उसका कथन निराले ही ढंग का होता है। संसार की तुच्छ से तुच्छ बातों में भी वह सौन्दर्य ढूँढ़ निकालता है। गढ़ों में बरसात का पानी जमा हो कर जब सूख जाता है, तब उसमें कीचड़ शेष रह जाती है। जब कीचड़ का पानी भी सूख जाता है, तब उसमें दरारें पड़ जाती हैं। यह संसार की ऐसी साधारण-सी घटना है कि गढ़े के पास से आने-जाने वाले लोग कभी इस घटना पर ध्यान भी नहीं देते। किन्तु कवि की दृष्टि से वह कहाँ छूट सकता है? तुलसीदास ने कीचड़ ऐसे तुच्छ पदार्थ को और उस पर बीती हुई प्रकृति की एक अत्यन्त साधारण घटना को सौन्दर्य से चमत्कृत कर दिया। वे कहते हैं:—

हृदय न बिदरेउ पंक जिमि, बिछुरत प्रीतम नीर।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि, यह जातना-सरीर।।

अर्थात्, प्रियतम जल के बिछुड़ते ही कीचड़ का हृदय फट गया; किन्तु मेरा नहीं फटा। इससे जान पड़ता है कि विधाता ने मुझे यातना भोगने के लिए ही यह शरीर दिया है।

कीचड़ के मन की वेदना कवि के सिवा साधारण जन कैसे समझ सकते हैं?

संसार में कौन मनुष्य नहीं रोया? मनुष्य-जीवन में रोना सब से पहला काम है। रोने के साथ आँखों से आँसुओं की धारा बहती है। आँसू

किसने नहीं देखा ? पर कवि की दृष्टि से सब नहीं देखते। आँसुओं के साथ रहीम ने एक अद्भुत रहस्य खोज निकाला है:—

"रहिमन" अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेय।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देय।।

जिसे हम घर से निकाल देंगे, वह घर का भेद अवश्य प्रकट कर देगा। जैसे आँसुओं ने निकलकर हृदय का दुःख बता दिया।

कवि सौन्दर्य देखता है। चाहे वह सौन्दर्य बहिर्जगत का हो, चाहे अन्तर्जगत का। जो केवल बाहरी सौन्दर्य का ही वर्णन करता है, वह कवि है; पर जो मनुष्य के मन के सौन्दर्य का भी वर्णन करता है, वह महाकवि है। भीतरी सौन्दर्य के वर्णन करने ही में कवि की कवित्व-शक्ति का पता चल सकता है। देखिये, तुलसीदास ने बाहरी और भीतरी दोनों सौन्दर्यों का एक साथ कितना सुन्दर वर्णन कर दिया है:—

विष्नु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिसिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज।।

बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करइहउ पर पुर जाई।।
बिष्नु बचन सुनि सुर मुसुकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने।।
मन ही मन महेस मुसुकाहीं। हरि के व्यङ्ग बचन नहिं जाहीं।।

"मन ही मन महेस मुसुकाहीं" लिखकर तुलसीदास ने कवित्व-शक्ति का अद्भुत परिचय दिया है। शंकर के मन में विष्णु के लिये अगाध प्रेम है। उस प्रेम के समुद्र को तुलसीदास ने इस चौपाई के एक चरण रूपी नन्हें से बूंद में भरकर रख दिया है।

बाहरी सौन्दर्य तो सुचतुर चित्रकार के चित्र में भी देखने को मिल सकता है, पर मनका सौन्दर्य महाकवि की वाणी ही में मिलता है। चित्रकार विम्बोष्ठी, चारुनेत्रा, हिमकर-वदना, कान्त-कुन्तला, पृथुल-जघना कामिनी का ऐसा मनोहर चित्र बना सकता है कि संभव है वैसा चित्र कवि अपनी कविता में न खींच सके। पर चित्रकार उस रमणी के हृदय को कैसे

दिखला सकता है ? वह सेनापति के इस छंद का भाव कैसे चित्रित कर सकता है ?

फूलन सों बाल की बनाइ गुही बेनी लाल
भाल दीन्ही बेंदी मृगमद की असित है ।
अंग अंग भषन बनाइ ब्रजभषन जू
बीरी निज कर तें खवाई अति हित है ।।
ह्वै कै रसवस जब दीबे को महावर के
सेनापति स्याम गह्यो चरन ललित है ।
चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आँखिन सों
कही, प्रानपति ! यह अति अनुचित है ।।

"यह अति अनुचित है" बताकर कवि ने स्त्री के हृदय की जो छटा दिखलाई है, वह चित्रकार नहीं दिखला सकता ।

कवि की कविता का प्रभाव स्वयं कवि के हृदय पर नहीं पड़ता । वह शृंगार रस की मनोहर कविता लिखता है । कितने ही युवक युवती उसकी कविता पढ़कर प्रेमोन्मत्त हो जाते हैं । पर स्वयं कवि उस कविता के लिख चुकने पर निश्चित-सा होकर अपने मामूली काम में लग जाता है । वह वीर रस की कविता लिखता है । संभव है, उसकी कविता पढ़कर कोई व्यक्ति युद्ध में निर्भयता से प्राण दे दे; पर कवि महाशय तो उस कविता की रचना करने के बाद शायद नहाने-धोने और खाने-पीने में लग जाया करते हैं । वे कविता पढ़ते-पढ़ते युद्ध-क्षेत्र की ओर दौड़ते हुए नहीं दिखाई पड़ेंगे । उनकी करुण और शांतरस की कविता पढ़कर कोई सहृदय चाहे संसार से विरक्त, राग-द्वेष से रहित हो जाय; पर कवि महाराज अपना शरीर सजाने में शायद ही कभी त्रुटि करें । इन बातों के लिखने का अभिप्राय यह है कि कवि का हृदय जल में कमलपत्र की तरह निर्लिप्त होता है । उस पर उसकी ही कल्पना या रचना का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । संस्कृत के एक पंडित ने इस पर कवि का गूढ़ परिहास करते हुए यह लिखा है:—

कविः करोति काव्यानि स्वादु जानन्ति पण्डिताः ।
सुन्दर्या अपि लावण्यं पतिर्जानाति नो पिता ।।

'कवि काव्य रचता है, पर उसका स्वाद पंडित जानते हैं। जैसे, सुन्दरी स्त्री के लावण्य को उसका पति जानता है, (उत्पन्न करने वाला) पिता नहीं।'

कवि अपने लिये कविता नहीं रचता, दूसरों के लिये रचता है। एकान्त स्थान में बैठकर, इन्द्रियासक्ति परित्याग करके वह सहृदय रसिकजनों के लिये काव्य रचता है। कवि के समान परोपकारी कौन है ?

कवि कैसी ही हीनदशा में क्यों न हो, वह स्वभाव में राजा और उदारता में हरिश्चन्द्र से कम नहीं होता। किसी राजा को एक बड़ा देश विजय करने में उतना आनन्द नहीं होता, जितना कवि को एक शब्द को किसी स्थान पर ठीक बैठा देने में होता है। शब्द ही उसकी सम्पत्ति है, वही उसकी सेना है। शब्दों से वह विश्व का हृदय जीतने की शक्ति रखता है।

जब वह काव्य रचने बैठता है, तब उसके ब्रह्मांड में शब्दों के समूह चक्कर लगाने लगते हैं। कवि उनमें से पकड़-पकड़कर उन्हें उपयुक्त स्थानों पर सजा देता है। कभी-कभी कौड़ी के मोल के शब्द को वह ऐसे स्थान पर जड़ देता है, जहाँ वह हीरे की तरह चमक उठता है। "कहुँ" (कहीं) एक साधारण शब्द है। पर श्रीधर पाठक ने उसके हाथ में सुधा-भवन की चाभी ही सौंप दी है।

यही स्वर्ग सुरलोक यही सुरकानन सुन्दर।
यहि अमरन कौ ओक यहीं कहुँ बसत पुरन्दर ।।
'काश्मीर सुखमा'

'यहीं कहुँ बसत पुरन्दर' में 'कहुँ' पुरन्दर से भी अधिक प्रभावशाली बन गया है। काश्मीर में पाठकजी को पुरन्दर के मिलने से कितना आनंद होता, इसका अनुभव अकेले पाठकजी ही कर सकते हैं। पर "कहुँ" सहृदय रसिक पाठकों को घर बैठे इन्द्र-मिलन से भी अधिक आनन्द प्रदान कर रहा

है। कवि और शब्द की विचित्र महिमा है। शब्द कवि को अमर बना देते हैं और कवि शब्द को भाग्यवान्।

कवि दो प्रकार के होते हैं। एक कवि केवल अपनी कथा कहता है। अर्थात् अपनी प्रतिभा-द्वारा केवल अपने हृदय के सुख-दुःख, कल्पना और अनुभव को कविता-रूप में प्रकट करता है। वर्त्तमान काल में रवीन्द्रनाथ ठाकुर इसी श्रेणी के कवि थे। दूसरे प्रकार का कवि समस्त देश, समग्र जाति या एक युग की कथा कहता है। वह कवि केवल निमित्त मात्र होता है, उसकी वाणी-द्वारा समग्र जाति की सरस्वती बोलती है। उसकी रचना किसी व्यक्ति विशेष की रचना नहीं रह जाती। उसकी रचना सम्पूर्ण समाज की मिलकियत हो जाती है। तुलसीदास एक व्यक्ति का नाम था। एक जन-समूह की सरस्वती उनके द्वारा प्रकट हुई। उन्होंने उसमें जनसमूह के हृदय की बात कही। वह जनसमूह तुलसीदास के कथन को अपनी सम्पत्ति समझता है। इसीसे वह कथन अजर और अमर हो गया। कितने ही ऐसे अपढ़ और ग्रामीण मनुष्यों के मुख से भी कभी कभी

होइ है वहि जो राम रचि राखा।

**

जाकर जापर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलत न कछु संदेहू॥

आदि सुन पड़ता है, जो तुलसीदास को जानते भी नहीं। इसका कारण यह है कि वे अपनी वस्तु का उपयोग करते हैं। तुलसीदास के लिये उनको केवल इसीलिये कृतज्ञ होना चाहिये कि तुलसीदास ने उनके हृदय की बातों को पद्य-रूप में करके बोलने में आसान बना दिया। तुलसीदास अपनी रचना में व्याप्त हो कर अदृश्य हो गये। लोग उनके वचन को अपना-सा मानकर बोलते हैं। यही कवि की व्यापकता है। जो कवि व्यापक नहीं, उसकी कविता जब कभी उदाहरण-रूप में उपस्थित होती है, तब उसके साथ उसका नाम भी लगा रहता है। पर तुलसीदास के वचनों के साथ उनके नाम की आवश्यकता नहीं पड़ती; क्योंकि तुलसीदास दूध और शक्कर

की तरह समाज में घुल-मिल गये हैं। यही उनका अमरत्व है; यही उनका महाकवित्व है। आज उनकी अमर वाणी से धार्मिक हिन्दुओं के मन्दिर, घर, मुख और श्रवण गूज रहे हैं। इसी प्रकार हिन्दी के और भी कितने ही अमर कवि हैं, जैसे कबीर सूर, मीराबाई आदि; जो हिन्दू-समाज में अपने लिये ख़ास स्थान रखते हैं। वह कैसी शुभ घड़ी थी, जब उनकी वाणी से या लेखनी से एक वाक्य निकल गया और वह हज़ारों मुखों से प्रतिध्वनित हो उठा। न जाने उनकी किस तपस्या के फल से, किस मंत्र की साधना से, उनकी वाणी-रूपी तागे का अंत नहीं आता और अबतक उसमें सहस्रों हृदय-सुमन पिरोये जा रहे हैं।

कवि की योग्यता के सम्बन्ध में नारद ने "संगीत-मकरन्द" में यह श्लोक लिखा है :—

शुचिर्दक्षः शान्तः सुजन विनतः सूनृततरः
कलावेदी विद्वानतिमृदुपदः काव्यचतुरः
रसज्ञो दैवज्ञः सरस हृदयः सत्कुलभवः
शुभाकारश्छन्दोगुणगणविवेकी स च कविः।

इतने गुण जिस पुरुष में हों वह संसार में कितना भाग्यशाली होगा! कवि होना कैसे सौभाग्य की बात है!!

कविता-कौमुदी में जो कविताएँ संग्रह की गई हैं, उनमें उत्तम काव्य के सभी गुण मिलेंगे। काव्य-शास्त्र का थोड़ा-बहुत भी ज्ञान रखने वाले को इन कविताओं में अन्य पाठकों की अपेक्षा अधिक आनंद प्राप्त होगा। इसी-लिये मैंने यह विषय कुछ विस्तार से लिख दिया है।

यहाँ तक तो काव्य और कवि सम्बन्धी बातें हुई, अब कविता-कौमुदी की चर्चा और रह गई। अबतक कविता-कौमुदी के कई संस्करण हो गये हैं। इसके प्रत्येक संस्करण में कुछ न कुछ परिवर्तन और परिवर्द्धन होता आया है। जबतक मेरी तृप्ति नहीं हो गई, तब तक मैं परिवर्तन को रोक नहीं सका। अब आशा है कि कविता-कौमुदी का यह रूप सदा के लिये निश्चित हो गया। अब परिवर्तन की गुञ्जाइश, मेरी राय में, नहीं रह गई।

हिन्दी-संसार ने इस पुस्तक का बड़ा आदर किया। जहाँ इसे कलकत्ता, पटना और काशी के विश्वविद्यालयों ने एम० ए०, बी० ए० और एफ० ए० के कोर्स में स्थान दिया था, वहाँ हिन्दी-साहित्यिकों ने इस ढङ्ग की पुस्तकों में इसे सर्वोच्च स्थान दे कर आदर किया है। मैं इसे अपनी आशातीत सफलता समझकर उत्साहित होता हूँ।

इस पुस्तक के कवियों की कविताएँ चुनने में मैंने किसी ख़ास विषय को लक्ष्य में नहीं रखा। जिस कविता में मुझे कवि की प्रतिभा दिखाई पड़ी, मैंने उसे ही चुन लिया। कवि के हृदय को असली रूप में पाठकों के सामने लाने में मैंने अपनी कोई बाधा नहीं पहुँचाई। इस कारण कुछ कविताएँ ऐसी भी आ गई हैं, जो अश्लील कही जा सकती हैं। किन्तु उनमें कवि का चमत्कार है, इससे विवश होकर उन्हें चुनना ही पड़ा। जो कवि जिस रस के लिये प्रसिद्ध है, उसकी उसी रस की कविता अधिक संख्या में दी गई है। इस कारण से यह पुस्तक साधु-संत, साहित्य-रसिक, हास्य-प्रिय, प्रेमी, शृंगारी और नीति जानने की इच्छावाले सभी श्रेणी के पाठकों के लिये उपयोगी हो गई है। मुझे कितनी ही वार यात्रा में यह देखकर सुख हुआ है कि बहुत से पढ़े-लिखे यात्री इस पुस्तक को एक मित्र की भाँति यात्रा में साथ रखते हैं। कई वर्षों से यह पुस्तक अप्राप्य थी। मित्रों और साहित्य-प्रेमियों के विशेष आग्रह से इसका संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है।

जहाँतक मिल सके, कवियों के ग्रन्थों को मैंने स्वयं अध्ययन कर के यह पुस्तक लिखी है। फिर भी शिवसिंहसरोज, मिश्रबन्धुविनोद, संतबानी पुस्तकमाला, नागरी प्रचारिणी सभा की रिपोर्टें और लेखमालायें तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की लेखमालाएँ और अंग्रेज़ी में सर जार्ज ग्रियर्सन और श्री विसेन्ट स्मिथ की हिन्दी-साहित्य और भारतीय इतिहास सम्बन्धी पुस्तकों और हिन्दी के सुप्रसिद्ध पत्रों में प्रकाशित लेखों से सहायता लेनी पड़ी है। मैं हृदय से इन सब पुस्तकों और लेखों के लेखकों का कृतज्ञ हूँ।

रामनरेश त्रिपाठी

प्रस्तावना

कविता सृष्टि का सौन्दर्य है, कविता ही सृष्टि का सुख है, और कविता ही सृष्टि का जीवन-प्राण है। परमाणु में कविता है, विराट् रूप में कविता है, विन्दु में कविता है, सागर में कविता है, रेणु में कविता है, पर्वत में कविता है, वायु और अग्नि मे कविता है, जल और थल में कविता है, आकाश में कविता है, प्रकाश में कविता है, अन्धकार में भी कविता है, सूर्य और चन्द्र और तारागण में कविता है, किरण और कौमुदी में कविता है, मनुष्य में कविता है, पशु में कविता है, पक्षी में कविता है, वृक्ष में कविता है; जिधर देखो कविता ही का साम्राज्य है। प्रकृति काव्यमय है, सारा ब्रह्माण्ड एक अद्भुत महाकाव्य है। जिस मनुष्य ने इस सारगर्भित रसमयी कविता के आनन्द का स्वाद चखा, वही भाग्यवान् है। जिसने इस सरस्वती-मन्दिर में कुछ शिक्षा ग्रहण की और मनन किया, वही पण्डित है। जिसने इस पवित्र प्रवाह में अपने को बहा दिया, वही विरक्त है। जिसने इस अमृत-प्रवाह में डूबकर, दो-चार कलश भरकर प्यासे, थके हुए रोगी वा मृतप्राय यात्रियों को कुछ बूंदें पिलाकर उन्हें शक्ति दी और पुनर्जीवित किया, वही कवि है।

ईश्वरीय सौन्दर्य को—प्राकृतिक कविता को भाषा की छटा द्वारा संसार को दरसाना ही कवि का कर्त्तव्य है। जितना गहरा वह अपनी प्रतिभा द्वारा इस सौन्दर्य-सागर में डूबता है, उतना ही अधिक वह अपने कर्त्तव्य में सफल होता है। संसार के पदार्थों और घटनाओं को सभी देखते हैं, परन्तु जिन आँखों से उन्हें कवि देखता है, वे निराली ही होती हैं। गँवार के लिए पहाड़ों के भीतर से आती हुई नदी एक नदी मात्र है; कवि के लिये उस

श्वेतवस्त्रा शोभायुक्त लाजवती का नाचता हुआ शरीर शृंगार की रंगभूमि है। आँख वही, पर चितवन में भेद है। बिहारी ने यह तो सच कहा है:—

अनियारे दीरघ नयनि, किती न तरुनि समान।
वह चितवनि कछु और है, जिहि बस होत सुजान॥

किन्तु बिहारी ने इस रसीले दोहे में केवल बाहरी आँखों ही के रस का वर्णन किया—और वह भी अधूरा। वास्तव में वश करनेवाली आँखों में इतना भेद नहीं होता, जितना वश होनेवाली आँखों में होता। हीरे की परख जौहरी की आँखें करती हैं, कुब्जा के सौन्दर्य की पहिचान रस-प्रवीण कृष्ण ही को होती है; पदार्थ रूपी चित्रों में चितेरे के हाथ की महिमा कवि की ही आँखें पहिचानती हैं, प्राकृतिक दैवी सङ्गीत उसी के कान सुनते हैं। विज्ञान-वेत्ता पदार्थों के बाहरी अंगों की छानबीन करता है, और उनके अवयवों का सम्बन्ध ढूँढ़ता है, नीतिज्ञ उनसे मनुष्य-समाज के लिये परिणाम निकालता है; किन्तु उनके आंतरिक सौन्दर्य की ओर कवि ही का लक्ष्य रहता है। वैज्ञानिक और नीतिज्ञ भी जैसे-जैसे अपने लक्ष्य की खोज में गहरे डूबते हैं, वैसे-वैसे कवि के समीप पहुँचते जाते हैं। सभी विद्याओं और शास्त्रों का अन्त और उनकी सफलता कविता में लीन होने ही में है। कवि के सम्बन्ध में कहा है:—

जानाते यन्न चन्द्रार्कौ जानन्ते यन्न योगिनः।
जानीते यन्न भर्गोपि तज्जानाति कविः स्वयम्॥

यह कवि और कविता का आदर्श है, इसी आदर्श की ओर सच्चा कवि जाता है। जितना ही वह उसके समीप पहुँचता है, उतना ही वह प्रभावशाली और उसकी कविता स्थायी होती है। भाषा तो केवल एक पहनावा मात्र है। उसकी कविता वास्तव में संसार के लाभ के लिये होती है; क्योंकि कवि की सृष्टि में सम्पूर्ण प्रजातंत्र है, समष्टिवाद का शुद्ध व्यवहार है। यहाँ स्वतंत्रता है, स्वच्छन्दता है, अपरिमित सम्पत्ति है। कोई रोकने वाला नहीं, जितना चाहो उसमें से लेते जाओ, वह घटती नहीं। तुममें केवल इच्छा और शक्ति की आवश्यकता है।

हिन्दी बोलनेवालों का यह सौभाग्य है कि कविता के ऊँचे आदर्श के समीप तक पहुँचनेवाले कई कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने हिन्दी-भाषा द्वारा अपनी अमूल्य वाणी से संसार का उपकार किया है। मनुष्य-जाति सदा उनकी ऋणी रहेगी। कबीर और सूर और तुलसी--अहा! इनके नामों का स्मरण करते ही किस दीप्यमान सौन्दर्य और पवित्र आनन्द की सृष्टि के द्वार खुल जाते हैं—इनके भावों को जिसने समझा, वह सच्चा पण्डित है; इनके मर्म को जिसने पाया, वह स्वयं महात्मा है। संसार साहित्य की चर्चा करता है; काँच को हीरा जानकर उसके पीछे दौड़ता है; खेल के गुड्डे को बालक समझकर उसका ब्याह करता है; और अपनी करतूत पर अभिमानी बनता है। अनेक भाषाएँ अपने अपने काँच के टुकड़ों को सामने रख हीरे का दम भरती हैं, किन्तु जैसा कबीरजी ने कहा है—

सिंहन के लँहड़े नहीं, हंसन की नहिं पाँत।
लालन की नहिं बोरियाँ, साधु न चलें जमात॥

कवियों के भी लँहड़े नहीं होते। वह काल, वह देश भाग्यवान् है, जहाँ एक भी कवि उत्पन्न हो जाय। कबीर और सूर और तुलसी यह हिन्दीभाषा ही के नहीं, संसार-साहित्य के लाल हैं, परखने वाले की आवश्यकता है। कबीर के दोहों और शब्दों की परख कौन करता है? सूर के पदों और तुलसी की चौपाइयों को कौन तोलता है? मात्रा और अक्षरों के गिनने वाले समालोचक? छिः! परखने के लिये कुछ हृदय की सामग्री चाहिये, पुस्तकों के आडम्बर की आवश्यकता नहीं। इन कवियों के हँसने और रोने का अर्थ कौन समझता है? इनके वाक्यों के मर्म तक कौन पहुँचता है! स्वयं कोई मस्त प्रेमी, कोई कविता का मतवाला; जो शुद्ध हृदय से, अभिमान छोड़, इस सृष्टि के भीतर नम्रतापूर्वक शिष्य बनकर आता है।

'ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय।'

कुछ काँच पहिचानने वाले समालोचक हिन्दी-भाषा में साहित्य की कमी देखते हैं। गाँव का रहने वाला, जिसने अपनी गाँव की दूकान में रंग

बिरंग के काँच के टुकड़े देखे हैं, नगर में आकर जब एक बड़े जौहरी की दूकान में जाता है तो अपने गाँव की दूकान के समान रंगीले काँचों को न देखकर बहुमूल्य मणियों का तिरस्कार करता है, और कहता है—हमारे गाँव की दूकान के समान यहाँ मणियाँ तो हैं ही नहीं। ठीक यही दशा इन समालोचकों की है। "यह गाहक करबीन के, तुम लीनी कर बीन"। यदि मणि की परख न हो तो मणि का दोष नहीं, परखनेवाले का दोष है। किन्तु काँच का भी संसार में काम है, ये भी चमकीले होते हैं, देखने में अच्छे लगते हैं। काँच के टुकड़े भी धन्य हैं, उनमें भी सौन्दर्य है, वे आनन्द बढ़ाते हैं; किन्तु हीरों और लालों की बात कुछ और ही है।

इस "कविता-कौमुदी" की छटा, संग्रह होने के कारण बादलों से छन कर आती है, तो भी अंधकार दूर करने के लिये पर्याप्त है। इसमें अमूल्य मणियों की लड़ियाँ हैं, साथ-साथ रँगीले काँच के टुकड़ों की बन्दनवारें भी हैं। बहुत से काँच के टुकड़े बहुमूल्य हैं, इनका भी शृंगार शोभायमान है; और अपने-अपने स्थान पर सभी आदरणीय हैं।

प्रयाग
मार्गशीष शुक्ल ३
संवत् १९७४

पुरुषोत्तमदास टण्डन

हिंदी का संक्षिप्त इतिहास

भाषा

हृदय एक पुष्प है, भाषा उसका विकास है और भाव गन्ध है।

हृदय एक वाद्य-यन्त्र है, रसना रीड है, इच्छा अँगुली है और भाषा झंकार है।

भाषा विचार का साकार रूप है।

भाषा से देश जाना जाता है। हम देश के जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी और आकाश के संक्षिप्त रूप हैं। हम स्वयं देश हैं। भाषा हमारी कीर्ति है।

विचार भाषा का पुत्र है, कार्य पौत्र है, और सम्मति कन्या है, जो प्रदान की जाती है, और दूसरे घर में जाकर वृद्धि पाती है।

प्रत्येक पूरी बात को वाक्य कहते हैं। प्रत्येक वाक्य शब्दों का समूह है। प्रत्येक शब्द एक सार्थक ध्वनि है। भाषा वाक्यों का समूह है।

चार पैर, पूंछ, सींग आदि अंगों से युक्त एक पशु-विशेष का नाम हमने गाय रख लिया है। गाय शब्द और गाय पशु से कोई साक्षात् सम्बन्ध नहीं; परन्तु गाय शब्द के उच्चारण से गाय पशु का बोध तत्काल हो जाता है।

यदि हमने सब वस्तुओं और सब क्रियाओं का नाम न रख लिया होता तो अपने मनोगत भावों के प्रकट करने में हमें बड़ी ही कठिनता पड़ती। हाथ, मुँह आदि के संकेतों से हम अपने मनोभाव पूर्ण रूप से प्रकट ही न कर सकते। संसार के व्यवहार में कभी उन्नति न होती।

साधारण रूप से भाषा के दो भेद किये जा सकते हैं—एक व्यक्त, दूसरा अव्यक्त। विचारों को पूर्ण रूप से प्रकट करनेवाली मनुष्य की भाषा व्यक्त कहलाती है, और पशु-पक्षी की बोली अव्यक्त। पशु-पक्षी अपनी बोली से

दुःख, सुख, भय आदि मनोविकारों को इशारों से प्रकट करने के सिवाय मुखसे कोई बात नहीं बतला सकते। जब हम सोचते हैं, तब भीतर ही भीतर मन में हम एक प्रकार की बातचीत करते रहते हैं। यदि हम चाहें तो उसी बातचीत को एकत्र कर के लिख ले सकते हैं। बहुत समय बीत जाने पर भी हम उस लेख को देखकर यह स्मरण कर सकते है कि किसी दिन हमने अपने मन से इस विषय पर बातचीत की थी। भाषा बिना यह सुगमता कैसे हो सकती है ?

व्यक्त भाषा के दो भाग है—कथित और लिखित। जब कोई मनुष्य हमारे सामने होता है, तब उसके लिये अपने विचार प्रकट करने में हम कथित भाषा काम में लाते है। और जब हमें अपने विचार किसी दूरवाले मनुष्य के पास भेजने पड़ते हैं, या भविष्य के लिये चिरस्थायी रखने पड़ते हैं, तब हम लिखित भाषा का उपयोग करते हैं।

हमारे पूर्वजों ने लिखित भाषा के लिये शब्द की एक-एक मूल ध्वनि का एक-एक चिह्न नियत कर लिया है, जिन्हें अक्षर या वर्ण कहते हैं। पहले भाषा में केवल कान ही काम देता था, वर्णों की रचना से आँख भी भाषा के लिये उपयोगी हो गई।

पहले लोग कथित भाषा ही से काम लेते थे। छोटेबड़ सब प्रकार के विचार केवल कथन-द्वारा प्रकट किये जाते थे। जो विचार सुननेवाले को प्रिय लगते थे, उन्हें वह स्मरण रखता था; और अप्रिय विचारों को, चाहे वे भविष्य में उसके लिये लाभदायक ही हों, वह उपेक्षा के भाव से देखता था। इसका परिणाम यह होता था कि आगे चलकर उसे यदि पूर्वकाल के अप्रिय विचारों ही की आवश्यकता पड़ती थी तो फिर उसे सोचना पड़ता था। परन्तु अक्षर-लिपि की उत्पत्ति से यह असुविधा दूर हो गई। अब विचार चिरस्थायी किये जा सकते हैं। आज जो कुछ हम सोचते हैं, उसे लिखित भाषा के रूप में रख सकते हैं और हज़ारों वर्ष बीत जाने पर भी वे देखे जा सकते हैं। अक्षर-लिपि ही की सहायता से तो हम आज वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और तुलसीदास के विचारों

को इस प्रकार जान सकत है, मानो वे स्वयं हमारे सामने आकर कह रहे हों।

भाषा सदा स्थिर नहीं रहती। उसमें परिवर्तन होता रहता है। हजारों वर्ष पहले जो भाषा बोली वा लिखी जाती थी, आज उसका वह रूप नहीं है। भाषा का नया और पुराना रूप मिलान कर देखने से यह बात आसानी से जानी जा सकती है कि परिवर्तन किस प्रकार से हुआ है। भाषा-तत्व के पंडितों का कथन है कि जब भाषा में परिवर्तन रुक जाता है, तब उसकी उन्नति भी रुक जाती है।

सभ्यता के साथ भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। सभ्यता की वृद्धि के साथ भाषा की भी वृद्धि होती है। उसमें नये विचार और उन विचारों के द्योतक नये शब्द मिलते रहते हैं, और भाषा का भण्डार बढ़ता रहता है।

भाषा में परिवर्तन कैसे होता है? विचार करने से इसके ये कारण जान पड़ते हैं—स्थान, जलवायु और सभ्यता का प्रभाव और उच्चारण का भेद। बहुत से शब्द, जिसे एक देश के लोग बोल सकते हैं, दूसरे देश के लोग नहीं बोल सकते। शीत-प्रधान देशों में ऐसे शब्दों का बहुत प्रयोग होता है, जिनसे मुख को अधिक खोलना न पड़े; जैसे अंग्रेज़ी भाषा के अधिकांश शब्द। उष्ण-प्रधान देशों में ऐसे शब्द अधिक बोले जाते हैं, जिनसे मुख का अधिक भाग खोलना पड़ता है; जैसे भारतीय भाषाओं के शब्द। एक ही देश में भी भिन्न-भिन्न जल-वायु के कारण एक ही शब्द के उच्चारण में कभी-कभी बड़ा अन्तर पाया जाता है। मरुस्थलों के निवासी कण्ठ से बोले जानेवाले शब्दों का अधिक प्रयोग करते हैं। बङ्गाल के निवासी संस्कृत शब्दों का भी विचित्र उच्चारण करते हैं।

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि सृष्टि के आरम्भ-काल में सब मनुष्य एक ही स्थान—मध्य-एशिया में रहते थे, और उस समय उनकी भाषा एक थी। कुछ विद्वानों का कथन है कि आर्यलोग पहले-पहल तिब्बत से भारतवर्ष में उतरे। वहीं से वे काबुल होकर पश्चिम की ओर फैल गये। जो हो; जीविका की खोज में या अन्य किसी कारण से वे भिन्न-भिन्न देशों

में जा बसे। गङ्गा के किनारे से लेकर आइसलैण्ड तक, स्वीडन से क्रीट तक, आर्यों की शाखायें फैल गई थीं। भारत का अधिकांश भाग, अफ़गानिस्तान, ईरान और आर्मिनिया इतना एशिया का भाग और तीन चौथाई भाग रूस का, स्वीडन और नारवे का अधिकांश भाग और बास्क, हंगरी और तुर्किस्तान के अतिरिक्त युरोप के अधिकांश भागों में आर्यों की भिन्न-भिन्न टोलियाँ जा बसी थीं।

जो लोग यह मानते हैं कि आर्य-लोग मध्य-एशिया से भारत में आये, उनके कथनानुसार आर्यावर्त में पहले-पहल आर्य-लोग सिन्धु नदी के किनारे पर बसे। धीरे-धीरे वे सारे देश में और लंका, ब्रह्मा, कम्बोडिया और मलाया तक फैल गये। आर्यों की खास बस्ती होने के कारण विन्ध्याचल और हिमालय के बीच के प्रदेश का नाम आर्यावर्त पड़ गया। भिन्न-भिन्न देशों के जल-वायु की भिन्नता के प्रभाव से आर्यों की आदिम एक भाषा के उच्चारण में अन्तर पड़ता गया। नवीन देश में आकर नवीन वस्तुओं के लिये और स्थिति के अनुसार नवीन प्रारम्भ किये हुए कार्यों के लिये उन्हें नवीन शब्दों की कल्पना करनी पड़ी, जिनसे उनकी आदिम भाषा को नवीन शब्दों से अलंकृत नवीन रूप धारण करना पड़ा। परन्तु जब सब मनुष्य साथ ही रहते थे और उनकी भाषा भी एक थी, उस समय बोलचाल में जो शब्द प्रचलित थे, उनमें से अधिकांश शब्द नवीन देश की नवीन भाषा में भी थोड़े परिवर्तन के साथ ज्यों के त्यों रह गये। यहाँ हम भिन्न-भिन्न भाषाओं के कुछ समानार्थ शब्दों का संग्रह करके अपने कथन को खुलासा किये देते हैं—

संस्कृत	मीडी	युनानी	लैटिन	अंग्रेज़ी	फ़ारसी	हिन्दी
पितृ	पतर	पाटेर	पेटर	फ़ादर	पिदर	पिता
मातृ	मतर	मातेर	मेटर	मदर	मादर	माता
भ्रातृ	ब्रतर	फ़ाटेर	फ़ेटर	ब्रदर	बिरादर	भ्राता
नाम	नाम	ओनोमा	नामेन	नेम	नाम	नाम
अस्मि	अह्मि	ऐमी	एम	अम	अम	हूँ

इत्यादि; इन शब्दों की समानता से यह प्रमाणित किया जाता है कि हम सब के पूर्वज कभी एक ही भाषा बोलते थे। आदिम स्थान से, जहाँ पर सब साथ ही साथ रहते थे, जो लोग पश्चिम को गये, उनसे ग्रीक, लैटिन, अंग्रेजी आदि भाषाएँ बोलनेवाली जातियों की उत्पत्ति हुई। और जो लोग पूर्व को गये, उनके दो भाग हो गये—एक भाग फ़ारस को गया और दूसरा क़ाबुल होता हुआ भारतवर्ष पहुँचा। पहले दल ने ईरान में मीडी भाषा के द्वारा फ़ारसी भाषा की सृष्टि की, और दूसरे दल ने संस्कृत का प्रचार किया।

संस्कृत का अर्थ है सुधरी हुई भाषा। संस्कृत के पहले जो भाषा बोली जाती थी, इसका नाम प्राकृत था। वेदों में कुछ मंत्र पहली प्राकृत में पाये जाते हैं। व्याकरण बन जाने पर उसी पहली प्राकृत का सुसंस्कृत रूप "संस्कृत" नाम से प्रसिद्ध हुआ। संस्कृत को नियमित करने में पाणिनि का व्याकरण सब से प्रसिद्ध है। फिर संस्कृत से दूसरी प्राकृत का जन्म हुआ। और इसी दूसरी प्राकृत से मराठी, बँगला, गुजराती राजस्थानी और हिन्दी आदि भाषाएँ निकली हैं।

आर्य-भाषा के मुख्य दो विभाग हैं, एशिया खंड की भाषाएँ और यूरोप खंड की भाषाएँ। यहाँ संक्षेप में आर्य-भाषा, उसकी शाखा-प्रशाखाओं और अन्य स्वतन्त्र भाषाओं का विवरण दिया जाता है—

एशिया-खंड की भाषाएँ—

(१) भारतवर्ष की भाषाएं—संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश।

देशी भाषाएँ—हिन्दी, बङ्गला, उड़िया, मराठी, गुजराती, सिन्धी, राजस्थानी, पंजाबी, जिप्सी लोगों की भाषा। जिप्सी लोग भारतवर्ष के मूल निवासी थे। उनका कोई ख़ास निवास-स्थान नहीं, वे सदा भटकते फिरते हैं। बारहवीं शताब्दी में वे ईरान, अर्मिनिया, ग्रीस, रोमानिया, हंगरी और बोहेमिया के मार्ग से युरोप में घुसे।

(२) ईरान की भाषाएँ—ज़ेन्द; ज़रदस्त के अनुयायियों की प्राचीन भाषा। ज़ेन्द-अवस्ता नामक प्राचीन ग्रन्थ इसी भाषा में है। दारा, ज़रक्सस

और उसके वंशजों के समय के लेखों की भाषा, (ई० पू० ५वी शताब्दी) ।

पहलवी—ई० सन् २२६ से ६५१ तक।

फ़ारसी—ईरान के पूर्वी भाग में अधिकतर बोली जाती हुई भाषा, जब मुसलमानों ने ईरान पर विजय पाई, उस समय की भाषा।

आधुनिक फ़ारसी—फिरदौसी के "शाहनामे" की भाषा। पुरानी और नई फ़ारसी में विशेष अन्तर नहीं है। आर्मीनियन, पश्तो, काकेशश, बुखारा, ईरान, तुर्किस्तान और रूस की सरहद के पहाड़ी लोगों की भाषाएँ, जो संस्कृत या फ़ारसी से मिलती हैं।

युरोपखंडकी भाषाएँ--

१—**टयूटानिक भाषायें**; इसके तीन रूप हैं—

(१) लो जर्मन—अंग्रेज़ी, डच, फ्लेमिश।

(२) हाई जर्मन—जर्मन।

(३) स्केंडनेवियन—आइस्लैंडिक,स्वीडिश डेनिश,नार्वीजियन।

२—**कैल्टिक भाषाएं**—ब्रिटेन, वेल्स, आयरिश, गेलिक (स्काटलैंड के पहाड़ी प्रदेश की भाषा), मँकस (मेन द्वीप की भाषा)।

३—**इटैलिक भाषाएँ**—लेटिन, अस्कन (दक्षिण इटली की प्राचीन भाषा), अम्ब्रियन (इटली के ईशान कोण की प्राचीन भाषा) सेबाइन।

लेटिन से निकली हुई भाषायें—इटेलियन, फ्रेञ्च, प्रोवेन्कल, स्पेनिश, पोर्टुगीज़, रीटोरोमेनिक (दक्षिण स्विटज़रलेंड की भाषा), बोलेचियन (तुर्किस्तान के उत्तरी प्रान्त और मोल्डेविया की भाषा)।

४—**हेलेनिक भाषाएँ**—प्राचीन ग्रीक (इसमें अटिक, आयोनिक, डोरिक और इओलिक, बोलियाँ समाविष्ट हैं), आधुनिक ग्रीक।

५—स्लेवोनिक भाषाएँ—अग्निकोण की स्लेवोनिक—रशियन, इलिरिक (सर्वियन, क्रोयेटियन, करिन्थिया और स्टिरिआ की भाषाएँ)।

पश्चिम की स्लेवोनिक––पोलिश, बोहीमियन, पोलेबियन, स्लोवेकियन और सर्वियन (ल्युसेटिअन बोलियाँ)।

६––**लेटिक भाषायें**:––प्राचीन प्रशियन, लेटिशया लेवोनियन (कुरलंड और लिवोनिया की भाषा)।

लिथुएनियन (पूर्व प्रशिया और रूस के कोवनो और विलना प्रान्त की बोलियाँ)।

यूरोपनिवासियों में यहूदी, फिन, लेप, हंगेरियन और तुर्क लोग आर्य-भाषा नहीं बोलते।

७––**सेमेटिक भाषायें**:––आर्य-भाषाओं के सिवाय संसार में और जो भाषाएँ बोली जाती हैं, वे सेमेटिक भाषाएँ कहलाती हैं। इनके ये भेद हैं––

(१) सिरिया की भाषा।

(२) असीरिया और बैबिलन की भाषा।

(३) हिब्रू, फिनिशियन, समेरिटन, प्यूनिक।

(४) अरबी, माल्टा और अबिसिनिया की भाषाएं।

८––**अन्य भाषाएँ**:––आर्य-भाषाओं और सेमेटिक-भाषाओं के अतिरिक्त पृथ्वी पर नीचे लिखी अन्य भाषायें भी बोली जाती हैं––

(१) यूराल और अलाई की भाषायें।

हंगेरियन, फिनिश और लँपिश, सोमाय की प्रान्तिक भाषाएँ, तुर्की, मंगोलियन बोलियाँ, तुंगुसियन बोलियाँ।

(२) द्रविड़––तमिल, तेलुगू, मलयालम्, कन्नड़।

कोरिया, कमसकटका, क्यूराइल की भाषायें।

जापानी और लु-चु की बोली।

मलाया, मलक्का, जावा, सुमात्रा, मेलनीशिया की भाषाएँ।

काकेशिया की बोलियाँ।

(३) दक्षिण अफ़्रिका की बोलियाँ।

(४) चीनी भाषा।

इंडोचाइनीज़ भाषा (स्यामी, ब्रह्मी, आनामीज़ और कम्बोडियन भाषाएँ, तिब्बती।

(५) बास्क।

उत्तर और दक्षिण अमेरिका के असली निवासियों की भाषा।

अब हम यह दिखलाना चाहते हैं कि उच्चारण-भेद से भाषाओं में भिन्नता कैसे हो जाती है। प्रत्येक भाषा को विद्वान् और ग्रामीण मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकार से बोलते हैं। विद्वान् लोग शब्दों का शुद्ध उच्चारण करते हैं, ग्रामीण लोग उसे अपनी इच्छानुसार सुगम बना लेते हैं। इससे किसी प्रधान भाषा की बिगड़ते-बिगड़ते कई नई बोलियाँ बन जाती हैं। यहाँ हम कुछ ऐसे शब्द उपस्थित करते हैं, जिनका अर्थ एक है, परन्तु विद्वानों और ग्रामीणों के उच्चारण में अन्तर है। जैसे––

शुद्ध शब्द	उच्चारण-भेद	शुद्ध शब्द	उच्चारण-भेद
भूमि	भूई	आकाश	अकास, आकास
पानीय	पानी	सूर्य	सूरज
शरीर	सरीर	श्वास	साँस
शूद्र	सूद	पत्र	पत्ता

विद्वानों और ग्रामीणों का यह उच्चारण-भेद नया नहीं है। रामायण के समय में भी शिष्ट-समाज में बोली जाने वाली भाषा भिन्न थी, और सर्वसाधारण के बोलचाल की भाषा भिन्न। वाल्मीकि-रामायण सुन्दर काण्ड, सर्ग ३०, श्लोक १७, १९ में अशोक-वृक्ष पर हनुमानजी चिन्ता करते हैं:––

अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्॥
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मान्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।

अर्थात्, मैं तो लघु शरीरी और वानर हूं। पर यहाँ साधारण मनुष्यों की वाणी संस्कृत बोलूंगा। यदि द्विजाति के समान संस्कृत बोलूंगा तो सीता मुझे रावण समझकर डर जायगी। इसलिये मुझे अर्थ-युक्त साधारण मनुष्यों ही की बोलचाल की भाषा बोलनी चाहिये।

इससे प्रकट होता है कि रामायण के समय में साधारण मनुष्यों की भाषा देववाणी संस्कृत से भिन्न थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य संस्कृत बोलते थे और शूद्र संस्कृत शब्दों के अशुद्ध उच्चारण वाली कोई अन्य भाषा। अशोक के शिला-लेखों और पातञ्जलि के ग्रन्थों से भी पता चलता है कि आज से कोई दो ढाई हजार बरस पहले उत्तर भारत में एक ऐसी भाषा प्रचलित थी, जो कई बोलियों से मिलकर बनी थी। संस्कृत-भाषा व्याकरण के नियमों से ऐसी जकड़ी हुई है कि उसके विकार-ग्रस्त होने की कोई सम्भावना नहीं है। स्त्री, बालक और शूद्र से संस्कृत भाषा का ठीक-ठीक उच्चारण नहीं बन सकने के कारण संस्कृत में जब कुछ अशुद्ध शब्दों का प्रवेश होने लगा, तब उससे एक नवीन भाषा पाली का प्रादुर्भाव हुआ। पाली बौद्ध-धर्म की पवित्र भाषा है। बौद्ध-साहित्य प्रायः इसी भाषा में है। लंका, श्याम और ब्रह्मदेश में यह भाषा बोली जाती है। पाली में $^{3}/_{4}$ शुद्ध संस्कृत शब्द हैं और $^{1}/_{4}$ संस्कृत शब्दों के विकृत रूप। इसके बाद प्राकृत का नम्बर है। यह संस्कृत के विकृत शब्दों से लदी हुई भाषा है। प्राकृत शब्द "प्रकृत" से बना है, और उसका अर्थ है स्वाभाविक। सर्वसाधारण लोग अपने अशुद्ध उच्चारण के कारण कहीं संस्कृत भाषा का रूप बिगाड़ न दें, इसलिये विद्वानों ने प्राकृत-भाषा का एक नया रूप स्वीकार किया और उसका व्याकरण बनाकर उसे एक स्वतन्त्र भाषा बना दी। प्राकृत का सब से पुराना व्याकरण वररुचि का बनाया हुआ मिलता है। पाली की अपेक्षा प्राकृत में संस्कृत के विकृत शब्द बहुत अधिक हैं। कालिदास ने शकुन्तला नाटक में स्त्री और सेवकवर्ग के मुँह से प्रायः प्राकृत भाषा ही का प्रयोग कराया है। इससे अनुमान होता है कि कालिदास के समय में स्त्रियों और साधारण श्रेणी के लोगों में प्राकृत भाषा

ही का विशेष प्रचार था। प्राकृत में कई स्वतन्त्र काव्य भी लिख गये हैं।

प्राकृत और हिन्दी में संस्कृत के शब्दों का कैसा रूप बन गया है, इसे दिखाने के लिये कुछ शब्द यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं:—

सं०	प्रा०	हिन्दी
विद्युत्	विज्जु	बिजली
श्मश्रु	मस्सू	मूछ
शय्या	सेज्जा	सेज
कुष्ठ	कोट्ठ	कोढ़
तैलम्	तेल्ल	तेल
कृष्ण	कन्हो	कान्ह (ब्रजभाषा)
पितृगृह	पिइघर	पीहर
कर्पटः	कप्पड़ो	कपड़ा
शिथिल	सढ़िल	ढीला
एकादश	एआरह	ग्यारह
यज्ञोपवीत	जण्णेवइअ	जनेऊ
खदिर	खइर	खैर
वचन	वयण	बैन (ब्रजभाषा)
अश्रु	अंसु	आँसू
सप्त	सत्त	सात
सर्प	सप्प	साँप
स्तम्भ	थम्म	खम्भ
कर्म	कम्म	काम
हस्त	हत्थ	हाथ
भगिनी	बहिनी	बहन
वार्त्ता	वत्त	बात

दुग्ध	दुहु	दूध
कर्ण	कन्न	कान
घृतम्	घिअम्	घी
मेघः	मेहो	मेह
गम्भीरम्	गहिरम्	गहरा, इत्यादि;

ऊपर के प्रमाणों से यह बात समझ में आ सकती है कि प्रत्येक प्रचलित भाषा में नवीन भावों के द्योतक नवीन शब्द और उसी भाषा के अपभ्रंश नित्य ही बढ़ते रहते हैं। जब ऐसे शब्दों की अधिकता होती है, तब वे सब अपभ्रंश शब्द और कुछ उस प्रचलित भाषा के विशुद्ध शब्द मिलकर एक नई बोली का रूप धारण करते हैं, और फिर अपनी उन्नति का नवीन क्षेत्र तैयार कर लेते हैं।

प्राकृत का विकास होते-होते उससे तीन शाखायें फूट निकली—मागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री। मागधी मगध देश वा बिहार की भाषा थी। शौरसेनी शूरसेन प्रदेश अर्थात मथुरा के आसपास की और महाराष्ट्री महाराष्ट्र प्रांत की भाषा थी। मागधी और शौरसेनी के मिश्रण से एक और भाषा का जन्म हुआ था, जिसे अर्द्ध-मागधी कहते थे। इस भाषा में जैन-धर्म के कुछ ग्रन्थ लिखे गये थे।

विक्रम संवत के लगभग आठ-नौ सौ बरस तक प्राकृत भाषा का प्रचार रहा। इसके बाद उसमें कुछ परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। धीरे-धीरे वह यहां तक बढ़ा कि उसमें से अपभ्रंश नाम से एक नवीन भाषा का प्रादुर्भाव हुआ। 'अपभ्रंश' शब्द का अर्थ है 'बिगड़ी हुई भाषा'। प्राकृत के अन्तिम वैयाकरण हेमचन्द्र सूरि ने, जो बारहवीं शताब्दी में हुए थे, अपने "सिद्ध हेम शब्दानुशासन" नामक व्याकरण-ग्रन्थ के आठवें अध्याय में अपभ्रंश भाषा का उल्लेख किया है, और उसका व्याकरण भी लिखा है। उन्होंने उस समय के ग्रन्थों से चुनकर उदाहरणार्थ सैकड़ों पद्य भी लिख दिये हैं, जिससे उस समय की प्रचलित भाषा की खासी झलक दिखाई पड़ती है। उदाहरणार्थ अपभ्रंश भाषा का एक पद्य हम यहाँ देते हैं:—

भल्ला हुआ जु मारिया, बहिणि महारा कन्तु।
लज्जेज्जंतु बयंसिअहु, जद भग्गा घर एन्तु॥

अर्थात्, हे बहन, अच्छा हुआ जो मेरा पति मारा गया। यदि भागा हुआ वह घर आता तो मैं सखियों में लज्जित होती।

अपभ्रंश भाषा उस समय केवल मामूली भेद के साथ भारत के बहुत से प्रदेशों में बोली जाती थी। हेमचन्द्र के मरने के बाद, थोड़े ही वर्षों में भारत में राज्य-विप्लव हुआ। आपस की फूट से एक विशाल साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया। स्नेह-सम्बन्ध टूट गया। छोटे-छोटे सैकड़ों राज्य क़ायम हुये। एक राज्य के निवासी दूसरे राज्य के निवासियों को शत्रु समझने लगे। विदेशी विजेताओं के पैर जमे और भारत की फूट से वे लाभ उठाने लगे।

इस राज्य-क्रान्ति का प्रभाव भाषा पर भी पड़ा। परस्पर ईर्ष्या-द्वेष के कारण व्यावहारिक सम्बन्ध संकुचित हुआ। उसी के साथ-साथ भाषा की एकरूपता में भी अन्तर आने लगा। प्रदेशों का सम्बन्ध-विच्छेद होते ही उनमें व्यापक भाषा अपभ्रंश भी प्रत्येक प्रान्त में भिन्न-भिन्न रूपों में विकसित होने लगी। भिन्न-भिन्न प्रांतों की प्राकृत का "अपभ्रंश" रूप भिन्न-भिन्न हुआ। शौरसेनी का अपभ्रंश "नागर" अपभ्रंश कहलाता है। ब्रजभाषा शौरसेनी प्राकृत का रूपान्तर है। हमारी हिन्दी-भाषा दो अपभ्रंशों से मिलकर बनी है, एक नागर अपभ्रंश, जिससे पश्चिमी हिन्दी और पंजाबी का जन्म हुआ; दूसरे अर्ध-मागधी का अपभ्रंश, जिससे पूर्वी हिन्दी निकली है, जो अवध, बुन्देलखण्ड और छत्तीसगढ़ में बोली जाती है।

पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत और भी कई बोलियाँ हैं। जैसे, अवधी अवध में, बुन्देली बुन्देलखण्ड में, ब्रजभाषा मथुरा के आसपास, कन्नौजी गङ्गा-यमुना के मध्य और उत्तर के प्रदेश में और हिन्दुस्तानी दिल्ली और मेरठ के आसपास के प्रदेश में बोली जाती है।

अपभ्रंश भाषा प्राकृत और प्रान्तीय भाषाओं के मध्य की भाषा है। प्राकृत के बाद अपभ्रंश और अपभ्रंश के बाद प्रान्तीय भाषाओं की सृष्टि

हुई है। अपभ्रंश भाषा से पुरानी हिन्दी, ब्रजभाषा और गुजराती का बहुत अधिक सम्बन्ध है।

प्रारम्भ में पश्चिमी हिन्दी का जो रूप था, उससे राजस्थानी और गुजराती की उत्पत्ति हुई। डा० टोसीटोरी का मत है कि पन्द्रहवीं शताब्दी तक पश्चिमी राजपूताना और गुजरात में एक ही भाषा बोली जाती थी, इसे वे प्राचीन राजस्थानी भाषा कहते हैं। यही भाषा गुजराती और मारवाड़ी का मूल है।

अपभ्रंश भाषाएँ ग्यारहवें शतक तक प्रचलित थी। इसके बाद इसकी भिन्न-भिन्न शाखायें निकलीं, और पन्द्रहवें शतक तक पहुँचते पहुँचते वे अपने भिन्न-भिन्न वातावरण में फूलने और फलने लगीं।

हिन्दीभाषा मुख्यतः तीन प्रकार के शब्दों से बनी है—तत्सम, तद्भव और देशज। तत्सम वे शब्द कहलाते हैं, जो सीधे संस्कृत से आये हैं। संस्कृत में उनका जो रूप है, देशी भाषाओं में भी वही है। जैसे, बल, हल, बन, मन, धन, जन, दूर, सूर, नदी, शीत, वर्षा, समुद्र, वसन्त, साधु, सन्त, दिन, राजा, कवि, काम, क्रोध, दर्शन, मनुष्य इत्यादि।

तद्भव वे शब्द हैं, जो मूल में तो संस्कृत के शब्द हैं, पर वे अपभ्रंश अर्थात् बिगड़े हुए रूप में प्रचलित हैं। जैसे, बच्चा (वत्स), राय (राजा), आग (अग्नि), कान (कर्ण), काज (कार्य), सूखा (शुष्क), सुई (सूची), बरस (वर्ष), रात (रात्रि), सब (सर्व), माथा (मस्तक), सिर (शीर्ष), नेवला (नकुल), भात (भक्त), दूध (दुग्ध) आदि।

देशज वे शब्द हैं जो या तो भारत के आदिम निवासियों की बोलियों से लिये गये हैं, या कार्य या पदार्थ के रूप या ध्वनि के अनुसार बना लिये गये हैं। देशज शब्द संस्कृत या प्राकृत से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। देशज शब्द जैसे, पगड़ी, रोड़ा, पेट, रोटी, झाड़-झंखाड़, गंडेरी, धूमधाम, ओस, कढ़ाई, टीला, होड़, मामा, खिड़की, चौकन्ना, धमधूसर, धुरमुसहा, तथा खड़खड़ाहट, बड़बड़ाना, चट, धड़ाम, ऊटपटांग, झिलमिल, चींचपड़ आदि।

संस्कृत भाषा हिन्दी, पंजाबी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, उड़िया और बङ्गला भाषाओं की मातृभाषा है। बङ्गला, उड़िया और मराठी में तत्सम शब्द बहुत हैं। हिन्दी और गुजराती में उससे थोड़ा कम और पंजाबी और सिन्धी में तो सब से कम हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इसका कारण यह जान पड़ता है कि सिंध और पंजाब में विदेशियों के बारबार आक्रमण होते रहे। इससे आर्य, विशेषकर ब्राह्मण उन प्रान्तों से पूरब की ओर हटते आये। उन प्रान्तों में खासकर अहीर, गूजर और जाटों के जत्थे रह गये। अतएव स्वभावतः उनकी भाषा से तत्सम शब्द कम होते गये और उनके स्थान में तद्भव और देशज शब्द भरते गये। ब्रजभाषा में तत्सम की अपेक्षा तद्भव शब्द ही अधिक हैं।

तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों के सिवाय हिन्दी में बहुत से विदेशी शब्द भी मिल गये हैं, और अब भी मिलते जा रहे हैं। हिन्दी का शब्द-भांडार बराबर बढ़ता जा रहा है। मुसलमान जब इस देश में आये, तब उनकी भाषा अरबी, तुर्की या फ़ारसी के भी बहुत से शब्द हिन्दी में मिल गये। पोर्चुगीज़ और अंग्रेज़ों के आने पर भी शब्द-वृद्धि हुई, और अंग्रेज़ी शब्दों का तांता तो अभी तक चला आ रहा है। विदेशी शब्दों के सिवाय अन्य प्रान्तीय भाषाओं के भी कुछ शब्द हिन्दी में आ मिले हैं। सब के थोड़े-थोड़े उदाहरण आगे दिये जाते हैं—

अरबी—अक्ल, इख़्त्यार, इम्तिहान, एतराज़, औरत, हाल, सिफ़ारिश, अदालत, मुकद्दमा, तारीख़, तनख़्वाह, हूबहू इन्साफ़, इन्सान, ऐब, उम्दा, खबर, ख़र्च, तकरार, दलील, दुनिया, मज़कूर, मशगूल, शरबत, सलाह, हुक्म आदि।

फ़ारसी—आज़मायश, आदमी, उम्मीदवार, आबादी, ख़रीद, गुमाश्ता, बाग़, चश्मा, दूकान, चाकू, ताज़गी, गुज़रान, तन्दुरुस्ती, दस्तावेज, दरिया, प्याला, कमर, दाग़, मोज़ा, गुलाब, साबुन, होशियार, हवा, हज़ार, ज्यादा, जल्द आदि।

तुर्की—तोप, लाश, कोतल आदि।

पोर्चुगीज़—अंग्रेज़, पिस्तोल, पलटन, कप्तान, कमरा, नीलाम, इंजिनियर, चा, काफ़ी, गोदाम (गोडाउन), चाबी, पावरोटी आदि।

अँग्रेज़ी—कोर्ट, अपील, टिकट, कलक्टर, डाक्टर, टेबल, पेंसल, पेंशन, बूट, फ़ार्म, बोर्डिंग, डिग्री, ग्लास, फंड, रेल, वारंट, रसीद, रबर, लालटेन, पतलून, मील, इंच, फुट, वास्कट, म्यूनिसिपैलिटी, सेविंग बैंक, सोडावाटर, होटल, होस्टेल, हास्पिटल, बोतल, पास, रजिस्ट्री, नोटिस, समन, स्कूल, कमेटी, फ़ीस, स्लेट, टीन, प्रेस, इन्स्पेक्टर, बैरिस्टर, मास्टर, कान्स्टेब्ल, आदि।

मराठी—प्रगति, लागू, बाजू (तरफ़) आदि।

बँगला—उपन्यास, प्राणपण, गल्प, डोंगी आदि।

कुछ शब्द योगिक हैं, जो दो भिन्न भाषाओं के शब्दों को मिला देने से बन गये हैं। जैसे—

पाव रोटी, डबल रोटी—पाउँ पुर्तगाली और रोटी हिन्दी से मिलकर यह शब्द बनी है। पोर्चुगीज़ भारत में आये तब हिन्दुस्तानी नौकरों से पाउँ माँगने पर मिलने में देरी होती थी, इससे रोटी शब्द उसमें जोड़कर वे बोलने लगे। उनके पीछे अंग्रेज़ आये; वे पुर्तगालियों के शत्रु थे; शत्रु का शब्द पाउँ वे बोलना नहीं चाहते होंगे, तब एक ही अर्थ के दो शब्दों को एक साथ देखकर उन्होंने 'डबल रोटी' नाम रख लिया होगा और वह चल निकला।

इस समय हिन्दी-भाषा के तीन मुख्य रूप हैं। पहला विशुद्ध हिन्दी, जिसमें तत्सम और तद्भव शब्दों ही का बाहुल्य रहता है, अन्य भाषा के शब्द उसमें प्रवेश नहीं कर सकते। दूसरा हिन्दुस्तानी, जिसमें रोज़मर्रा की बोल चाल के सब शब्द, चाहें वे किसी भाषा के क्यों न हों, आ सकते हैं। तीसरा मुसलमानी हिन्दी जिसे उर्दू भी कहा जाता है, जिसमें अरबी और फ़ारसी शब्दों की बहुलता रहती है। उर्दू कोई भिन्न भाषा नहीं, वह हिन्दी का एक मुसलमानी रूप है। हिन्दुस्तानी ही नाम अंग्रेज़ों का रक्खा हुआ है, पर यह दिल्ली और उसके आस पास के ज़िलों में बहुत प्राचीन काल से बोली जाती है। मुसलमानों के संसर्ग से जैसे उर्दू नाम से हिन्दी का एक नया रूप अलग हो गया, वैसे ही यदि कोई बनाना

चाहे तो अंग्रेज़ी और हिन्दी के मिश्रण से भी एक नया रूप बन सकता है। आजकल स्कूल, कालेज, यूनिवर्सिटियों और मीटिंगों में इस नये रूप का दर्शन होता है; पर अभी तक उसका नामकरण नहीं हुआ है। यदि मुसलमानों की तरह अंग्रेज़ भी इस देश में आकर बस गये होते, तो सम्भव था हिन्दी और अंग्रेज़ी के मिश्रण से भी उनकी एक 'बाज़ारी' बोली अलग बन जाती।

हिन्दी का पुराना नाम

हिन्दी का पुराना नाम हिन्दवी या हिन्दुई है, जिसका अर्थ है हिन्दुओं की भाषा। यहाँ हिन्दी के विषय में कुछ कहने के पहले "हिन्दू" शब्द पर विचार कर लेना उचित जान पड़ता है।

भारतवर्ष की आर्य-जाति का "हिन्दू" नाम क्यों और कब से पड़ा? यह विचारणीय बात है। संस्कृत-साहित्य में "हिन्दू" शब्द का कहीं उल्लेख नहीं। न तो वेदों में, न उपनिषदों में, न स्मृतियों में और न पुराणों ही में इस शब्द का कहीं पता है। फिर यह कहाँ से आया और इसमें कौनसी ऐसी विशेषता देखकर इतनी बड़ी एक सुसभ्य जाति ने इसे ग्रहण कर लिया? इस प्रश्न का उत्तर देना सहज नहीं।

मेरुतन्त्र में एक स्थान पर "हिन्दू" शब्द आया है। इस सम्बन्ध के कुछ श्लोक हम यहाँ उद्धृत करते हैं:—

पश्चिमाम्नाय मन्त्रास्तु प्रोक्ताः पारस्य भाषया।
अष्टोत्तर शताशीतिर्येषां संसाधनात्कलौ॥
पञ्चखाना सप्तमीराः नवसाहा महाबलाः।
हिन्दूधर्म-प्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिनाः॥
हीनञ्च दूषयेत्येव हिन्दूरित्युच्यते प्रिये।
पूर्वाम्नाये नवशत षडशीति प्रकीर्तिता॥
फिरङ्ग भाषया मन्त्रा येषां संसाधनात्कलौ।
अधिपा मंडलानाञ्च संग्रामेष्वपराजिताः॥
इङ्गरेजा नव षट्पञ्च लण्डजाश्चापि भाविनः।

शिवरहस्य में भी एक स्थान पर ऐसा कहा गया है:––

हिन्दूधर्म-प्रलोप्तारो भविष्यन्ति कलौयुगे।

हमें मेरुतन्त्र और शिवरहस्य के ये श्लोक पीछे से मिलाये हुए जान पड़ते हैं; क्योंकि पूर्वकाल में यदि हिन्दू-धर्म कोई धर्म होता तो उसका उल्लेख स्मृति और पुराणों में कहीं न कहीं अवश्य होता। अतएव हम इन श्लोकों को किसी सुचतुर संस्कृतज्ञ की करामात समझकर अप्रामाणिक समझते हैं।

हिन्दू शब्द हमें फ़ारसी भाषा में भी मिलता है। फ़ारसी का एक पद्य सुनिये––

अगर आँ तुर्क शीराज़ी बदस्त आरद दिले मारा।
बख़ाले हिन्दुवश बख़शम समरक़न्दो बुख़ारारा॥

यह आज से कोई साढ़े पाँच सौ बरस पहले का हाफ़िज़ शीराज़ी का शेर है। इसमें हिन्दू शब्द 'काले' के अर्थ में आया है।

ग़यासुल्लोग़ात में हिन्दू शब्द का अर्थ ऐसा लिखा है:––

"हिन्दू दर महाविरे फ़ारसियाँ बमानी दुज़्द व राहज़न मी आयद।"

इसमें हिन्दू शब्द का अर्थ 'काफ़िर' और 'डाकू' किया गया है। यदि हिन्दू शब्द का अर्थ काला, काफ़िर, चोर, ग़ुलाम ही है तो उसे भारतवासियों ने अपने उत्तम आर्य नाम के स्थान पर क्यों स्वीकार कर लिया? हमें ग़यासुल्लोग़ात का अर्थ द्वेष वश लिखा जान पड़ता है। तो क्या फ़ारसी के हिन्दू शब्द के काले अर्थ ही में हमारा नाम हिन्दू पड़ा है? नहीं; भिन्न-भिन्न भाषाओं में एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं। नीम शब्द ही को लीजिए। फ़ारसी में नीम का अर्थ आधा है और हिन्दी में नीम एक वृक्ष का नाम है। 'नीम हकीम' कहने से यह अर्थ नहीं लगा लेना चाहिये कि नीम वृक्ष ही हकीम है। यदि हमारा नाम हिन्दू किसी अच्छे अर्थ में रक्खा गया है तो किसी अन्य भाषा में इस शब्द का अर्थ चोर डाकू होने से हम चोर डाकू नहीं हो सकते। हाँ, यदि किसी ने चोर डाकू और काले ही के अर्थ में

हमारा नाम हिन्दू रक्खा है और हमने उसे स्वीकार कर लिया है, तो हमारे लिये अवश्य कलंक की बात है। परन्तु हमारा हिन्दू नाम नया नहीं, आज से पाँच हज़ार वर्ष पहले की पारसियों की एक धर्म-पुस्तक दसातीर में हमारे देश का नाम "हिन्दू" लिखा मिलता है। इसके प्रमाण में उक्त पुस्तक से कुछ वाक्य हम यहाँ उद्धृत करते हैं:—

अकनू बिरहमने व्यास नाम अज हिन्द आमद बसदाना के अक़्ल चुनानेस्त। (ज़रतुश्त की ६५वीं आयत)

अर्थात् व्यास नाम का एक ब्राह्मण हिन्द से आया है, जिसके समान कोई पण्डित नहीं।

चूं व्यास हिन्दी बलख़ आमद। गस्तास्प जरतुश्तरा बख़वाद।
(१६३ वीं आयत)

जब हिन्द का रहने वाला व्यास बलख़ आया, तब (ईरान के राजा) गस्तास्प ने जरतुश्त को बुलवाया।

आगे फिर लिखा है:—

मन मरदे अम हिन्दी निज़ादे।

मैं हिन्द में पैदा हुआ एक पुरुष हूँ।

वै हिन्द बाज़ गश्ते।

फिर वह हिन्द को लौट गया।

इन प्रमाणों से यह प्रकट होता है कि महर्षि व्यास के समय में ईरान वाले इस देश को 'हिन्द' कहते थे। व्यास ने स्वयं अपने देश का नाम हिन्द और अपने को हिन्द का निवासी कहा है। यह वैसी ही बात है जैसे आजकल हम लोग अंग्रेज़ों को समझाने के लिये उनके सामने अपने देश का नाम इण्डिया और अपना नाम इण्डियन बतलाते हैं। बादशाहदारा के समय के शिलाखेलों में भी भारतवर्ष का हिन्द नाम मिलता है।

अब प्रश्न यह है कि ईरान वाले इस देश को हिन्द क्यों कहते थे? हमारी समझ में हिन्द शब्द सिन्धु का अपभ्रंश है। ईरानी भाषा में 'स' का उच्चारण प्रायः 'ह' होता है। इससे सिन्धु का हिन्दू हो जाना असंभव

नही है। सम्भव है,उस समय वे लोग सिन्धु-नद के इस पार के देश को हिन्द और यहाँ के निवासियों को हिन्दी या हिन्दू नाम से पुकारते रहे हों। ऋग्वेद में 'सप्तसैन्धव' शब्द आया है, जो अवस्ता में 'हफ्त हैन्दव' हो गया है। यह सिन्धु नद के आसपास सात राज्यों या गणतन्त्रों के होने का द्योतक है। ग्रीक भाषा में सिन्धु का नाम इण्डस मिलता है, और इसी से इण्डिया शब्द की उत्पत्ति हुई है। उच्चारण-भेद से सिन्धु का किसी ने हिन्द बना लिया, किसी ने इण्डस।

मेरी राय में अब इस बात में सन्देह नहीं रह जाता कि हमारे देश का नाम हिन्द और हमारा नाम हिन्दू इस देश में मुसलमानों के आने से बहुत पहले ही पड़ चुका था। मुसलमानों ने हमारा यह नाम नहीं रक्खा।

सुप्रसिद्ध सर जार्ज ग्रियर्सन की भी 'हिन्दू' शब्द के सम्बन्ध में यही राय है। इङ्गलैण्ड से १९-९-१९ के भेजे हुए अपने पत्र में वे लिखते हैं—

You are quite right in stating that हिन्द is a Persian word, and is the Persian epuivalent of सिन्धु. The Persians called the whole of India by this name. The old form of "हिन्दू" was हिन्दी, which is derived from an older form हैन्दव, which is the equivalent of the Sanskrit सैन्धव, not of सिन्धु. The word हिन्दी means a native of हिन्द, that is a native of India, an Indian. But, in Persian, हिन्दू or हिन्दी means a person of the Hindu religion. Thus Amir Khusro says of Sultan Firoz Shah Khilzi, in his "Ghurratul Kamal," "what-ever like fell into the king's hands was pounded into bits under the feet of elephants. The Musalmans, who, were Hindis, had their lives spared." You will thus see that, when applied to a language, Hindi properly means any Indian language. Bengali and Marathi are just as mnch Hindi

as the language we now call Hindi. The use of the word Hindi in its modern sense, is quite late. Its proper name is हिन्दुई *i. e.* the language of Hindus, as apposed to Urdu, the language of Musalmans.

अब प्रश्न यह है कि इस शब्द का उल्लेख हमारे संस्कृत ग्रन्थों में क्यों नहीं मिलता? मेरी समझ में इसका कारण यही जान पड़ता है कि हिन्दू शब्द संस्कृत भाषा का नहीं है; और हमने यह नाम स्वयं नहीं रक्खा है बल्कि विदेशी हमें इस नाम से पुकारते थे। जैसे अमेरिका, यूरोप आदि देशों के लोग हमें इंडियन नाम से पुकारते हैं, परन्तु हम लोग अपनी पुस्तकों में अपने को हिन्दू ही लिखते हैं, इंडियन नहीं लिखते। अब प्रश्न यह है कि विदेशियों का रक्खा हुआ 'हिन्दू' नाम हमने स्वीकार क्यों कर लिया? इसका उत्तर यही है कि पूर्व काल में भारत और ईरान से घनिष्ठ सम्बन्ध था; दोनों देशों की भाषा में बहुत कुछ समानता थी; दोनों देशों के रीति-रस्म में भी बहुत कुछ एकता थी; महाभारत और पुराणों में दोनों देशों में वैवाहिक सम्बन्ध तक की चर्चा पाई जाती है। अतएव नित्य के संसर्ग से हमारे लिये उनके रक्खे हुए हिन्दू नाम को पहले हमने कौतूहल-वश स्वीकार किया; फिर धीरे-धीरे इस नाम ने हमारे उर्वर मस्तिष्क में अपनी जड़ जमा ली; परन्तु हमने संस्कृत-ग्रन्थों में अपना प्राचीन नाम ही क़ायम रक्खा, केवल बोलचाल में हम अपने को हिन्दू कहने लगे।

कितनी ही विदेशी जातियाँ इस देश में आईं और मिलजुलकर एक हो गईं। इसी तरह यह हिन्दू नाम भी विदेश से आया और यहाँ हमारा हो गया। अतएव हिन्दू नाम को घृणा से देखने का हमें कोई कारण प्रतीत नहीं होता। यह हिन्दू नाम हमारे और ईरानवासियों के प्राचीन सम्बन्ध की यादगार है।

हम ऊपर लिख आये हैं कि मुसलमानों ने हमारा नाम हिन्दू नहीं रक्खा, पृथ्वीराज रासो से भी यह प्रमाणित हो सकता है। चन्द बरदायी ने रासो के अनेक स्थलों पर हिन्दू और हिन्दुस्तान शब्द लिखे हैं। चंदबरदायी

से पहले मुसलमानों को इस देश में आये ही कितने दिन हुए थे कि उनका रक्खा हुआ नाम एक विशाल जाति में इतना प्रचार पा जाता कि एक वीर और स्वजात्याभिमानी कवि अपनी कविता में उस नाम को स्थान देता? स्वदेश और स्वजाति के जिस नाम से समाज अच्छी तरह परिचित रहता है, कवि लोग उनके लिये प्रायः वही नाम अपनी कविता में लिखते हैं। आजकल भी हिन्दी-भाषा के कवि अपनी कविता में आवश्यकता पड़ने पर अपने देश का नाम भारत या हिन्दुस्तान ही लिखते हैं? इण्डिया नहीं। अब यह बात ध्यान में आ सकती है कि चंदबरदायी से हज़ारों वर्ष पहले, जब कि पृथ्वी-मण्डल पर मुसलमानों का कहीं अस्तित्व भी नहीं था, हमारी आर्य-जाति हिन्दू, हिन्दुस्थान नाम को अपना चुकी थी। इसी से चंद कवि को इन शब्दों के बहुल प्रयोग में कोई हिचकिचाहट नहीं हुई।

हमारे देश का नाम हिन्द, यहाँ के निवासियों का नाम हिन्दी या हिन्दू और हमारी भाषा का नाम हिन्दवी या हिन्दी बहुत पुराना है। पहले देश का नाम, फिर निवासियों का नाम, फिर भाषा का नाम रक्खा गया।

अमीर खुसरो की एक पहेली में हिन्दी शब्द आया है, वह यह है––

फारसी बोले आईना। तुरकी सोचे पाईना।
हिन्दी बोलते आरसी आये। मुँह देखे जो इसे बताये॥

हिन्दी का एक पुराना नाम "भाषा" भी है। म० म० प० सुधाकर द्विवेदी स्वरचित गणक-तरंगिणी के ३३वें पृष्ठ पर भास्वती की भाषाटीका का एक उदाहरण उद्धृत करते हैं। उसमें भाषा शब्द आया है। उसका एक वाक्य यह है––

"सो देख कै बनमाली शिष्यार्थ भाषा टीका कीन्ह" यह टीका सं० १४८५ की बनी है। तुलसीदास ने रामायण में "भाषा" शब्द लिखा है––

भाषा निबद्धमतिमंजुलमातनोति।

* *

भाषा भनित मोर मति थोरी।

पर उन्होंने अपने फ़ारसी पंचनामें में हिन्दवी शब्द का प्रयोग किया है। सं० १६८० में लिखी हुई गोरा-बादल की कथा में जटमल ने "हिन्दवी" शब्द का प्रयोग किया है। आजकल भी बहुधा पुस्तकों के नामों और टीकाओं में हिन्दी के स्थान पर "भाषा" शब्द प्रयुक्त होता है, जैसे भाषाभास्कर, भाषाटीका आदि। पादरी आदम साहब लिखित उपदेश-कथा में, जो सं० १८९४ में दूसरी बार छपी, इस भाषा का नाम "हिन्दुवी" लिखा है। "पदार्थ विद्यासार" नामक पुस्तक में, जो सं० १९०३ में छपी है, "हिन्दी भाषा" नाम आया है।

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी पद्मावत में लिखा है—

तुरकी अरबी हिन्दवी, भाषा जेती आहि।
जामें मारग प्रेम का, सबै सराहैं ताहि॥

मालूम होता है कि पहले हिन्दू लोग इस भाषा को 'भाषा' और मुसलमान लोग 'हिन्दुई' या 'हिन्दुवी' कहते थे।

संवत् १८६१ के बने हुए 'प्रेमसागर' में लल्लूलालजी ने इस भाषा का नाम "खड़ी बोली" लिखा है। 'खड़ी बोली' से उनका क्या अभिप्राय था, इसका अब अनुमान ही किया जा सकता है। उन्होंने ही एक जगह अपनी भाषा का नाम "रेख्ते की बोली" लिखा है। जान पड़ता है, भाषा का नाम "रेख्ता" उस समय रक्खा गया, जब इसमें अरबी, फ़ारसी के शब्द भी मिलने लगे। गालिब ने भी रेख्ता नाम लिखा है—

रेख़ते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो ग़ालिब।
सुनते हैं अगले ज़माने में कोई मीर भी था॥

हिन्दी-गद्य

हिन्दी-गद्य का प्राचीन उदाहरण नहीं मिलता। महाराज पृथ्वीराज के समय के दो एक पत्रों की प्रतिलिपि, महात्मा गोरखनाथ, गोस्वामी बिट्ठलनाथ, गंगा भाट, गोस्वामी गोकुलनाथ और नाभादासजी आदि की पुस्तकों

से गद्य के कुछ उदाहरण आगे दिये जायँगे, वे हिन्दी-गद्य के यथार्थ उदाहरण नहीं कहे जा सकते। क्योंकि वे पत्र और पुस्तकें भिन्न-भिन्न प्रदेशों की बोलियों में लिखी गयी हैं। हिन्दी-गद्य के उस रूप का, जो देहली के आस पास विकास पा रहा था, जिसमें अमीर खुसरो ने अपनी पहेलियाँ लिखीं, जिसे ब्रजभाषा ने दबा लिया था और जो पहले रेख्ता और आजकल खड़ी बोली के नाम से प्रसिद्ध है, कोई उदाहरण नहीं मिलता। अमीर खुसरो का जन्म संवत् १३१२ में हुआ। उसने जो छन्द लिखे हैं, वे अवश्य ही उस समय की बोलचाल की भाषा में लिखे गये हैं। उसके छन्दों के विषय ही ऐसे हैं, जो रोज़मर्रा की बोलचाल ही में लिखे जाते हैं। उदाहरण के लिये यहाँ उसके कुछ छंद दिये जाते हैं—

तरवर से एक तिरिया उतरी, उसने बहुत रिझाया।
बाप का उसके नाम जो पूछा, आधा नाम बताया॥
आधा नाम पिता पर प्यारा, बूझ पहेली मोरी।
अमीर खुसरो यों कहें, अपने नाम निबोरी॥

* *

बीसों का सिर काट लिया। ना मारा ना खून किया॥

* *

वह आवे तब शादी होय। उस बिन दूजा और न कोय।
मीठे लागे वाके बोल। ऐ सखि साजन? ना सखि ढोल॥

'उसने बहुत रिझाया', 'आधा नाम बताया', 'बीसों का सिर काट लिया' आदि बिल्कुल खड़ी बोली के शुद्ध वाक्य हैं। हिन्दी का यह रूप अमीर खुसरो के वक्त में अवश्य रहा होगा। 'उसने बहुत रिझाया' में 'ने' का प्रयोग भी ध्यान देने योग्य है। ब्रजभाषा की कविता में 'ने' का प्रयोग बहुत ही कम मिलता है। तुलसीदास के रामायण में 'ने' हई नहीं। किन्तु अमीर खुसरो ने 'ने' का प्रयोग किया है। 'मीठे लागे वाके बोल' ये ब्रजभाषा के शब्द हैं। इन उदाहरणों से प्रकट होता है कि ब्रजभाषा और

हिन्दी दोनों का विकास साथ ही साथ हो रहा था। श्रीकृष्ण की जन्मभूमि की भाषा होने के कारण और अपभ्रंश शब्दों की बहुलता से काव्य-रचना में प्रयोग-सुलभ (सुगम) और कर्ण-मधुर होने के कारण वैष्णव कवियों और भक्तों ने ब्रजभाषा ही को प्रधानता दी। जितने काव्य लिखे गये, सब ब्रज-भाषा में। हिन्दी की तरफ किसी ने दृष्टि ही नहीं की। तौ भी वह दिल्ली के आसपास के ज़िलों में बोली जाती रही, और अब भी बोली जाती है।

चन्दबरदाई हिन्दी का आदि कवि कहा जाता है। पर हिन्दी का जो रूप उसकी कविता में दिखाई पड़ता है, उससे भी विशेष स्पष्ट रूप उस समय वर्त्तमान था। यह बात अमीर ख़ुसरो की कविता से अच्छी तरह समझ में आ जाती है। चन्दबरदाई और अमीर ख़ुसरो के बीच में सिर्फ़ ६४ वर्ष का अंतर है। इतने थोड़े अर्से में चन्दबरदाई की हिन्दी इतना विकास नहीं पा सकती कि वह ख़ुसरो की हिन्दी हो सके। ख़ुसरो के थोड़े ही दिन बाद कबीर हुए। कबीर की कविता भी ख़ुसरो की हिन्दी में मिलती है। कविता-कौमुदी में कबीर की कवितायें देखिये। कितने ही पद और पद्य ऐसे मिलेंगे जो आजकल की हिन्दी में कहे गये-से जान पड़ते हैं। इससे मालूम होता है कि हिन्दी का विकास स्वतंत्र रूप से होता आ रहा है। चंदबरदाई के समय में हिन्दी का एक अलग रूप था, जिसका प्रयोग उसने अपनी कविता में कहीं-कहीं किया है। उसे हम हिन्दी का आदि कवि इसी से मानते हैं कि उसके समकालीन या पहले के और किसी कवि की हिन्दी-कविता उपलब्ध नहीं। किन्तु यह बात निस्सन्देह कही जा सकती है कि उस समय शुद्ध हिन्दी में भी कविता होती थी, और देहली के आस-पास आजकल की खड़ी बोली की तरह हिन्दी बोली जाती थी। कारक, वचन, लिंग और पुरुष का प्रयोग ख़ुसरो के समय में भी वैसा ही होता था जैसा आजकल है। ख़ुसरो की भाषा हमें इस संदेह में डाल देती है कि क्या वास्तव में हिन्दी का जन्म बारहवें शतक में हुआ? मेरी राय में ख़ुसरो की व्याकरण-सम्मत हिन्दी के लिये उसका जन्मकाल कई सौ बरस पीछे हटाना पड़ेगा और यह मानना पड़ेगा कि हिन्दी का आदि कवि चंद नहीं, बल्कि कोई और होगा, जिसका पता नहीं।

मुसलमानों ने अपने अरबी फ़ारसी के शब्दों को हिन्दी में मिलाने का प्रयत्न भी किया । अमीर खुसरो ने इसी विचार से ख़ालिकबारी लिखी थी। बहुत से अरबी फ़ारसी के शब्द संस्कृत और हिन्दी शब्दों के साथ, जहाज के पीछे छोटी नाव की तरह, जोड़ दिये गये, जो आजतक जुड़े ही चलते हैं। जैसे, काग़ज़-पत्र, शादी-ब्याह, खत-पत्र, चिट्ठी-रसा धन-दौलत, शाक-सब्ज़ी, खेल-तमाशा, लाज-शरम, कपड़ा-लत्ता आदि । शाहजहाँ के समय तक हिन्दी में अरबी फ़ारसी के इतने शब्द आ चुके थे कि हिन्दी वाक्यों का एक नया रूपान्तर बन गया। उस को बादशाही दरबार और कचहरियों में जगह मिली। मुहावरों से उसकी नींव दृढ़ की गई और रसीली कविताओं से उसका शृंगार किया गया । बेचारी हिन्दी पहले तो ब्रजभाषा की छाया में पनप न सकी, फिर उस मुसलमानी हिन्दी ने उसका रास्ता रोका। संवत् १८६० में ब्रजभाषा से मिलीजुली आगरा के आसपास की बोली में एक पुस्तक लिखी गई। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक हिन्दी का विकास लल्लूलाल जी ही के प्रारंभ किये हुए रास्ते पर होता रहा। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हिन्दी का रूप ही बदल गया और उसने एक नये युग में प्रवेश किया। हिन्दी का मूल-जन्मस्थान दिल्ली के आसपास का प्रदेश है। ब्रज-भाषा तथा युक्तप्रांत की कई बोलियों और मुसलमानी हिन्दी के कुञ्जों से निकलकर हिन्दी अब अपने असली रूप में विकास पा रही है। अब हिन्दी व्याकरण-सम्मत एक शुद्ध और सब प्रकार के शब्दों से पूर्ण भाषा है। हिन्दी-गद्य में प्रायः सब विषयों के ग्रन्थ तैयार हो चुके हैं और होते जाते हैं। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त के विद्वानों द्वारा यह भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकार की गई थी, और अब तो भारत की राष्ट्रीय सरकार ने उसे राष्ट्रभाषा होने का कानूनी अधिकार भी दे दिया। इसका साहित्य-भण्डार जिस तेज़ी से बढ़ रहा है, उसे देखते हुए हम हर्ष से कहते हैं कि थोड़े ही वर्षों में यह भारत की प्रांतीय भाषाओं में सर्वोच्च साहित्यिक स्थान ग्रहण करेगी।

गद्य हिन्दी के क्रम-विकास का कोई पुराना उदाहरण हमें नहीं मिला। जो कुछ पुरानी पुस्तकें हमें मिली हैं, वे हिन्दी में नहीं, बल्कि उसके भिन्न

भिन्न रूपान्तरों में लिखी हुई हैं। हिन्दी का वास्तविक विकास सं० १९०० से होने लगा है। यहाँ हिन्दी के पुराने रूपान्तरों और वास्तविक हिन्दी, दोनों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं:—

महाराज पृथ्वीराज के समय के कुछ पत्र मिले हैं, उनमें से दो की प्रतिलिपियाँ भी यहाँ दी जाती हैं।

श्रीहरी एकलिंगो जयति

श्री श्री चित्रकोट बाई साहब श्री पृथुकुवर बाई का वारण गाम मोई आचारज भाई रुसीकेसजी बाँचजो अपन श्री दली सुँ भाई लंगरी राय जी आआ है जो श्रीदली सुँ श्री हजूर को बी खास रुका आयो है जो मारो भी पदारवा की सीखवी है नेदली काका जी षेद है जो कागद वाचत चला आवजो थानेमा आगे जाइगे पड़ेगा थाके वास्ते डाक बेठी है श्री हजूर बी हुक्म बेगीयो है जो थे ताकीद सुँ आवजो थारे मन्दर को व्याव कामारथ अवार करोगा दली सुं आआ पाछे करोगा ओर थे सवेरे दन अठे आद्यसो सं० ११४५ चैत सुदी १३। सही

यह विक्रम सं० १२३५ का पत्र है। उस समय जो संवत् प्रचलित था, वह विक्रम संवत् से ९० वर्ष कम कहा जाता है। ऊपर के पत्र का अर्थ यह है:—

श्री हरि एकलिंगजी की जय हो। मोई ग्राम निवासी आचार्य भाई ऋषीकेशजी को चितौर से बाई साहब श्री पृथाकुँरि बाई का संवाद बाँचना। आगे भाई श्री लंगरीरायजी श्री दिल्ली से आये हैं और श्री दिल्ली से हुजूर का खास रुक्का भी आया है, जिससे मुझको भी दिल्ली जाने की आज्ञा मिली है। काका जी अस्वस्थ हैं। सो कागज बाँचते चले आओ। तुमको हमसे पहले जाना पड़ेगा। तुम्हारे वास्ते डाक बैठाई गई है। श्री हजूर (समर सिंह) ने भी आज्ञा दी है। सो ताकीद जानकर जल्दी आओ। जो तुम्हारे मन्दिर की स्थापना जल्दी स्थिर हुई है, सो हम लोगों के दिल्ली से लौटने पर होगी। इतनी जल्दी आओ कि दिन का सबेरा वहाँ हो तो शाम यहाँ हो। मिती चैत सुदी १३, संवत् ११४५।

दूसरा पत्र—मेवाड़ की एक सनद, सं० १२२९

स्वस्ति श्री श्री चित्रकोट महाराजाधीराज तपे राज श्री श्री रावल जी श्री समरसी जी बचनातु दा अमा आचारज ठाकर रुसीकेष कस्य थाने दली सु डायजे लाया अणी राज में ओषद थारी लेवेगा ओषद ऊपरे मालकी थाकी है जो जनाना में थारा बंसरा टाला ओ दूजो जावेगा नहीं और थारी बैठक दली में ही जी प्रमाण परधान बरोबर कारण होवेगा।

भावार्थ

श्री चित्रकोट (चित्तौर) के महाराजाधिराज रावल समर सिंह की आज्ञा से आचार्य ऋषीकेश को—तुमको दिल्ली से दायजे में लाया। राज्य में तुम्हारी दवा ली जायगी, दवा पर तुम्हारा अधिकार है, और अन्तःपुर में तुम्हारे वंशजों के सिवाय दूसरा नहीं जायगा, और दरबार में तुमको प्रधान के बराबर आसन मिलेगा, जैसे दिल्ली में था।

सं० १४०७—महात्मा गोरखनाथ जी

स्वामी तुम्है तो सतगुरु अम्है तो सिष सबद एक पूछिबा. दया करि कहिबा, मन न करिबा रोस। पराधीन उपरान्ति बन्धन नाहीं, सु आधीन उपरांति मुकुति नाहीं।

सं० १६००—गोस्वामी बिट्ठलनाथ जी

प्रथम की सखी कहत है, जो गोपीजन के चरण विषै सेवक की दासी करि जो इनके प्रेमामृत में डूब के इनके मन्दहास्य ने जीतें हैं अमृत समूह ता करि निकुंज विषै शृङ्गार रस श्रेष्ठ रसना कीनी सो पूर्ण होत भई।

सं० १६२९—गंगा भाट (चंद छंद बरनन की कहिमा से)

इतनो सुन के पातशाह जी श्री अकबर शाहाजी आदसेर सोना नरहरदास चारन को दिया।

सं० १६४८––गोस्वामी गोकुलनाथ जी

(चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता से) श्री गुसाईं जी के सेवक एक पटेल की वार्ता। सो वह पटेल वैष्णवराज नगर में रहेतो हतो। वा पटेल वैष्णव के दो बेटा हते और एक स्त्री हती।

सं० १६६०––नाभादास जी

तब श्री महाराज कुमार प्रथम वशिष्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भये।

सं० १६६९––गोस्वामी तुलसीदास

सं० १६६९ समये कुमार सुदी तेरसी बार शुभदीने लिषीत पत्र अनन्दराम तथा कन्हई के अंस विभाग पूर्वसु जे आग्य दुनहु जने मागा जे आग्य मैशे प्रमान माना।

सं० १६७०––बनारसीदास जी

सम्यग् दृष्टी कहा सो सुनो। संशय, विमोह, विभ्रम ए तीन भाव जामैं नाहीं सो सम्यग दृष्टी।

सं० १६८०––जटमल (गोरा बादल की कथा से)

हे बात कीसा चित्तौड़गढ़ के गोरा बादल हुआ है जीनकी वार्ता की किताब हींदवी में बना कर तैयार करी है।.....ये कथा सोल से अस्सी के साल में फागुन सुदी पूनम के रोज बनाई।

सं० १७६७––सुरति मिश्र (कविप्रिया की टीका से)

सीस फूल सुहाग अरु बेंदा भाग ए दोऊ आये पावड़े सोहे सोने के कुसुम तिन पर पैर धरि आये हैं।

सं० १७८६––दास

धन पाये ते मूर्खहू बुद्धिवन्त ह्वै जातु है। और युवावस्था पाये ते नारी चतुर ह्वै जाति है। उपदेश शब्द लक्षणा सो मालूम होता है और वाच्यहू तुमें प्रगट है।

सं० १८६०—लल्लूलालजी

निदान श्री कृष्णचन्द्र के पास बैठा सुन सुन घबड़ा कर अर्जुन बोला कि हे देवता तू किस के आगे यह बात कहै है और क्यों इतना खेद करै है।

सं १८६०—सदल मिश्र (नासकेतोपाख्यान से)

कुण्ड में क्या अच्छा निर्मल पानी कि जिसमें कमल कमल के फूलों पर भौंरे गूंज रहे थे, तिस पर हंस सारस चक्रवाकादि पक्षी भी तीर तीर सोहावन शब्द बोलते, आसपास के गाछों पर कुहू कुहू कोकिलैं कुहुक रहे थे जैसा बसंतऋतु का घर ही होय।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् हिन्दी-गद्य का विकास बड़ी तेजी से हुआ। इससे पहले लोगों का ध्यान पद्य ही की ओर विशेष रहा, गद्य में पुस्तकें कम लिखी गईं। किन्तु हरिश्चन्द्र के बाद गद्य लिखने की ओर विद्वानों ने ऐसी तत्परता दिखाई कि पद्य का स्थान पीछे पड़ गया। पद्य से गद्य की विशेष उन्नति हुई, पद्य पिछड़ गया और गद्य ने एक परिमार्जित रूप धारण कर लिया। यहाँ हम हिन्दी-गद्य के नये युग के क्रम-विकास के कुछ उदाहरण उपस्थित करते हैं:—

सं० १९११—राजा शिवप्रसाद

जब विपत के दिन आते हैं तो सारे सामान ऐसे ही बन्ध जाते हैं। निदान राजा नल ने चलते समय दमयन्ती की साड़ी काटकर आधी उसके बदन पर रहने दी।

सं० १९२०—स्वामी दयानन्द

वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय; किन्तु जो पदार्थ जैसा है, वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है।

सं० १९२६—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

फिर महाराज अपव्यय ने खूब लूट मचाई। अदालत ने भी अच्छे हाथ साफ़ किये। फ़ैशन ने तो बिल और टोटल के इतने

गोले मारे कि बंटाढार कर दिया, और सिफ़ारिश ने भी ख़ूब ही छकाया।

पंडित बालकृष्ण भट्ट

शब्द की आकर्षण-शक्ति न्यूटन की आकर्षण-शक्ति से लवमात्र भी कम नहीं कही जा सकती। बल्कि शब्द की इस शक्ति को न्यूटन की आकर्षण-शक्ति से विशेष कहना चाहिए। इसलिए कि जिस आकर्षण-शक्ति को न्यूटन ने प्रकट किया, वह केवल प्रत्यक्ष में काम दे सकती है।

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी

उनके कथन का अवतरण देकर मल्लिनाथ ने उन्हें फटकार बताई है और लिखा है कि प्रसंग भी देखते हो या मनमानी हाँकते हो। तुम्हें इस प्रयोग को सही साबित ही करना है तो पाणिनि-व्याकरण के पीछे न पड़ कर और व्याकरण देखो। (किरातार्जुनीय)

अनाज महँगा होने से किसानों ही पर आफ़त नहीं आती; किन्तु मेहनत मज़दूरी करनेवाले और लोगों पर भी आती है; यही नहीं, सभी लोगों पर उसका असर पड़ता है। (सम्पत्ति-शास्त्र)

बाबू श्यामसुन्दरदास

इस पद्य की उत्पत्ति से यह तात्पर्य नहीं है कि पहले गद्य था ही नहीं; किसी न किसी रूप में था। नहीं तो क्या लोग पद्य में बातचीत करते थे? गद्य बोलचाल में अवश्य था, पर भिन्न-भिन्न प्रान्तों और स्थानों में भिन्न-भिन्न रूप में था। जिन्हें हम आजकल बोलियों का नाम देते हैं, जैसे आगरे के निकट ब्रजभाषा बोली जाती हैं।

बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन

ईश्वरीय सौन्दर्य्य को—प्राकृतिक कविता को भाषा की छटा द्वारा संसार को दरसाना ही कवि का कर्तव्य है। जितना ही गहरा वह अपनी प्रतिभा द्वारा इस सौन्दर्य-सागर में डूबता है, उतना ही अधिक वह अपने कर्तव्य में सफल होता है।

बिहारी की सखी का परिहास बड़ा ही लाजवाब है। रसिक मोहन सुनकर फड़क ही गये होंगे। इससे अच्छा साफ़ सच्चा सीधा और दिल में गुदगुदी करने वाला मीठा मज़ाक साहित्य-संसार में शायद ही हो।

हिन्दी-पद्य

जो प्रमाण उपलब्ध हैं, उनसे यही प्रमाणित होता है कि प्रारम्भ में हिन्दी-गद्य से पद्य में विशेष उन्नति हुई थी; क्योंकि पद्य-द्वारा थोड़े समय और थोड़े शब्दों में अधिक प्रभावोत्पादक बातें कही जा सकती हैं। उसके कंठस्थ रखने में भी सुविधा होती है। अक्षरों, मात्राओं और पदों का नियम-बद्ध संगठन होने से उसके पढ़ने में भी आनन्द आता है। तथा पद्य का सम्बन्ध गान-विद्या से है और गान-विद्या मनुष्य-मात्र को प्रिय है, यहाँ तक कि वह पशु-पक्षी तक का भी हृदय मोहित करने की शक्ति रखती है, इन कारणों से पद्य की ओर लोगों की स्वाभाविक रुचि बढ़ती गई। गद्य में उपर्युक्त गुण नहीं; इसी से पूर्वकाल में उसका प्रचार भी कम हुआ। परन्तु उपर्युक्त गुण न रहने पर भी आजकल पद्य की अपेक्षा गद्य का प्रचार अधिक क्यों है? इसका कारण यह है कि गद्य ही में संसार का प्रतिदिन का व्यवहार चलता है। बोलकर जो कुछ काम हम लोग करते कराते हैं, सब में गद्य का उपयोग करते हैं। पहले से काम भी बढ़ गये हैं। इसलिए थोड़े ही परिश्रम से अपने मानसिक भावों को गद्य-द्वारा प्रकट करने की शक्ति मनुष्य में आ सकती है। पद्य में यह सुगमता नहीं। उसके लिए अधिक परिश्रम करना पड़ता है, नियम सीखने पड़ते हैं, मस्तिष्क के विचारों को पद्य के पेचीले रास्ते से घुमा-फिराकर निकालना पड़ता है, इसी से उसमें अधिक समय लगता है। अधिक से अधिक परिश्रम करने पर भी मनुष्य पद्य में इतनी पटुता नहीं प्राप्त कर सकता कि उसके द्वारा वह गद्य की तरह धाराप्रवाह-रूप से बातचीत कर सके। पद्य के लिये प्रतिभा चाहिये। सब मनुष्य प्रतिभा-सम्पन्न नहीं। अतएव जिनमें प्रतिभा है, पद्य-रचना के अधिकारी वे ही हैं। गद्य-रचना

आसान है, क्योंकि वही प्रतिदिन की बोलचाल है। उसमें उन्नति करना सर्वसाधारण के लिये सुगम है।

गद्य की अपेक्षा पद्य में जो विशेषताएँ हैं, संस्कृत-साहित्य में भी उन पर विशेष ध्यान दिया गया है। हाथ-मुँह धोने, दातुन करने, बाल सँवारने आदि साधारण कामों की बातें भी मनु आदि ने पद्य में कही हैं। वही क्रम हिन्दी के आदि-काल में भी ग्रहण किया गया था। उस समय के प्रतिभा-सम्पन्न लोगों को जो कुछ कहना हुआ, उन्होंने सब पद्य में कहा। आजकल मनुष्यों के जीवन-चरित्र प्रायः गद्य में लिखे जाते हैं, पूर्व काल में पद्य में लिखे जाते थे। इसमें सन्देह नहीं कि गद्य की अपेक्षा पद्य में लिखा हुआ जीवन-चरित्र अधिक प्रभावशाली हो सकता है; परन्तु पद्य-रचना का कार्य उतना सुगम नहीं, जितना गद्य का है।

हिन्दी-पद्य के विषय में दो एक बातें और कहने की हैं। वे यह हैं कि संस्कृत-कविता में जैसा वर्ण-वृत्तों का प्राधान्य है, वैसा हिन्दी में नहीं है। हिन्दी के पुराने कवियों में तो शायद ही किसी ने वर्ण-वृत्तों में कविता की हो। यदि किसी ने की भी है, तो वर्णवृत्त के नियम का उसने अच्छी तरह से पालन नहीं किया है। मात्रिक छन्दों में अपने भावों को सरलता-पूर्वक वर्णन करने में उसे जैसी सफलता मिली है, वैसी वर्ण-वृत्तों में नहीं। हिन्दी के पुराने कवियों के विषय में एक यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि उनमें ऐसे कवियों की संख्या अधिक है जिन्होंने अन्य छन्दों की अपेक्षा घनाक्षरी और सवैया छन्दों ही में अधिक रचना की है। यों तो तुलसी ने दोहे चौपाई ही में सारी राम-कथा कह डाली है, बिहारी ने दोहों ही दोहों में रस भरा है, चन्द और केशव ने विविध छन्दों में अपने मनोभाव प्रकट किये हैं; किन्तु घनाक्षरी और सवैया लिखनेवाले कवियों ही की संख्या अधिक है। आजकल इन छन्दों की उतनी क़दर नहीं रही। अब कितने ही नये छन्दों का प्रचार बढ़ रहा है। आजकल वर्ण-वृत्तों में भी सफलता के साथ कविता होने लगी है।

हिन्दी-पद्य-रचना के विषय में एक बात यह भी उल्लेख के योग्य है कि इसमें प्रारम्भ काल ही से तुकबन्दी का प्रचार है। संस्कृत में जैसे अनुकान्त

कविता का बाहुल्य है, हिन्दी में वैसा ही, बल्कि उससे भी विशेष, तुकबन्दी का प्राधान्य है। मात्रिक छन्दों में तुकबन्दी के बिना भाषा का माधुर्य कम हो जाता है। हाँ, वर्ण-वृत्तों में अतुकान्त रूप नहीं खटकता। पहले के कवि वर्ण-वृत्तों में प्रायः नहीं के बराबर ही कविता रचते थे, अतः बेतुकी की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया।

हिन्दी और वैष्णव

वैष्णव सम्प्रदाय में चार भेद हैं—विष्णु सम्प्रदाय, रामानुज सम्प्रदाय, मध्व सम्प्रदाय और वल्लभ सम्प्रदाय। इन चारों सम्प्रदायों के मुख्य आचार्य विष्णु, रामानुज, मध्व और वल्लभ थे। विष्णुस्वामी द्रविड़ देश के रहने वाले थे। इनका जन्म दिल्ली में किसी राजा के मंत्री के घर हुआ था। इन्होंने शांकर-मत का खंडन किया है। रामानुज स्वामी भी द्रविड़-देश-निवासी थे। इनके पिता का नाम 'केशव' और माता का 'मति' था। मध्वाचार्य का जन्म मदरास के रजतपीठ, ज़िला कनारा में सं० १२५४ में हुआ। इनके पिता का नाम मध्यगेह भट्ट था। वल्लभाचार्य का जन्म सं० १५३५ में आन्ध्रदेश (दक्षिण) में हुआ। इन्होंने भागवत दशमस्कंध का पद्य में अनुवाद किया है।

राम और कृष्ण वैष्णवों के प्रधान उपास्य देव हैं। ये विष्णु के अवतार माने जाते हैं। चन्दबरदायी ने रासो के पहले ही छंद में गुरु को नमस्कार कर साकार लक्ष्मीश विष्णु को स्मरण किया है। आगे चलकर उसने दस अवतारों की कथा अलग-अलग लिखी है। इससे मालूम होता है कि उसके चित्त पर वैष्णव-धर्म का विशेष प्रभाव था। और हिन्दी का आदि कवि भी वही माना जाता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि वैष्णवों ही ने हिन्दी का उसके जन्मकाल से लालन-पालन किया है। हिन्दी के साथ वैष्णवों का अधिक सम्बन्ध होने का एक कारण और भी है। वह यह है कि हिन्दी उस प्रदेश की भाषा है, जहाँ वैष्णवों के आराध्य देव राम और कृष्ण ने अवतार धारण किया था। जिस स्थान पर उन्होंने लीला की, उस स्थान, वहाँ के

निवासियों और उनकी भाषा से वैष्णवों का प्रेम होना स्वाभाविक ही है। राम और कृष्ण का कीर्तन करने में वैष्णव कवियों का एक ताँता-सा बँध गया। हिन्दी में आजतक शायद ही कोई ऐसा कवि हुआ हो, जिसने किसी न किसी रूप में रामकृष्ण का गुण गान न किया हो।

पंद्रहवीं शताब्दी में स्वामी रामानन्द हुये। उन्होंने मानों हिन्दी-भाषा में वैष्णव-धर्म की नींव दृढ़ कर दी। उनके पश्चात् ही भक्त शिरोमणि सूरदास ने सं० १५४० में जन्म लिया। सूरदास ने अपनी कविता-द्वारा हिन्दी का गौरव मुसलमान सम्राट् अकबर के दरबार तक फैला दिया। इसी शताब्दी में दक्षिण देश से आकर स्वामी वल्लभाचार्य ने कृष्णभक्ति को और भी चमत्कृत कर दिया। सूरदास और वल्लभाचार्य की संयुक्त शक्ति ने वैष्णव-सम्प्रदाय में कृष्ण-भक्ति की एक बाढ़-सी ला दी। इसी अवसर में स्वामी हरिदास, हितहरिवंश और नन्ददास की मधुर ध्वनि गूँजने लगी। वैष्णव-दल में एक से एक प्रतिभाशाली कवियों ने जन्म लेकर हिन्दी-भाषा द्वारा जनता का मन ऐसा खींच लिया कि देश में चारोंओर हिन्दी-कविता सहस्र-धारा होकर उमड़ चली। अभी लोग इस आनन्द-लहरी में स्नान कर के तृप्त हो ही रहे थे कि हिन्दी-कवियों के शिरोमणि तुलसी-दास आ पहुँचे। इनकी कलम ने हिन्दी में वैष्णव-धर्म को अजर-अमर बना दिया। आज इनके समान प्रतिभाशाली कवि हिन्दी में कोई नहीं। आज अपढ़ सपढ़ सब में तुलसीदास वैष्णव-धर्म की चर्चा करते हुए पाये जाते हैं। तुलसी-दास के समान आज भारतवर्ष-भर में किसी हिन्दी-कवि का आदर नहीं है।

वैष्णव कवियों की कविता का रस चखकर मलिक मुहम्मद जायसी और रहीम ऐसे कितने ही मुसलमान कवि अपनी कविता-द्वारा वैष्णव-धर्म का प्रचार करने लगे। और रसखान तो जाति-पाँति सब छोड़कर स्वयं वेष्णव ही हो गये।

सूर और तुलसी के पीछे हिन्दी के जितने कवि हुए, सब राम और कृष्ण के कीर्तन में उत्तरोत्तर वृद्धि करते चले आये। ग्रामीण कवियों ने

अपनी रोज़ की बोलचाल में जो कविता रची है, उसके द्वारा गाँव के अपढ़ लोगों में भी वैष्णव-धर्म का ख़ूब प्रचार हुआ। एक उदाहरण देखिये :—

हरे हरे केसवा हरु रे कलेसवा तोरा के रटत महेसवा रे।
तोरे नाम जपत बा पुजत बा सबसे प्रथम गनेसवा रे॥
जल बरसैला धान सरसैला सुख उपजैला मधवा रे।
प्रागदास प्रहलदवा के कारन रघवा ह्वै गैलें बघवा रे॥

गाँव के लोग अपनी रोजमर्रा की बोलचाल की कविता को बड़े ध्यान से सुनते और खूब समझते हैं। तात्पर्य यह कि हिन्दी-भाषा-द्वारा वैष्णव-धर्म का सम्मान बढ़ा और वैष्णव-धर्म के साथ हिन्दी का प्रचार हुआ।

हिन्दी और बँगला

भारत के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या महोदय अपने ऋतम्भरा नामक निबंध-संग्रह (प्रकाशक, साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग) में लिखते हैं:—

"तुर्क लोगों के आने के पहले ही से हिन्दी का पूर्वरूप शौरसेनी अपभ्रंश बंगाल में भी चालू था, वहाँ के प्राचीन बौद्ध तथा ब्राह्मण-धर्मी कवि लोग, न केवल अपनी मातृ-भाषा पुरानी बँगला में पर शौरसेनी या पछाँही अपभ्रंश में भी कविता करते थे। ईस्वी सोलहवीं या सत्रहवीं शती में हिन्दी-साहित्य का विशेष प्रभाव बँगला साहित्य पर पड़ा; बंगाल के कुछ मुसलमान कवियों ने हिन्दी के कई नामी ग्रंथों का बँगला अनुवाद किया, जिनमें कवि आला-ओलि-कृत मलिक मुहम्मद जायसी की "पदुमावत" का अनुवाद लक्षणीय है। सत्रहवीं शती में "भक्तमाल" का भी बँगला अनुवाद हो गया। अठारहवीं शती के सर्वश्रेष्ठ बंगाली कवि भारतचन्द्र राय गुणाकर फ़ारसी, संस्कृत और हिन्दी अच्छी तरह से जानते थे। और इन्होंने कुछ हिन्दी कवितायें भी लिखी हैं,जो इनकी रचनाओं के संग्रह में मिलती हैं। × × × ताराचन्द मित्र ने हिन्दी 'बेताल पचीसी' का संशोधित संस्करण १८०५ सन् में निकाला था। पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे। × × ×

जब १९०५ साल के बाद बंगाल में बंग-भंग आन्दोलन शुरू हुआ, और विदेशी द्रव्यों के बहिष्कार तथा स्वदेशी द्रव्यों के व्यवहार की नीति इस आन्दोलन के फल-स्वरूप समस्त भारत में गृहीत हुई-तब स्व० कालीप्रसन्न काव्य-विशारद आदि बंगाल के कुछ नेताओं ने निहायत सहज भाव से भारत के राष्ट्रीय जीवन में हिन्दी को मान लिया था।

रवीन्द्रनाथ स्वयं हिन्दी-प्रेमी थे। उन्होंने कबीर के सौ पदों का अँग्रेज़ी अनुवाद किया था। इससे मध्ययुग के हिन्दी-साहित्य के एक श्रेष्ठ अनुभवी कवि की रचना से तमाम सभ्य जगत् को परिचय मिला। गुजरात में भ्रमण करते समय रवीन्द्रनाथ हिन्दी ही में भाषण दिया करते थे।"

इस समय तो बंगाल में हिन्दी के बड़े-बड़े विद्वान हैं, जिनमें डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या और आचार्य क्षितिमोहन सेन अपनी हिन्दी-विषयक योग्यता में अप्रतिम हैं। श्री सतीशचन्द्रदास गुप्त ने रामचरितमानस का अनुवाद अभी हाल ही में किया है।

हिन्दी और मराठी

मराठी हिन्दी-प्रांतों के पड़ोसी प्रांत की भाषा है। हिन्दी और मराठी की जननी अपभ्रंश भाषा भी एक है; इससे दोनों के विचारों का आदान-प्रदान भी उनके प्रारंभिक जीवन के साथ-साथ होता आ रहा है। छत्रपति शिवाजी महाराज का हिन्दी-प्रेम तो प्रसिद्ध ही है। महाराष्ट्र अपने मराठी-संतों एकनाथ, ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम, जनाबाई आदि के समान ही हिन्दी-संतों कबीर, सूरदास, रैदास, तुलसीदास, मीराबाई आदि का भी आदर करता रहा है; और मराठी-संतों ने हिन्दी में पद रचना करके हिन्दी के प्रचार में बड़ी सहायता पहुँचाई है। उनके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं:—

एकनाथजी महाराज ने मराठी में रामायण और भागवत की सुविस्तृत रचना की थी। उनकी भागवत से पता चलता है कि वे संवत १६३० की कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा तक काशी में रहे थे। संभवतः वहीं उनको हिन्दी में रचना करने की स्फूर्ति मिली हो। नमूने के तौर पर उनकी कुछ रचनायें यहाँ दी जा रही हैं:—

१

पग पग पै बलि **बलि जाऊँ,** गोविन्द जे घर ल्यावे रे।
जन्म जन्म को बैरी अल्लर, स्मर तें देह सतावे रे।।
शाम सुन्दर बजावत बेनू, स्मर तें जिऊँ जिवावे रे।
जीव मोहन करि गयो कान्हा दृश्य मात्र भयो हरी रे।
गोकुल माही और न दीसे कृष्ण रूप नर नारी रे।।
ऐसी देखत रैनी विनसी दश्या चकित भये नयना रे।
चिदानन्द आनंद पाइये स्मर ते एका जनार्दन रे।।

'एका जनार्दन' उपनाम है। 'एका' से एकनाथ और जनार्दन से उनक गुरु का नाम का बोध होता है।

२

राम मीठा लगा, सब सुख हम त्यागा।
हम तो भये राजा राम के सिपाही दिल घोड़ा दागा।
घर बैठे हम करते चाकरी कब हुआ नागा।
'एका जनार्दन' यों कर बोले पावत मुँह-माँगा।।

जना जनार्दन एकनाथजी के समकालीन थे। इनका एक हिन्दी पद यह है:–

जब तू आया, तब क्या लाया?
क्या ले जायेगा, किसने भुलाया?
झूठा धंदा पड़िया फंदा
देखत क्यों हो अंधा?
कहत जनार्दन सुन अरे मन,
न भूल न छोड़ रे उस साई के चरन।

मराठी में अभंग छंद की रचना करनेवाले सुप्रसिद्ध संत तुकाराम छत्रपति शिवाजी महाराज के समकालीन थे। उन्होंने हिन्दी में भी कुछ दोहे और पद कहे हैं। उनमें से कुछ ये हैं:—

१

लोभी के चित धन बसे, कामिनि के चित काम।
माता के चित पूत बसे, तुका के मन राम।।

२

मेरे राम का नाम जो लेवे बारंबार।
त्याके पाँव मेरे तन की पैजार।।
हाँसत खेलत चालत बाट।
खाना खाते सोते खाट।।
जातन सूँ मुझे कछु नहिं प्यार।
असत के नहिं हिन्दू धेड़ चमार।।

जाका चित लगा मेरे राम को नाम।
कहे तुका मेरा चित लगा ताके पाँव।।

जयराम पिंडये शिवाजी के पिता शाहूजी के दरबारी कवि थे। उनके दरबार में लगभग पाँच सौ कवि थे, उनमें जयराम संस्कृत, मराठी, हिन्दी, ढुंढारी, गुजराती, कनाड़ी, तेलग आदि बारह भाषायें जानते थे। शाहूजी की प्रशंसा में उनका रचा हुआ राधा माधव-विलास चम्पू, जो बारह भाषाओं में है, एक सुप्रसिद्ध काव्य है। शाहूजी के दरबार में रघुनाथजी व्यास और सुबुद्धि राव भाट हिन्दी-कवि भी रहते थे। इससे जान पड़ता है, शाहूजी को हिन्दी कविता से भी प्रेम था; और इसीसे शिवाजी को हिन्दी के प्रति प्रेम पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिला था और तभी उन्होंने भूषण का इतिहास-प्रसिद्ध आदर और सम्मान किया था। जयराम की हिन्दी-कविता का नमूना यह है—

साईं खुमान को दान कहा बिधि
कैसो कियो निधि मोल लियो है।
कारन ह्या को कह्यो करतार ने
सीसौदिये कुल सीसो दियो है।।

उद्धवचिद्धन मार्तंडबुवा ने भक्तमाल का मराठी में अनुवाद किया है, और हिन्दी में भी रचनायें की हैं। मयूरजी ने हिन्दी-छन्दों में चार रामायण रच डाले थे।

हिन्दी और गुजराती

गुजराती का हिन्दी के साथ बहुत निकट का सम्बन्ध है। अच्छी हिन्दी जाननेवाला थोड़े ही परिश्रम से गुजराती सीख सकता है।

गुजरात में गुजराती भाषा के साहित्य का जन्म नरसी मेहता और मीराबाई के समय से हुआ। मीराबाई की जीवनी और कुछ कविताएँ कविता-कौमुदी में दी हुई हैं। उससे यह साफ़ प्रकट होता है कि मीराबाई की कविता की भाषा कैसी है। कहीं-कहीं मारवाड़ी और गुजराती बोलचाल के शब्द आ गये हैं, नहीं तो वह विशुद्ध हिन्दी ही है। यहाँ हम नरसी मेहता का एक पद लिखते हैं। उससे पाठक आसानी से समझ लेंगे कि गुजराती और हिन्दी में कितना अन्तर है।

वैष्णव जन तो तेने कहिये जो पीड़ पराई जाणे रे।
पर दुःखे उपकार करे तोए मन अभिमान न आणे रे॥
सकल लोक माँ सौने बन्दे निन्दा न करे केनी रे।
वाच, काछ, मन निश्चल राखे धन धन जननी तेनी रे॥
समदृष्टी ने तृष्णा त्यागी पर स्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले पर धन नव झाले हाथ रे॥
मोह माया व्यापे नहिँ जेने दृढ़ वैराग्य जेना मन माँ रे।
राम नाम सूँ ताली लागी सकल तीरथ तेना तन माँ र॥
वणलोभी ने कपट रहित छे काम क्रोध निवारया रे।
भणे नरसैयों तेनूँ दर्शन करताँ कुल एकोतेर तारया रे॥

बहुत थोड़े शब्द इसमें ऐसे हैं, जो हिन्दी वाले न समझ सकते हों; भाव तो सभी समझ लेंगे।

नरसी मेहता के पहले गुजरात में गुजराती भाषा बोली तो जाती थी, किन्तु उसका कोई साहित्य नहीं था। ब्रजभाषा की कविता को ही विद्वान् और कवि लोग पढ़ते और लिखते थे। गुजराती में ब्रजभाषा का आधिक्य है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि वल्लभ-सम्प्रदाय का आदर गुजरात

में बहुत है। वल्लभ-सम्प्रदाय का भक्ति-साहित्य ब्रजभाषा में बहुत है। इससे गुजरात में धार्मिक भाव के साथ ब्रजभाषा का भी प्रभाव बढ़ गया।

गुजराती कवियों ने हिन्दी के बहुत से छन्दों को अपनाया है और उनमें रचनाएँ की हैं।

हिन्दी में जैसे तुलसीदास की चौपाई, सूरदास के पद और गिरधर की कुंडलियाँ प्रसिद्ध हैं, वैसे ही गुजराती में नरसी मेहता की प्रभाती, मीराबाई के भजन, सामल के छप्पय, दयाराम की गरभियाँ और नर्मदाशंकर के रोला छन्द की महिमा है। सुप्रसिद्ध कवि दयाराम की कविता तो हिन्दी से बहुत ही मिलती-जुलती है। लीजिए, एक उदाहरण देखिये:—

हरदम कृष्ण कहे श्रीकृष्ण कहे तू ज़बाँ मेरी।
यही मतलब खातर करता हूँ खुशामद में तेरी।।
दही और दूध शक्कर रोज खिलाता हूँ तुझे।
तौ भी हर रोज हरनाम न सुनाती मुझे।।
खोई जिन्दगानी सारी सोइ गुनाह माफ़ तेरा।
दया मत भूले प्रभु नाम आखिर वक्त मेरा।।

बँगला और मराठी की अपेक्षा गुजराती का हिन्दी से अधिक सम्बन्ध है। इस समय भी गुजराती साहित्य में हिन्दी की बहुत छाया वर्त्तमान है।

महर्षि दयानन्द स्वयं गुजरात प्रांत के थे। उन्होंने अपने ग्रंथ हिन्दी ही में लिखे। भारत के युग नेता महात्मा गाँधी ने अपनी दिव्य दृष्टि से अफ़्रीका ही में देख लिया था कि हिन्दी ही के राष्ट्रभाषा होने से देश का कल्याण होगा, और भारत में आकर उन्होंने हिन्दी की उन्नति में स्पृहणीय सफलता प्राप्त की।

हिन्दी और जैन

जैन-साहित्य में हिन्दी का रूप सोलहवीं शताब्दी से स्पष्ट होने लगा है। उसके पहले वह प्राकृत और अपभ्रंश में ऐसी गुँथी थी कि हम उसे हिन्दी नहीं कह सकते। सं० १५८० में ठाकुरसी नामक एक कवि ने "कृपण-चरित्र"

नामक एक छोटी-सी कविता-पुस्तक लिखी। उसमें से एक छप्पय हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

कृपण कहै रे मीत मञ्झु घरि नारि सतावै।
जात चालि धणु खरचि कहै जो मोह न भावै॥
तिहि कारण दुब्बलौ रयण दिन भूख न लागै।
मीत मरण आइयौ गुज्झु आँखौं तू आगै॥
ता कृपण कहै रे कृपण सुणि, मीत न कर मन माँहि दुखु।
पीहरि पठाइ दै पापिणी, ज्यों को दिण तूं होइ सुखु॥

इस छन्द में हिन्दी भाषा की एक स्पष्ट मूर्ति निकल आने में बहुत थोड़ी कसर दिखाई पड़ती है।

सत्रहवीं शताब्दी में सुप्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदास हुए। इनका जन्म सं० १६४३ में, जौनपुर नगर में हुआ। इन्होंने अपनी कविता में हिन्दी का रूप स्पष्ट कर दिया। इनके रचे चार ग्रंथ, बनारसी-विलास, नाटक समय-सार, अर्द्ध कथानक और नाममाला (कोष) प्रसिद्ध हैं। अर्द्ध कथानक इनका सब से अच्छा ग्रन्थ है। इसमें इन्होंने अपना ५५ वर्ष का आत्म-चरित लिखा है। इस ग्रंथ से इनकी कविता की थोड़ी-सी बानगी आगे दिखलाते हैं।

सं० १६७३ में आगरे में प्लेग का प्रकोप हुआ। उसका वर्णन इन्होंने ऐसा किया है—

इस ही समय ईति बिस्तरी। परी आगरे पहिली मरी।
जहाँ तहाँ सब भागे लोग। परगट भया गाँठ का रोग।
निकसै गाँठि मरै छिन माँहिं। काहू की बसाय कछु नाहिं।
चूहे मरैं वैद्य मरि जाहिं,। भय सों लोग अन्न नहिं खाहिं।

जब अकबर बादशाह के मरने का समाचार जौनपुर पहुँचा, उस समय वहाँ के निवासियों की क्या दशा हुई, उसका वर्णन सुनिये:—

इसही बीच नगर में सोर। भयो उदंगल चारिहु ओर॥
घर घर दर दर दिये कपाट। हटवानी नहिं बैठें हाट॥

भले वस्त्र अरु भूषन भले। ते सब गाड़े धरती तले।।
घर घर सबनि बिसाहे सस्त्र। लोगन पहिरे मोटे वस्त्र।।
ठाढ़ौ कम्बल अथवा खेस। नारिन पहिरे मोटे बेस।।

**

ऊँच नीच कोऊ न पहिचान। धनी दरिद्री भये समान।।
चोरी धारि दिसै कहुँ नाहि। योंहीं अपभय लोग डराहिं।।

एक बार बनारसीदास परदेश में अपने साथियों के साथ कहीं ठहरे; इतने में पानी बरसने लगा। तब सब भागकर सराय में गये, वहाँ जगह नहीं थी। बाज़ार में कहीं खड़े होने को स्थान नहीं था। सब के किवाड़ बन्द थे। उस समय का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है:—

फिरत फिरत फावा भये, बैठो कहै न कोइ।
तलै कीच सों पग भरे, ऊपर बरसत तोइ।।
अंधकार रजनी विषैं, हिमरितु अगहन मास।
नारि एक बैठन कह्यो, पुरुष उठ्यो लै बाँस।।

बनारसीदास प्रतिभावान् कवि थे। इनके पश्चात् भूधरदास आदि और भी कई अच्छे कवि हुए, जिन्होंने हिन्दी-भाषा में बड़ी ललित कविताएँ रची हैं। जैन विद्वानों ने पूर्व-काल ही से हिन्दी की उन्नति और उसके प्रचार में हाथ बँटाया है। आज भी हिन्दी के लिये उनका उद्योग कम नहीं।

हिन्दी और सिक्ख

सिक्खों के आदि गुरु नानकदेव ने हिन्दी का बहुत प्रचार किया। उन्होंने यात्राएँ भी बड़ी दूर-दूर की की थीं। सिक्ख विद्वानों का कथन है कि वे जहाँ-जहाँ जाते थे, वहाँ हिन्दी ही में धर्मोपदेश करते थे। उनके कहे हुए वचन सब हिन्दी ही में हैं। सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुनदेवजी हिन्दी के एक प्रसिद्ध लेखक थे। अपने से पहले हुए गुरुओं की वाणी का संग्रह करके "गुरु ग्रंथ साहब" की रचना उन्होंने ही की है। यह सिक्खों का धर्म-ग्रंथ है,

और अबतक करतारपुर में मौजूद है। गुरु तेग बहादुर ने औरंगजेब को हिन्दी ही में संसार की असारता का उपदेश दिया था।

सिक्ख-सम्प्रदाय में हिन्दी का सब से अधिक सम्मान गुरु गोविन्द सिंह के समय में हुआ। गुरु गोविन्दसिंह का वर्णन कविता-कौमुदी में आ गया है। ये स्वयं हिन्दी के अच्छे कवि थे। हिन्दी में शिक्षा देने के लिये इन्होंने कई पाठशालायें खोली थीं। इनके सिवा भाई सन्तोषसिंह ने भी हिन्दी का बहुत कुछ हित-साधन किया है। वे सिक्खों में हिन्दी के महाकवि कहे जाते हैं। इनके रचे "सूर्यप्रकाश" नामक ग्रन्थ को सिक्ख लोग बड़े चाव से पढ़ते हैं।

काशी में शिक्षा प्राप्त करने के लिये गुरु गोविन्दसिंह के भेजे हुए सन्त गुलाबसिंह ने भी हिन्दी की बड़ी सेवा की है। इनके लिखे हुए चार ग्रंथ आजकल उपलब्ध होते हैं। सब हिन्दी में हैं, और वेदान्त-प्रेमी सिक्खों में उनका बड़ा आदर है।

वर्तमान काल में भी सिक्ख-सम्प्रदाय में ज्ञानी ज्ञानसिंह द्वारा हिन्दी का अच्छा प्रचार हुआ है। इन्होंने हिन्दी कविता में "ग्रंथप्रकाश" नामक ग्रंथ की रचना की है।

हिंदी और मुसलमान

मुसलमान जब से इस देश में आये, तभी से हिन्दी के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। राज्य का सब कामकाज हिन्दी ही में होता था। मुहम्मद क़ासिम, महमूद ग़ज़नवी और शहाबुद्दीन गोरी ने हिन्दुस्तान में अपने दफ्तर हिन्दी ही में रक्खे थे। उनकी तवारीखों से इन बातों का साफ़-साफ़ पता चलता है। हसन गाँगू ब्राह्मणी ने अपने हिसाब का दफ्तर गाँगू ब्राह्मण को सौंपा था।

अमीर ख़ुसरो ने हिन्दी में बहुत से दोहे, पहेलियाँ, गीत, दो अर्थी, अनमिल और मुकरनी आदि लिखे। ख़ुसरो ने जिस हिन्दी में छन्द रचे हैं, वह अवश्य ही उनके समय की बोलचाल की भाषा होगी। निश्चय ही उन्हें

उसका अच्छा ज्ञान होगा। आजकल जो हिन्दी बोली जाती है, और जिसे राष्ट्रभाषा होने का गौरव प्राप्त हुआ है, उसका सीधा सिलसिला खुसरो की हिन्दी से बैठता है। इस हालत में बीच की हिन्दी के क्रम-विकास के उदाहरण ग़लत साबित होते हैं।

अकबर के समय में तो हिन्दी का महत्व बहुत बढ़ गया था। अकबर का जन्म सन् १५४२ ई० में अमरकोट में हुआ। १६०५ ई० तक उसने राज किया। कहा जाता है कि वह विशेष पढ़ा-लिखा न था, पर प्रतिभाशाली और सत्संगी तो था ही। उसके दरबार में हिन्दी के अच्छे-अच्छे कवि, पंडित और गवैये रहते थे। उसका समय हिन्दी का स्वर्ण-युग कहा जा सकता है। यहाँ कुछ छंद लिखे जाते हैं, जो अकबर के बनाये हुए कहे जाते हैं—

(१)

जाको जस है जगत में जगत सराहै जाहि।
ताको जीवन सफल है, कहत अकब्बर साहि॥

(२)

साहि अकब्बर एक समै चले कान्ह विनोद बिलोकन बालहिं।
आहट तें अबला निरख्यो चकि चौंकि चली करि आतुर चालहिं॥
त्यों बलि बेनी सुधारि धरी सु भई छवि यों ललना अरु लालहिं।
चम्पक चारु कमान चढ़ावत काम ज्यों हाथ लिये अहि बालहिं॥

(३)

केलि करैं विपरीत रमैं सु अकब्बर क्यों न इतो सुख पावैं।
कामिनी को कटि किंकिनि कान किधौं गनि पीतम के गुन गावैं॥
बिन्दु छुटो तन में सु ललाट तें यों लट में लटको लगि आवै।
साहि मनोज मनो चित मैं छबि चंद लये चकडोर खिलावै॥

अपने बेटे जहाँगीर को भी अकबर ने हिन्दी सिखाई और अपने पोते खुसरो को तो छः वर्ष की अवस्था ही में हिन्दी सीखने के लिये भूदत्त भट्टाचार्य के सुपुर्द कर दिया था। शाहजहाँ अपनी मातृभाषा के समान हिन्दी-भाषण

में अधिकार रखता था। शाहजहाँ के दरबार में हिन्दी-कवियों का अच्छा सम्मान था। उसका बड़ा लड़का दारा तो हिन्दी और संस्कृत में अपने बाप दादाओं से भी बढ़कर निकला। उसने उपनिषदों का फ़ारसी भाषा में उल्था किया। औरंगजेब यद्यपि हिन्दुओं से बड़ा द्वेष रखता था, हिन्दी से विमुख वह भी नहीं था। एक बार शाहजादा मोहम्मद आज़म ने कुछ आम औरंगजेब के पास भेजे और प्रार्थना की कि इनके नाम रख दो। औरंगजेब ने बेटे को लिखा—"तुम स्वयं विद्वान् होकर बूढ़े बाप को क्यों कष्ट देते हो? ख़ैर, तुम्हारी प्रसन्नता के लिये आमों का नाम मैंने "सुधारस" और "रसना-विलास" रक्खा है।"

शाही दरबारों में हिन्दी-गवैयों का भी बड़ा आदर था। तानसेन को अकबर ने पहले ही मुजरे में एक करोड़ का इनाम दिया था। बैरमखाँ खानखाना ने बाबा रामदास को एक लाख रुपये एक ही दिन दे डाले थे। शाहजहाँ ने महापात्र जगन्नाथ राय त्रिशूली के बराबर रुपये तौल दिये थे। उसी ने कलावन्त लाल खाँ को गुणनिधि की उपाधि दी थी। हिन्दी का इतना आदर था कि मुसलमान गवैये भी हिन्दी ही राग-रागिनियाँ गाते थे। हिन्दू गवैयों का तो कहना ही क्या है, मुसलमान गवैये अबतक भी हिन्दी राग-रागिनियाँ गाते हैं।

मुसलमानी राजत्वकाल का इतिहास और हिन्दी का इतिहास यदि मिलाकर देखा जाय तो यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि मुसलमानों की उन्नति के साथ हिन्दी की उन्नति हुई है और उनके अधःपतन के साथ एक बार हिन्दी का भी रंग फीका पड़ गया है। जब मुसलमानी शासन का सूर्य उन्नति पर था, हिन्दी के बड़े बड़े प्रतिभाशाली कवि उसी समय में हुए थे। मुसलमानों की उन्नति के समय हिन्दी इस तरह फूली फली, कि उसके सुमधुर सुगंध और स्वाद से आजकल हम लोग बहुत आनन्द पा रहे हैं। हिन्दी के इस नाते से मुसलमानों की ओर हमारा प्रेम बढ़ जाता है। हिन्दी की इस उन्नति से मुसलमानों को गर्व होना चाहिये।

बहुत-से मुसलमान कवियों ने हिन्दी में कविता की है। उनमें से कुछ के नाम नीचे लिखे जाते हैं। साथ ही यह भी लिख दिया जाता है कि उनके रचे हुए कौन-कौन से ग्रन्थ उपलब्ध हैं:—

कवि	ग्रन्थ
१—अमीर ख़ुसरो	कविता-कौमुदी में देखिये।
२—मलिक मुहम्मद जायसी	कविता-कौमुदी में देखिये।
३—अकबर	फुटकर
४—क़ादिर बख़्श	,,
५—अब्दुर्रहीम खानखाना	कविता-कौमुदी में देखिय।
६—उसमान	कविता-कौमुदी में देखिये।
७—सैयद इब्राहीम (रसखान)	,, ,,
८—मुबारक	,, ,,
९—अहमद	वेदान्त कविता
१०—वहाब	बारह-मासा
११—अब्दुर्रहमान	यमक-शतक
१२—जलील	फुटकर
१३—याक़ूब खाँ	रसिक-प्रिया की टीका
१४—जुल्फ़िकार	सतसई की टीका
१५—अनवर खाँ	अनवर-चंद्रिका
१६—प्रेमी यमन	अनेकार्थ-नाम-माला
१७—आजम	नखशिख
१८—सैयद गुलाम नबी	रसप्रबोध, अङ्गदर्पण
१९—तालिब अली	नखशिख
२०—नबी	फुटकर
२१—आलम	कविता-कौमुदी में देखिये

किसी-किसी मुसलमान कवि ने तो हिन्दी में ऐसी अच्छी कविता की है, कि उसके एक-एक पद पर कितने ही हिन्दू-कवियों की कविता न्योछावर

कर दी जा सकती है। अंत में बड़े साहस और संतोष के साथ हम यह कह सकते हैं कि पिछले सहृदय मुसलमान बादशाहों और कवियों ने हिन्दी की जो सेवा की है, वह कभी न कभी अवश्य हिन्दू-मुसलमानों के भाषा विषयक विरोध को दूर करने में समर्थ होगी।

हिन्दी और उर्दू

उर्दू कोई स्वतन्त्र भाषा नहीं, वह हिन्दी का एक रूपान्तर-मात्र है। हिन्दी में अरबी, फ़ारसी और तुरकी के कुछ शब्दों के आजाने से वह कोई नई भाषा नहीं कहला सकती। और जब हिन्दी-उर्दू का व्याकरण एक है तो वह अलग स्वतंत्र भाषा कैसे कहला सकती है? इसी तरह आजकल कालेजों में अंग्रेजी शब्दों से लसी हुई जो हिन्दी बोली जाती है, वह कोई नई भाषा नहीं कहला सकती। हिन्दी और उर्दू में सिर्फ इतना ही अन्तर है कि हिन्दी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और संस्कृत शब्दों की उसमें बहुलता रहती है; उर्दू फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है और उसमें अरबी और फ़ारसी के शब्दों की अधिकता रहती है। गुजराती भाषा के भी दो रूप हैं, एक पारसियों की गुजराती, दूसरा गुजरातियों की गुजराती। पारसियों की गुजराती में अरबी, फ़ारसी के शब्द अधिक होते हैं और गुजरातियों की गुजराती में संस्कृत और अपभ्रंश के शब्द। पर गुजराती भाषा के अलग-अलग नाम नहीं। दोनों रूपों का एक ही नाम है। ऐसा ही सम्बन्ध हिन्दी और उर्दू का है।

मुसलमानों के आने के पहले ही से अरबी, फ़ारसी और तुर्की के शब्द यहाँ की भाषा में प्रचलित थे। यह बात चन्दबरदाई की कविता से स्पष्ट मालूम होती है। जब मुसलमानों का संसर्ग इस देश में बढ़ा, तब उनकी भाषा के बहुत से शब्द भी हमारी बोलचाल में बह गये। बोलचाल समझने के सुभीते के लिये हिन्दू-मुसलमान दोनों ने हिन्दी में अरबी-फ़ारसी के शब्दों को मिलने दिया। शाहजहाँ के वक्त में इस मिश्रित भाषा का नाम उर्दू पड़ गया। "उर्दू" नाम पड़ने के पहले ही कबीर, सूर और तुलसी की कविता में

अरबी, फ़ारसी से बहुत से शब्द व्यवहृत हुए हैं। तुर्की में उर्दू शब्द का अर्थ है "लश्कर का बाज़ार"। यह मिलो-जुलो बोलो लश्कर के बाज़ार में, जहाँ मुल्क-मुल्क और शहर-शहर के आदमी जमा होते थे, बोली जाती थी। वहीं से इस बाज़ारू हिन्दी का नाम उर्दू हुआ। इसका एक पुराना नाम "रेखता" भी है। कबीर साहब ने कुछ "रेखते" लिखे हैं, पर वहाँ "रेखता" उनके एक ख़ास छंद का नाम है, बोली का नहीं। यद्यपि उनके रेखतों भाषा "रेखता" ही है।

शम्सुलउल्मा मौलवी मुहम्मद हुसेन साहब आज़ाद ने 'आबेहयात' के छटें पृष्ठ पर जो यह लिखा है कि "इतनी बात हर शख़्स जानता है कि "हमारी उर्दू ज़बान ब्रजभाषा से निकली है' (पृष्ठ ६) 'संस्कृत और ब्रजभाषा की मिट्टी से उर्दू का पुतला बना है'। (पृष्ट ३४), वह ठीक नहीं है। उर्दू ब्रजभाषा से नहीं निकली, बल्कि हिन्दी ही का नाम उर्दू रख लिया गया। अमीर ख़ुसरो की पहेलियों और कबीर के रेखतों से स्पष्ट मालूम होता है कि हिन्दी चन्दबरदाई के पहले से स्वतन्त्र रूप से बोली जाती रही है, और उसी में अरबी फ़ारसी के शब्द जगह पाकर घुस बैठे। जिस भाषा का नाम शाहजहाँ के वक्त में "उर्दू" पड़ा, वह उसके बहुत पहले से बोली जाती रही है। वह ब्रजभाषा के समान ही पुरानी भाषा है। हम उर्दू को ब्रजभाषा से निकली हुई नहीं मानते, वह हिन्दी है; सिर्फ़ उसका नाम नया रक्खा गया है। यह एक बड़ी दिलचस्प बात है कि अरबी-फ़ारसी के शब्दों को मजबूर होकर हिन्दुस्तानी ढाँचे में ढल जाना पड़ा है। उन्होंने अपने को हिन्दी व्याकरण के हवाले कर दिया, जिसने उनके तन पर अपना जामा पहना दिया। यहाँ कुछ ऐसे उदाहरण दिये जाते हैं।

प्रायः सभी शब्दों का बहुवचन हिन्दी-व्याकरण के नियमानुसार है।

जैसे,	आदमी का	आदमियों—		
	मेवा का	मेवों	न कि	मेवाजात
	निशान का	निशानों	न कि	निशानात
	मुश्किल का	मुश्किलों	न कि	मश्किलात

दफ़ा का	दफ़ाओं	न कि	दफ़ात
औरत का	औरतों, औरतें	न कि	मस्तूरात
मजदूर का	मजदूरों	न कि	मज़दूरान

इत्यादि; अब कुछ लोग उर्दू में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का असली बहुवचन लिखने लगे हैं। पर ऐसा करके वे भाषा को और भी कठिन बना रहे हैं और उसकी सीमा संकुचित कर रहे हैं। मामूली बोलचाल में उन शब्दों का हिन्दी-रूप ही प्रचलित है और रहेगा।

फ़ारसी शब्दों से बहुत-सी क्रियायें भी हिन्दी के ढंग पर बन गई हैं। जैसे:—

शरम से	शरमाना
गुज़र से	गुज़रना
फ़रमान से	फ़रमाना
क़बूल से	क़बूलना
बदल से	बदलना
बख़्श से	बख़्शना
काहिली से	कहलाना
मुनकिर से	मुकरना; इत्यादि।

कुछ क्रियायें करना, होना आदि शब्दों के संयोग से बन गई हैं। जैसे : खुश होना, ज़िक्र करना, रवाना होना, दिल लगाना इत्यादि।

कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनका धड़ तो हिन्दुस्तानी है और सिर फ़ारसी। जैसे : समझदार, गाड़ीखाना, पानदान, पीकदान, मोदीखाना, हाथीवान; इत्यादि।

कुछ ऐसी-ऐसी चीज़ें भी, जो इस मुल्क में बाहर से आईं, अपना नाम साथ लाईं। जैसे : साबुन, शीशा, मशक, क़ाज़ी, हुक्का, चिलम, नैचा, कुर्ता, चोगा, आस्तीन, पायजामा, इज़ार, रुमाल, शाल, दुशाला, तकिया, बुरक़ा, चपाती, पुलाव, अचार, बेदमुश्क, रक़ाबी, तश्तरी, चमचा, किश्ती, चाय आदि।

बहुत-से अरबी-फ़ारसी के शब्दों का इतना प्रयोग बढ़ गया है कि अब उनके स्थान पर संस्कृत या प्राकृत के पर्यायवाची शब्द ढूँढ़कर रक्खे जायं, तो या तो कुछ अर्थ ही न निकलेगा या भाषा इतनी कठिन हो जायगी कि सर्वसाधारण तो क्या, शिक्षित हिन्दू भी कठिनता से समझ सकेंगे। जैसे––

मज़दूर, वकील, क़लम, दवात, स्याही, मसख़रा, नसीहत, चादर, सूरत, तोता, पर, जुलाब, गुलाब, तंग, ज़ीन, रिक़ाब, नाल, कोतल, जहाज़, मस्तूल, परदा, दालान, तनख़्वाह, मल्लाह, ताजा, ग़लत, सही, रसद, कारीगर, तराज़ू, शतरंज। शतरंज ख़ास हिन्दुस्तान की चीज़ है। पर अब इसके असली नाम "चतुरंग" से शायद ही कुछ लोग परिचित हों। ऊपर के शब्दों के पर्यायवाची शब्द संस्कृत में अवश्य हैं, पर हिन्दी में उनका प्रयोग बन्द हो गया है। अब पाटल के स्थान पर गुलाब ने अधिकार जमा लिया है।

हिन्दी के इस नये रूपान्तर में कवियों ने कमाल का हाथ दिखाया। उन्होंने उर्दू को ख़ूब सँवारा; महावरों के आभूषण से ख़ूब सजाया; ईरान की शोख़ी, नज़ाकत और चुलबुलापन सिखाया। सब तरह से सज-धजकर वह रसिकों के गले का हार हो गई। उर्दू-कवियों ने अपनी रचना का विषय हिन्दुस्तान से नहीं, बल्कि ईरान से लिया। संस्कृत और हिन्दी में जितने स्त्री-पुरुष के प्रेम सम्बन्धी काव्य लिखे गये हैं, उन सब में स्त्री पुरुष पर आसक्त दिखाई गई है। रामायण में सीता के हृदय में राम से पहले प्रेमांकुरित हुआ है। भागवत में रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण के पास अपना प्रणय-संदेश पहले भेजा। इसी तरह दयमन्ती नल पर और संयोगिता पृथ्वीराज पर आसक्त दिखाई गई है। अंग्रेज़ी कवियों का मार्ग इससे ज़रा-सा जुदा है। वहाँ स्त्री पर पुरुष आसक्त होता है। वह अपना प्रणय पहले प्रकट करता है। यही उनके देश की प्रथा भी है। पर उर्दू-कवियों ने बिल्कुल ही उलटा और अप्राकृतिक मार्ग पसंद किया है। उन्होंने पुरुष पर पुरुष को आसक्त दिखाया, और उसी नींव पर अपना महल खड़ा किया है। उनके महल की नींव की ईंटें हिन्दुस्तान से नहीं, बल्कि ईरान से ली

गई। उर्दू ने फ़ारसी से यह सभ्यता सीखी। इसके सिवा विषय भी नया चुना गया। हिन्दी को मनुष्य-समाज से बाहर जाने का बहुत कम मौक़ा मिलता है। चन्द्रोदय, सूर्योदय, वन, पर्वत, नदी, निर्झर देखने का अवकाश उसे बहुत कम है। प्रेम, विरह, भक्ति, नीति और हास परिहास ही से उसे फ़ुरसत नहीं। वसन्त का विकास होने पर वह हृदय को नवीन प्रेम, नवीन भक्ति और नवीन आनन्द से सजा लेती है। विरहावस्था ही में वह कोयल और पपीहे के स्वर से कुछ वेदना अनुभव करती है; नहीं तो सदा वह समाज का आनन्द अनुभव करने में निमग्न रहती है। आवश्यकता पड़ने पर वह वीरों को वीररस से उन्मत्त कर देती है। समय पड़ने पर नीति के उत्तम उपदेश देती है। मौक़े पर मनोविनोद से भी नहीं चूकती। ज्ञान, वैराग्य, भक्ति तो उसके जीवन का लक्ष्य ही मालूम होता है। पर उर्दू का ढंग निराला है। वह हमेशा बाग़ में डेरा डाले रहती है। कभी-कभी वह यार के कूचे में हो आती है, पर बहुत-सा वक्त वह बुलबुल की फ़रियाद सुनने, उसकी ओर से वकालत करने और सैयाद को बुरा-भला कहने ही में व्यतीत करती है। और वह बुलबुल भी यहाँ का नहीं, ईरान का है। हिन्दुस्तान में बैठे ईरान के बुलबुल का पक्ष समर्थन करना, उसकी ओर से बकझक करना, कल्पना से अपनी और उसकी दशा का मिलान करना, ध्यान के नेत्र से उसके उजड़े हुये घोंसले को देखकर आहें भरना, यह सब उर्दू के चमत्कार के काम हैं। वह साँस नहीं लेती, आह भरती है। बल्कि यह कहना चाहिये कि आह भरने के लिये ही वह साँस लेती है। वस्ल का मौक़ा उसे बहुत ही कम मिलता है। हिज्र की पीड़ा से रात-दिन वह तड़पा करती है। तड़पना ही उसके जीवन का लक्ष्य है। इश्क, वफ़ा, दाम, बुलबुल, घोंसला, सैयाद, चमन, गुल, बहार, ख़िज़ां, वस्ल, हिज्र, कफ़न, क़ब्र, जनाज़ा, आह, दिल, जिगर, क़मर, बागबाँ, शिकवा, ख्वाब, बोसा, ज़ुल्फ, तीर, चश्म, तड़प, ख़ून, मौत, सितम, सनम और नाला शिकवा ही में उसने अपनी उम्र के सैकड़ों बरस बिता दिये। इनके आगे कदम रखने की उसे फ़ुरसत ही न मिली। उसने अपने प्यारों को दुनिया के काम का न रक्खा। उन्हें खींचकर उसने इश्क

की आग में डाल दिया, जहाँ वे हमेशा तड़पते रहे। इश्क की दीमक उनके दिलों को ज़िन्दगी भर चाटती रही है।

एक ने अपना यह अनुभव बयान किया है—

इश्क का मनसब लिखा जिस दिन मेरी तक़दीर में।
आह की नक़दी मिली सहरा मिला जागीर में॥

**

वे कल्पित हिज्र ही में सदा आह भरते रहते हैं। वस्ल से उन्हें हिज्र में मज़ा भी ज्यादा आता है। एक ने कहा—

वस्ल में हिज्र का ग़म हिज्र में मिलने की खुशी,
कौन कहता है जुदाई से विसाल अच्छा है!!

उर्दू के कवि उड़ान में कभी-कभी हिन्दी-कवियों से बहुत ऊँचे जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं। हिन्दी में एक बिहारी ही ऐसे कवि हुए हैं, जो दूर की कौड़ी लाने में उर्दू-कवियों से मोरचा ले सकते हैं। नहीं तो सब सीधे सादे, प्रेमी, भक्त और नीतिज्ञ हैं। हवा में महल खड़ा करना वे बहुत कम जानते हैं। उर्दू के कवि मरकर भी देखते रहते हैं कि यार उनके जनाज़े के साथ है कि नहीं। क़ब्र में गड़े रहकर भी वे यार के क़दमों की आवाज़ पहचानते रहते हैं कि वह क़ब्र पर फूल चढ़ाने आया कि नहीं। यार के हाथों अपना क़त्ल कराते हैं और उसकी तलवार के स्पर्श का सुख अनुभव करते हैं। कभी-कभी वे इसलिये भी झूठमूठ मर जाते हैं कि बहुत दिनों से विरक्त उनका यार उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर उनके घर आये। ये सब करामात की बातें ग़रीब हिन्दी-कवियों में नहीं।

फ़ारसी में इश्क़ की दो सूरतें हैं, इश्क़ हक़ीक़ी और इश्क़ मजाज़ी। उर्दू में इश्क़ मजाज़ी ही का अधिक चलन है। इश्क़ हक़ीक़ी के रसिक बहुत थोड़े कवि हुए हैं। किन्तु उन्होंने जो कुछ कहा है, वह अद्भुत है, अनुपम है। आसी इसी श्रेणी के कवि हैं। ग़ालिब को हम उर्दू-साहित्य का सम्राट् मानते हैं। ऐसा प्रतिभाशाली कवि उर्दू में कोई नहीं हुआ। क्या भाषा, क्या भाव,

क्या प्रभाव ग़ालिब सब पर ग़ालिब हैं। वे यद्यपि उर्दू के विषय की सीमा से बाहर बहुत कम आये, पर तो भी जो कुछ कहा, वह लासानी है। सुन्दर मँजी हुई भाषा, रत्न की तरह झलकते हुए भाव, मद का सा प्रभाव और किसी की कविता में नहीं। एक-एक शेर लाखों की क़ीमत का है।

अब उर्दू के कवियों ने रास्ता बदला है। ज़ुल्फ़ों की लपेट से नजात पाकर, आह-ऊह का धंधा छोड़कर अब वे मुल्क और क़ौम की ओर झुके हैं। इस रास्ते के रहबर हाली को समझना चाहिये। आज़ाद, चकबस्त, हसरत और अकबर ने इस रास्ते को खूब आरास्ता कर दिया है। अकबर को मरे अभी थोड़े दिन हुए, किन्तु अपने समय में वे लासानी थे। न हिन्दी में कोई वैसा कवि था, न उर्दू में। उनकी साफ़-सुथरी उर्दू भाषा, मज़ेदार महावरे, कहने का अनोखा ढंग कुछ निराला ही है।

यहाँ तक तो विषय की बातें हुईं। अब भाषा की ओर आइये। हिन्दी-कवियों की अपेक्षा उर्दू-कवि भाषा की स्वच्छता पर बहुत ध्यान देते हैं। उनके यहाँ महावरों का बहुत ख़याल किया जाता है। उर्दू तो महावरों ही की भाषा है। थोड़े ही से शब्द ऐसे हैं, जिनके प्रयोग में लखनऊ और दिल्ली वालों में मतभेद है, बाक़ी सब मँजा मँजाया दुरुस्त है। पहले-पहल उर्दू पर ब्रजभाषा का प्रभाव पड़ रहा था। उसके पुराने कवि "से" की जगह "सों" लिखते थे। पर धीरे-धीरे सब कट-छँटकर विशुद्ध खड़ी बोली का रूप रह गया। यदि लिपि-भेद न होता तो आज हिन्दी-उर्दू का झगड़ा भी न उठता और उर्दू के कवि भी हिन्दी के उच्च कवियों में आदर के साथ उचित स्थान पाते।

स्थानाभाव से इस विषय को हम यहीं समाप्त करते हैं। अब आगे उर्दू कवियों के कुछ चुने हुए शेर हम अपने पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हैं। आइये, उर्दू-कवियों की लच्छेदार बातें सुनिये, उनकी ऊँची उड़ान देखिये, चुभ जानेवाले ख़यालात का मुलाहज़ा फ़रमाइये, दिल में गुदगुदी पैदा करनेवाले शेरों की करामात देखिये और अनुभव कीजिये, कितना

आनन्द है! कितना माधुर्य है! हिन्दी का यह उद्यान कितना विकसित हो रहा है!

बस कि दुश्वार है हर काम का आसाँ होना।
आदमी को भी मुयस्सर नही इन्साँ होना।।

कह सके कौन कि यह जलवह गरी किसकी है?
परदह छोड़ा है वह उसने कि उठाये न बने।।
इश्क़ पर ज़ोर नहीं, है यह वह आतिश "ग़ालिब"।
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने।।

इशरते क़तरा है दरिया में फ़ना हो जाना।
दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना।।

मेहरबां होके बुला लो मुझे चाहो जिस वक्त।
मैं गया वक्त नहीं हूं कि फिर आ भी न सकूँ।।

इस सादगी प कौन न मर जाय ऐ खुदा।
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नही।।

शब को किसी के ख़्वाब में आया न हो कही।
दुखते हैं आज उस बुते नाज़ुक बदन के पाँव।।

रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहां कोई न हो।
हम-सखुन कोई न हो और हम ज़बाँ कोई न हो।।
बे दरो दीवार-सा इक घर बनाना चाहिये।
कोई हमसाया न हो और पासबाँ कोई न हो।।
पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार।
और अगर मर जाइये तो नोहा-ख़्वाँ कोई न हो।।

उनको देखे से जो आ जाती है मुँह पर रौनक़।
वे समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।।

मुनहसर मरने प हो जिसकी उमीद।
नाउमेदी उसकी देखा चाहिये।।

मुहब्बत में नहीं है फर्क जीने और मरने का।
उसी को देखकरजीते हैं जिस क़ाफिर प दम निकले।।

हमको मालूम है जिन्नत की हक़ीक़त लेकिन,
दिल के खुश रखने को "ग़ालिब" यह खयाल अच्छा है।।

कर्ज़ की पीते थे मै, लेकिन समझते थे कि हाँ।
रंग लायेगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन।।

न था कुछ तो खुदा था कुछ न होता तो खुदा होता।
डुबोया मुझको होने ने न होता मैं तो क्या होता।।

हैफ़ उस चार गिरह कपड़े की क़िस्मत "ग़ालिब"।
जिसकी क़िस्मत में हो आशिक़ का गरेबाँ होना।।

ग़ालिब।

दिल के फफोले जल उठे सीना के दाग़ से।
इस घर को आग लग गई घर के चिराग से।।

एक लड़का।

शाम से कुछ बुझा सा रहता है।
दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिस का।।

सुबह गुजरी शाम होने आई "मीर"
तू न चेता औ बहुत दिन कम रहा।।

सख्त काफ़िर था जिसने पहले "मीर"
मजहबे इश्क़ इख्तियार किया।।

मीर।

सनम सुनते हैं तेरे भी कमर है।
कहाँ है? किस तरफ़ को है? किधर है?

जुरअत।

सियह बख़्ती में कब कोई किसी का साथ देता है?
कि तारीकी में साया भी जुदा होता है इन्साँ से।।

नासिर अली।

मैं गो कि हुस्न में ज़ाहिर में मिस्ल माह नहीं।
हज़ार शुक्र कि बातिन मेरा सियाह नहीं।।

तिरछी नज़रों से न देखो आशिक़े दिलगीर को।
कैसे तीरंदाज़ हो सीधा तो कर लो तीर को।।

बंद हो जाती हैं सय्यारों की आँखें ख़ौफ़ से।
फेंकता हूँ जब मैं दिल से आहे आतिश बार को।।

यों नज़ाकत से गराँ सुर्मा है चश्मे यार को।
जिस तरह हो रात भारी मर्दुमे बीमार को।।

इन्तहाये-लागरी से जब नज़र आया न मैं।
हँस के वो कहने लगे बिस्तर को झाड़ा चाहिये।।

नासिख़।

आँखें नहीं चेहरा पर तेरे फ़क़ीर के,
दो ठीकरे हैं भीख के दीदार के लिये।।

आतिश।

यह मजनूँ है, नहीं आहू है लैला।
पहन कर पोसतीं निकला है घर से।।
जिसे तू सींग समझे है, यह हैं ख़ार।
लगे हैं पाँव में, निकले हैं सर से।।

नसीर।

उम्र सारी तो कटी इश्क़े बुताँ में "मोमिन"।
आख़िरी वक्त में क्या खाक मुसल्माँ होंगे?

मोमिन।

तुम मेरे पास होते हो गोया।
जब कोई दूसरा नहीं होता।।

मोमिन।

लाई हयात आये, कज़ा ले चली, चले।
अपनी ख़ुशी न आये न अपनी ख़ुशी चले।।

लोग घबरा के यह कहते हैं कि मर जायेंगे।
मर के गर चैन न पाया तो किधर जायेंगे।।

ज़ौक़।

नशये इश्क़ का गर ज़ौक़ दिया था मुझको।
उम्र का तंग न पैमाना बनाया होता।।

ज़ौक़।

न करता ज़ब्त मैं नाला तो फिर ऐसा धुवाँ होता।
कि नीचे आसमाँ के एक नया और आसमाँ होता।।

ज़ौक़।

खुलता नहीं दिल बंद ही रहता है हमेशा।
क्या जानें कि आ जाता है तू इसमें किधर से।।

ज़ौक़।

अफ़सुर्दा दिल के वास्ते क्या चाँदनी का लुत्फ़।
लिपटा पड़ा है मुर्दा सा गोया कफ़न के साथ।।

ज़ौक़।

छूट जाये ग़म के हाथों से जो निकले दम कहीं।
खाक़ ऐसी ज़िदगी पर तुम कहीं और हम कहीं।।

ज़ौक़।

ज़िन्दगी जिन्दा दिली का नाम है।
मुर्दा दिल खाक जिया करते हैं।।

हाय, क्या चीज़ गरीबुल्वतनी होती है।
बैठ जाता हूँ जहाँ छाँव घनी होती है।।

हफ़ीज़।

समुन्दर कर दिया नाम उसका नाहक़ सबने कह कह कर।
हुये थे जमा कुछ आँसू मेरी आँखों से बह बह कर।।

सौदा।

तारे तो ये नहीं मेरी आहों से रात की।
मूराख पड़ गये हैं तमाम आसमान में।।

मीर तक़ी।

यही सोज़े दिल है तो महशर में जलकर।
जहन्नुम उगल देगा मुझको निगलकर।।

अमीर मीनाई।

दिल के आईने में है तसवीरे-यार।
जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली।।

लटों में कभी दिल को लटका दिया।
कभी साथ बालों के झटका दिया।।

मीरहसन।

सोहबत तुझे रक़ीब से मै अपने घर में दाग़।
कीधर पतंग, शमअ कहाँ, अंजुमन कुजा।।

सौदा।

न हो महसूस जो शै किस तरह नक़शे में ठीक उतरे।
शबीहे यार खिंचवाई कमर बिगड़ी, दहन बिगड़ा।।

मसहफ़ी।

नाज़ुक है, न खिंचवाऊँगा तस्वीर म उसकी।
चेहरा न कहीं अक्स के बदले उतर आये।।

अर्शद देहलवी।

नातवानी ने बचायी जान मेरी हिज्र में।
कोने कोने ढूंढ़ती फिरती क़ज़ा थी, मैं न था।।

ज़फ़र।

मुझ ज़ुल्फ़ के मारे को न ज़ंजीर पिन्हाओ।
काफ़ी है मेरी क़ैद को एक मकड़ी का जाला।।

नज़ीर अकबराबादी।

कौन होता है बुरे वक्त की हालत का शरीक।
मरते दम आँख को देखा है कि फिर जाती है।।

कोई।

क्या नज़ाकत है कि आरिज़ उनके नीले पड़ गये।
हमने तो बोसा लिया था, ख़्वाब में तसवीर का।।

कोई।

चल ऐ बादे सबा आहिस्ता चल, बेदार होता है।
मना कर कलियों को चटखें न मेरा यार सोता है।।

कोई।

वहाँ पहुंच के यह कहना सबा सलाम के बाद।
कि तेरे नाम की रट है खुदा के नाम के बाद।।

आसी।

समझो हमारे इश्क की हद अपने हुस्न से।
आईनादार हालते बुलबुल है रूय गुल।।

आसी।

हाय, इक चाँद के टुकड़े ने सितारों की तरह।
मुद्दतों शाम से ता सुबह जगाया हमको।।

आसी।

घट गई वस्ल में फ़ुरकत में बढ़ी थी जितनी।
रात आशिक़ की कभी दिन के बराबर न हुई।।

आसी।

इश्क कहता है कि आलम से जुदा हो जाओ।
हुस्न कहता है जिधर जाओ नया आलम है।।

आसी।

बे खुदी ले गई कहाँ हमको।
देर से इन्तज़ार है अपना।।

आसी।

शिकस्ता दिले इश्क़ की जान क्या।
नज़र तुमने फेरी कि वह मर गया।।

आसी।

काबा बुतख़ाना कलेसा सौमेआ,
फिरते हैं दर दर कि तेरा घर मिले।
कुछ न पूछो कैसी नफ़रत हम से है,
हम हैं जब तक वह हमें क्यों कर मिले?

आसी।

पड़े हैं सूरते नक्शे क़दम न छेड़ो हमें।
हम और ख़ाक में मिल जायँगे उठाने से।।

आसी।

सब्र मुश्किल है आरज़ू बेकार।
क्या करें आशिक़ी में क्या न करें।।

हसरत।

खंजर को चूस चूस के कहते हैं मेरे ज़ख्म।
ज़ालिम मज़े भरे हुये तुझ में कहाँ के हैं।।

अमीर मीनाई।

चंद तसवीरे बुताँ चन्द हसीनो के खतूत।
बाद मरने के मेरे घर से यह सामाँ निकला।।

दर्द।

जग में आकर इधर उधर देखा।
तू ही आया नज़र जिधर देखा।।

मीरदर्द।

आँखें न जीने देंगी तेरी बेवफ़ा मुझे।
इन खिड़कियों से झाँक रही है क़ज़ा मुझे।।

बहर लखनवी।

कहीं ऐसा न हो तुझ पर भी कोई वार चल जाये।
अजल हट जा कि झुँझलाया हुआ इस वक्त क़ातिल है।

अमीर।

वो शब को मेरी क़ब्र पै क्या चाल चल गये।
सदहा चिराग़ नक्श कफ़े पा से जल गये।।

कमसिनी है तो ज़िदें भी हैं निराली उनकी।
इस पै मचले हैं कि हम दर्दे जिगर देखेंगे।।

फ़साहत।

रुखे रोशन के आगे शमा रखकर वह यह कहते हैं।
उधर जाता है देखे या इधर परवाना आता है।।

दाग़।

वो निहायत हमें मग़रूर नज़र आते हैं।
पास बैठे हैं मगर दूर नज़र आते है।।

दाग़।

अल्लाह रे जालिम तेरे क़ानून की बन्दिश।
लबबन्द, ज़बाँबंद, दहनबंद, नज़रबंद।।

अब्दुलमजीद ख़्वाजा

न अब दिन हैं मेरे अपने न रातें हैं मेरी अपनी।
वह यह क्या कर गये अल्लाह शब भर मेहमाँ होकर।।

आरिफ़ देहलवी।

जहाँ में "हाली" किसी प अपने सिवा भरोसा न कीजियेगा।
यह भेद है अपनी ज़िन्दगी का बस इसका चर्चा न कीजियेगा।।
ऐब यह है कि करो ऐब हुनर दिखलाओ।
वर्ना याँ ऐब तो सब फ़र्दे बशर करते हैं।।
बादे सबा गई फूँक क्या जाने कान में क्या?
फूले नही समाते गुंचे जो पैरहन में।।
पिघलते हैं साँचे में ढलने की ख़ातिर।
लगाते हैं ग़ोता उछलने की ख़ातिर।।
ठहरते हैं दम लेके चलने की ख़ातिर।
वह खाते हैं ठोकर सँभलने की ख़ातिर।।
सबब को मरज़ से समझते हैं पहले।
उलझते है पीछे सुलझते है पहले।।
न राहत तलब हैं न मुहलत तलब वह।
लगे रहते है काम में रोज़ो शब वह।।
नही लेते दम एकदम वे सबब वह।
बहुत जाग लेते है सोते हैं तब वह।।
वह थकते हैं और चैन पाती है दुनिया।
कमाते हैं वह और खाती है दुनिया।।

हाली।

अकबर के अशार

बुतों की मदह से कुल शायरी उर्दू की ममलू है।
शिकस्त उर्दू जो पायेगी तो मैं समझूंगा बुत टूटा ।।

इश्क़ नाज़ुक मिजाज़ है बेहद।
अक्ल का बोझ उठा नहीं सकता ।।

कोई मरे तो पूछ कि क्या ले गया वह साथ।
बिल्कुल फ़ज़ूल बहस है वह छोड़ क्या गया ।।

पाकर खिताब नाच का भी ज़ौक़ हो गया।
सर हो गये तो बाल का भी शौक़ हो गया ।।

तंग दुनिया से दिल इस दौरे फ़लक में आ गया।
जिस जगह मैंने बनाया घर सड़क में आ गया ।।

एक दिन और क़यामत खिसक आयेगी इधर।
और क्या अर्ज़ करूँ आप से कल क्या होगा ।।

कहाँ है हममें अब ऐसे सालिक कि राह ढूंढ़ी क़दम उठाया।
जो हैं तो ऐसे ही रह गये हैं किताब देखी क़लम उठाया ।।

हँसके दुनिया में मरा कोई कोई रोके मरा।
ज़िंदगी पाई मगर उसने जो कुछ होके मरा ।।

जी उठा मरने से वह जिसकी खुदापर थी नजर।
जिसने दुनिया ही को पाया था वह सब खो के मरा ।।

मौलवी गो कि हैं शम्सुलउल्माय फिर भी हैं सुस्त।
रेंगते फिरते हैं परवानये बे शब की तरह ।।

पादरी से मिले पहले तो क्या शेख को उज्र।
देखिये पीर का नम्बर तो है इतवार के बाद ।।

मैं अपने आप में उन शायरों में फ़र्क़ पाता हूँ।
सख़ुन उनसे सँवरता है सख़ुन से मैं सँवरता हूँ।।

हम उर्दू को अरबी क्यों न करें उर्दू को वह भाषा क्यों न करें?
बहसों के लिये अख़बारों में मज़मून तराशा क्यों न करें?

आपस में अदावत कुछ भी नहीं लेकिन इक अखाड़ा क़ायम है।
जब इससे फ़लक का दिल बहले हम लोग तमाशा क्यों न करें?

तुझे हम शायरों में क्यों न अकबर मुंतख़ब समझें।
बयाँ ऐसा कि दिल माने ज़बाँ ऐसी कि सब समझें।।

बाग़े उमीद के फल होते हैं रोज़ ज़ाया।
हमको ख़ुदा बचाये औलादे डारविन से।।

डारविन साहब हक़ीक़त से निहायत दूर थे।
मैं न मानूंगा कि मूरिस आपके लंगूर थे।।

बेपरदः नज़र आईं कल जो चंद बीबियाँ।
अकबर ज़मीं में ग़ैरते क़ौमी से गड़ गया।।
पूछा जो उनसे आपका परदा वह क्या हुआ।
कहने लगीं कि अक्ल पै मरदों के पड़ गया।।

अपने मंसूबे तरक्क़ी के हुए सब पायमाल।
बीज जो मग़रिब ने बोया वह उगा और फल गया।।
बूट डासन ने बनाया हमने इक मज़मूं लिखा।
मुल्क में मज़मूं न फैला और जूता चल गया।।

रक़ीबों ने रपट लिखवाई है जा जां के थाने में।
कि अकबर ज़िक्र करता है ख़ुदा का इस ज़माने में।।

दुनिया में हूँ दुनिया का तलबगार नहीं हूँ।
बाज़ार से गुज़रा हूँ ख़रीदार नहीं हूँ।।

ज़िंदा हूँ मगर ज़ीस्त की लज़्ज़त नहीं बाक़ी।
हरचंद कि हूँ होश में हुशियार नहीं हूँ।।

वह गुल हूँ ख़िज़ाँ ने जिसे बरबाद किया है।
उलझूँ किसी दामन से मैं वह ख़ार नहीं हूँ।।

चर्ख़ ने पेशे कमीशन कह दिया इज़हार में।
कौम कालिज में और उसकी ज़िन्दगी अख़बार में।।

क़ाबिल-इल्मों को ले जावो कमेटी में न तुम।
कहीं ऐसा न हो यह क़ौम पै आशिक़ हो जायँ।।

बाक़ी नहीं वह रंग गुलिस्तान हिंद में।
मिहनत का है अब काम क़ुलिस्तान हिंद में।।

मुद्दत से होश में हूँ नज़रे दिले ज़बाँ हूँ।
लेकिन खुला न अब तक मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ?

जैसा मौसिम हो मुताबिक उसके मैं दीवाना हूँ।
मार्च में बुलबुल हूँ जौलाई में परवाना हूँ।।

फ़रमा गये हैं यह ख़ूब भाई घूरन।
दुनिया रोटी है और मज़हब चूरन।।

खिलवते नाज़ में क्या शान ख़ुद आराई है।
हुस्न ख़ुद आलिमे हैरत में तमाशाई है।।

खींचो न कमानों को न तलवार निकालो।
जब तोप मुक़ाबिल है तो अख़बार निकालो।।

शेखजी के दोनों बेटे बाहुनर पैदा हुये।
एक हैं ख़ुफ़िया पुलिस में एक फाँसी पागये।।

पेट मसरूफ है कलर्की में।
दिल है ईरान और टर्की में।।

बिरगिड के मौलवी को क्या पूछते हो क्या है?
मग़रिब की पालिसी का अरबी में तरजुमा है।।

क़दरदानों की तबीअत का अजब रंग है आज।
बुलबुलों को है यह हसरत कि वह उल्लू न हुये।।

मेरा टट्टू जियादा मशरक़ी है शेख साहब से।
कि वह मोटर में चढ़ते हैं यह मोटर से भड़कता है।।

दिलेरी सिखाते हैं हमको यह कह कर।
जहन्नुम से डरना बड़ी बुज़दिली है।।

काफ़ी हैं अमीरों को क़वानीन गवर्मेंट।
मज़हब की ज़रूरत तो ग़रीबों के लिये है।।

मेम ने शेख को डाँटा तो पुकारा वह ग़रीब।
देखिये तोप ने लाठी को दबा रक्खा है।।

तुम्हारे हुस्न में सायंस का भी दिल उलझता है।
कमर को देख कर वह खते उक़लैदिस समझता है।।

क़ौम के ग़म में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ।
रंज लीडर को बहुत है मगर आराम के साथ।।

खुदा की राह में पहले बसर करते थे सस्ती से।
महल में बैठकर अब इश्क़े क़ौमी में तड़पते हैं।।

सनद कैसी ? जमाल इनमें अगर है, होगा खुद ज़ाहिर।
कोई सार्टीफिकट से खूबसूरत हो नहीं सकता।।

जो अस्ल व नक़ल से वाक़िफ़ है उसने दिल को है रोका।
मुबारिक हो तुम्हीं को चाटना लड्डू के फ़ोटो का।।

हम ऐसी कुल किताबें क़ाबिले ज़ब्ती समझते हैं।
कि जिनको पढ़के लड़के बाप को खब्ती समझते हैं।।

क्या ग़नीमत नहीं यह आज़ादी।
साँस लेते हैं बात करते हैं।।

अग़राज़ बढ़ गया है आराम घट गया है।
ख़िदमत में है वह लेज़ी और नाचने को रेडी।।
तालीम की ख़राबी से हो गई बिल आखिर।
शौहर परस्त बीबी पबलिक पसंद लेडी।।

तोप खिसकी, प्रोफेसर पहुँचे।
जब बसूला हटा, तो रंदा है।।

मेहरबानी से मुझे गोदाम की कुंजी तो दी।
लेकिन अब गेहूँ नहीं बाक़ी फ़क़त घुन क्या करें ?

इक़बाल की एक ग़ज़ल

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलिस्ताँ हमारा।।
ग़ुरबत में हम अगर हैं रहता है दिल वतन में।
समझो वहीं हमें भी दिल हो जहाँ हमारा।।
परबत जो सब से ऊँचा हमसाया आसमाँ का।
वह सन्तरी हमारा वह पासबाँ हमारा।।

गोदी में खेलती हैं जिसकी हज़ारों नदियां।
गुलशन है जिसके दम से रश्के जिनाँ हमारा।।

ऐ आबरूद गंगा, वह दिन है याद तुझको।
उतरा तेरे किनारे जब कारवाँ हमारा।।

मज़हब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना।
हिन्दी हैं हम-वतन है हिन्दोसताँ हमारा।।

यूनान मिस्र रोमा सब मिट गये जहाँ से।
अब तक मगर है बाक़ी नामोनिशाँ हमारा।।

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमाँ हमारा।।

'इक़बाल' कोई महरम अपना नहीं जहाँ में।
मालूम क्या किसी को दरदे निहाँ हमारा।।

**

यह उर्दू-कविता का दिग्दर्शन-मात्र है। इसमें पुराने और नये दोनों ढंग के नमूने आ गये। नये रंग-ढंग देखकर पाठक समझ जायँगे कि उर्दू अब गुलशन से निकलकर शहर-समाज में आरही है।

यहाँ तक तो उर्दू-शायरी की बातें हुईं। उर्दू-गद्य का भी भंडार बहुत बड़ा है। उसमें प्रायः सभी विषयों के कुछ न कुछ ग्रंथ लिखे जा चुके हैं। उर्दू के बड़े बड़े मशायरे होते हैं और उसका साहित्य बढ़ाने के उपाय सोचे जाते हैं। इधर हिन्दी का प्रभाव बढ़ता हुआ देखकर कुछ अदूरदर्शी लोग हिन्दी-उर्दू का प्रश्न उठाकर हिन्दू-मुसलमानों में फिर वैमनस्य फैलाने की कोशिश कर रहे हैं। यह बड़े खेद की बात है। शिक्षित मुसलमान जानते हैं कि हिन्दुओं की ही कलम से उर्दू आज इस दरजे को पहुँची है। भला, हिन्दू अब उस पर कुठाराघात क्यों करेंगे? इसी तरह मुसलमान कवियों ने हिन्दी की जो कुछ सेवा की हैं, वैसी सेवा हिन्दी के कितने कवियों ने की है? रहीम और रसखान की तुलना हम हिन्दू कवियों में किससे

करें ? मुसलमानों को अपने पूर्वज हिन्दी-सेवी मुसलमानों की कृतियों पर गर्व होना चाहिये। विरोध की क्या बात है ! प्रत्येक हिन्दू को उर्दू सीखनी चाहिये और प्रत्येक मुसलमान को हिन्दी। अब तक उर्दू की भाषाशैली हिन्दी से कई अंशों में बढ़कर है। उर्दू में महावरों का जैसा सुन्दर प्रयोग होता है, वैसा प्रयोग हिन्दी में वे ही लेखक कर सकते हैं जिन्हें उर्दू का ज्ञान है। अरबी, फ़ारसी और तुर्की के जितने शब्द हिन्दी में आ चुके हैं, हिन्दुओं को उन्हें अपना लेना चाहिये, उनसे काम लेना चाहिये। इसी तरह मुसलमानों को संस्कृत के प्राचीन शब्दों से कोई परहेज़ न होना चाहिये। ऐसे सद्विचार से हम आपस में सद्-व्यवहार क़ायम रख सकेंगे, और वाक्शक्ति ऐसी पवित्र वस्तु को हम परस्पर विद्वेष ऐसे कुत्सित कार्य का कारण न बनने देंगे।

हिन्दी-कविता

हिन्दी का उत्पत्ति काल विक्रम की आठवीं शताब्दी के लगभग माना जाता है। तब से आज तक स्थूल रूप से हिन्दी-साहित्य के पाँच भाग किये जा सकते हैं—

१—उत्पत्तिकाल—८०० वि० से १२०० वि० तक

२—प्रारंभ काल—१२०० वि० से १५०० तक

३—प्रौढ़काल—१५०० वि० से १७५० तक

४—उत्तर काल—१७५० से १९०० तक

५—वर्तमान काल—१९०० से

उत्पत्ति काल के मुख्य कवि—चंद, जल्ह, जगनिक।

प्रारंभकाल के मुख्य कवि—विद्यापति, अमीर खुसरो, कबीर, नानक आदि।

प्रौढ़काल के मुख्य कवि—सूर, तुलसी, मीराबाई, हितहरिवंश, दादू दयाल, गंग, रहीम, केशवदास, रसखान, सेनापति, सुन्दरदास, बिहारी, भूषण, मतिराम, लाल, घन आनंद, देव, वृन्द।

उत्तरकाल के मुख्य कवि—दास, दूलह, गिरिधर, ठाकुर, पद्माकर, ग्वाल, दीनदयाल, रघुराज, द्विजदेव, लक्ष्मणसिंह, गिरधरदास।

मुख्य लेखक—लल्लू लाल, सदल मिश्र, राजा लक्ष्मणसिंह।

वर्तमानकाल के मुख्य कवि—हरिश्चन्द्र, बदरी नारायण चौधरी, विनायक राव, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, लाला सीताराम, नाथूराम शंकर शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद भानु, श्रीधर पाठक, सुधाकर द्विवेदी, महावीर प्रसाद द्विवेदी, राधाकृष्णदास, बालमुकुन्द गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, लाला भगवानदीन, जगन्नाथदास रत्नाकर, राय देवी प्रसाद पूर्ण, सैयद अमीर अली, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, कामता प्रसाद गुरु, रामचरित उपाध्याय, मिश्रबंधु, किशोरी लाल गोस्वामी, गिरिधर शर्मा, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, रूपनारायण पाण्डेय, सत्यनारायण, मन्नन द्विवेदी, मैथिली-शरण गुप्त, लोचन प्रसाद पाण्डेय, लक्ष्मीधर बाजपेयी, बदरीनाथ भट्ट, माखनलाल चतुर्वेदी, रामचंद्र शुक्ल, रामधारी सिंह दिनकर, बच्चन, भगवतीचरण वर्मा, गोपालशरण सिंह, रामकुमार वर्मा, सुमित्रानन्दन पंत, निराला, महादेवी वर्मा आदि हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से हिन्दी का नया युग प्रारंभ होता है। हरिश्चन्द्र ने कविता का विषय भी बदला और भाषा-शैली में भी कुछ नवीनता सन्निविष्ट की। उसी समय से खड़ीबोली की कविता को भी प्रोत्साहन मिला और उसमें भी भावोद्दीपन होने लगा।

हिन्दी-साहित्य का आकाश अगणित उज्ज्वल नक्षत्रों से देदीप्यमान हो रहा है। हिन्दी-साहित्य का उपवन अनेक मनोमोहक सुरभित सुमनों से सुशोभित है। हिन्दी साहित्य का अमृत-प्रवाह असंख्य स्रोतों से प्रवाहित होकर रसिकों के हृदय की भूमि को सुधा-सलिल से सींचकर उसमें नवजीवन का संचार कर रहा है। हिन्दी-साहित्य का मधुर नाद एक-एक कंठ से निकल कर सहस्र-सहस्र कंठ से प्रतिध्वनित हो रहा है।

हिन्दी में भक्त, प्रेमी और शृंगारी कवियों की संख्या सब से अधिक है। भक्त और प्रेमी कवियों में कबीर, नानक, सूरदास, तुलसीदास, मीरा,

दादू और रसखान का स्थान बहुत ऊँचा है। कबीर ने जो कुछ कहा है, उसमें अनुभव की मात्रा अधिक है, कल्पना की बहुत कम। कबीर ने जो कुछ कहा, स्पष्ट, सत्य और निष्पक्ष कहा है। जैसे,

सुख के माथे सिलि परै, नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल पल नाम रटाय।।

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि।
मनुवाँ तो दहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिँ।।

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय।।

प्रेम प्रेम सब कोई कहै, प्रेम न चीन्है कोइ।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोइ।।

प्रेम छिपाया ना छिपै, जा घट परगट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं, नैन देत हैं रोय।।

कबिरा प्याला प्रेम का, अन्तर लिया लगाय।
रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय।।

नैनों की करि कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डारि कै, पिय को लिया रिझाय।।

प्रीतम को पतियाँ लिखूं, जो कहुँ होय विदेस।
तन में मन में नैन में, ताको कहा सँदेस।।

गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गँभीर।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी, भीजें दास कबीर।।

सुन्न मंडल में घर किया, बाजै सबद रसाल।
रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दीनदयाल।।

प्रेमकी कैसी विशद महिमा है ! कैसा स्वाभाविक वर्णन है ! हिन्दी-कवियों ने विशुद्ध प्रेम का जैसा उज्ज्वल वर्णन किया है, वैसा अन्य भाषा में बहुत कम है।

विद्यापति कहते हैं:—

सेई पिरित अनुराग बखनइत तिले तिले नूतुन होइ।

अर्थात्, वही प्रीति, वही अनुराग प्रशंसा के योग्य है जो तिल तिल नवीन होता जाय।

आगे विद्यापति असीम अनुराग का अनुभव प्रकट करते हैं:—

जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न निरपित भेल।
सेहो मधुर बोल स्रवनहि सूनल स्रुति पथे परस न गेल॥

अर्थात्, जन्मभर हमने (अपने प्रिय का) रूप देखा, किन्तु आँखें तृप्त नही हुई। जन्मभर हमने वही मधुर वाणी सुनी, पर सुनने की इच्छा बनी ही रही। प्रेम का यह कितना सुन्दर वर्णन है!

अब आगे बढ़िये, हिन्दी-साहित्य की लम्बी सड़क सघन छाया से आच्छादित है। जगह-जगह पर पथिकाश्रम हैं, उपवन हैं, कुंज हैं, सर, सरिता, निर्झर के मनोरम दृश्य हैं, रसिक पथिकों को सब प्रकार का आराम देने के लिये सुकवि-समुदाय प्रत्येक समय उपस्थित रहता है। मार्ग भर में न कहीं उजाड़ है, न ऊसर, न बन, न बयावान। जिस पथिक की जैसी रुचि हो, वह वैसा ही सुखोपभोग कर सकता है। आइये, कुछ दूर तक इस मार्ग पर हम लोग भी चलें।

यह सूरदासजी हाथ में तंबूरा लिये अपने आश्रम के द्वार पर विराजमान हैं। ये श्रीकृष्ण के बालचरित और गोपियों के विरह की बातें सुना रहे हैं।

मैया मेरी मैं नहिँ माखन खायो।
भोर भयो गैयन के पाछे मधुबन मोहिँ पठायो।
चार पहर बंसीबट भटक्यो साँझ परे घर आयो।।
मैं बालक बहियन को छोटो छीको किस विध पायो।
ग्वाल बाल सब बैर परे हैं बरबस मुख लपटायो।।
तूं जननी मनकी अति भोरी इनके कहे पतियायो।
जिय तेरे कछु भेद उपज है जान परायो जायो।।
यह ले अपनी लकुट कमरिया बहुतहि नाच नचायो।
सूरदास तब बिहँसि जसोदा ले उर कंठ लगाओ।।

कितना सुन्दर वर्णन है, कितनी स्वाभाविकता, कितना सौन्दर्य है! श्रीकृष्ण के विरह में गोपियाँ व्याकुल होकर आपस में कहती हैं:—

जब तें पनिघट जाऊँ सखीरी वा जमुना के तीर।
भरि भरि जमुना उमड़ि चलत है इन नैनन के नीर।।

श्रीकृष्ण के चले जाने पर पनघट का वह हास-विलास कहाँ? अब तो आँसुओं से जमुना उमड़ आती हैं।

सूरदास प्रीति करने वालों से कहते हैं:—

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।

**

जिन कोउ काहू के वश होहि।।

फिर वही प्रेम की महिमा इस प्रकार गाते हैं:—

देखो करनी कमल की, कीनो जल सों हेत।
प्रान तज्यो प्रेम न तज्यो, सूख्यो सरहिँ समेत।।

दीपक पीर न जानई, पावक परत पतँग।
तनु तो तिहि ज्वाला जरयो, चित्त न भयो रस भंग।।

विरह ही प्रेम का प्राण है। विरह न हो तो प्रेम का आनंद आही नहीं सकता। माता यशोदा श्रीकृष्ण के विरह में कह रही हैं:—

मेरे कुँवर कान्ह बिनु सब कुछ वैसहि धरचो रहै।

सारा ब्रज श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल, श्रीकृष्ण ब्रज के विरह में बेचैन।

आगे बढ़िये। बीच-बीच में ये बहुत से काव्य-कुटीर हैं, जिनमें से अनेकों प्रकार के मधुर नाद निकलकर दिशाओं में गूंज रहे हैं। सब जगह थोड़ा-थोड़ा ठहरने से बहुत देर होगी। लीजिये, यह मीराबाई का आश्रम है। मीरा कहती हैं:—

घायल सी घूमत फिरूँ रे मेरा दरद न जाने कोय।
बाबल बैद बुलाइया रे पकड़ दिखाई म्हारी बाँह।
मूरख बैद मरम नहिँ जानै करक करेजे माँह॥
जाओ बैद घर आपने रे म्हारो नाँव न लेय।
मैं तो दाधी विरह की रे काहे कूँ औषद देय॥
खिन मंदिर खिन आँगने रे खिन खिन ठाढ़ी होय।
घायल ज्यों घूमूँ खड़ी रे म्हारी बिथा न बूझे कोय॥
काढ़ि कलेजो मैं धरूँ रे कौआ तू ले जाय।
ज्याँ देस्याँ म्हारो पिय बसै रे वै देखत तू खाय॥

विरह का कैसा मार्मिक वर्णन है! प्रेम का कितना सुन्दर रूप है! आगे बढ़िये। यह कवि शिरोमणि तुलसीदास का आश्रम आ गया। तुलसी रामभजन में मग्न हैं। संसार में सर्वत्र उन्हें राम ही राम दिखाई पड़ रहे हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, वृक्ष, देवता, राक्षस सब में उनको अपने राम की मूर्ति दिखाई पड़ रही है। इनका आश्रम सब से बड़ा है। इनके पास राजा, रंक, फ़क़ीर सब आते हैं। ये कहते हैं:—

जेहिके जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु संदेहू।
परहित बस जिनके मनमाहीं। तिनकहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

ये व्यंग और हास-परिहास में भी बड़े पटु हैं। श्रीराम से कहते हैं:—

गर्ब करहु रघुनंदन जनि मन माँह।
आपन रूप निहारहु सियकै छाँह॥

अर्थात्, हे राम अपने रूप का घमंड न कीजिये, ज़रा अपने रूप का सीता की छाया से मिलान तो कीजिये। सीता की तुलना आप क्या कर सकते हैं?

सीता के अंग-रंग का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं:—

चंपक हरवा अँग मिलि अधिक सुहाइ।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाइ॥
सिअ तुव अङ्ग रंग मिलि अधिक उदोत।
हार बेलि पहिरावौं चंपक होत॥

सीता जब राम के साथ बन को चलीं, उस समय सीता की मृदुता का वर्णन करने में तुलसी ने अप्रतिम पटुता दिखाई है—

पुरते निकसी रघुवीर वधू धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जलकी पटु सूखि गये मधुराधर वै॥
फिर बूझति हैं चलनोऽब कितो पिय पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥

कितना सीधा-सादा वर्णन है! कितना मर्मभेदी भाव है?

आगे चलिये। यह रसखान का आश्रम है। रसखान प्रेम में मस्त हैं। इनका आलाप सुनिये—

मानस हौं तो वही रसखान बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जौ खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिँदी कूल कदंब की डारन॥

**

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहूँ सिद्धि नवौ निधि को सुख नंद की गाय चराय बिसारौं॥
रसखानि कबौं इन आँखिन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूँ कलधौत के धाम करीर के कुंजन ऊपर वारौं॥

यह मार्ग बहुत लम्बा है। आइये, एक सुगम मार्ग से चलें। इस मार्ग में बड़े बड़े कुंज हैं। आइये, पहले संत-कुंज में थोड़ा विश्राम ले लें। यहाँ सब संत कवि जमा हैं। कबीर, रैदास, धर्मदास, नानक, दादू, मलूक, सुन्दरदास, चरनदास, पलटू, धरनी, बुल्ला, भीखा, दरिया आदि संत यहा अपने अपने ध्यान में मस्त हैं। प्रत्येक के मुँह से उसका अनुभव निकलता जा रहा है। सुनिये--

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।
प्रेमगली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं॥

कबीर।

प्रभु जी तुम दीपक हम बाती। जाकी जोति बरै दिनराती॥

रैदास।

झरि लागै महलिया, गगन घहराय।
खन गरजै खन बिजुली चमकै, लहर उठे सोभा बरनि न जाय॥

धर्मदास।

काहे रे बन खोजन जाई।
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है मुकुर माँहि जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरंतर घटही खोजो भाई॥

नानक।

सरग नरक संसै नहीं, जियन मरन भय नाहिं।
राम बिमुख जे दिन गये, सो सालैं मन माहिं॥

दादू।

दाया करै धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।
अपना सा दुख सबका जानै, ताहि मिलै अबिनासी॥

मलूक।

तौ सही चतुर तूँ जान परवीन अति परै जनि पींजरे मोह कूवा।
पाइ उत्तम जनम, लाइले चपल मन, गाइ गोविन्द गुन जीत जूवा॥

सुन्दरदास।

चरनदास यों कहत हैं, सुनियो संत सुजान।
मुक्ति मूल आधीनता, नरक मूल अभिमान॥

चरनदास।

सुनि लो पलटू भेद यह, हँसि बोले भगवान।
दुख के भीतर मुक्ति है, सुख में नरक निदान॥

पलटू।

इसी संत-कुंज में हम दो देवियों को भी बैठे देखते हैं। ये कह रही हैं—

सीस कान मुख नासिक, ऊँचे ऊँचे नाँव।
"सहजो" नीचे कारने, सब कोई पूजै पाँव॥

सहजो बाई।

बौरी ह्वै चितवत फिरूँ, हरि आवें केहि ओर।
छिन उट्ठूं छिन गिरि परूँ, राम दुखी मन मोर॥

दया बाई।

अब आगे बढ़िये। यह प्रेम-कुंज है। यहाँ कौन-कौन है? देखिये, यहाँ घन आनंद, आलम और शेख, सीतल, ठाकुर और बोधा प्रेम में मतवाले, इश्क में चूर, बैठे-बैठे प्रेम की लहर ले रहे हैं। हरएक के मुँह से उसका अनुभव फूटा पड़ता है।

पर कारज देह को धारे फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ सबही बिधि सज्जनता सरसौ ।।
"घन आनँद" जीवन दायक हौ कछु मेरियौ पीर हिये परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवान को लै बरसौ ।।

घन आनंद।

मन की अँटक तहाँ रूप को विचार कहा,
रीझिबे की पैंड़ो और बूझि कछु न्यारी है।

आलम।

पैंड़ो सम सूधी बैड़ो कठिन किवार द्वार द्वारपाल नहीं तहाँ सबल भगति है। 'सेख' भनि तहाँ मेरे त्रिभुवन राय हैं जु दीनबंधु स्वामी सुरपतिन को पति है।। बैरी को न बैर बरिआई को न परबेस हीने को हटक नाहीं छीनै को सकति है। हाथी की हँकार पल पाछे पहुँचन पावै चींटी की चिंघार पहले ही पहुँचति है।।

सेख।

हम खूब तरह से जान गये जैसा आनँद का कंद किया।
सब रूप सील गुन तेज पुंज तेरे ही तन में बंद किया ।।
तुझ हुस्न प्रभा की बाकी ले फिर विधि ने यह फरफंद किया।
चम्पकदल, सोनजुही, नरगिस, चामीकर, चपला, चंद किया ।।

सीतल।

यह प्रेम कथा कहिये किहि सों सो कहे सों कहा कोऊ मानत है।
पर ऊपरी धीर बँधायो चहै तन रोग न वा पहिचानत है।।
कहि ठाकुर जाहि लगी कसकै सु तो को कसकै उर आनत है।
बिन आपने पाँय बिवाय गये कोऊ पीर पराई न जानत है।।

ठाकुर।

लोक क लाज और सोक प्रलोक को वारिये प्रीति के ऊपर दोऊ।
गाँव को गेह को देह को नातो सनेह में हाँ तो करै पुनि सोऊ।।
बोधा सुनीति निबाह करै धर ऊपर जाके नही सिर होऊ।
लोक की भीति डरात जो मीत तौ प्रीति के पैड़े परै जनि कोऊ।।

बोधा।

और आगे बढ़िये। यह नीति-निकुंज है। इसमें आपको राजनीति और लोक-व्यवहार के पंडित मिलेंगे। न ये प्रेमी हैं, न बिरही; न शृङ्गारी हैं, न वीर। ये मनुष्य को संसार मे किस ढंग से रहना चाहिये, इस बात की शिक्षा दे रहे है। इनमें मुख्य-मुख्य नीति-निपुणों के नाम ये हैं:—

नरहरि, रहीम, वृन्द, वैताल, घाघ और गिरिधर। ज़रा देर के लिये ठहर जाइये और इनके उपदेश सुन लीजिये।

ज्ञानवान हठ करै निधन परिवार बढ़ावै।
बंधुवा करै गुमान धनी सेवक ह्वै धावै।।
पंडित किरिया हीन राँड़ दुरबुद्धि प्रमाने।
धनी न समझे धर्म नारि मरजाद न माने।।
कुलवंत पुरुष कुल विधि तजै, वधु न मानै बंधु-हित।
सन्यास धारि धन संग्रहै, ये जग में मूरख विदित।।

नरहरि

रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेय।
जाहि निकारो गेह तें, कस न भेद कहि देय।।

रहीम

सबसों आगे होय कै, कबहुं न करिये बात।
सुधरे काज समाज फल, बिगरे गारी खात।।

वृन्द

मरै बैल गरियार मरै वह अड़ियल टट्टू।
मरै करकसा नारि मरै वह खसम निखट्टू।।

बाँभन सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै ।
पूत वही मरि जाय जो कुल में दाग लगावै ।।
अरु वे नियाव राजा मरै, तबै नींद भरि सोइये ।
बैताल कहै बिक्रम सुनो, एते मरे न रोइये ।।

बैताल

भुञ्याँ खेड़े हर ह्वै चार । घर ह्वै गिहिथिनि गऊ दुधार ।।
अरहर की दाल जड़हन क भात । गागल निबुआ औ घिउ तात ।।
सह रस खंड दही जो होय । बाँके नैन परोसै जोय ।।
कहे घाघ तब सबही झूठा । उहाँ छाँड़ि इहँवै बैकुंठा ।।

घाघ

जाकी धन धरती हरी ताहि न लीजै सँग ।
जो सँग राखे ही बनै तौ करि राखु अपंग ।।
तौ करि राखु अपंग फेरि फरकै सु न कीजै ।
कपट रूप बतराय ताहि को मन हरि लीजै ।।
कह गिरधर कविराय खुटक जैहैं नहिं ताकी ।
कोटि दिलासा देउ लई धन धरती जाकी ।।

गिरिधर

अब आगे एक वन मिलेगा । इसका नाम है वीर-वन । इसमें केवल दो ही चार झोपड़े नज़र आते हैं । दो तो सामने हैं, एक भूषण का, दूसरा लाल का । बाक़ी टूटी-फूटी हालत में है । वीरों को फ़ुरसत कहाँ कि वे शांति से बैठने के लिये कुंज-निकुंज की रचना करें । दोनों वीर अपनी अपनी कुटी के सामने टहल-टहलकर कुछ कह रहे हैं । सुनिये––

बिना चतुरंग संग बानरन लैकै,
बाँधि बारिधि को लंक रघुनन्दन जराई है ।
पारथ अकेले द्रोन भीषम सों लाख भट,
जीति लीन्हीं नगरी विराट में बड़ाई है ।

भूषन भनत ह्वै गुसलखाने में खुमान,
अवरंग साहिबी हथ्याय हरि लाई है।
तौ कहा अचंभो महाराज शिवराज सदा,
बीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है।।

भूषण

उद्यम ते सम्पत्ति घर आवै। उद्यम करै सपूत कहावै।।
उद्यम करै संग सब लागै। उद्यम तें जग में जस जागै।।
समुद्र उतरि उद्यम तें जैये। उद्यम ते परमेश्वर पैये।।

लाल

इस वीर-वन में आपको विशेष आनंद न आया होगा। लीजिये, सामने एक बहुत बड़ा उद्यान है। वहाँ चलकर विश्राम कीजिये।

इस उद्यान का नाम है, शृंगारोद्यान। इसके दो भाग हैं; एक भाग में सूरदास, नंददास, परमानंददास, कृष्णदास, कुंभनदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास, हितहरिवंश, हरिदास, विट्ठल विपुल, रसिक गोविन्द, भगवतरसिक, विहारीदास, ध्रुवदास, हठी, सीतलदास, सहचरि-शरण, किशोरीअलि, अलबेली अली, श्रीभट्ट, गदाधर भट्ट, व्यासजी, नागरीदास, हितवृन्दावनदास, आनंदघन, रसखान, सूरदास, मदनमोहन, नारायण स्वामी, ललित माधुरी और ललित किशोरी के प्रेम-निकेतन अलग-अलग बने हुए हैं; किन्तु सबके रंग-ढंग, रहन-सहन, विषय-वृत्त एक से हैं।

चलिये पहले इस प्रेम-निकेतन की सैर कर लें। यहाँ विशुद्ध-प्रेम की चर्चा है। सात्विक-शृंगार का आनन्द है। सब राधाकृष्ण के सौन्दर्य, और राधा-कृष्ण की क्रीड़ा का वर्णन करने में निमग्न हैं। यहाँ मन पर सांसारिक विषयों का प्रभाव नहीं। यहाँ प्रेम है, भक्ति है, सौन्दर्योपासना है, और हृदय की निर्मलता का उज्वल विकास है। यहाँ की प्रेम-कथा मनुष्य के चरित्र को कलुषित नहीं करती, किन्तु उज्वल, पावन और निष्कलंक करती है।

यहाँ—

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहि कोय।
ज्यों ज्यों डूबै स्याम-रँग, त्यों त्यों उज्ज्वल होय॥

यहाँ के एक-एक प्रेमी का, एक-एक सौन्दर्योपासक का रहस्य समझने के लिये एक-एक जन्म चाहिये। यहाँ प्रेम है, आनंद है, सच्चा सुख और सच्ची शान्ति है। यहाँ का स्वर, यहाँ का राग, यहाँ का गान, यहाँ की तान सुनकर हृदय रखनेवाला मनुष्य यहाँ का ही होकर रहता है। आइये, शृंगारोद्यान के दूसरे भाग की सैर करें।

यहाँ केशव, बिहारी, मतिराम, देव, पद्माकर, ग्वाल, पजनेस और द्विजदेव के बड़े-बड़े रंग-बिरंगे सजे-सजाये महल है। छोटे-बड़े और भी सैकड़ों सुन्दर घर इधर उधर दिखाई पड़ रहे हैं। स्त्री यहाँ की अधिष्ठात्री देवी है। यहाँ सांसारिक विषय-वासना ही का साम्राज्य है। यहाँ मनुष्य जीवन का लक्ष्य स्त्री-सुखोपभोग ही माना जाता है। यहाँ स्त्रियों के हाव-भाव और कटाक्ष से घायल विरहियों का जमघट है। दूती और कुटनियों का बाज़ार गर्म है। नायक और नायिकाओं की अनेक जातियाँ यहाँ विद्यमान हैं। अभिसार स्थानों की भरमार है। कुल-वधुओं से लुक छिपकर बातें करना, उन्हें उड़ा लाना, अविवाहिता नववयस्काओं से दूषित प्रेम करना, हर मौसम और हर अवस्था के लिये तैयार किये हुए नुसखों के अनुसार विषय-विलास करना, रात-दिन चोटी से लेकर अँगूठे तक स्त्री के अंगो की चर्चा में निमग्न रहना, यही यहाँ का धंधा है, यही यहाँ का जीवन है। इस उद्यान के कवियों ने हिन्दी-संसार में विषयानुराग की मात्रा खूब बढ़ा दी, व्यभिचार की वृद्धि की, निकम्मेपन की जड़ें जमाई और वैवाहिक पवित्रता पर आक्रमण किया। मैं यह केवल परिणाम की बातें कहता हूँ। उन कवियों के राग सुन्दर, वर्णन करने के ढंग मनोहर और स्त्री-पुरुषों के मनोभावों को व्यक्त करने की उनकी क्षमता प्रशंसनीय है। यदि मन पर विषय-वासना का बुरा असर पड़ने का भय न हो, तो मनोविनोद के लिये

उनकी वाणी अनमोल चीज़ है। आइये, कुछ श्रवण कीजिये। केशव को एक बड़ा दुःख है। वह क्या?

केसव के सनिअस करी, जस अरि हूँ न कराहिं।
चंद्रबदनि मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहिं।।

बिहारी को मार्ग चलते-चलते रति-क्रीड़ा का स्मरण आ रहा है––

नाक चढ़ै सीवी करै, जितै छबीली छैल।
फिरि फिरि भूलि उहै गहै, पिय कँकरीली गैल।।

मतिराम नेह की आग से जल रहे हैं:––

नैन जोरि मुख मोरि हँसि, नैसुक नेह जनाय।
आग लेन आई हिये, मेरे गई लगाय।।

देव का तो कहना ही क्या है। ये तो सिर से पैर तक प्रेम के रंग मे रँगे हुए आजन्म विषय-सिन्धु मे गोता खाते रहे। इन्होने बड़े अनुभव से कहा है––

जोगहू से कठिन सँजोग पर नारी को।

पद्माकर इनमें से किसी से कम नही। इनका एक नुसखा सुनिये––

गुलगुली गिलमैं गलीचा है गुनीजन है,
चाँदनी है चिक हैं चिरागन माला है।
कहै पदमाकर हैं गजक गिज़ाहू सजी,
सय्या है सुरा है और सुराही है सुप्याला है।।
सिसिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हैं,
जिनके अधीन एते उदित मसाला हैं।
तान तुक ताला है, विनोद के रसाला है,
सुबाला है दुसाला औ विसाला चित्रसाला हैं।।

किसी ग़रीब को यह सुख-सामग्री दुर्लभ है। पदमाकर ने सर्दी का इलाज बताया। अब ग्वाल से गर्मी की दवा सुन लीजिये––

जेठ को न त्रास जाके पास ये विलास होयँ,
खस के मवास पै गुलाब उछर्‌यो करै।
विही के मुरब्बे डब्बे चाँदी के बरक़ भरे,
पेठे, पाग केवरे में बरफ़ परचो करै।।
ग्वाल कवि चन्दन चहल मे कपूर चूर,
चंदन अतन तन बसन खरचो करै।।
कंजमुखी, कंजनैनी, कंज के बिछौनन पै,
कंजन की पंखी कर कंज ते करचो करै।।

वाह-वा, क्या सुन्दर सुख-स्वप्न है! ग़रीबों को यहाँ भी गुंजाइश नहीं। आइये-पजनेस का काव्यामृत पान कीजिये। इनकी प्राणप्यारी के उरोज कैसे हैं, सुनिये––

उरज उठौना चक्रवाकन के छौना कैधों,
मदन खिलौना ये सलौना प्रानप्यारी के।

द्विजदेव की तो बात ही निराली है। ये राजा महाराजा हैं। सुख की सब सामग्री से इनका महल खूब सुसज्जित है। इनकी व्यथा सुनिये––

वह मन्द चले किन मेरी भटू पग लाखन की अँखियाँ अटकीं।

इसी विषयी समाज के एक सदस्य ने एक स्त्री को सलाह दी है:––

बावरी जो पै कलंक लग्यो तो निसंक ह्वै क्यों नहिं अंक लगावति।।

अब इन्हें छोड़िये। उर्दू-शायरों ही की महफ़िल के रंग-ढंग की यह मंडली है। वहाँ भी जीते जी मौत है, यहाँ भी वैसी ही आह-ऊह है। अन्तर इतना ही है कि वहाँ अप्राकृतिक प्रेम की चर्चा है। यहाँ प्रकृति की सीमा के भीतर ही सब आमोद-प्रमोद है।

आगे आइये। उद्यान के दोनों भागों के बीच में यह किसका महल है? इसके द्वार पर लिखा है:––

परम प्रेम निधि रसिकबर, अति उदार गुन खान।
जग-जन-रंजन आसु कवि, को हरिचंद समान॥
जग जिन तृन सम करि तज्यो, अपने प्रेम प्रभाव।
करि गुलाब सों आचमन, लीजत वाको नाँव॥

यह भारतेन्दु हरिश्चंद्र का बँगला है। ये उद्यान के दोनों भागों की सैर किया करते हैं। ये बड़े प्रेमी, बड़े रसिक, बड़े उदार और विलासी पुरुष हैं। इन्होंने उद्यान के बीचोबीच से एक नई सड़क निकलवाई है। उस पर अनेक कवियों ने अपने बंगले बनवाये हैं। कुछ के नाम ये हैं :— प्रतापनारायण मिश्र, नाथूराम शंकर शर्मा, श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय, राय देवी प्रसाद पूर्ण, मैथिलीशरण आदि। ये सब अपनी-अपनी मौज में मस्त हैं। अभी तक इनके बँगलों में शोभा-सजावट का नाम नहीं। नये ढंग से सजाने का प्रयास किया जा रहा है। कुछ समय लगेगा। इनका कोई कुंज नहीं, जहाँ सब से एक साथ मिला जाय। हाँ, एक क्लब जरूर है, जहाँ कभी-कभी दो चार जमा हुआ करते हैं, और भारत विषयक नीरस चर्चा करके काल-यापन कर जाते हैं। हरिश्चन्द्र की पहुँच दोनों ओर थी, इसलिये इनके बँगले में नया और पुराना दोनों प्रकार का सौंदर्य विकसित हो उठा है। आइये, प्रत्येक से अलग-अलग मिलकर कुछ वार्त्तालाप कीजिये। हरिश्चन्द्र कहते हैं:—

जिय पै जु होय अधिकार तौ विचार कीजै,
लोक लाज भलो बुरो भले निरधारिये।
नैन, स्रौन, कर, पग सबै परबस भये,
उतै चलि जात इन्हें कैसे कै सँभारिये।
हरीचंद भई सब भाँति सों पराई हम,
इन्है ज्ञान कहि कहो कैसे कै निवारिये।
मन में रहै जो ताहि दीजिये बिसारि,
मन आपै बसै जामें ताहि कैसे कै बिसारिये॥

एक दूसरे ढंग का सुनिये—

सीखत कोउ न कला उदर भरि जीवत केवल।
पसु समान सब अन्न खात पीवत गंगा जल।।
धन विदेस चलि जात तऊ जिय होत न चंचल।
जड़ समान ह्वै रहत अकल-हत रचि न सकत कल।।
जीवत विदेस की वस्तु लै, ता बिन कछु नहिं करि सकत।
जागो जागो अब साँवरे, सब कोउ रुख तुमरो तकत।।

यहाँ से अब हम नई सड़क पर चल रहे है।

तब लखिहौ जहँ रह्यो एक दिन कंचन बरसत।
तहँ चौथाई जन रूखी रोटिहुं कहँ तरसत।।
जहँ आमन की गुठली अरु बिरछन की छालै।
ज्वार चून महँ मेलि लोग परिवारहि पालै।।
नोन तेल लकरी घासहुँ पर टिकस लगै जहँ।
चना चिरौजी मोल मिलै जहँ दीन प्रजा कहँ।।

प्रतापनारायण मिश्र

शंकर के सेवक दुलारे सब लोगन के,
नीति के निकेत निगमागम पढ़त है।
जीवन के चारों फल चाखन की चाह कर,
उन्नति की ओर निसिवासर बढ़त है।।
भारती के भूषण प्रतापशील पूषण से,
जिनकी कृपा से पर दूषण कढ़त है।
ऐसे नर नागर तरेंगे भवसागर को,
प्यारे परमारथ के पोत पै चढ़त है।।

नाथूराम शंकर शर्मा

बंदनीय वह देश, जहाँ के देशी निज अभिमानी हों।
बाँधवता में बँधे परस्पर परता के अज्ञानी हो।।

निन्दनीय वह के देश जहाँ देशी निज अज्ञानी हों।
सब प्रकार परतंत्र पराई प्रभुता के अभिमानी हों।।

श्रीधर पाठक

आशा की है अमित महिमा, धन्य है देवि आशा।
जो छूके है मृतक बनते प्राणियों को जिलाती।।

अयोध्यासिंह उपाध्याय

लक्ष्मी दीजै, लोक में मान दीजै। विद्या दीजै, सभ्य संतान दीजै।।
हे हे स्वामी, प्रार्थना कान कीजै। कीजै, कीजै देश कल्याण कीजै।।

देवीप्रसाद पूर्ण

जिसकी रज में लोट-लोटकर बड़े हुये है।
घुटनो के बल सरक-सरक कर खड़े हुये हैं।।
परमहंस सम बाल्यकाल मे सब सुख पाये।
जिसके कारण धूल भरे हीरे कहलाये।।
हम खेले कूदे हर्षयुत, जिसकी प्यारी गोद में।
हे मातृभूमि! तुझ को निरख, मग्न क्यों न हों मोद में!

मैथिलीशरण गुप्त

अब यहीं ठहरिये। यह मार्ग अभी बन रहा है। रास्ते में कंकड़ पत्थरों के ढेर लगे है। न छाया है, न पानी का कही ठिकाना है। यही से लौट चलिये। फिर कभी इस मार्ग की सैर की जायगी।

आइये, इस कुंज में बैठकर इस बात पर गौर करें कि हमने क्या देखा और कैसा देखा!

ऊपर हिन्दी-साहित्य की एक हलकी-सी झलक दिखा दी गई। शृंगारी कवियों में सात्विकता प्रेमी वृन्दावनवासी कृष्ण-भक्तों की रचनाओं के उदाहरण नहीं दिये गये। जिन्हे विस्तृत रूप से देखना हो, कविता-कौमुदी में देख सकते है। अन्य कवियों के भी काव्य की छटा कौमुदी में देखने को

मिलेगी। इसीसे उदाहरण बहुत थोड़े दिये गये। अब स्थूल रूप से हिन्दी-साहित्य पर दृष्टि डालिये।

हिन्दी-कविता के दो रूप हैं, एक ब्रजभाषा का, दूसरा हिन्दी का, जिसे "खड़ीबोली" भी कहते हैं। ब्रजभाषा का भण्डार खड़ीबोली के भंडार से कम नहीं है। किन्तु समय के प्रभाव से खड़ीबोली की कविता की ओर लोगों की रुचि जिस तेजी से बढ़ रही है, उसे देखकर यह कहना पड़ता है कि यह खड़ीबोली के किसी महाकवि के शीघ्र आविर्भूत होने की शुभ सूचना है। सैकड़ों हज़ारों सोते निकल रहे हैं, शीघ्र ही वे महानद के रूप में परिणत हो जायंगे। नन्हीं-नन्हीं लकड़ियाँ प्रज्वलित हो रही हैं, शीघ्र ही किसी बड़े कुन्दे में अग्नि का अवतार होने वाला है। प्रकाश फैल जायगा, दिशा उज्वल हो जायगी, फिर इस बात को कोई कभी याद भी न करेगा कि इस कुन्दे के सुलगाने में कितनी चैलियों ने आत्मत्याग किया था।

ब्रजभाषा के कवियों को भाषा के सम्बन्ध में जितनी स्वतंत्रता थी, हिन्दी के कवियों को उसकी चौथाई भी नहीं। ब्रजभाषा का कवि अपनी आवश्यकता के अनुसार शब्दों को तोड़-मरोड़कर सड़क तैयार कर लेता है। आवश्यकतानुसार कंकड़-पत्थर को काट-छाँटकर वह सहज ही में उन्हें जमा देता है। उसपर उसके भावों से लदा हुआ छकड़ा आसानी से चल निकलता है। वह आनन्द को आनँद, अनंद और अनन्दा कर सकता है। तुलसीदास ने ग़रीबनेवाज को गरीबनिवाजू कर के पराई चीज को भी अपने साँचे में ढाल लिया। वह खाता है को खात, गाता है को गावत और अंक को आँक, निःशंक को निसाँक, और बंक को बाँक कर सकता है। कारकों का प्रयोग भी वह मनमाना कर लिया करता है। उसे बड़ी स्वतंत्रता है। किन्तु हिन्दी-कवि को ऐसा सौभाग्य नहीं प्राप्त है। उसके सामने बड़ा बन्धन है। जो रोड़ा जैसा है, उसे वैसा ही—बिना काट-छाँट किये, जमाना पड़ता है। उसे ज़राभर भी तराश-खराश करने का उसे अधिकार नहीं। वह आनंद को आनँद भी नहीं कर सकता, जाओगे को जावगे भी नहीं बना सकता। उसके आसपास की ज़मीन बड़ी ऊबड़-खाबड़ है। उसी में से होकर

उसका संकरा रास्ता; इससे वह अपने छकड़े पर थोड़ा-थोड़ा माल लाद कर लाता है। बताइये, कैसी मुसीबत है। जितना माल ब्रजभाषा का कवि एक बार में लाता है, हिन्दी का कवि उसे चार बार में। ग्राहकों को उसके लिये बहुत देर तक इन्तज़ार करना पड़ता है। उर्दू-कवियों ने इस तकलीफ़ को समझा है। उन्होंने कुछ उद्दंडता से काम भी लिया है। आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने अपना नियमित मार्ग छोड़कर इधर-उधर भी हाथ-पैर फैला दिये हैं। वे अपना काम निकालना जानते हैं, किसी का कुछ बिगड़े, इसकी उन्हें परवा नहीं। उर्दू का एक शेर सुनिये:—

खुलता नहीं दिल बन्द ही रहता है हमेशा।
क्या जाने कि आजाता है तू इसमें किधर से॥

(जौक़)

इस शेर में "है", "जाने", "जाता है", और "इसमें", इन बेचारों का ढाँचा तो देखने में पूरा है, पर जान अधूरी है। "है", "ने", "ता", और "में", का रूप देखने में तो दीर्घ है, किन्तु उच्चारण में वे ह्रस्व हैं। हिन्दी वाले बेचारों को इतनी स्वतंत्रता भी प्राप्त नहीं। उर्दूवाले और को "औ" और "पर" को "प" लिखकर भी अपना भाव प्रकट कर सकते हैं; किन्तु हिन्दी में यह गुनाह माना जाता है। हिन्दी में शब्दों के रूप और उच्चारण में अंतर नहीं होना चाहिये। नियमित संकरे रास्ते ही से चलना चाहिये; किन्तु हरएक बार माल पूरा आना चाहिये, थोड़े माल से ग्राहकों का जी नहीं भर सकता। ऐसे करने के लिये हिन्दी के कुछ कवि उर्दूवालों ही का रास्ता पकड़ना चाहते हैं। वर्तमान कवियों में इस मत के पोषक पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय कहे जा सकते हैं। दूसरा दल कहता है कि नहीं, रास्ता संकरा है तो क्या, मर्यादा का उल्लंघन करना ठीक नहीं, रास्ते ही पर चलो। माल थोड़ा आवे तो ग्राहकों को उतने ही में संतुष्ट होने का अभ्यास बढ़ाना चाहिये। इस दल के मुखियों में बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त का नाम लिया जा सकता है। तीसरा एक दल और है। वह कहता है कि ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों के रास्ते के बीच से चलो। क्रिया तो खड़ी बोली ही की

रक्खो; किन्तु थोड़े से ब्रजभाषा के संज्ञा शब्द और क्रिया विशेषणों को भी मिला लो। इस दल के अगुआ राय देवीप्रसाद पूर्ण और पंडित नाथूराम-शंकर शर्मा थे। पूर्ण तो अपनें मानवलीला पूर्ण कर गये। शंकरजी कुछ दिनों तक उस मार्ग की सुगमता सुझा रहे थे। किन्तु अधिक संख्या दूसरे दल वालों ही की है। वे गद्य-पद्य दोनों का मार्ग एक करना चाहते हैं। मार्ग सँकरा है, इसकी उन्हें चिंता नहीं। वे कहते हैं कि संस्कृत वालों को देखो, उन्होंने मर्यादा के भीतर रहकर कैसा कमाल किया है! कैसा कठिन व्रत निभाया है! हम लोग ऐसा क्यों नहीं कर सकते? इसमें रास्ते के सँकरेपन का दोष नहीं, अभी हम लोगों में प्रतिभा ही नहीं जागृत हुई। प्रतिभाशाली के लिये सीधे-टेढ़े किसी रास्ते में भी रुकावट नहीं।

यह तो रास्ते की बात हुई। अब यह देखना है कि ब्रजभाषा और हिन्दी दोनों में कैसा माल आ चुका है और अब कैसा आ रहा है।

हिन्दी-कविता में प्रारम्भ से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक मुख्यतः चार पाँच विषयों का ही प्राधान्य रहा है—भक्ति, प्रेम, शृंगार, वीर और नीति। इनमें सब से बड़ा समुद्र शृंगार का हुआ। कितने ही कवि तो उसमें आजीवन डूबे रहे। कुछ बीच में उतराये भी, तो आगे तैरने की उनमें शक्ति ही न रही; और कितने उसके किनारे ही पर नहाते-धोते और खेलते रह गये।

भक्त कवियों ने अपने अनुभव की बात कही है। वे प्रेमी थे, ज्ञानी थे और सदाचार-प्रिय थे। हिन्दू-समाज की जीवनी-शक्ति को उन्होंने बल प्रदान किया है। हिन्दुओं में जो कुछ ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और सदाचार की चर्चा है, उसमें से अधिकांश हिन्दी-कवियों की सम्पत्ति है। कौन कह सकता है कि हिन्दुओं के दैनिक व्यवहार में तुलसी, सूर और कबीर की प्रेरणा नहीं है! हिन्दी का भक्ति-साहित्य बड़ा उज्ज्वल, बड़ा सुन्दर और बड़ा मधुर है। उसमें प्राणों को आराम, मन को आनन्द और आत्मा को शान्ति मिलती है।

वीर-रस की कविता हिन्दी में अधिक नहीं है। जो कुछ है, उसका सम्बन्ध हृदय से कम, शरीर से अधिक है।

नीति की कविता वीर-रस की कविता से अधिक है। और समाज में उसका प्रचार भी है। हिन्दी की यह सम्पदा अवश्य देखने की चीज़ है।

शृङ्गार के विषय में मुझे कुछ अधिक कहना है, इसी से मैंने उसे सब के अंत में चुना है। हिन्दी-कवियों में शृङ्गारी कवियों की संख्या सब से अधिक है। इनमें कुछ तो बहुत उच्च कोटि के हैं, उन्होंने हृदय के सौन्दर्य पर बड़ी ललित कविता की है। भक्त कवियों ने जहाँ कहीं प्रसङ्ग-वश शृङ्गार का वर्णन किया है, उसमें विशुद्ध प्रेम और मानव-स्वभाव की सच्ची झलक दिखाई पड़ती है। वे सदाचार की सीमा के बाहर नहीं गये हैं। किन्तु सिर से पैर तक शृङ्गार में डूबे हुये कवियों ने सदाचार को लात मारी है। उन्होंने नायक-नायिका-भेद को कविता का सब से प्रधान अंग बना डाला है। नायिकाओं को पता ही नहीं, किन्तु कवियों ने उनके सैकड़ों भेद-कर डाले। सब की अलग-अलग भाषा, सब के अलग-अलग भाव, वेष, भूषा और चाल; बिल्कुल नया संसार ही रच दिया। इस संसार में सदाचार की गंध नहीं। अभिसार-स्थान की सजावट है, दूतियों की दौड़ है, वाक्य-विलास है, विरहोच्छ्वास और बेकली है। कोकिल और पपीहों के हजारों अपराध गिनाये जा रहे हैं, उन्हें लाखों गालियाँ दी जा रही हैं, उन बेचारों को इसका पता भी नहीं। विरह के वर्णन में तो और भी गज़ब ढाया गया है। एक विरहिणी पार्वती की पूजा करने गई थी। जैसे ही उसने हाथ में माला लेकर पार्वती के गले में डालना चाहा, वैसे ही, हाथ लगते ही, माला राख हो गई। तब उस विभूति को शिवजी को चढ़ाकर वह वापस आई। विरह की आँच हृदय ही में होती है, किन्तु कवियों को वहीं तक उसे रखने में संतोष नहीं हुआ। उन्होंने हाथ में भी उसकी दाहक-शक्ति पहुँचा दी। एक विरहिणी पनघट पर जल लाने गई। घड़ा भरकर सिर पर रखते ही वह विरह की आँच से सूख जाता था। फिर उतारकर फिर भरती और सिर पर रखते ही वह फिर सूख जाता था। दिन भर इसी चढ़ाव-उतार में लगी रही।

बिहारी ने एक विरहिणी का वर्णन इस प्रकार किया है—

इत आवति चलि जाति उत , चली छ सातिक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै , लगी उसासनि साथ।।

अर्थात् विरह के मारे वह इतनी कमज़ोर हो गई है कि साँस लेने और छोड़ने के साथ वह छः-सात हाथ आगे-पीछे आती-जाती रहती है। साँस रूपी हिंडोले पर चढ़ी हुई इधर से उधर झूमती रहती है।

ऐसा तो उस नायिका का हाल था। अब यह बात यहाँ समझ में नहीं आती कि जब वह हवा से भी इतनी हलकी हो गई थी तो तितली का पंख लगा कर अपने प्रियतम के पास क्यों नहीं उड़कर चली गई ?

ग्वाल कवि ने एक विरहिणी का हाल ऐसा लिखा है:—

ताँदुर ले आई तिय आँगन में ठाढ़ी रही,
करके पसारत्रे में भात हाथ में भयो।

इस देश में जब से अंग्रेज़ी राज आया, तब से विरही-विरहिणियों की संख्या तो बढ़ गई, किन्तु पहले जैसी घटनायें अब नहीं होती। लाखों विरही तो रोज़ रेल पर चढ़े फिरते हैं, बीसों हज़ार कालेजों में भरे पड़े है; डाक और तार का भी पूरा प्रबन्ध है, फिर भी किसी विरही के घर से यह खबर नहीं आती कि उसकी विरहिणी की आह से उसका घर जल गया या किसी कोयल या पपीहे की बोली से उसकी स्त्री मर गई। मालूम होता है, इस बला को पुराने कवि अपने साथ ही स्वर्ग ले गये।

दूसरा नम्बर नखशिख वर्णन करने वाले कवियों का है। इन्होंने नायिका के जिस अंग को छुआ है, उसे अन्तिम सीमा तक पहुँचा दिया है। चितवन से किसी को घायल होते सुना हो तो उसे बज्र और बिजली बना डाला। बीच में ज़रा-सी उठी हुई नाक अच्छी लगी तो उसे इतना झुकाया कि तोते की सी नाक बनाकर तब दम लिया। चाहे वे अपनी स्त्री की तोते ऐसी टेढ़ी नाक को स्वयं पसन्द न करें। स्तनों की कठोरता अच्छी लगी तो उसे पहाड़ बना डाला, नायिका दब कर मर जाय तो मरे, इनका क्या बिगड़ा ! नायिका की कमर पतली होने में कुछ सुभीता समझ पड़ा तो उसके पीछे

पड़ गये। संसार की पतली से पतली चीजें याद की गई और कमर को छील-छालकर उससे भी पतली कहा गया। पतलेपन की दौड़ यहाँ तक बढ़ी कि केशवदास ने उसका अस्तित्व ही मिटा दिया। बस, अब आगे कहाँ जाओगे? जो चीज़ ही नहीं, उससे अधिक पतली और क्या हो सकती है। केशवदास ने कहा है :—

सूम कैसो दान महामूढ कैसो ज्ञान
यह तेरी कटि निपट कपट कैसो हितु है।।

चलो, छुट्टी हुई। इस प्रकार के कविगण प्रतिदिन जंघा और स्तनों के बीच में, नाभि के पास, कटि-प्रदेश देखते रहे हैं, फिर भी कहते हैं कि कटि हई नहीं। इस झुठाई का भी कुछ ठिकाना है! कल्पना के पीछे ये लोग ऐसे उड़े कि असली वस्तु ही को भूल गये। अत्युक्ति और उत्प्रेक्षा को इतना महत्व दिया कि स्वाभाविकता ही से हाथ धो बैठे।

उर्दू के सौदा कवि ने एक शेर में कहा है :—

समुन्दर कर दिया नाम उसका नाहक सब ने कह कह कर।
हुये थे जमा कुछ आँसू मेरी आँखों से बह बह कर।।

यह झूठ की अन्तिम सीमा है। इससे आगे कोई बढ़ नहीं सकता। एक ही पिनक में चले जाते हुये इन कवियों को देख कर कोई-कोई कवि इनकी दिल्लगी भी उड़ाने लगे। एक कवि कहता है :—

मास की गरेथी कुच कंचन कलस कहै,
मुख चन्द्रमा जो असलेषमा को घर है।
दोऊ कर कमल मृनाल नाभी कूप कहै,
हाड़ ही को जंघा ताहि कहैं रम्भा तर है।।
हाड़ को दसन ताहि हीरा मूँगा मोती कहै,
चाम को अधर ताहि कहैं बिम्बा फर है।
एती झूठी जुगती बनावैं औ कहावैं कवि,
तापर कहत हमें सारदा को वर है।।

उर्दू-कवियों की मिथ्यावादिता से मौलाना हाली भी नाराज हुये थे। वे कहते हैं :—

बुरा शेर कहने गर कुछ सजा है,
अबस झूठ बकना अगर ना रवा है,
तो वह महकमा जिसका क़ाजी खुदा है,
मुक़र्रर जहाँ नेक व बद की जज़ा है,
गुनहगार वाँ छूट जावेंगे सारे,
जहन्नुम को भर देंगे शायर हमारे।

शृङ्गारी-कवि-मंडल के सब से अन्तिम कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे। शृङ्गार में जो कुछ कहना-सुनना बाक़ी था, उसे उन्होंने कहकर समाप्त किया। इसके सिवाय उन्होंने कुछ और भी कहा। उसे देखकर नये कवियों ने अपना रुख बदलना प्रारम्भ किया। वह रुख यहाँ तक बदला कि अब शृङ्गार का कोई नाम नही लेता। आजकल के कवि हाथ धोकर भारत के पीछे पड़ गये है। कोई भारत को कायर बनाता है, कोई अभागा कहता है, कोई उसे पुरानी कहानी सुनाकर उठाना चाहता है, और कोई उसकी जी-भरकर भर्त्सना करता है। कविता में कुछ दम नही, किन्तु जय-जय की इतनी भरमार है कि ऐसी आशंका होती है कि इतने जय-जयकार के भय से कहीं भारत यह देश छोड़कर भाग न जाय। भारत के पीछे रो-धोकर यह भेड़िया-धसान किसी और तरफ चलेगी, तब उसे भी अन्तिम सीमा तक खदेड़ कर दूसरे को पकड़ेगी। हिन्दी-कवियों मे यह विशेषता देखी जाती है कि वे जिधर पिल पड़े, उधर से वे तबतक नहीं मुड़ते, जब तक उसमें कुछ अस्तित्व रहता है।

खड़ीबोली की कविता को सब से अधिक प्रोत्साहन पंडित महावीर प्रसादजी द्विवेदी से मिला है। द्विवेदीजी ही के उद्योग से आज खड़ीबोली की कविता का एक रूप देखने को मिल रहा है। सरस्वती ने इस क्षेत्र में बड़ा काम किया है। अब भविष्य में, बहुत आशा है कि विशुद्ध खड़ी बोली में भी

ब्रजभाषा के समान भावपूर्ण कविता होने लगेगी। अभी तो खड़ीबोली की कविता में भावों का चमत्कार देखने को बहुत ही कम मिलता है।

हिन्दी की वर्तमान दशा

हिन्दी की वर्तमान दशा बहुत ही आशापूर्ण है। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक हिन्दी के लिये अनुराग जागृत हुआ है। प्रत्येक प्रान्त के प्रमुख नेताओं और विद्वानों ने एक स्वर से हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया है। सुलेखकों और सुकवियों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। नये-नये समाचार-पत्र निकल रहे हैं। हिन्दी के पुस्तकालयों की भी संख्या बड़ी तेज़ी से बढ़ रही है। बड़े-बड़े नगरों में हिन्दी से सम्बन्ध रखनेवाली संस्थायें खुलती जा रही हैं। पुस्तक-प्रकाशक गण, अच्छे लेखकों से मौलिक ग्रन्थ लिखवाकर, अन्य भाषाओं के उत्तम ग्रन्थों का अनुवाद करा के और उन्हें आवश्यकतानुसार सचित्र सजिल्द तैयार करा के हिन्दी-साहित्य का कलेवर बढ़ाते जा रहे हैं। हिन्दू लोग तो हिन्दी की ओर खिचते ही आ रहे हैं, मुसलमानों में भी हिन्दी के लिये बड़ी रुचि उत्पन्न हुई है। देश-भक्त मुसलमान हिन्दी सीखने का उद्योग करते पाये जाते हैं।

इस समय देश में हिन्दी की कई बड़ी संस्थायें काम कर रही हैं :— एक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग और दूसरी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, तीसरी दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा, मद्रास और चौथी राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन सार्वदेशिक संस्था है। उसका प्रधान कार्यालय प्रयाग में है। प्रतिवर्ष सर्वोत्तम ग्रन्थकार को वह बड़े सम्मान के साथ बारह सौ रुपये पुरस्कार देता है। भारत के कई प्रान्तों में उससे सम्बद्ध प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्यालय हैं, जो सम्मेलन के उद्देश्यों की पूर्ति में तत्पर रहते हैं। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से पुरानी है। हिन्दी और नागरी लिपि के लिये ख़ासकर युक्त-प्रान्त वालों में अनुराग उत्पन्न करने का श्रेय इस सभा ही को है। सभा ने

हिन्दी की प्राचीन पुस्तकों की खोज का बहुत ही उपयोगी काम किया है। पुराने काव्य-ग्रन्थों का अनुसंधान, उत्तमोत्तम ग्रन्थों का सम्पादन और प्रकाशन, हिन्दी के एक बृहत् कोष की रचना, ये सब काम सभा का गौरव बहुत ऊँचा करते हैं। सभा जन्म ही से हिन्दी-साहित्य की बहुमूल्य सेवा कर रही है।

दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा महात्मा गाँधी की यादगार है। इसकी स्थापना उन्हींने की थी। यह और राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति हिन्दी की परीक्षायें लेती है, जिनमें लाखों परीक्षार्थी बैठते है।

इस समय बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र, मद्रास आदि भारत के प्रायः सभी प्रांतों के लोगों में हिन्दी के जानकार या लेखक मिलेंगे।

इस तरह हिन्दी-साहित्य का बढ़ता हुआ वट-वृक्ष एक दिन कैलास से कन्याकुमारी तक, अटक से कटक तक अपनी सुखद शीतल छाया से पैंतीस कोटि भारतवासियों को शांति और सुख प्रदान करेगा। सारे देश में एक भाषा के प्रचार से हम में एक राष्ट्रीयता जागृत हो रही है, पारस्परिक प्रेम, ऐक्य और बंधुत्व की वृद्धि हो रही है और घनिष्ठता और सहानुभूति के भाव दृढ़ हो रहे हैं।

हिन्दी जीती-जागती भाषा है। उसकी ग्राहिका-शक्ति बड़ी प्रबल है। उसने अरबी, फ़ारसी और तुर्की-भाषाओं के हज़ारों शब्द हजम कर लिये, अंग्रेज़ी भाषा के भी सैकड़ों शब्दों को वह चुन-चुनकर अपना चुकी है। विदेशी भाषाओं के जो शब्द अपनी भाषा में खप गये, वे सब हिन्दी की मिलकियत हो गये। अच्छे लेखक उन शब्दों से बराबर काम लेने लगे हैं। नये-नये महावरों का भी रोज़-रोज़ समावेश होता जाता है। एक दिन सर्वांग-सुन्दर हिन्दी-भाषा भारत की भाषाओं में प्रधान पद को सुशोभित करेगी।

कविता-कौमुदी

[पहला भाग]

चंदबरदाई

चंदबरदाई का नाम राजपूताने में बहुत प्रसिद्ध है। वह भारतवर्ष के अन्तिम हिन्दू सम्राट् महाराज पृथ्वीराज चौहान का राजकवि, मित्र और सामन्त था। वह भट्ट जाति के जगान (वर्तमान राव) नामक गोत्र का था। उसके पूर्वज पंजाब के रहने वाले थे, और उनकी यजमानी अजमेर के चौहानों के यहाँ थी।

चंद का जन्म लाहौर में हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि चंद और पृथ्वीराज का जन्म एक ही तिथि को हुआ था और एक ही तिथि को दोनों ने शरीर भी छोड़ा। पृथ्वीराज का जन्म संवत् १२०५ में और मृत्यु १२४८ में हुई। अतएव चंद के भी जन्म-मरण का समय यही समझना चाहिये।

चंद के पिता का नाम राव वेण और विद्या-गुरु का नाम गुरुप्रसाद था। वह षट्भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, ज्योतिष, वैद्यक, मंत्र-शास्त्र, पुराण, नाटक और संगीत आदि विद्याओं में बड़ा निपुण था। वह जालन्धरी (जालपा) देवी का उपासक था।

चंद ने दो विवाह किये थे। उसकी पहली स्त्री का नाम कमला उपनाम मेवा और दूसरी का गौरी उपनाम राजोरा था। उसके ग्यारह सन्तति हुई, दस लड़के और एक लकड़ी। लड़की का नाम राजबाई था। चंद के दसों पुत्रों में जल्ह बड़ा योग्य था। पृथ्वीराज की बहन पृथाबाई का विवाह, "रासो" के अनुसार, चित्तौर के रावल समरसिंह के साथ हुआ था। पृथाबाई के साथ जल्ह भी रावलजी को दहेज में दिया गया था। जब शहाबुद्दीन

के साथ पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में रावल समरसिंहजी मारे गये, तब उनके साथ पृथाबाई सती हुई थी। सती होने के पहिले पृथाबाई ने अपने पुत्र को एक पत्र लिखा था। जिसमें सूचना दी थी कि श्रीहुजूर समर में मारे गये, और उनके संग ऋषिकेशजी भी बैकुंठ को पधारे हैं। ऋषिकेशजी उन चार लोगों में से हैं जो दिल्ली में मेरे संग दहेज में आये थे, इस लिये इनके वंशजों की खातिरी राखना। "ने पाछे मारा च्यारी गरां का मनपो पात्री राखजो। ई मारा जीव का चाकर हे जो थासुं कदी हरामपोर नीवेगा"। यह पत्र माघ सुदी १२, संवत् १२४८ विक्रम का लिखा हुआ है। इससे प्रकट है कि जल्ह पृथाबाई के साथ चित्तौर गया था।

चंद ने पृथ्वीराज का चरित्र जन्म से लेकर अन्तिम युद्ध तक 'पृथ्वीराज रासो' नामक महाकाव्य में वर्णन किया है। अन्तिम लड़ाई के समय चंद पृथ्वीराज के साथ उपस्थित नहीं था, वह देवी के एक मन्दिर में बैठकर 'रासो' को पूरा कर रहा था। इसलिये अन्तिम लड़ाई का वृत्तान्त वह नहीं लिख सका। पीछे से उसके पुत्र जल्ह ने उस युद्ध का वृत्तान्त लिखा। रासो में लिखा है कि पृथ्वीराज को शहाबुद्दीन ने पकड़ लिया था। वह उन्हें ग़ज़नी ले गया और उनकी दोनों आँखें फोड़वा कर उसने उन्हें कैदखाने में डलवा दिया। "रासो" लिखकर चंद अपने घर आया और उसे जल्ह को देकर वह ग़ज़नी गया। वहाँ गोरी को प्रसन्न करके वह पृथ्वीराज से मिला। उसने कौशल से पृथ्वीराज के हाथ से शहाबुद्दीन को मरवा डाला। फिर राजा और कवि दोनों ने कटार से अपना-अपना प्राणांत वहीं किया। पृथ्वीराज के साथ चंद का जीवन-चरित्र ऐसा मिला हुआ है कि उससे वह किसी तरह अलग नहीं किया जा सकता। चंद पृथ्वीराज का लँगोटिया मित्र था। वह सदा पृथ्वीराज के साथ रहता था। इसलिये जो-जो घटनायें उसने लिखी हैं, उनमें सत्य का अंश बहुत अधिक है। उसने आँखों-देखी बातें लिखी हैं।

चंद महाकवि था। उसका बनाया हुआ 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी में एक अपूर्व ग्रन्थ है। उसमें स्थान-स्थान पर कविता के नवो रसों का वर्णन बड़ी मार्मिकता से किया गया है। चंदने पृथ्वीराज का सम्पूर्ण चरित्र अपनी

स्त्री गौरी से कहा है। जिस प्रकार तुलसीदास की चौपाई, सूरदास के पद, बिहारी के दोहे, गिरधर की कुण्डलियाँ और पद्माकर के घनाक्षरी छन्द प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार चन्द ने छप्पय लिखने में बड़ा नाम पाया है।

'रासो' की कविता में संयुक्ताक्षरों की खूब भरमार है। पढ़ते समय ऐसा मालूम होता है कि जीभ को खूब ऊबड़-खाबड़ रास्ता तै करना पड़ रहा है। पर उस रास्ते में जो काव्य-रस के मनोहर पुष्प खिले हुये हैं, उनकी सुगन्ध से मन मुग्ध हो जाता है। 'रासो' में वीर और शृंगार-रस की कविता बहुत है। उनमें बड़ा चमत्कार और बड़ी मनोमोहकता है।

चंद की कविता की भाषा अच्छी तरह वे ही लोग समझ सकते हैं जिन्हें संस्कृत और राजपूताने की बोली का अच्छा ज्ञान हो। साधारण हिन्दी जानने वालों की समझ में वह अच्छी तरह नहीं आ सकती।

'रासो' बहुत बड़ा ग्रन्थ है। समय समय पर चंद जो कवितायें रचता था, उसे वह कण्ठस्थ रखता था, या कागज़ पर लिख लेता होगा। उन्हें पुस्तकाकार उसने ६० दिनों में किया। 'रासो' में कुल ६६ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय किसी न किसी ऐतिहासिक घटना को लेकर लिखा गया है। पृथ्वीराज ने अपने जीवन में बहुत-सी लड़ाइयाँ लड़ी थी और उन्होंने विवाह भी कई किये थे। 'रासो' में सब का विस्तार-पूर्वक वर्णन है। आजकल के ऐतिहासिक विद्वान् रासो में वर्णित पृथ्वीराज और मुहम्मदगोरी-सम्बन्धी कई लड़ाइयों को सत्य नहीं मानते। वे 'रासो' में भी बहुत-सा प्रक्षिप्त अंश निकालते हैं।

चंद का जन्म लाहौर में हुआ था और वहाँ मुसलमानों का अधिक संसर्ग था; इसलिये चंद की कविता में अरबी-फ़ारसी के भी बहुत से शब्द आ गये हैं।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने 'रासो' को प्रकाशित किया है। अभी इसमें भी अधिक शुद्ध संस्करण के प्रकाशित होने की आवश्यकता है।

आगे हम चंद की कविता के कुछ नमूने उद्धृत करते हैं :—

पद्मावती समय

दूहा

पूरब दिस गढ़ गढ़न पति, समुद शिखर अति दुग्ग।
तहँ सु विजय सुरराज पति, जादू कुलह अभग्ग ।।१।।
हसम हयग्गय देस अति, पति सायर अज्जाद।
पबल भूप सेवहिं सकल, धुनि निसान बहुसाद ।।२।।

कवित्त

धुनि निसान बहु साद नाद सुरपंच वजत दिन।
दस हजार हय चढ़त हेम नग जटित साज तिन।।
गज असंख गजपतिय मुहर सेना तिय संखह।
इक नायक कर धरी पिनाक धरभर रज रख्खह।।
दस पुत्र पुत्रिय एक सम रथ सुरंग उम्मर डमर।
भंडार लछिय अगनित पदम सो पदमसेन कुँवर सुघर।।३।।

दूहा

पदम सेन कूँवर सुघर, ता घर नारि सुजान।
ता उर इक पुत्री प्रकट, मनहुँ कला ससि भान।४।।

कवित्त

मनहुँ कला ससि भान कला सोलह सो बन्निय।
बाल बेस ससिता समीप अमृत रस पिन्निय।।
बिगसि कमल मृग भ्रमर बैन खंजन मृग लुट्टिय।
हीर कीर अरु बिम्ब मोति नख शिख अहि घुट्टिय।।
छत्रपति गयंद हरि हंस गति विह बनाय संचै सँचिय।
पदमिनिय रूप पद्मावतिय मनहुं काम कामिनि रचिय।।५।।

दूहा

मनहुँ काम कामिनि रचिय, रचिय रूप की रास।
पशु पंछी सब मोहिनी, सुर नर मुनियर पास।।६।।

सामुद्रिक लच्छन सकल, चौसठि कला सुजान।
जानि चतुरदस अंग षट, रति बसंत परमान ॥७॥
सखियन सँग खेलत फिरत, महलनि बाग निवास।
कीर इक्क दिष्पिय नयन, तब मन भयौ हुलास ॥८॥

कवित्त

मन अति भयौ हुलास बिगसि जनु कोक किरन रवि।
अरुन अधर तिय सधर बिम्ब फल जानि कीर छवि॥
यह चाहत चख चकृत उह जु तक्किय झरप्पि झर।
चंच चहुट्टिय लोभ लियौ तब गहित अप्प कर॥
हरषत अनन्द मन महि हुलस लै जु महल भीतर गई।
पंजर अनूप नग मनि जटित सो तिहिं महँ रप्पत भई ॥९॥

दूहा

तिही महल रप्पत भई, गई खेल सब भुल्ल।
चित्त चहुट्टयो कीर सों, राम पढ़ावत फुल्ल ॥१०॥
कीर कुँवरि तन निरखि दिखि, नख सिख लौं यह रूप।
करता करी बनाय कै, यह पदमिनी सरूप ॥११॥

कवित

कुट्टिल केस सुदेश पौह परचियत पिक्क सद।
कमल गंध वय संध हंस गति चलत मंद मद॥
सेत वस्त्र सोहै सरीर नख स्वाति बुंद जस।
भवर भँवहि भुल्लहि सुभाव मकरंद वास रस॥
नैन निरखि सुख पाय सुक यह सद्दिन मूरति रचिय।
उमा प्रसाद हर हेरियत मिलहि राज पृथिराज जिय ॥१२॥

दूहा

सुक समीप मन कुँवरि को, लग्यो बचन कै हेत।
अति विचित्र पंडित सुआ, कथन जु कथा अमेत ॥१३॥

गाथा

पुच्छत बयन सु बाले, उच्चरिय कीर सच्च सच्चाये।
कवन नाम तुव देस, कवन यंद करय परवेस ॥१४॥
उच्चरिय कीर सुनि बयनं, हिन्दवान दिल्ली गढ़ अयनं।
तहाँ इन्द्र अवतार चहुआनं, तहँ पृथिराजह सूर सुभारं ॥१५॥

पद्धरी

पदमावतीहि कुँवरी संघत्त,
दुज कथा कहत सुनि सुनि सुवत्त ॥१६॥
हिंदवान थान उत्तम सुदेस,
तहँ उदित दुग्ग दिल्ली सुदेस ॥१७॥
संभरि नरेस चहुआन थान,
पृथिराज तहाँ राजंत भान ॥१८॥
बैसह बरीस पोड़स नरिंद,
आजान बाहु भुअ लोक यंद ॥१९॥
संभरि नरेस सोमेस पूत,
देवंत रूप अवतार धूत ॥२०॥
सामंत सूर सब्बै अपार,
भूजान भीम जिम सार भार ॥२१॥
जिहि पकरि साह साहाब लीन,
तिहुँ बेर करिय पानीप हीन ॥२२॥
सिंगिनि सुसद्द गुन चढ़ि जँजीर,
चुक्कै न सबद बेधंत तीर ॥२३॥
बल बैन करन जिमि दान पान,
सतसहस सील हरिचंद समान ॥२४॥
साहस सुक्रंम विक्रम जु वीर,
दानव सुमत्त अवतार धीर ॥२५॥

दिस च्यार जानि सब्ब कला भूप,
कंद्रप्प जानि अवतार रूप ।।२६।।

दूहा

कामदेव अवतार हुअ, सुअ सोमेसर नन्द।
सहस किरन झलहल कमल, रिति समीप वर विन्द ।।२७।।
सुनत श्रवण पृथिराज जस, उमग बाल विधि अङ्ग।
तन मन चित चहुवांन पर, वस्यो सु रत्तह रङ्ग ।।२८।।
बेस बिती ससिता सकल, आगम कियो बसंत।
मात पिता चिंता भई, सोधि जुगति कौ कंत ।।२९।।

कवित्त

सोधि जुगति कौ कंत कियौ तब चित्त चहों दिस।
लयौ विप्र गुर बोल कही समझाय बात तस ।।
नर नरिंद नरपती बड़े गढ़ दुग्ग असेसह।
सीलवन्त कुल सुद्ध देहु कन्या सु नरेसह ।।
तब चलन देहु दुज्जह लगन सगुन बंद दिय अप्प तन।
आनँद उछाह समुदह सिपर बजत नद्द नीसान घन ।।३०।।

दूहा

सवा लष्प उत्तर सयल, कमऊं गढ दूरंग।
राजत राज कुमोदमनि, हय गय द्रिब्ब अभंग ।।३१।।
नारिकेलि फल परठि दुज, चौक पूरि मनि मुत्ति।
दई जु कन्या बचन बर, अति अनन्द करि जुत्ति ।।३२।।

भुजंगप्रयात

बिहसित बरं लगन लिन्नौ नरिंदं,
बजी द्वार द्वारं सु आनन्द दुंदं ।।३३।।
गढंनं गढ़ं पत्ति सब्ब बोलि नुत्ते,
सबं आइयं भूप कटु बंस जुत्ते ।।३४।।

चले दस सहस्सं असव्वार जानं,
पूरियं पैदलं तेतीस थानं ।।३५।।
मदं गल्लितं मत्त सै पंच दंती,
मनो साम पाहार बुग पंति पंती ।।३६।।
चलै अग्गि तेजी सु तत्ते तुखारं,
चौवरं चौरासी जु साकत्ति भारं ।।३७।।
नगं कंठ नूपं अनूपं सु लालं,
रंगं पंच रंगं ढलक्कंत ढालं ।।३८।।
सुर पंच सावद्द वाजित्र बाजं,
सहस्सं सहन्नाय मृग मोहि राजं ।।३९।।
समुद सिर सिखर उच्छाह छाहं,
रचित मंडपं तोरनं श्रीयगाहं ।।४०।।
पदमावती विलखि वर बाल बेली,
कही कीर सों बात तब होइ केली ।।४१।।
झटं जाहु तुम्ह कीर दिल्ली सुदेसं,
बरं चाहुआनं जु आनौ नरेसं ।।४२।।

दूहा

आनों तुम्ह चहुआन वर, अरु कहि इहै सँदेस ।
साँस सरीरहि जो रहे, प्रिय प्रथिराज नरेस ।।४३।।

कवित्त

प्रिय पृथिराज नरेस जोग लिखि कग्गर दिन्नौ ।
लगु नव रग रचि सरव दिन द्वादस ससि लिन्नौ ।।
सें अरु ग्यारह तीस साष संवत परमानह ।
जावित्री कुल सुद्ध वरनि वर रप्पहु प्रानह ।।
दिष्षंत दिष्ट उच्चरिय वर इक्क पलक विलम्ब न करिय ।
अलगार रयन दिन पंच महि ज्यों रुकमनि कन्हर वरिय ।।४४।।

दूहा

ज्यों रुकमनि कन्हर वरी, ज्यों वरि संभर कांत।
शिव मंडप पच्छिम दिसा, पूजि समय स प्रांत ॥४५॥
लै पत्री सुक यों चल्यौ, उड़्यो गगनि गहि बाव।
जहँ दिल्ली प्रथिराज नर, अट्ठ जाम में जाव ॥४६॥
दिय कग्गर नृप राज कर, षुलि बंचिय प्रथिराज।
सुक देखत मन में हँसे, कियो चलन की साज ॥४७॥

कवित्त

उहै घरी उहि पलनि उहै दिन बेर उहै सजि।
सकल सूर सामंत लिये सब बोलि बंब बजि॥
अरु कवि चंद अनूप रूप सरसै बर कह बहु।
और सेन सब पच्छ सहस सेना तिय सष्पहु॥
चामंडराय दिल्ली धरह गढ़पति करि गढ़ भार दिय।
अलगार राज प्रथिराज तब पूरब दिस तब गमन किय ॥४८॥

दूहा

जा दिन सिषर बरात गय, तादिन गय प्रथिराज।
ताही दिन पतिसाह कौं, भइ गज्जनै अवाज ॥४९॥

कवित्त

सुनि गज्जनै अवाज चढ्यो साहाब दीन बर।
खुरासान सुलतान कास काबिलिय मीर धुर॥
जङ्ग जुरन जालिम जुझार भुज सार भार भुअ।
धर धमंकि भजि सेस गगन रवि लुप्पि रैन हुअ॥
उलटि प्रवाह मनौ सिंधु सर रुक्कि राह अडौ रहिय।
तिहि घरिय राज प्रथिराज सौं चंद बचन इहि विधि कहिय ॥५०॥
निकट नगर जब जानि जाय वर विंद उभय भय।
समुद सिखर घन नद्द इंद दुहुँ ओर घोर गय॥

अगिवानिय अगिवान कुँवर वनि वनि हय सज्जति।
दिष्षन को त्रिय सबनि गौख चढ़ि छाजन रज्जति॥
विलखि अवास कूँवरि वदन मनो राहु छाया सुरत।
झंपति गवष्पि पल पल पलकि दिखत पंथ दिल्ली सुपति॥५१॥

पद्धरी

दिष्पंत पंथ दिल्ली दिसान,
सुख भयो सूक जब मिल्यो आन॥५२॥
संदेश सुनत आनन्द नैन,
उमगीय बाल मनमथ्थ सैन॥५३॥
तन चिकट चीर डार्‌यो उतारि,
मज्जन मयंक नव सत सिंगार॥५४॥
भूषन मँगाय नख सिख अनूप,
सजि सेन मनो मनमथ्थ भूप॥५५॥
सोवन्न थार मोतिन भराय,
झलहल करंत दीपक जराय॥५६॥
संगह सखीय लिय सहस बाल,
रुकमिनिय जेम मज्जत मराल॥५७॥
पूजीय गवरि संकर मनाय,
दच्छिनै अंग करि लगिय पाय॥५८॥
फिर देखि देखि प्रथिराज राज
हस मुद्ध मुद्ध चरपट्ट लाज॥५९॥
कर पकरि पीठ हय पर चढ़ाय,
लै चल्यो नृपति दिल्ली सु राय॥६०॥
भइ खबरि नगर बाहिर सुनाय,
पदमावतीय हरि लीय जाय॥६१॥
बाजी सु बंब हय गय पलान,
दौरे सुसज्जि दिस्सह दिसान॥६२॥

तुम्ह लेहु लेहु मुख जंपि जोध,
हन्नाह सूर सब पहरि क्रोध ।।६३।।
अग्गे जु राज प्रथिराज भूप,
पच्छै सु भयो सब सैन रूप ।।६४।।
पहुँचे सु जाय तत्ते तुरंग,
भुअ भिरन भूप जुरि जोध जङ्ग ।।६५।।
उलटी जु राज प्रथिराज बाग,
थकि सूर गगन धर धसत नाग ।।६६।।
सामंत सूर सब काल रूप,
गहि लोह छोह वाहै सु भूप ।।६७।।
कम्मान बान छट्टहि अपार,
लागंत लोह इम सारि धार ।।६८।।
घमसान घान सब बीर खेत,
घन श्रोन वहत अरु रुकत रेत ।।६९।।
मारे बरात के जोध जोह,
परि रुंड मुंड अरि खेत सोह ।।७०।।

दूहा

परे रहत रिन खेत अरि, करि दिल्लिय मुख रुक्ख ।
जीति चल्यो प्रथिराज रिन, सकल सूर भय सुक्ख ।।७१।।
पदमावति इम लै चल्यौ, हरखि राज प्रथिराज ।
एतें परि पतिसाह की, भई जु आनि अवाज ।।७२।।

कवित्त

भई जु आनि अवाज आय साहाबदीन सुर ।
आज गहौं पृथिराज बोल बुल्लंत गजत धुर ।।
क्रोध जोध जोधा अनन्त पन्ती अनि गज्जिय ।
बाँन नालि हथनालि तुपक तीरह सब सज्जिय ।।

पब्बै पहार मनो सार के भिरि भुजान गजनेस बल।
आये हकारि हंकार करि खुरासान सुलतान दल ॥७३॥

भुजंगप्रयात

खुरासान मुलतान खन्धार मीरं,
बलक सोवलं तेग अच्चूक तीरं ॥७४॥
रुहंगी फिरंगी हलंबी समानी,
ठटी ठट्ट वल्लोच्च ढालं निसानी ॥७५॥
मँजारी-चखी मुक्ख जम्बक्क लारी,
हजारी हजारी इकै जोध भारी ॥७६॥
तिनं पप्परं पीठ हय जीन सालं,
फिरंगी कती पास सुकलात लालं ॥७७॥
तहाँ बाघ बाघं मरूरी रिछोरी,
घनं सार सम्मूह अरु चौंर झोरी ॥७८॥
एराकी अरब्बी पटी तेज ताजी,
तुरक्की महाबान कम्मान बाजी ॥७९॥
ऐसे असिव असवार अग्गेल गोलं,
भिरे जून जेते सुतत्ते अमोलं ॥८०॥
तिनं मद्धि सुलतान साहाब आपं,
इसे रूप सों फौज बरनाय जापं ॥८१॥
तिनं घेरियं राज पृथिराज राजं,
चिहौ ओर घनघोर नीसान बाजं ॥८२॥

कवित्त

बज्जिय घोर निसान रान चहुआन चिहौ दिस।
सकल सूर सामन्त समरि बल जंत्र मंत्र तस ॥
उट्ठि राज पृथिराज बाग लग मनो वीरनट।
कढ़त तेग मनो बेग लगत मनो बीज झट्ट घट ॥

थकि रहे सूर कौतिग गगन रगन मगन भई श्रोन घर।
हर हरषि वीर जग्गे हुलस हुरव रङ्ग नव रत्त वर ॥८३॥

दूहा

हुरव रङ्ग नव रत्त वर, भयौ जुद्ध अति चित्त।
निस वासुर समुझि न परत, न को हार नह जित्त ॥८४॥

कवित्त

न को हार नह जित्त रहेइ न रहहि सूर वर।
धर उप्पर भर परत करत अति जुद्ध महाभर॥
कहौं कमध कहौं मथ्थ कहौं कर चरन अन्त दुरि।
कहौं कंध वहि तेग कहौं सिर जुट्टि फुट्टि उर॥
कहौं दंत मंत हय खुर पुपरि कुम्भ भ्रसुंडह रुंड सब॥
हिन्दवान रान भय भानमुख गहिय तेग चहुआन जब ॥८५॥

भुजंगप्रयात

गही तेग चहुवान हिंदवान रानं,
गजं जूथ परि कोप केहरि समानं ॥८६॥
करे रुण्ड मुण्डं करी कुम्भ फारे,
बरं सूर सामन्त हुकि गर्ज भारे ॥८७॥
करी चीह चिक्कार करि कलप भग्गे,
मदं तज्जियं लाज ऊमङ्ग मग्गे ॥८८॥
दौरे गजं अन्ध चहुआन केरो,
करीयं गिरद्दं चिहौ चक्क फेरो ॥८९॥
गिरद्दं उड़ी भान अन्धार रैन,
गई सूधि सुज्झै नहीं मज्झि नैनं ॥९०॥
सिरं नाय कम्मान पृथिराज राजं,
पकरिये साहि जिमि कुलिङ्ग बाजं ॥९१॥

लै चल्यो सितावी करी फारि फौजं,
परे मीर से पञ्च नहँ खेत चौजं ।।९२।।
रजंपुत्त पच्चास जुज्झे अमोरं,
बजै जीत के नद्द नीसान घोरं ।।९३।।

दूहा

जीति भई पृथिराज की, पकरि साह लै सङ्ग।
दिल्ली दिसि मारगि लगौ, उतरि घाट गिर गङ्ग।।९४।।
वर गोरी पद्मावती, गहि गोरी सुरतान।
निकट नगर दिल्ली गये, चवभुजा चहुआन ।।९५।।

कवित्त

बोलि विप्र सोधे लगन्न सुभ घरी परट्ठिय।
हर बाँसह मंडप बनाय करि भाँवरि गंठिय ।।
ब्रह्म वेद उच्चरहिं होम चौरी जु प्रत्ति वर।
पद्मावति दुलहिन दुल्लह पृथिराज राज नर ।।
डण्ड्यो साह सहाबदी अट्ठ सहस हय वर सुवर।
दै दान मान पट भेस को चढ़े राज दुग्गा हुजर ।।९६।।

दूहा

चढ़े राज दुग्गह नृपति, सुमत राज पृथिराज।
अति अनन्द आनन्द मै, हिन्दवान सिरताज ।।९७।।

महोबा-खंड

आल्हा और पृथ्वीराज के युद्ध में पृथ्वीराज के मूछित होने पर गिद्धनी का उसकी आँख निकालने लगना और युद्ध भूमि में घायल गिरे हुए सञ्जम राय का उसे अपना माँस देकर राजा को बचाना।

कवित्त

लोह लागि चहुँवान परे मुरछा ह्वै धरतिय।
उड़ गीधनि बैठि कै चुञ्च वाहैति विरत्तिय ।।

देख्यो सञ्जमराय नृपति दृग दाढ़ति पंछिन।
अपने तन कौ मांस काटि भखु दियो ततच्छिन।।
अपनै सुनयन देख्यो नृपति अन्त समैं भ्रम पल्लियव।
आये विवान बैकुंठ के देह सहत धरि चल्लियव।।

दूहा

गीधनि कौ पल भखु दियौ, नृप कै नैन बचाय।
देह हँसत बैकुंठ को, पहुँच्यो सञ्जमराय।।

फुटकर कबित्त और अन्य दोहे

सरस काव्य रचना रचौं, खलजन सुनि न हसन्त।
जैसे सिंधर देखि मग, स्वान सुभाव भुसन्त।।१।।
तौ पनि सुजन निमित्त गुन, रचिये तन मन फूल।
जू का भय जिय जानि कै, क्यों डारिये दुकूल।।२।।
पूरन सकल बिलास रस, सरस पुत्र फलदान
अन्त होइ सहगामिनी, नेह नारि को मान।।३।।
जसहीनो नागौ गिनहु, ढंक्यो जग जसवान।
लंपट हारै लोह छन, त्रिय जीतै बिन बान।।४।।
समदरसी ते निकट है, भुगति मुगति भरपूर।
विषम दरस वा नरन तें, सदा सरबदा दूरि।।५।।
पर योषित परसै नही, ते जीते जग बीच।
परतिय तक्कत रैन दिन, ते हारे जग नीच।।६।।

कुंजर उप्पर सिंघ, सिंघ उप्पर दोय पब्बय।
पव्वय उप्पर भृङ्ग भृङ्ग उप्पर ससि सुभ्भय।।
ससि उप्पर इक कीर कीर उप्पर मृग दिट्ठौ।
मृग उप्पर कोदंड संघ कंद्रप्प बयट्ठौ।।
अहि मयूर महि उप्परह हीर सरस हेमन जरचो।
सुर भुवन छंडि कवि चंद कहि तिहि घोषै राजन परचो।।

अमीर खुसरो

अमीर खुसरो का जन्म सन् १२५५ में एटा ज़िले के पटियाली गाँव में हुआ। इनके पिता का नाम अमीर सैफुद्दीन था। वह बलख़ हज़ारा से भाग-कर भारत आये थे, और अपने गुणों से सुलतान शम्सुद्दीन अल्तमश के दरबार में सरदार बन गये थे।

अमीर खुसरो का असली नाम अबुल हसन था; पर वह लुप्तप्राय हो गया और अमीर खुसरो ही प्रसिद्ध हो गया।

चार वर्ष की अवस्था में वे अपने पिता के साथ दिल्ली गये। सन् १२६४ ई० में इनके पिता किसी लड़ाई में मारे गये, तब इनका पालन-पोषण इनके नाना ने किया और इन्हें शिक्षा दिलाकर कई विद्याओं में निष्णात करा दिया। खुसरो ने खुद लिखा है कि बारह ही वर्ष की अवस्था में वे शेर और रुबाई कहने लग गये थे, जिसे सुनकर बड़े-बड़े विद्वान् आश्चर्य करते थे और इससे उनका उत्साह बढ़ता था। उन्होंने प्राचीन और नवीन कवियों के काव्यों को स्वयं पढ़कर और मनन करके कविता का ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

खुसरो ने पहले-पहल सुलतान गयासुद्दीन बलबन के बड़े पुत्र मुहम्मद सुलतान के यहाँ नौकरी की। लेकिन वह सन् १२८४ ई० में मुग़लों के साथ लड़कर मारा गया। उस लड़ाई में खुसरो भी उसके साथ थे। वे भी पकड़े गये और हिरात और बलख़ ले जाये गये, जहाँ से दो वर्ष बाद उन्हें छुट-कारा मिला। घर लौटने के बाद वे गयासुद्दीन के दरबार में गये, और मुहम्मद सुलतान की मृत्यु पर शोक-सूचक शेर पढ़े। उन्हें सुनकर गयासुद्दीन इतना रोया कि उसे बुखार आ गया और वह तीसरे दिन मर गया।

इसके बाद खुसरो दो वर्ष तक अवध के सूबेदार के पास रहे। सन् १२८८ ई० में वे दिल्ली लौट गये और कैकुबाद के दरबारी हुये। सन् १२९० ई० में कैकुबाद मारा गया और उसके साथ ही गुलाम-वंश का भी अंत हो गया। उसके बाद जलालुद्दीन खिलजी ने दिल्ली के तख़्त पर अधिकार

कर लिया। उसने खुसरो का आदर किया और अमीर की उपाधि दी और अच्छा वेतन भी नियत कर दिया।

सन् १२९६ में जलालुद्दीन को मारकर अलाउद्दीन तख़्त पर बैठा। उसने खुसरो को खुसरुए-शुअरा की उपाधि दी और अच्छा वेतन मुकर्रर कर दिया। सन् १३१७ ई० में कुतुबुद्दीन मुबारकशाह सुलतान हुआ, उसने खुसरो के कसीदे पर प्रसन्न होकर उन्हे हाथी की तौल के बराबर सोना और रत्न पुरस्कार दिये।

खुसरो के समय मे दिल्ली के तख़्त पर ग्यारह सुलतान बैठे; जिनमें सात के दरबार में ये रहे। इन्होंने अपनी आँखों गुलाम, खिलजी और तुग़लक वंश का उत्थान और पतन देखा।

इनके एक पुत्री और तीन पुत्र थे। खुसरो बड़े प्रसन्न-चित्त, मिलनसार और उदार थे। प्रतिष्ठा पाकर भी ये गरीबों को हेय दृष्टि से नही देखते थे। इनमे साम्प्रदायिक कट्टरपन भी नही था।

सन् १३२४ ई० में इनकी मृत्यु हुई और ये अपने गुरु निज़ामुद्दीन औलिया की क़ब्र के पास ही गाड़े गये। जिस पर सन् १६०५ में ताहिरबेग नाम के एक अमीर ने मक़बरा बनवा दिया। जहाँ हरसाल इनकी मृत्यु के दिन मेला लगा करता है।

खुसरो फारसी के प्रतिभाशाली कवि थे। फारसी के सिवा अरबी, तुर्की और हिन्दी के भी अच्छे विद्वान् थे और संस्कृत का भी ज्ञान रखते थे। ये बड़े साहित्य-रसिक और काव्य-शास्त्र के मर्मज्ञ थे। इन्होंने ९९ पुस्तकों की रचना की थी; किन्तु उनमें से अब बीस-बाईस ही ग्रंथ मिलते है।

खुसरो ने जिस हिन्दी में कविता लिखी है, उसे सामने रखकर खुसरो से पीछे जाइये तो चंद बरदायी के समय का गद्य हिन्दी के आदि-काल का गद्य नहीं कहा जा सकता। और तब हिन्दी की एक स्वतंत्र-धारा अलग माननी पड़ेगी, जिसके लिखित प्रमाण अभी तक प्राप्त नहीं हो सके है।

खुसरो की रचना से जान पड़ता है कि ये बड़े हँसमुख और रसीले स्वभाव के आदमी थे और सच्चे अर्थों में कवि थे। ये गवैये भी उच्च कोटि

के थे। इन्होंने बहुत से गीत भी बनाये थे, जिन्हें स्त्रियाँ झूले के दिनों में गाती हैं। वीणा से सितार का ईजाद इन्हीं ने किया था।

एक दिन खुसरो राह में चले जा रहे थे। चलते-चलते प्यास लगी। एक पनघट पर पहुँचे। चार पनिहारनें पानी भर रही थीं। खुसरो ने पानी मांगा। उनमें से एक इन्हें पहचानती थी। उसने अपनी सहेलियों से कहा कि देख, खुसरो यही है, जिसके गीत गाये जाते हैं। उनमें से एक ने खुसरो से कहा, मुझे खीर की कविता सुनाओ, तब पानी पिलाऊंगी। दूसरी ने चरखे पर, तीसरी ने ढोल पर और चौथी ने कुत्ते पर कविता सुननी चाही। खुसरो ने चारों का उत्तर एक ही छन्द में दिया--

खीर पकाई जतन से, चरखा दिया जला।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा।
ला, पानी पिला॥

खुसरो के महल्ले में चिम्मो नाम की एक बुढ़िया की दुकान थी। वह लोगों को भाँग और चरस पिलाया करती थी। भँगेड़ियों और और गँजेड़ियों का एक ख़ासा जमघट उसके यहाँ लगा रहता था। खुसरो उसी रास्ते से दरबार आते-जाते और टहलने निकला करते थे। बुढ़िया कभी-कभी हुक्का भरकर सामने खड़ी हो जाती। खुसरो यह खयाल कर के कि बुढ़िया का दिल दुखाना ठीक नहीं, कभी-कभी एक दो फूँक ले लेते थे। एक दिन उसने कहा--आप कवि हैं, हजारों गीत, ग़ज़ल, राग, रागिनी लिखा करते हैं, कोई चीज़ इस दासी के नाम से भी बना दीजिये। आपकी कृपा से इस दासी का भी नाम रह जायगा। इसके बाद वह तक़ाज़े पर तक़ाज़े करने लगी। एक दिन खुसरो ने उसके नाम से यह कह ही डाला--

औरों की चौपहरी बाजे चिम्मो की अठपहरी।
बाहर का कोई आये नाही आयें सारे शहरी॥
साफ़ सूफ़ कर आगे राखे जिसमें नाहीं तूसल।
औरों के जहाँ सींक समावे चिम्मो के तहाँ मूसल॥

अर्थात्, बादशाहों के यहां तो सिर्फ़ चार पहर ही नौबत बजती है, इसके यहाँ आठों पहर कूड़ी-सोंटा बजता रहता है। बाहर का कोई आता नहीं, शहर के ही सफ़ेदपोश आते हैं। भङ्ग साफ़-सूफ़ कर के आगे रखती है, जिसमें ज़रा भी कूड़ा-करकट नहीं होता। ऐसी गाढ़ी भाँग छनती है कि औरों की भाँग में जहाँ सीक खड़ी हो सकती है, वहाँ चिम्मो की भाँग में मूसल खड़ा हो जाता है।

कहना नहीं होगा कि ख़ुसरो की बदौलत चिम्मो का भी नाम रह गया।

इन्होंने 'खालिकबारी' नाम से पद्य में एक कोष भी बनाया था, जिसमें अरबी, फारसी और तुर्की शब्दों के पर्यायवाची हिन्दी-शब्द पद्य में दिये गये हैं। जिससे मुसलमानों को भी हिन्दी की बोलचाल के शब्दों का ज्ञान हो जाता है। उसमें उस समय की भाषा के दो नाम हिन्दी और हिन्दवी इन्होंने दिये हैं, जिनसे जान पड़ता है कि हिन्दी से उनका मतलब सुसभ्य समाज की भाषा से था और हिन्दवी से हिन्दुओं की ग्रामीण बोलचाल से।

खालिकबारी के कुछ पद्य ये हैं:—

बया बिरादर आवरे भाई। बनशी पादर बैठरी माई॥
मुश्क काफूर अस्त कस्तूरी कपूर। हिन्दवी- अनंद शादी ओ सुरूर।
मूश चूहा गुर्बः बिल्ली मार नाग। सोज़नो रिश्ता बाहिंदी सुई ताग॥

इनकी पहेलियाँ इतनी लोकप्रिय हुईं कि बहुतों ने उनमें अपनी पहेलियाँ मिला दीं, और अब उनका छाँटना मुश्किल है।

यहाँ ख़ुसरो की कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं:—

बूझ पहेलियाँ

श्याम बरन और दाँत अनेक, लचकत जैसी नारी।
दोनों हाथ से ख़ुसरो खींचे, और कहे तू आ री॥

आरी

पौन चलत वह देह बढ़ावे। जल पीवत वह जीव गँवावे।।
है वह प्यारी सुन्दर नार। नार नहीं पर है वह नार।।

आग

फ़ारसी बोली आई ना। तुर्की ढूँढ़ी पाई ना।।
हिन्दी बोली आरसी आए। मुँह देखे जो उसे बताए।।

आरसी

वाला था जब सब को भाया। बढ़ा हुआ कछु काम न आया।।
खुसरो कह दिया उसका नाँव। अर्थ करो या छोड़ो गाँव।।

दिया

नारी से तू नर भई, औ श्याम बरन भइ सोय।
गली गली कूकत फिरे कोइलो कोइ लो लोय।।

कोयला

सावन भादों बहुत चलत है माघ पूस में थोरी।
अमीर खुसरो यों कहे तू बूझ पहेली मोरी।।

मोरी

एक नार तरवर से उतरी सर पर वाके पाँव।
ऐसी नार कुनार को मैं ना देखन जाँव।।

मैना

खड़ा भी लोटा पड़ा भी लोटा। है बैठा औ कहे है लोटा।
खुसरो कहें सनझ का टोटा।

लोटा

हाड़ की देही उज्जल रङ्ग। लिपटा रहे नारि के सङ्ग।।
चोरी की ना खून किया। वाका सिर क्यों काट लिया।।

नाखून

बीसों का सिर काट लिया। ना मारा ना खून किया।।

नाखन

एक नार तरवर से उतरी माँ सों जनम न पायो।
बाप को नाँव जो वासो पूछ्यो आधो नाँव बतायो।।
आधो नाँव बतायो खुसरो कौन देस की बोली।
वाको नाँव जो पूछ्यो मैंने अपने नाँव न बोली।।

निबोली

झिलमिल का कुँआ रतन की क्यारी।
बताओ तो बताओ नहीं तो दूँगी गारी।।

दर्पण

आना जाना उसका भाए। जिस घर जाये लकड़ी खाए।।

आरी

आवे तो अँधेरी लावे। जावे तो सब सुख ले जावे।
क्या जानूँ वह कैसा है। जैसा देखो वैसा है।।

आँख

एक थाल मोती से भरा। सबके सिर पर औंधा धरा।
चारोंओर वह थाली फिरे। मोती उससे एक न गिरे।।

आकाश

हाथ में लीजे। देखा कीजै।

दर्पण

एक राजा की अनोखी रानी। नीचे से वह पीवे पानी।।

दिया की बत्ती

एक नार ने अचरज किया। साँप मार पिंजरे में दिया।।
जों जो साँप ताल को खाए। सूखै ताल साँप मर जाए।।

दिया की बत्ती

एक अचम्भा देखो चल। सूखी लकड़ी लागे फल।।
जो कोई इस फल को खावे। पेड़ छोड़ कहिं और न जावे।।

बर्छी

उज्जल बरन अधीन तन, एक चित्त दो ध्यान।
देखत में तो साधु है, पर निपट पाप की खान॥

बगुला

एक तरुवर का फल है तर। पहले नारी पीछे नर॥
वा फल की यह देखो चाल। बाहर खाल और भीतर बाल॥

भुट्टा

एक नार वह ओषध खाय। जिस पर थूके वह मर जाय।
उसका पी जब छाती लाय। अंधा नहिं काना हो जाय॥

बंदूक

आगे आगे बहिना आई पीछे पीछे भइया।
दाँत निकाले बाबा आए बुरका ओढ़े मइया॥

भुट्टा

श्याम बरन पीताम्बर काँधे, मुरली धर नहि होय।
बिन मुरली वह नाद करत है, बिरला बूझै कोय॥

भौंरा

अचरज बँगला एक बनाया। ऊपर नीव तले घर छाया॥
बाँस न बल्ली बन्धन घने। कह खुसरो घर कैसे बने॥

बए का घोंसला

एक नार करतार बनाई। सुहा जोड़ा पहिन के आई॥
हाथ लगाए वह शर्माय। या नारी को चतुर बताय॥

बीर बहूटी

एक नारि के है दो बालक, दोनों एकहि रंग।
एक फिरे एक ठाढ़ा रहे, फिर भी दोनों संग॥

चक्की

धूपों से वह पैदा होवे छाँव देख मुरझाये।
एरी सखी मैं तुझ से पूछूँ हवा लगे मर जाये॥

पसीना

खेत में उपजे सब कोई खाय। घर मे होवे घर खा जाय।।

फूट

एक नार कूएं में रहे। वाका नीर खेत मे बहे।।
जो कोई वाके नीर को चाखे। फिर जीवन की आस न राखे।।

तलवार

डाला था सब को मन भाया। टाँग उठा कर खेल बनाया।।
कमर पकड़ के दिया ढकेल। जब होवे वह पूरा खेल।।

भूला

एक पुरुख बहुतै गुन भरा। लेटा जागै सोवे खड़ा।।
उलटा होकर डाले बेल। यह देखो करतार का खेल।।

चरखा

नई की ढीली पुरानी की तङ्ग।
बूझो तो बूझो नही चलो मेरे सङ्ग।।

चिलम

मिला रहे तो नर रहे, अलग होय तो नार।
सोने का सा रङ्ग है, कोई चतुरा करे विचार।।

चना

दानाई से दाँत उस पै लगाता नही कोई।
सब उसको भुनाते है पै खाता नही कोई।।

रुपया

जब काटो तब ही बढ़े, बिन काटे कुम्हिलाय।
ऐसी अद्भुत नार का, अन्त न पायो जाय।।

दीपशिखा

एक पुरुख का अचरज लेखा। मोती फलती आँखों देखा।।
जहाँ से उपजे वहीं समाय। जो फल गिरे सो जल जल जाय।।

फुआरा

बात की बात ठठोली की ठठोली।
मरद की गाँठ औरत ने खोली।।

ताला

आदि कटे से सब को पारे। मध्य कटे से सब को मारे।।
अन्त कटे से सब को मीठा। खसरू बाका आँखों दीठा।।

काजल

जल कर उपजे में जल रहे। आँखो देखा खुसरू कहे।।

काजल

चार अंगुल का पेड़ सवा मन का पत्ता।
फल लगे अलग अलग पक जाय इकट्ठा।।

चाक

पानी में निस दिन रहे, जाके हाड़ न माँस।
काम करे तरवार का, फिर पानी में वास।।

कुम्हार का डोरा

एक कहानी मैं कहूँ, तू सुन ले मेरे पूत।
बिना परों वह उड़ गया, बाँध गले मे सूत।।

गुड्डी

सर पर जाली पेट मे खाली। पसली देख एक एक निराली।।

मोढ़ा

मुकरियाँ

बरस बरस वह देस में आवे। मुँह से मुँह लगाय रस प्यावे।।
वा खातिर मैं खरचे दाम। ऐ सखी साजन? ना सखि आम।।
कस के छाती पकड़े रहे। मुँह से बोले बात न कहे।।
ऐसा है कामिन का रँगिया। ऐ सखी साजन? न सखि अँगिया।
पड़ी थी मैं अचानक चढ़ आयो। जब उतरयो तो पसीनो आयो।।
सहम गई नहिं सकी पुकार। ऐ सखी साजन? ना सखि बुखार।।

रात समय वह मेरे आवे। भोर भए वह घर उठ जावे।।
यह अचरज है सब से न्यारा। ऐ सखी साजन ? ना सखि तारा।।
मद भर जोर हमें दिखलावे। मुफत मेरे छाती चढ़ आवे।।
छूट गया सब पूजा जप। ऐ सखी साजन ? ना सखि तप।।
नंगे पाँव फिरन नहि देत। पाँव से मिट्टी लगन नहिं देत।।
पाँव का चूमा लेत निपूता। ऐ सखी साजन ? ना सखि जूता।।
न्हाय धोय सेज मेरी आयो। ले चूमा मुँह मुँहहि लगायो।।
इतनी बात पै थुक्कम थुक्का। ऐ सखी साजन ? ना सखि हुक्का।।
सारी रैन मोरे संग जागा। भोर भए तब बिछुड़न लागा।।
वाके बिछड़त फाटे हिया। ऐ सखी साजन ? ना सखि दिया।।
वह आवे तब शादी होय। उस बिन दूजा और न कोय।।
मीठे लागैं वाके बोल। ऐ सखी साजन? ना सखि ढोल।।
जब माँगूँ तब जल भर लावे। मेरे मन की तपन बुझावे।।
मन का भारी तन का छोटा। ऐ सखी साजन ? ना सखि लोटा।।
जब मोरे मंदिर में आवे। सोते मुझ को आन जगावे।।
पढ़त फिरत वह बिरह के अच्छर। ऐ सखी साजन ? ना सखि मच्छर।।
बेर बेर सोवतहिं जगावै। ना जागूँ तो काटे खावे।।
ब्याकुल हुई मैं हक्की बक्की। ऐ सखी साजन ? ना सखि मक्खी।।

दो सखुना हिन्दी

प्रश्न	उत्तर
रोटी जली क्यों ? घोड़ा अड़ा क्यों ? पान सड़ा क्यों ?	फेरा न था
अनार क्यों न चक्खा ? वज़ीर क्यों न रक्खा ?	दाना न था
गोश्त क्यों न खाया ? डोम क्यों न गाया ?	गला न था
पंडित प्यासा क्यों ? गधा उदासा क्यों ?	लोटा न था
जोगी क्यों भागा ? ढोलकी क्यों न बजी ?	मढ़ी न थी
सितार क्यों न बजा ? औरत क्यों न नहाई ?	परदा न था

प्रश्न	उत्तर
घर क्यों अँधियारा ? फकीर क्यों बिगड़ा ?	दिया न था
ब्राह्मन क्यों न नहाया ? धोबिन क्यों मारी गई ?	धोती न थी

ढकोसले

भादों पक्की पीपली, झड़ झड़ पड़े कपास।
बी मेहतरानी दाल पकाओगी या नंगा ही सो रहूँ ? १॥
कोठी भरी कुल्हाड़ियों, तू हरीरा करके पी।
बहुत उताउल है तो छप्पर से मुँह पोंछ ॥२॥
पीपल पकी पपीलियाँ झड़झड पड़े है बैर।
सर में लगा खटाक से वाह बे तेरी मिठास ॥३॥
भैंस चढ़ी बबूल पर, लप लप गूलर खाय।
दुम उठाकर देखा तो पूरनमासी के तीन दिन ॥४॥
गोरी के नैना ऐसे बड़े, जैसे बैल के सींग ॥५॥

गाने

१

मोरा जोबना नवेलरा भयो है गुलाल।
कैसे घर दीनी बकस मोरी माय॥
चूड़ियाँ फोड़ूं पलँग पर डालूँ
इस चोली को दूँगी मैं आग लगाय॥
सूनी सेज डरावन लागै, बिरहा अगिन मोहे डस डस जाय॥
मोरा जोबना नवेलरा भयो है गुलाल॥

२

अम्मा मेरे बाबा को भेजो री, कि सावन आया।
बेटी तेरा बाबा तो बुड्ढा री ,,
अम्मा मेरे भाई को भेजो री ,,
बेटी तेरा भाई तो बाला री ,

अम्मा मेरे मामूँ को भेजो री कि सावन आया
बेटी तेरा मामूँ तो बाँका री ,,

दोहे

खुसरू रैन सोहाग की , जागी पी के संग।
तन मेरो मन पीउ को , दोऊ भये एक रंग ।।१।।
गोरी सोवे सेज पर , मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने , रैन भई चहुँ देस ।।२।।

हिन्दी और फारसी मिश्रित पद्य

ज़हाले मसकीं मक्कुन तगाकुल दुराय नैना बनाय बतियाँ।
कि ताबे हिज्रां नदारम ऐ जाँ न लेहु काहे लगाय छतियाँ ।।
शबाने हिज्रां दराज़ चूं जुल्फ बरोजे वसलत चूं उम्र कोतह।
सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।
यकायक अज दिल दो चश्मे जादू बसद फरेबम बँबुर्द तसकीं।
किसे पड़ी है जो जा सुनावे पिआरे पी को हमारी बतियाँ।
चुँ शमअ सोजाँ चु जर्रः हैराँ हमेशः गिरियाँ बइश्क आँ मेह।
न नींद नैना न अंग चैना न आप आवें न भेजें पतियाँ ।।
बहक्क रोज़े विसाल दिलवर कि दाद मारा फरेब खुसरो।
सपीत मन की दुराय राखूँ जो जाने पाऊँ पिया की घतियाँ ।।

आँख का नुसखा

लोध फिटकिरी मुर्दासंख। हलदी जीरा एक एक टंक ।।
अफ़यून चनाभर मिर्चें चार। उरद बराबर थोथा डार ।।
पोस्त के पानी पुटली करे। तुरत पीर नैनों की हरे ।।

विद्यापति ठाकुर

महामहोपाध्याय विद्यापति ठाकुर मैथिल ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम गणपति ठाकुर, पितामह का जयदत्त ठाकुर और प्रपितामह का धीरेश्वर ठाकुर था। इनका जन्म मिथिला देश के विसपी ग्राम में हुआ था।

विद्यापति का जन्म किस संवत् में हुआ, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा संकलित विद्यापति की पदावली में राजा शिवसिंह के सिंहासनारोहण-विषयक एक कविता है। उसके ऊपर के दो पद हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं:—

३ ९ २ ४ २ ३ १

"अनल रन्ध्र कर लक्खन नरवय सक समुद्द कर आगनि ससी।
चैत कारि छठि जेठा मिलिओ बार वेहप्पय जाउ लसी॥"

इससे केवल इतना पता चलता है कि लक्ष्मण सेन (लक्खन) द्वारा प्रचारित सन् २९३ (शकाब्द १३२४, विक्रम संवत् १४५९) में राजा शिवसिंह गद्दी पर बैठे। विद्यापति राजा शिवसिंह के दरबार में थे। दरबार में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। राजा ने इनको विसपी ग्राम दान दे दिया था। उसका दानपत्र अभी तक इनके वंशजों के पास है। उस पर सन् २९३ लिखा है। इससे अनुमान होता है कि राजा ने गद्दी पर बैठने की खुशी में विसपी ग्राम विद्यापति को दे दिया था। राज-दरबार में अपनी विद्वत्ता के बल पर इतना सम्मान प्राप्त करने के समय किसी मनुष्य की आयु कम से कम कितनी होनी चाहिये, इसकी कल्पना करके सन् २९३ के उतना समय पहले विद्यापति का जन्म-काल अनुमान कर लेना चाहिये।

विद्यापति की पदावली में बहुत से पद्य ऐसे हैं जिन में राजा शिवसिंह और उनकी रानी लखिमा देवी का नाम आया है। शृंगार-रस का जहाँ कोई मधुर वर्णन आया है, वहाँ विद्यापति ने लिखा है कि इस रस को राजा शिवसिंह और लखिमा देवी ही जानती हैं। रानी लखिमा देवी

के विषय में ऐसा कहने की स्वतन्त्रता जब कवि को प्राप्त थी, तब इससे प्रकट होता है कि विद्यापति को राजा शिवसिंह बहुत मानते थे।

विद्यापति प्रतिभाशाली-कवि और संस्कृत के अच्छे विद्वान् थ। इन्होंने संस्कृत भाषा मे पाँच उत्तम ग्रन्थ बनाये, जिनका मिथिला में बड़ा आदर है। मैथिल भाषा में इनके बनाये बहुत से पद है, जो मिथिला में कामकाज के अवसरों पर गृहस्थों के यहा गाये जाते है, और इनके कुछ पदों का बंगदेश में भी विशेष आदर है। इसीसे कुछ बंगाली महाशय इनको भी बंगाली कवि कहते है; परन्तु ये बंगाली नही थे।

इनकी कविता शृंगार-रस-प्रधान है। सयोग-वियोग के छोटे-छोटे भावों को भी दिखाने में इन्होंने बड़ी पटुता दिखलाई है। हमने इनकी कविता मे से कुछ अच्छे-अच्छे पद चुनकर आगे सग्रह कर दिये है, उसके पढ़ने से पाठकों को सहज ही में यह पता चल जायगा कि इन्होंने भावों के झलकाने मे कितनी सूक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है। इनकी कविता को चैतन्य महाप्रभु बहुत पसंद करते थे। वास्तव में इनकी कविता बड़ी ही श्रुति-मधुर और भाव-विभूषिता है।

इनकी कविता की भाषा हिन्दी है। केवल थोड़े से ऐसे शब्द है जो मिथिला में बोले जाते है। अपनी कविता में स्थान-स्थान पर इन्होंने ठेठ हिन्दी शब्दो का भी अच्छा प्रयोग किया है।

इनकी कविता के कुछ चुने हुए पद हम यहाँ उद्धृत करते है। बहुत से पद चमत्कार-पूर्ण होने पर भी हमने छोड़ दिये, क्योंकि उनके भावों में अश्लीलता अधिक है।

१

नन्दक नन्दन कदम्बेरि तरु तरे धिरे धिरे मुरलि बुलाव।
समय संकेत निकेतन बइसल बेरि बेरि बोलि पठाव॥
सामरी तोरा लागि अनुखने विकल मुरारि।
जमुना क तिर उपवन उदवेगल फिरि फिरि ततहि निहार।
गोरस विके अबइते जाइते जनि जनि पुछ वनमारि॥

तो हे मतिमान सुमति मधुसूदन वचन सुनह किछु मोरा।
भनइ विद्यापति सुन वर जौवति बन्दह नन्दकिसोरा।।

२

कि कहब हे सखि आजुक बात। मानिक पड़ल कुबनिक हात।
कांच कांचन न जानय मूल। गुंजा रतन करइ समतूल।
जे किछु कभु नहिं कला रस जान। नीर खीर दुहुँ करे समान।
तन्हि सो कहाँ पिरित रसाल। बानर कण्ठे कि मोतिय माल।
भनइ विद्यापति इह रस जान। बानर मुँह कि सोभय पान।।

३

सजनी अपद न मोहिं परबोध।
तोड़ि जोड़िअ जहाँ गेठे पए पड़ ताहाँ तेज तम परम विरोध।।
सलिल सनेह सहज थिक सीतल ई जानइ सबे कोइ।
से जदि तपत कए जतने जुड़ाइय तइअओ विरत रस होइ।।
गेल सहज हे कि रिति उपजाइअ कुल ससि नीली रंग।
अनुभवि पुनि अनुभवए अचेतन पड़ए हुतास पतङ्ग।।

४

कालि कहल पिआ ए साँझहि रे जायब मोये मारू देस।
मोये अभागिलि नहिं जानल रे सङ्ग जइतँओ जोगिनि वेस।।
हृदय वड़ दारुन रे, पिया विनु विहरि न जाइ।

५

एक सयन सखि सूतल रे अछल बालँभु निस भोर।
न जानल कति खन तेजि गेल रे विछुरल चकवा जोर।।
सून सेज हिय सालइ रे पियाए विनु घर मोये आजि।
विनति करहु सुसहेलिनि रे मोहि देह अगिहर साजि।।
विद्यापनि कवि गाओल रे आवि मिलत पिय तोर।
लखिमा देइ वर नागर रे राय शिवसिंह नहिं भोर।।

हमर नागर रहल दूर देस। केऊ नहिं कहि सक कुसल संदेस।
ए सखि काहि करब अपतोस। हमर अभागि पिया नहिं दोस।
पिया बिसरल सखि पुरब पिरीति। जखन कपाल वाम सब विपरीति।
मरम क वेदन मरमहि जान। आन क दुख आन नहि जान।
भनई विद्यापति न पुरइ काम। कि करति नागरि जाहि विधि वाम॥

७

लोचन धाए फेधायेल हरि नहिं आयल रे।
शिव शिव जिवओ न जाए आसे अरुझाएल रे॥
मन करि तहँ उड़ि जाइअ जहाँ हरि पाइअ रे।
पेम परसमनि जानि आनि उर लाइअ रे॥
सपनहु संगम पाओल रंग बढ़ाओल रे।
से मोर विहि विघटाओल निन्दओ हेरायल रे॥
भनइ विद्यापति गाओल धनि धइरज कर रे।
अचिरे मिलत तोहिं बालम्भु पुरत मनोरथ रे॥

८

सरसिज बिनु सर सर बिनु सरसिज
की सरसिज बिनु सूरे।
जौवन बिनु तन तनु बिनु जौवन
की जौवन पिय दूरे॥
सखि हे! मोर बड़ दैव विरोधी॥

९

माधव कत तोर करब बड़ाइ।
उपमा तोहर हम ककरा कहब कहितहुँ अधिक लजाइ॥
जो श्रीखण्ड सौरभ अति दुर्लभ तौ पुनि काठ कठोर।
जौं जगदीस निसाकर तौ पुनि एकहि पच्छ इजोर॥
मनि समान अओरो नहि दूसर तनिकहुँ पाथर नामे।
कनक कदलि छोट लज्जित भै रहु की कहु ठामहि ठामे॥

तोहर सरिस एक तोहीं माधव मन होइछ अनुमाने।
सज्जन जन सों नेह कठिन थिक कवि विद्यापति भाने।।

१०

सखि कि पुछसि अनुभव मोय।
सेहो परित अनुराग बखनइत तिले तिले नूतुन होइ।
जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल।
सेहो मधुर बोल स्रवनहि सूनल स्रुति पथे परस न गेल।।
कत मधु जामिन रभसे गमाओल न बुझल कैसन केल।
लाख लाख जुग हिअ हिअ राखल तइओ हिआ जुड़न न गेल।।
कत विदगध जन रस अनुगमन अनुभव काहु न पेख।
विद्यापति कह प्रान जुड़ाइत लाखवे न मिलल एक।।

११

ब्रह्म कमण्डल वास सुवासिनि सागर नागर गृह वाले।
पातक महिष विदारन कारन धृत करवाल वीचि माले।
जय गंगे, जय गंगे! शरणागत भय भंगे!

१२

पिया मोर बालक हम तरुणी,
कौन तप चुकलौंह भैलौंह जननी।
पहिर लेल सखि इक दछिनक चीर,
पिया के देखत मोर दगध सरीर।
पिया लेलि गोद कै चललि बजार,
हटिया के लोग पुछें के लागु तोहार।
नहिं मोर देवर कि नहिं छोट भाइ,
पुरब लिखल छल स्वामी हमार।।

१३

सखि मोर पिया,
अबहुँ न आओल कुलिस हिया।

नखर खोआयलुँ दिवस लिखि लिखि,
नयन अन्धायलुँ पिया पथ पेखि।
आयब हेत कहि मोर पिया गैला,
पूरबक जेत गुन बिसरिल भेला।
भनहि विद्यापति शुन अवराइ,
कानु समझाइते अब चलि जाइ।।

१४

मधुपुर मोहन गेल रे मोरा बिहरति छाति।
गोपी सकल बिसरलनि रे जत छिल अहिबाति।।
सूतिल छलहुँ अपन गृह रे निन्दई गेलउ सपनाइ।
कर सों छुटल परसमनि रे कोन गेल अपनाइ।।
कत कहबो कत सुमिरब रे हम भरिम गराणी।
आन क धन सों धनवन्ति रे कुबजा भेल राणी।।

१५

गोकुल चाँद चकोरल रे चोरी गेल चन्दा।
बिछड़ि चललि दुहु जोड़ी रे जीव इह गेल धन्दा।।
काक भाष निज भाखह रे पहु आओत मोरा।
खीर खाँड़ भोजन देब रे भरि कनक कटोरा।।
भनहिं विद्यापति गाओल रे धैरज धरु नारी।।
गोकुल होयत सुहाओन रे फेरि मिलत मुरारी।।

१६

अँगने आओब जब रसिया, पलटि चलब हम ईषत हँसिया।
रस नागरि रमनी, कत कत जुगुति मनहि अनुमानी।
आवेशे आँचरे पिया धरबे, जाओब हम जतन बहु करब।
कँचुया धरब जब हठिया, करे कर बाँधब कुटिल आध दिठिया।
रभस माँगब पिय जबहीं, मुख मोरि बिहँसि बोलब नहिं नहीं।
सहजहिं सुपुरुख भमरा, मुख कमल मधु पीयब हमरा।
नैखने हरब मोर गेयाने, विद्यापति कह धनि तुव धेयाने।।

१७

सरस बसंत समय भल पाओलि दछिन पवन बहु धीरे।
सपनहु रूप बचन यक भाषिय मुख से दुरि करु चीरे।।
तोहर बदन सम चाँद होअथि नहिं जैयौ जतन बिह देला।
कै बेरि काटि बनावल नव कय तैयो तुलित नहिं भेला।।
लोचन तूअ कमल नहिं भैसक से जग के नहिं जाने।
से फिर जाय लुकैनह जल भय पंकज निज अपमाने।।
भनहि विद्यापति सुन वर जौवित ई सभ लछमि समाने।
राजा शिवसिंह रूपनरायन लखिमा देइ प्रति भाने।।

१८

जइत देखलि पथ नागरि सजनी आगरि सुबुधि सयानि।
कनकलता सम सुन्दरि सजनी विह निरमावल आनि।।
हस्ति गमनि जँगा चलइत सजनी देखइत राजकुमारि।
जिनका यह न सुहागिन सजनी पाय पदारथ चारि।।
नील वसन तन घेरलि सजनी सिरै लेल चिकुर सँभारि।
तापर भमर विषय रस सजनी बैसल पंख पसारि।।
केहरि सम कटि गुन अछि सजनी लोचन अंबुज धारि।
विद्यापति यह गाओल सजनी गुन पाओलि अवधारि।।

कबीर साहब

उत्तर प्रदेश में शायद ही कोई ऐसा हिन्दू हो, जो कबीर साहब को न जानता होगा। कबीर साहब के भजन मंदिरों में और सत्संग के असवरों पर गाये जाते हैं। उनकी साखियाँ प्रायः कहावतों का काम दिया करती हैं। उनका एक सम्प्रदाय भी है, जो उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजपूताना और गुजरात तक फैला हुआ है।

कबीर साहब जिस पंथ के प्रवर्तक थे, उसे कबीर-पंथ कहते हैं। कबीर-पंथियों में निम्न-श्रेणी के लोग अधिकांश पाये जाते हैं। उनमें से कुछ तो साधू हैं, जो गाँवों में कुटी बनाकर रहते हैं, और कुछ गृहस्थ हैं। कबीर-पंथी साधू सिर पर पीले रंग की नोकदार टोपी पहनते हैं।

कबीर साहब कौन थे? कहाँ और किस समय में वे उत्पन्न हुये? उनका असली नाम क्या था? बचपन में वे कौन धर्मावलंबी थे? उनका विवाह हुआ था या नहीं? और वे कितने समय तक जीवित रहे? इन बातों में बड़ा मतभेद है। कबीर साहब की जीवनी लिखनेवाले भिन्न-भिन्न बातें बतलाते हैं। उनमें सत्य का अंश कितना है, इसका पता लगाना सहज नहीं है। 'कबीर-कसौटी' में कबीर साहब का जन्म संवत् १४५५ वि० में और मरण १५७५ वि० में होना लिखा है। कबीर-पंथ के विद्वानों की राय में कबीर साहब का जन्म संवत् १४५५ ही सत्य कहा जाता है।

कबीर साहब ने अपने को जुलाहा कहा है। एक जगह वे कहते हैं--

तू ब्राह्मन मैं कासी क जुलहा बूझहु मोर गियाना।
(आदि ग्रंथ)

जाति जुलाहा मति कौ धीर। हरषि हरषि गुन रमै कबीर।
परिहरि काम राम कह बौरे, सुनि सिख बंधू मोरी।
हरि कौ नाँव अभै पद दाता कहै कबीरा कोरी॥

इससे अब इस बात में तो कुछ संदेह रह ही नहीं जाता कि कबीर साहब जुलाहे थे। परन्तु वे जन्म के जुलाहे नहीं थे, यह कहावतों से मालूम

होता है। और वे अपने को 'कोरी' भी कहते हैं, जो हिन्दू-जुलाहे होते हैं।

कहा जाता है कि संवत् १४५५ की ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा को एक ब्राह्मण की विधवा कन्या के पेट से एक पुत्र पैदा हुआ। लोक-लज्जावश उसने बालक को लहर तालाब (काशी) के किनारे फेंक दिया। संयोग से नीरू जुलाहा अपनी स्त्री नीमा के साथ उसी राह से आ रहा था। उसने उस अनाथ बच्चे को घर लाकर पाला। पीछे वही कबीर नाम से विख्यात हुआ।

कबीर साहब बालकपन ही से बड़े धर्म-परायण थे। जब उनको सुध-बुध हो गई, तब वे तिलक लगाकर राम राम जपा करते थे। एक जुलाहे के घर में रहकर तिलक लगाना और राम राम जपना असंभव-सा प्रतीत होता है। परन्तु पूर्वजन्म और संगति का प्रभाव बड़ा विचित्र होता है, वह असंभव को भी संभव कर देता है।

ऐसी कहावत है कि कबीर साहब स्वामी रामानंद के शिष्य थे। किन्तु उनके शिष्य होने की बात बड़ी विचित्र है। पहले वे शिष्य होने के लिये स्वामी रामानंद के पास गये, तब उन्होंने म्लेच्छ को शिष्य बनाने से इन्कार किया। स्वामी रामानंद शेष रात्रि में गंगा-स्नान के लिये काशी के मणि-र्कणिका घाट पर नित्य जाया करते थे। एक दिन इसी समय कबीर साहब घाट की सीढ़ियों पर जाकर सो रहे। अँधेरे में स्वामीजी का पैर उनके ऊपर पड़ गया, तब वे कुलबुलाये। स्वामीजी ने कहा—'राम राम कह; राम राम कह'। कबीर साहब ने उसी को गुरु-मंत्र मान लिया। उसी दिन से उन्होंने काशी में अपने को स्वामी रामानंद का शिष्य प्रसिद्ध किया। यवन के घर में पले होने पर भी कबीर साहब की प्रवृत्ति हिन्दू-धर्म की तरफ़ अधिक थी।

कबीर साहब अपने जीवन का निर्वाह अपना पैतृक व्यवसाय करके ही करते थे। यह बात वे स्वयं स्वीकार करते हैं—

हम घर सूत तनहिं नित ताना।

कबीर साहब ने विवाह किया था, या नहीं, इस विषय में भी बड़ा मत-भेद है। कबीर-पंथ के विद्वान् कहते है कि लोई नाम की स्त्री उनके

साथ आजन्म रही; परन्तु उन्होंने उससे विवाह नहीं किया। इसी प्रकार कमाल उनका पुत्र और कमाली उनकी पुत्री थी, इस विषय में भी विचित्र बातें सुनी जाती है। 'डूबे बंस कबीर के उपजे पूत कमाल' यह भी एक कहावत-सा प्रसिद्ध हो रहा है। इससे पता चलता है कि कबीर ने विवाह अवश्य किया था और कमाल उनका पुत्र था। कमाल भी कविता करते थे; परन्तु उन्होंने कबीर साहब के सिद्धान्तों के खंडन करने ही में अपनी सारी बुद्धि लगा दी थी। इसी से 'डूबे वंस कबीर के उपजे पूत कमाल' कहा गया है।

कबीर साहब बड़े ही सुशील, सत्यवादी और बड़े सदाचारी थे। एक दिन की बात है कि उनके यहाँ बीस-पच्चीस भूखे फकीर आये। कबीर साहब के पास उस दिन कुछ खाने को नहीं था। इसलिये वे बहुत घबराये। लोई ने कहा—यदि आज्ञा हो तो मैं एक साहूकार के बेटे से कुछ रुपया लाऊँ; वह मुझ पर मोहित है, मैं पहुँची नहीं कि उसने रुपये दिये नहीं। कबीर साहब ने कहा—जाओ, ले आओ। लोई साहूकार के बेटे के पास गई और उसने उससे अपना अभिप्राय कह सुनाया। साहूकार के बेटे ने तत्काल धन दे दिया। जब अन्त में उसने अपना मनोरथ प्रकट किया, तब लोई ने रात में मिलने का वादा किया।

दिन खाने-खिलाने में बीत गया। रात हुई, चारोंओर अँधेरा छा गया। संयोग से उस दिन पानी भी बरस रहा था। लोई ने कबीर साहब से सब वृत्तान्त कह दिया था, इससे कबीर साहब को चैन नहीं था। वे सोचते थे कि जिसकी बात गई, उसका सब कुछ गया। उन्होंने हवा-पानी की कुछ भी परवा न की और कम्बल ओढ़कर, स्त्री को कंधे पर बिठाकर, वे साहूकार के घर पहुँचे। आप तो बाहर खड़े रहे और लोई भीतर चली गई। न तो उसके कपड़े भीगे थे और न उसके पैर में कीचड़ ही लगी थी। यह देखकर साहूकार के लड़के ने इसका कारण पूछा। लोई ने सब सच-सच कह दिया। यह सुनकर साहूकार के बेटे की कुवृत्ति बदल गई। लोई के पैरों पर गिर कर उसने कहा—तुम मेरी बहन हो। इतना कहकर और लोई को कीमती गहनें और कपड़े पहनाकर वह उसके साथ बाहर आया और कबीर

साहब के पैर से लिपट गया और उसी दिन से वह उनका सच्चा सेवक बन गया। इस कथा में अत्युक्ति भी हो सकती है; क्योंकि कबीर साहब पाप की कमाई कभी न स्वीकार करते।

कबीर साहब के जीवन-चरित्र में ऐसी बहुत-सी कथाएँ हैं, जिनसे उनकी सच्चरित्रता प्रकट होती है।

कबीर साहब पढ़े-लिखे न थे। सत्संगी थे। सत्संग ही से उन्होंने हिन्दू-धर्म की गूढ़-गूढ़ बातें जान ली थीं। उनके हृदय में हिन्दू-मुसलमान किसी के लिये द्वेष न था। वे सत्य के बड़े पक्षपाती थे। जहाँ उन्हें सत्य के विरुद्ध कुछ दिखाई पड़ा, वहाँ उन्होंने उसका खंडन करने में ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं दिखलाई।

कबीर साहब ने अपना अधिकार हिन्दू-मुसलमान दोनों पर जमाया। आजकल भी हिन्दू-मुसलमान दोनों प्रकार के कबीर-पंथी मिलते हैं; परन्तु सर्वसाधारण हिन्दू और मुसलमान दोनों का कबीर-मत से बैर हो गया। हिन्दू-धर्म के नेता एक अहिन्दू के मुख से हिन्दू-धर्म का खंडनात्मक प्रचार देखकर भड़के और मुसलमान, कबीर साहब के हिन्दू-आचार्य का शिष्य होने तथा हिन्दू-धर्म का प्रचार करने के कारण कट्टर विरोधी हो गये। इस विरोध के कारण उनको बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ भोगनी पड़ीं। परन्तु उनके हृदय में जो सत्य का दीपक जल रहा था, वह किसी के बुझाये न बुझा।

कबीर साहब ने स्वयं कोई पुस्तक नहीं लिखी। वे साखी और पद बनाकर कहा करते थे और उनके चेले उन्हें कंठस्थ कर लेते थे, पीछे से वह सब संग्रह कर लिया गया। कबीर-पंथ के अधिकांश उत्तम-उत्तम ग्रन्थ उनके शिष्यों ही के रचे हुए कहे जाते हैं।

'खास ग्रन्थ' में निम्नलिखित पुस्तकें हैं—

१—सुखनिधान, २—गोरखनाथ की गोष्ठी, ३—कबीर पाँजी, ४—बलख की रमैनी, ५—आनन्द राम सागर, ६—रामानन्द की गोठी, ७—शब्दावली, ८—मङ्गल, ९—बसन्त, १०—होली, ११—रेखता, १२—झूलना, १३—ककहरा, १४—हिन्दोल, १५—बारहमासा,

१६—चाँचर, १७—चौंतीसी, १८—अलिफ नामा, १९—रमैनी, २०—साखी, २१—बीजक।

कबीर-पंथियों में बीजक का बड़ा आदर है। बीजक दो हैं—एक बड़ा, जो स्वयं कबीर साहब का काशिराज से कहा हुआ बतलाया जाता है; और दूसरे बीजक को कबीर के एक शिष्य भग्गूदास ने संग्रह किया है। दोनों में बहुत कम अंतर है।

कबीर साहब का उलटा प्रसिद्ध है। मेरी समझ में लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये ही कबीर साहब ऐसा कहा करते थे। यों तो अर्थ लगानेवाले कुछ न कुछ उलटा-सीधा अर्थ लगा ही लेते हैं; परन्तु खींच-तानकर लगाये गये ऐसे अर्थों में कुछ विशेषता नहीं रहती। नमूने के लिये एक पद यहाँ दिया जाता है:—

ठगिनी क्या नैना झमकावै, कबिरा तेरे हाथ ना आवै।
कद्दू काटि मृदंग बनाया नीबू काटि मँजीरा।
सात तरोई मंगल गावै नाचै बालम खीरा।।
भैंस पदमिनी आसिक चूहा मेढक ताल लगावै।
चोला पहिरि गदहिया नाचै ऊँट बिसुनपद गावै।।
आम डार चढ़ि कछुआ तोड़ै गिलहरि चुनि चुनि लावै।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, बगुला भोग लगावै।।

बेसिर-पैर की बातें हैं। अमीर खुसरो के ढकोसले ऐसे ही होते थे। तब भी कबीर-पंथी लोग इनका कुछ न कुछ अर्थ बैठा ही लेते हैं।

कबीर साहब मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी थे। यद्यपि ईश्वर का अवतार धारण करना भी वे नहीं मानते थे, परन्तु अपने को उन्होंने स्वयं सत्य-लोक-वासी प्रभु का दूत बतलाया है। वे कहते हैं—

कासी में हम प्रगट भये हैं रामानन्द चेताये।
समरथ का परवाना लाये हंस उबारन आये।।

(शब्दावली)

लोगों का ऐसा कथन है कि मगहर में प्राणत्याग करने से मुक्ति नहीं मिलती। भला, सत्यान्वेषक कबीर इस बात को कैसे मान सकते थे? उन्होंने लोगों का यही भ्रम मिटाने के लिये ही मगहर में जाकर शरीर छोड़ा। इस विषय में उन्होंने कहा है:--

जो कबीर कासी मरे तो रामहिं कौन निहोरा।

× ×

जस कासी तस मगहा ऊसर हृदय राम जो होई।

कबीर साहब की कविता में बड़ी शिक्षा भरी है। एक-एक पद से उनकी सत्य-निष्ठा प्रकट होती है। उन्होंने जो कहा है, प्रायः सभी एक से एक बढ़कर है। हमने उन्हीं में से कुछ साखी और भजन चुन लिये हैं। कबीर साहब की साखी में बड़ा आनन्द मिलता है। बातें तो छोटी-सी हैं, परन्तु उनमें अगाध ज्ञान भरा हुआ है।

एक विना पढ़े-लिखे, साधारण जुलाहे के घर में पालित-पोषित और जीवन भर जुलाहे ही का धंधा करनेवाले घर-बैठे व्यक्ति के मुखसे ज्ञानकी गंभीर बातों का प्रकट होना सचमुच आश्चर्यजनक है। गत एक हज़ार वर्षों के इतिहास में ऐसा व्यक्तित्व अन्य किसी लेखक, कवि या साधक में नहीं पाया जाता। यद्यपि एक प्रतिद्वंदी हुए हैं--तुलसीदास; पर दोनों के व्यक्तित्व में बड़ा अंतर है। तुलसीदास कवि थे; उनकी कविता एक समाज को ऊँचा उठाती है। कबीर कवि नही थे; छंद, अलंकार आदि कुछ नहीं जानते थे, वे आत्मदर्शी भक्त थे। उनकी रचना एक-एक व्यक्ति को, चाहे वह हिन्दू हो, चाहे मुसलमान, धो-धाकर निर्मल करती है और इससे समाज-सुधार को भी सहायता मिलती है।

कबीर का अपने समय की बोलचाल की भाषा पर पूर्ण अधिकार था। भाषा उनके पीछे दौड़ती-सी दिखाई पड़ती है। उन्होंने दोहा छंद को, जिसे 'साखी' कहते हैं, विशेष महिमा प्रदान की है; बाकी तो साधारण जनता में प्रचलित राग-रागिनियों ही का उपयोग उन्होंने किया। इससे उनका कहा हुआ ज्ञान समाज की तराई में बहु-व्यापक हो गया।

यहाँ कबीर साहब की कुछ साखियाँ और पद उद्धृत किये जाते हैं:—

साखी

गुरु गोविंद दोऊ खड़े , काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने , जिन गोविंद दिया बताय ।।१।।
यह तन विष की बेलरी , गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलै , तौ भी सस्ता जान ।।२।।
बहे बहाये जात थे , लोक वेद के साथ ।
पैड़ा में सतगुरु मिले , दीपक दीन्हा हाथ ।।३।।
ऐसा कोई ना मिला , सत्त नाम का मीत।
तन मन सौंपे मिरग ज्यौं , सुनै वधिक का गीत ।।४।।
सतगुरु साँचा सूरमा , नख सिख मारा पूर।
बाहर घाव न दीसई , भीतर चकनाचूर ।।५।।
सुख के माथे सिलि परै , (जो) नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की , पल पल नाम रटाय ।।६।।
लेने को सतनाम है , देने को अनदान ।
तरने को आधीनता , बूड़न को अभिमान ।।७।।
दुख में सुमिरन सब करै , सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै , तो दुख काहे होय ।।८।।
सुमिरन की सुधि यों करै , ज्यों गागर पनिहार।
हालै डोलै सुरति में , कहै कबीर विचार ।।९।।
माला तो कर में फिरै , जीभ फिरै मुख माहिँ।
मनुवाँ तो दहुँ दिस फिरै , यह तो सुमिरन नाहिँ ।।१०।।
गगन मँडल के बीच में , जहाँ सोहंगम डोरि ।
सबद अनाहद होत है , सुरत लगी तहँ मोरि ।।११।।
कबीर गर्ब न कीजिये , काल गहे कर केस ।
ना जानौं कित मारि है , क्या घर क्या परदेस ।।१२।।

हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी , केस जरै ज्यों घास।
सब जग जरता देखि कर , भये कबीर उदास ।।१३।।
झूठे सुख को सुख कहै , मानत हैं मन मोद।
जगत चबेना काल का , कुछ मुख में कुछ गोद ।।१४।।
पानी केरा बुदबुदा , अस मानुप की जात।
देखत ही छिपि जायगी , ज्यों तारा परभात ।।१५।।
रात गँवाई सोय करि , दिवस गँवायो खाय।
हीरा जन्म अमोल था , कौड़ी बदले जाय ।।१६।।
आज कहै कल्ह भजूँगा , काल कहै फिर काल।
आज काल के करत ही , औसर जासी चाल ।।१७।।
आछे दिन पाछे गये , गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै , चिड़ियाँ चुग गई खेत ।।१८।।
काल करै सो आज कर , आज करै सो अब्ब।
पलमें परलै होयगी , बहुरि करैगा कब्ब ।।१९।।
कबीर नौबत आपनी , दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली , बहुरि न देखौ आय ।।२०।।
पाँचो नौबत बाजती , होत छतीसो राग।
सो मन्दिर खाली पड़ा , बैठन लागे काग ।।२१।।
कहा चुनावै मेड़ियाँ , लम्बी भीति उसारि।
घर तो साढ़े तीन हथ , घना तो पौने चारि ।।२२।।
माटी कहै कुम्हार को , तू क्या रूँदै मोहि।
इक दिन ऐसा होइगा , मैं रूँदूँगी तोहि ।।२३।।
यह तन काँचा कुम्भ है , लिये फिरै था साथ।
टपका लागा फूटिया , कछु नहिँ आया हाथ ।।२४।।
आये हैं सो जायँगे , राजा रंक फकीर।
एक सिंघासन चढ़ि चले , एक बँधे जंजीर ।।२५।।

आसपास जोधा खड़े, सभी बजावैं गाल।
मंझ महल से लै चला, ऐसा काल कराल।।२६।।
या दुनिया में आइ के, छाँड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होय सो लेइ ले, उठी जात है पैठ।।२७।।

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुख होय।।२८।।
ऐसी गति संसार की, ज्यों गाड़र की ठाट।
एक पड़ा जेहि गाड़ में, सबै जाहिं तेहि बाट।।२९।।

तू मत जानै बावरे, मेरा है सब कोय।
पिंड प्रान से बँधि रहा, सो अपना नहिं होय।।३०।।
इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहै, तन की नारी जाहिं।।३१।।

नाम भजो तो अब भजो, बहुरि भजोगे कब्ब।
हरियर हरियर रूखड़े, ईंधन हो गये सब्ब।।३२।।
माली आवत देखि कै, कलियाँ करीं पुकार।
फूली फूली चुनि लिये, कालि हमारी बार।।३३।।

हम जानै थे खाहिंगे, बहुत जमीं बहु माल।
ज्यों का त्यों ही रहि गया, पकरि लै गया काल।।३४।।
भक्ति भाव भादों नदी, सबै चलीं घहराय।
सरिता सोई सराहिये, जो जेठ मास ठहराय।।३५।।

जब लगि भक्ति सकाम है, तब लगि निष्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिले, निःकामी निज देव।।३६।।
लागी लागी क्या करे, लागी बुरी बलाय।
लागी सोई जानिये, जो वार पार ह्वै जाय।।३७।।
लागी लगन छुटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा अँगार में, जाहि चकोर चबाय।।३८।।

सोओं तो सुपने मिलै , जागौ तो मन माहिँ।
लोचन राता सुधि हरी , बिछुरत कबहूँ नाहिँ ।।३६।।
ज्यों तिरिया पीहर बसै , सुरति रहै पिय माहिँ।
ऐसे जन जग में रहै , हरि को भूलैं नाहिँ ।।४०।।

कबीर हँसना दूर करु , रोने से करु चीत।
बिन रोये क्यों पाइये , प्रेम पियारा मीत ।।४१।।
हँसौ तो दुख ना बीसरै , रोवौं बल घटि जाय।
मनहीं माहिँ बिसूरना , ज्यौं घुन काठहिँ खाय ।।४२।।

हँस हँस के तन पाइया , जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले पिउ मिलै , तो कौन दुहागिनि होय ।।४३।।
सुखिया सब संसार है , खावै औ सोवै।
दुखिया दास कबीर है , जागै औ रोवै ।।४४।।

माँस गया पिञ्जर रहा , ताकन लागे काग।
साहिब अजहुँ न आइया , मंद हमारे भाग ।।४५।।
हबस करै पिय मिलन की , औ सुख चाहे अंग।
पीर सहे बिनु पदमिनी , पूत न लेत उछंग ।।४६।।

बिरहिनि ओदी लाकड़ी , सपचे और धुँधुआय।
छुटि पड़ौं या बिरह से , जो सिगरो जरि जाय ।।४७।।
पावक रूपी नाम है , सब घट रहा समाय।
चित चकमक चहुटै नही , धूवाँ ह्वै ह्वै जाय ।।४८।।

जो जन बिरही नाम के , तिनकी गति है येह।
देही से उद्यम करै , सुमिरन करैं विदेह ।।४९।।
बिरहा बिरहा मत कहो , बिरहा है सुल्तान।
जा घट बिरह न संचरै , सो घट जान मसान ।।५०।।
आगि लगी आकास में , झरि झरि परै अँगार।
कबिरा जरि कंचन भया , काँच भया संसार ।।५१।।

कबिरा बैद बुलाइया , पकरि के देखी बाहिँ।
बैद न बेदन जानई , करक करेजे माँहि ।।५२।।
जाहु बैद घर आपने , तेरा किया न होय।
जिन या बेदन निर्मई , भला करैगा सोय ।।५३।।

सीस उतारै भुइँ धरै , तापर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहै , ऐसा होय तो आव ।।५४।।
प्रेम न बाड़ी ऊपजै , प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै , सीस देइ लै जाय ।।५५।।

छिनहि चढ़ै छिन ऊतरै , सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै , प्रेम कहावै सोय ।।५६।।
प्रेम प्रेम सब कोइ कहै , प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै , प्रेम कहावै सोय ।।५७।।

जब मैं था तब गुरु नहीं , अब गुरु हैं मैं नाहिँ।
प्रेम गली अति साँकरी , ता में दो न समाहि ।।५८।।
जा घट प्रेम न संचरै , सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की , साँस लेत बिन प्रान ।।५९।।

प्रेम तो ऐसा कीजियो , जैसे चंद चकोर।
घीच टूटि भुइँ माँ गिरै , चितवै वाही ओर ।।६०।।
जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं , तहाँ न बुधि व्यौहार।
प्रेम मगन जब मन भया , कौन गिनै तिथि वार ।।६१।।

प्रेम छिपाये ना छिपै , जा घट परगट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं , नैन देत हैं रोय ।।६२।।
पीया चाहे प्रेम रस , राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड़ग , देखा सुना न कान ।।६३।।
कबिरा प्याला प्रेम का , अन्तर लिया लगाय।
रोम रोम में रमि रहा , और अमल क्या खाय ।।६४।।

नैनों की करि कोठरी , पुतली पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डारि के , पिय को लिया रिझाय ।।६५।।
जल में बसै कमोदिनी , चन्दा बसै अकास।
जो है जाको भावता , सो ताही के पास ।।६६।।

प्रीतम को पतियाँ लिखूँ , जो कहुँ होय बिदेस।
तन में मन में नैन में , ताको कहा सँदेस ।।६७।।
साई इतना दीजिये , जामे कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ , साधु न भूखा जाय ।।६८।।

बिनवत हौं कर जोरि कै , सुनिये कृपा-निधान।
साधु सँगति सुख दीजिये , दया गरीबी दान ।।६९।।
क्या मुख लै बिनती करौं , लाज आवत है मोहिं।
तुम देखत औगुन करौं , कैसे भावौं तोहिं ।।७०।।

अवगुन मेरे बाप जी , बकसु गरीब निवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं , तऊ पिता को लाज ।।७१।।
साहिब तुमहि दयाल हौ , तुम लगि मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को , सूझै और न ठौर ।।७२।।

सिख तो ऐसा चाहिये , गुरु को सब कछु देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये , सिख से कछु नहिं लेय ।।७३।।
सिंहों के लेहँड़े नहीं , हंसों की नहिं पाँत।
लालों की नहिं बोरियाँ , साधु न चलैं जमात ।।७४।।

साधु कहावन कठिन है , ज्यों खाँड़े की धार।
डगमगाय तो गिरि परे , निःचल उतरै पार ।।७५।।
गाँठी दाम न बाँधई , नहिं नारी से नेह।
कह कबीर ता साधु के , हम चरनन की खेह ।।७६।।
साधु हमारी आतमा , हम साधुन के जीव।
साधुन मद्धे यों रहौं , ज्यों पय मद्धे घीव ।।७७।।

जाति न पूछो साधु की , पूछि लीजिये ज्ञान।
मोल करो तरवार का , पड़ा रहन दो म्यान ॥७८॥
कबीर संगत साधु की , हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाधु की , आठो पहर उपाधि ॥७९॥
कबीर संगत साधु की , जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिलै , साकट संग न जाय ॥८०॥
कबीर संगत साधु की , ज्यों गंधी का वास।
जो कछू गंधी दे नहीं , तौ भी वास सुवास ॥८१॥
कबीर संगत साधु की , निष्फल कभी न होय।
होमी चदन वासना , नीम न कहसी कोय ॥८२॥
संगति भई तो क्या भया , हिरदा भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढ़े , तऊ न भीजै कोर ॥८३॥
हरियर जानै रूखड़ा , जौ पानी का नेह।
सूखा काठ न जानही , केतहु बूड़ा मेह ॥८४॥
भारी भरै कुसग की , ज्यों केले ढिग बेर।
वह हाले वह चीरई , साकट संग निबेर ॥८५॥
केला तबहि न चेतिया , जब ढिग जामी बेरि।
अब के चेते क्या भया , काँटों लीन्हा घेरि ॥८६॥
समदृष्टी सतगुरु किया , मेटा भरम विकार।
जहँ देखो तहँ एकही , साहिब का दीदार ॥८७॥
सहज मिलै सो दूध सम , माँगा मिलै सो पानि।
कह कबीर वह रक्त सम , जामें ऐंचातानि ॥८८॥
साधु तो ऐसा चाहिये , जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै , थोथा देइ उड़ाय ॥८९॥
आटा तजि भूसी गहै , चलना देखु निहार।
कबीर सारहि छाँड़ि कै , करै असार अहार ॥९०॥

उततें कोई न वाहुरा , जातें बूझूँ धाय ।
इततें सब ही जात है , भार लदाय लदाय ।।९१।।
उततें सतगुरु आइया , जाकी बुधि है धीर ।
भवसागर के जीव को , खेइ लगावै तीर ।।९२।।

जो आवै तो जाय नहिं , जाय तो आवै नाहिं ।
अकथ कहानी प्रेम की , समझ लेहु मन माहिं ।।९३।।
सूली ऊपर घर करै , विष का करै अहार ।
ताको काल कहा करै , जो आठपहर हुसियार ।।९४।।

नाँव न जानौं गाँव का , बिन जाने कित जाँव ।
चलता चलता जुग भया , पाव कोस पर गाँव ।।९५।।
सतगुरु दीनदयाल हैं , दया करी मोहि आय ।
कोटि जनम का पंथ था , पल में पहुँचा जाय ।।९६।।

चलन चलन सब कोइ कहै , मोहि अँदेसा और ।
साहिब से परिचै नहीं , पहुँचेंगे केहि ठौर ।।९७।।
कबीर का घर सिखर पर , जहाँ सिलहली गैल ।
पाँव न टिकै पिपीलिका , पंडित लादे बैल ।।९८।।

मरिये तो मरि जाइये , छुटि परै जंजार ।
ऐसा मरना को मरै , दिन में सौ सौ बार ।।९९।।
कस्तूरी कुंडल बसै , मृग ढूँढ़ै बन माहिं ।
ऐसे घट में पीव है , दुनिया जानै नाहिं ।।१००।।
द्वार धनी के पड़ि रहै , धका धनी का खाय ।
कबहुँक धनी निवाजई , जो दर छाँड़ि न जाय ।।१०१।।
जरा मीच व्यापै नहीं , मुआ न सुनिये कोय ।
चलु कबीर वा देस को , जहँ बैद साइयाँ होय ।।१०२।।
साध सती औ सूरमा , ज्ञानी औ गज - दंत ।
एते निकसि न बहुरैं , जो जुग जाहिं अनन्त ।।१०३।।

सिर राखे सिर जात है , सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की , कटि उजियारा होय ।।१०४।।
जूझैंगे तब कहेंगे , अब कछु कहा न जाय।
भीर पड़े मन मसखरा , लड़ै किधौं भगि जाय ।।१०५।।

अगिन आंच सहना सुगम , सुगम खड्ग की धार।
नेह निभावन एकरस , महा कठिन ब्यौहार ।।१०६।।
सूरा नाम धराइ के , अब का डरपै बीर।
मूँड़ि रहना मैदान में , सन्मुख सहना तीर ।।१०७।।

पतिवरता को सुख घना , जाके पति है एक।
मन मैली बिभिचारनी , ताके खसम अनेक ।।१०८।।
पतिवरता पति को भजै , और न आन सुहाय।
सिंह बचा जो लंघना , तौ भी घास न खाय ।।१०९।।

नैनों अन्तर आव तूँ , नैन झाँपि तोहिं लेवं।
ना मैं देखौं और को , ना तोहि देखन देवं ।।११०।।
मैं सेवक समरत्थ का , कबहुँ न होय अकाज।
पतिवरता नागी रहै , तो वाही पति की लाज ।।१११।।

सब आये उस एक में , डार पात फल फूल।
अब कहो पाछे क्या रहा , गहि पकड़ा जब मूल ।।११२।।
चन्दन गया बिदेसड़े , सब कोइ कहै पलास।
ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया , त्यों त्यों अधिकी बास ।।११३।।

लाली मेरे लाल की , जित देखों तित लाल।
लाली देखन मैं गई , मैं भी हो गई लाल ।।११४।।
हम बासी वा देस जहँ , बारह मास बिलास।
प्रेम झिरै बिगसै कँवल , तेज पुंज परकास ।।११५।।
कबीर जब हम गावते , तब जाना गुरु नाहिं।
अब गुरु दिल में देखिया , गावन को कछु नाहिं ।।११६।।

ज्ञानी से कहिये कहा , कहत कबीर लजाय।
अंधे आगे नाचते , कला अकारथ जाय ॥११७॥
जो तोको काँटा बुवै , ताहि बोइ तू फूल।
तोहि फूल को फूल है , वाको है तिरसूल ॥११८॥
दुर्बल को न सताइये , जाकी मोटी हाय।
बिना जीवकी स्वास से , लोह भसम होजाय ॥११९॥
ऐसी बानी बोलिये , मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै , आपहु सीतल होय ॥१२०॥
हस्ती चढ़िये ज्ञान की , सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप ससार है , भूसन दे झख मारि ॥१२१॥
आवत गारी एक है , उलटत होय अनेक।
कह कबीर नहिं उलटिये , वही एक की एक ॥१२२॥
कथा कीरतन रात दिन , जाके उद्यम येह।
कह कबीर ता साधु की , हम चरनन की खेह ॥१२३॥
बन्दे तू कर बन्दगी , तौ पावै दीदार।
औसर मानुप जनम का , बहुरि न बारम्बार ॥१२४॥
साधु भया तो क्या भया , बोलै नाहि बिचार।
हतै पराई आतमा , जीभ बाँधि तरवार ॥१२५॥
मधुर बचन है औपधी , कटुक बचन है तीर।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै , सालै सकल सरीर ॥१२६॥
बोलत ही पहिचानिये , साहु चोर को घाट।
अन्तर की करनी सबै , निकसै मुख की बाट ॥१२७॥
जिन ढूँढ़ा तिन पाइया , गहिरे पानी पैठ।
जो बौरा डूबन डरा , रहा किनारे बैठ ॥१२८॥
पढ़ना गुनना चातुरी , यह तो बात सहल।
काम दहन मन बसि करन , गगन चढ़न मुस्कल ॥१२९॥

भय बिनु भाव न ऊपजै , भय बिनु होय न प्रीति।
जब हिरदे से भय गया , मिटी सकल रस रीति ।।१३०।।
कथनी मीठी खाँड सी , करनी बिष की लोय।
कथनी तजि करनी करै , तो बिष से अमृत होय ।।१३१।।
लाया साखि बनाय करि , इत उत अच्छर काट।
कह कबीर कब लग जिये , जूठी पत्तल चाट ।।१३२।।
पानी मिलै न आपको , औरन बकसत छीर।
आपन मन निस्चल नहीं , और बँधावत धीर ।।१३३।।
मारग चलते जो गिरै , ताको नाहीं दोस।
कह कबीर बैठा रहै , ता सिर करड़े कोस ।।१३४।।
रोड़ा होइ रहु बाटका , तजि आपा अभिमान।
लोभ मोह तृस्ना तजै , ताहि मिलै भगवान ।।१३५।।
रोड़ा भया तो क्या भया , पथी को दुख देह।
साधू ऐसा चाहिये , ज्यों पैडे की खेह ।।१३६।।
खेह भई तो क्या भया , उड़ि उड़ि लागै अङ्ग।
साधू ऐसा चाहिये , जैसे नीर निपङ्ग ।।१३७।।
नीर भया तो क्या भया , ताता सीरा जोय।
साधू ऐसा चाहिये , जो हरि ही जैसा होय ।।१३८।।
हरी भया तो क्या भया , जो करता हरता होय।
साधू ऐसा चाहिये , जो हरिभज निरमल होय ।।१३९।।
निरमल भया तो क्या भया , निरमल माँगे ठौर।
मल निरमल तें रहित है , तें साधू कोई और ।।१४०।।
साँच बराबर तप नहीं , झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे साँच है , ताके हिरदे आप ।।१४१।।
साँचे स्राप न लागई , साँचे काल न खाय।
साँचे को साँचा मिलै , साँचे माहिं समाय ।।१४२।।

साँचे कोइ न पतीजई , झूँठे जग पतियाय।
गली गली गोरस फिरे , मदिरा बैठि बिकाय ॥१४३॥
साँचे को साँचा मिलै , आधिक बढ़े सनेह ॥
झूठे को साँचा मिलै , तड़दे टूटै नेह ॥१४४॥

जहाँ दया तहँ धर्म है, , जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है , जहाँ छिमा तहँ आप ॥१४५॥
बुरा जो देखन मैं चला , बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजौं आपना , मुझसा बुरा न कोय ॥१४६॥

दाया दिल में राखिये , तू क्यों निरदइ होय।
साईं के सब जीव हैं , कीड़ी कुंजर सोय ॥१४७॥
कोटि करम लागे रहैं , एक क्रोध की लार।
किया कराया सब गया , जब आया हंकार ॥१४८॥

दसो दिसा से क्रोध की , उठी अपरबल आगि।
सीतल संगति साधु की , तहाँ उबरिये भागि ॥१४९॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, , जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं , फल लागै अति दूर ॥१५०॥

जहँ आपा तहँ आपदा , जहँ संसय तहँ सोग।
कह कबीर कैसे मिटैं , चारो दीरघ रोग ॥१५१॥
कबीर जोगी जगत गुरु , तजै जगत की आस।
जो जग की आसा करे , तो जगत गुरू वह दास ॥१५२॥

तन तुरङ्ग असवार मन , कर्म पियादा साथ।
त्रिस्ना चली सिकार को , बिषै बाज लिये हाथ ॥१५३॥
चलो चलो सब कोई कहै, , पहुँचै बिरला कोय।
एक कनक अरु कामिनी , दुरगम घाटी दोय ॥१५४॥

पर नारी पैनी छुरी , मत कोइ लावो अङ्ग।
रावन के दस सिर गये , पर नारी के सङ्ग ॥१५५॥

सब सोने की सुन्दरी , आवै बास सुबास।
जो जननी ह्वै आपनी , तऊ न बैठे पास ।।१५६।।
छोटी मोटी कामिनी , सब ही विष की बेल।
बैरी मारै दाँव दै , यह मारै हँसि खेल ।।१५७।।
जागत में सोवन करे , सोवन में लौ लाय।
सुरति डोर लागी रहै , तार टूटि नहि जाय ।।१५८।।
निन्दक नियरे राखिये , आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना , निर्मल करै सुभाय ।।१५९।।
तिनका कबहुं न निंदिये , जो पाँयन तर होय।
कबहूँ उड़ि आँखिन परै , पीर घनेरी होय ।।१६०।।
दोष पराये देखि करि , चले हसन्त हसन्त।
अपने याद न आवई , जिनका आदि न अन्त ।।१६१।।
माखी गुड़ में गड़ि रही , पङ्ख रह्यो लपटाय।
हाथ मले औ सिर धुने , लालच बुरी बलाय ।।१६२।।
औगुन कहौं सराब का , ज्ञानवंत सुनि लेय।
मानुष से पसुआ करै , द्रव्य गाँठि को देय ।।१६३।।
रूखा सूखा खाइ कै , ठंढा पानी पीव।
देखि बिरानी चूपड़ी , मत ललचावै जीव ।।१६४।।
कबीर साई मुज्झ को , रूखी रोटी देय।
चुपड़ी माँगत मैं डरूँ , रूखी छीनि न लेय ।।१६५।।
सत्त नाम को छाँड़ि कै , करै और को जाप।
बेस्या केरे पूत ज्यों , कहै कौन को बाप ।।१६६।।
एकै साधे सब सधै , सब साधे सब जाय।
जो गहि सेवै मूल को , फूलै फलै अघाय ।।१६७।।
पाहन पूजे हरि मिलैं , तो मैं पुजौं पहार।
तातें ये चाकी भली , पीस खाय संसार ।।१६८।।

काँकर पाँथर जोरि कै , मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे , क्या बहिरा हुआ खुदाय ।।१६९।।
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ , पंडित हुआ न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम का , पढ़े सो पंडित होय ।।१७०।।
सपने में साईं मिले , सोवत लिया जगाय।
आँखि न खोलूँ डरपता , मति सुपना ह्वै जाय ।।१७१।।
साँझ पड़े दिन बीतबै , चकई दीन्हा रोय।
चल चकवा वा देस को , जहाँ रैन ना होय ।।१७२।।
चात्रिक सुतहि पढ़ावही , आन नीर मति लेय।
मम कुल यही सुभाव है , स्वाति बूँद चित देय ।।१७३।।
जूआ चोरी मुखबिरी , ब्याज घूस पर नार।
जो चाहे दीदार को , एती वस्तु निवार ।।१७४।।
धरती करते एक पग , समुदर करते फाल।
हाथन परबत तौलते , तिनहूँ खाया काल ।।१७५।।
तत्व तिलक माथे दिया , सुरति सरवनी कान।
करनी कंठी कंठ में , परसा पद निर्वान ।।१७६।।
गगन गरजि बरसै अमी , बादल गहिर गंभीर।
चहुँदिसि दमकै दामिनी , भीजै दास कबीर ।।१७७।।
सुन्न मंडल में घर किया , बाजै सबद रसाल।
रोम रोम दीपक भया , प्रकट दीनदयाल ।।१७८।।
सौ जोजन साजन बसै , मानो हृदय मँझार।
कपट सनेही आगने , जानु समुदर पार ।।१७९।।
हरि से तू जनि हेत कर , कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत है , हरिजन हरि ही देत ।।१८०।।
कबिरा माला मनहि की , और सँसारी भेख।
माला फेरे हरि मिलै , गले रँहट के देख ।।१८१।।

साधू गाँठि न बाँधई , उदर समाना लेय।
आगे पाछे हरि खड़े , जब माँगै तब देयँ ॥१८२॥
ऐसा कोई ना मिलै , जासों रहिये लागि।
सब जग जलता देखिया , अपनी अपनी आगि ॥१८३॥

बात बनाई जग ठगा , मन परबोधा नाहि।
कह कबीर मन ले गया , लख चौरासी माँहि ॥१८४॥
कबिरा माला काठ की , बहुत जतन का फेर।
माला साँस उसास की , जामे गाँठ न मेर ॥१८५॥

साईं सें तन पाइयो , बातों मिलै न कोय।
कबीर सौदा राम सों , सिर बिन कबै न होय ॥१८६॥
सती न पीसै पीसना , जो पीसै सो रांड़।
साधू भीख न माँगई , जो माँगै सो साँड ॥१८७॥

आव गई आदर गया , नैनन गया सनेह।
ये तीनों तब ही गये , जबहिं कहा कछु देह ॥१८८॥
कबिरा नवै सो आपको , पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तौलिये , नवै सो भारी होय ॥१८९॥

तरवर तासु बिलम्बिये , बारह मास फलन्त।
सीतल छाया गहन फल , पक्षी केल करन्त ॥१९०॥
कबिरा हम गुरुरस पिया , बाकी रही न छाक।
पाका कलस कुम्हार का , बहुरि न चढ़सी चाक ॥१९१॥

सब रग तांत, रबाब तन , बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुनि सकै , कै साईं कै चित्त ॥१९२॥
गुरु कुम्हार सिष कुंभ है , गढ़ गढ़ काढ़ै खोट।
अन्तर हाथ सहार दै , बाहर बाहै चोट ॥१९३॥
केसन कहा बिगारिया , जो मुंड़ो सौ बार।
मन को क्यों नहिं मुड़िये , जामे बिषै बिकार ॥१९४॥

कबिरा रसरी पाँव में, कह सोवै सुख चैन।
स्वाँस नगारा कूच का, बाजत है दिन रैन ।।१९५।।

शब्दावली

१

मन फूला फूला फिरै जक्त में कैसा नाता रे ।।टेक ।।
माता कहै यह पुत्र हमारा बहिन कहै बिर मेरा।
भाई कहै यह भुजा हमारी नारि कहै नर मेरा ।।
पेट पकरि के माता रोवै बाँह पकरि कै भाई।
लपटि झपटि के तिरिया रोवै हंस अकेला जाई ।।
जब लगि माता जीवै रोवै बहिन रोवै दस मासा।
तेरह दिन तक तिरिया रोवै फेर करै घर बासा ।।
चार गजी चरगजी मंगाया चढ़ा काठ की घोड़ी।
चारों कोने आग लगाया फूँकि दियो जस होरी ।।
हाड़ जरै जस लाह कड़ी को केस जरै जस घासा।
सोना ऐसी काया जरि गई कोई न आयो पासा ।।
घर की तिरिया देखन लागी ढूँढ़ि फिरी चहुँ देसा।
कहै कबीर सुनो भई साधो छाड़ो जग की आसा ।।

२

काया बौरी, चलत प्रान काहे रोई ।।टेक ।।
काया पाय बहुत सुख कीन्हो नित उठि मलि मलि धोई।
सो तन छिया छार ह्वै जैहै नाम न लैहै कोई ।।
कहत प्रान सुनु काया बौरी मोर तोर संग न होई।
तोहिं अस मित्र बहुत हम त्यागा सङ्ग न लीन्हा कोई ।।
ऊसर खेत कै कुसा मँगावै चाँचर चवर कै पानी।
जीवत ब्रह्म को कोई न पूजै मुरदा कै मिहमानी ।।

सब सनकादि आदि ब्रह्मादिक सेस सहस मुख होई।
जो जो जन्म लियो वसुधा में थिर न रह्यो है कोई॥
पाप पुन्य हे जनम सँवाती समुझि देख नर लोई।
कहत कबीरा अन्तर की गति जानत बिरला कोई॥

३

आई गवनवाँ की सारी, उमिरि अबहीं मोरी बारी॥टेक॥
साज समाज पिया लै आये ओर कहरिया चारी।
बम्हना बेदरदी अचरा पकरि कै जोरत गँठिया हमारी।
सखी सब गावत गारी॥
बिधि गति बाम कछु समझ परत ना बैरी भई महतारी।
रोय रोय अँखियाँ मोर पोंछत घरवां से देत निकारी।
भई सब कौ हम भारी॥
गवन कराय पिया लै चाले इत उत बाट निहारी।
छूटत गाँव नगर से नाता छूटै महल अटारी।
करम गति टरै न टारी॥
नदिया किनारे बलम मोर रसिया दीन्ह घूँघट पट टारी।
थरथराय तन काँपन लागे काहू न देख हमारी।
पिया लै आये गोहारी॥
कहे कबीर सुनो भाई साधो यह पद लेहु विचारी।
अब के गौना बहुरि नहिं औना करिले भेंट अँकवारी।
एक बेर मिलि ले प्यारी।

४

हमन हैं इश्क मस्ताना हमनको होसियारी क्या?
रहैं आजाद या जग में हमन दुनिया से यारी क्या?
जो बिछुड़े हैं पियारे से भटकते दर बदर फिरते।
हमारा यार है हम में हमन को इन्तिज़ारी क्या?

खलक सब नाम अपने को बहुत कर सिर पटकता है।
हमन गुरु नाम साँचा है हमन दुनिया से यारी क्या?
न पल बिछुड़े पिया हम से न हम बिछुड़े पियारे से।
उन्हीं से नेह लागी है हमन को बेकरारी क्या?
कबीरा इश्क का माता दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाजुक है हमन सिर बोझ भारी क्या?

५

भज ले सिरजनहार, सुघर तनके पायके ।।टेक।।
काहे रहो अचेत कहाँ यह औसर पैहो।
फिर नहि ऐसी देह बहुरि पाछे पछितैहो।।
लख चौरासी जोनि में, मानुष जन्म अनूप।
ताहि पाय नर चेतत नाही, कहा रंक कहा भूप।।सुघर०।।
गर्भ बास मे रह्यो कह्यो मैं भजिहौं तोही।
निसदिन सुमिरौं नाम कष्ट से काढ़ो मोही।।
चरनन ध्यान लगाइ के, रहो नाम लौ लाय।
तनिक न तोहि बिसारहौं, यह तन रहै कि जाय।।सुघर०।।
इतना कियो करार काढ़ि गुरु बाहर कीना।
भूलि गयो यह बात भयो माया आधीना।।
भूली बातें उन्ह की, आन पड़ी सुधि एत।
बारह बरस बीतिगे या विधि, खेलत फिरत अचेत।।सुघर०।।
विषया बान समान, देह जोबन मदमाती।
चलत निहारत छाँह तमकके बोलत बाती।।
चोवा चन्दन लाइ के, पहिरे बसन रंगाय।
गलियाँ गलियाँ झाँकी मारैं, पर तिरिया लख मुसकाय।सुघर०।
तरुनापन गई बीत बुढ़ापा आनि तुलाने।
काँपन लागे सीस चलत दोउ चरन पिराने।।

नैन नासिका चूवन लागे, मुख ते आवत वास।
कफ पित कंठै घेर लियो है, छुटि गइ घर की आस ।।सुघर०।।

मातु पिता सुत नारि कहाँ काके सङ्ग जाई।
तन धन घर औ काम धाम सब ही छुटि जाई ।।
आखिर काल घसीटि है, पड़िहौ जम के फन्द।
बिन सतगुरु नहिं बाँचिहो, समुझि देखु मतिमन्द ।।सुघर०।।

सुफल होत यह देह नेह सतगुरु से कीजै।
मुक्ती मारग जानि चरन सतगुरु चित दीजै ।।
नाम गहो निरभय रहो, तनिक न व्यापै पीर।
यह लीला है मुक्ति की, गावत दास कबीर ।।सुघर०।।

६

जाग पियारी अब का सोवै। रैन गई दिन काहे को खोवै ।।
जिन जागा तिन मानिक पाया। ते बौरी सब सोय गँवाया ।।
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी। कबहुं न पिय की सेज सँवारी ।।
हौं बौरी बौरापन कीन्ही। भर जोवन पिय अपन न चीन्ही ।।
जाग देख पिय सेज न तेरे। तोहि छाड़ि उठि गये सबेरे ।।
कहै कबीर सोई धन जागै। सबद बान उर अन्तर लागै ।।

७

या जग अंधा, मैं केहि समुझावौं ।।टेक।।
इक दुइ होय उन्हैं समुझावौं, सबहि भुलाना पेट के धन्धा ।।मैं केहि०।।
पानी केरा बुदबुदा अस मानुस की जात, देखत ही छिप जाना ।।मैं केहि०।।
पानी केरा घोड़ा पवन असवरवा, ढरकि परै जस ओस कै बुन्दा ।।मैं केहि०।।
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा, खेवनहारा के पड़िगा फन्दा ।।मैं केहि०।।
घर की वस्तु निकट नहिं आवत, दियना बारि के ढूँढत अंधा ।।मैं केहि०।।
लागी आग सकल बन जरिगा, बिन गुरु ज्ञान भटकिगा बन्दा ।।मैं केहि०।।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, इक दिन जाय लँगोटी झार बन्दा ।।मैं केहि०।।

८

सूर संग्राम को देखि भागै नहीं, देखि भागै सोई सूर नाहीं।
काम औ क्रोध मद लोभ से जूझना, मँडा घमसान तहँ खेत माहीं॥
सील औ साँच संतोष साही भये, नाम समसेर तहँ खूब बाजै।
कहै कब्बीर कोई जूझि है सूरमा, कायराँ भीड़ तहँ तुरत भाजै॥

९

ज्ञान का गेंद कर सुरति का दंड कर, खेल चौगान मैदान माहीं।
जगत का भरमना छोड़दे बालके, आयजा भेख भगवंत पाहीं॥
भेष भगवंत की सेस महिमा करै, सेस के सीस पर चरन डारै।
कामदल जीतिके कँवल दल सोधिके, ब्रह्मको बेधि कै क्रोध मारै॥
पदम आसन करै पवन परिचै करै, गगन के महल पर मदन जारै।
कहत कब्बीर कोई संत जन जौहरी, करम की रेख पर मेख मारै॥

१०

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फाँस लिये कर डोलै बोलै मधुरी बानी॥
केसव के कमला ह्वै बैठी सिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरत ह्वै बैठी तीरथ में भई पानी॥
योगी के योगिन ह्वै बैठी राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी काहू के कौड़ी कानी॥
भक्तन के भक्तिन ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनों हो सन्तो यह सब अकथ कहानी॥

११

पायो सत नाम, गरे कै हरवा।
साँकर खटोलना रहनि हमारी दुवरे दुवरे पाँच कहरवा॥
ताला कुंजी हमैं गुरु दीन्ही जब चाहों तब खोलों किवरवा॥
प्रेम प्रीति की चुनरी हमारी जब चाहौं तब नाचौं सहरवा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो बहुर न ऐबै एही नगरवा॥

१२

कैसे दिन कटिहैं, जतन बताये जइयो ।।
एहि पार गंगा ओहि पार जमुना
बिचवाँ मड़इया हम को छवाये जइयो ।।
अँचरा फारि के कागद बनाइन
अपनी सुरतिया हियरे लिखाये जइयो ।।
कहत कबीर सुनो भाई साधो
बहियाँ पकरि के रहिया बताये जइयो ।।

१३

करम गति टारे नाहिं टरी ।
मुनि बसिष्ठ से पंडित ज्ञानी सोधि के लगन धरी ।
सीता हरन मरन दसरथ को बन में बिपति परी ।
कहँ वह फन्द कहाँ वह पारधि कहँ वह मिरग चरी ।
सीता को हरि लैगो रावन सुवरन लंक जरी ।
नीच हाथ हरिचन्द्र बिकाने बलि पाताल धरी ।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृग गिरगिट जोनि परी ।
पांडव जिनके आपु सारथी तिन पर बिपति परी ।
दुरजोधन को गरब पटायो जदुकुल नास करी ।
राहु केतु औ भानु चन्द्रमा बिधि संजोग परी ।
कहत कबीर सुनो भई साधो होनी होके रही ।

१४

सन्तो राह दोऊ हम दीठा ।
हिन्दू तुरुक हटा नहि मानै , स्वाद सबन को मीठा ।।
हिन्दू बरत एकादसि साधै , दूध सिंघाड़ा सेती ।
अन को त्यागै मन नहि हटकै , पारन करै सगोती ।।
रोजा तुरुक नमाज गुजारै , बिसमिल बाँग पुकारै ।

उनकी भिस्त कहाँ ते होइ है, साँझे मुरगी मारे ।।
हिन्दू दया मेहर को तुरकन, दोनों घट सों त्यागी।
वै हलाल वै झटका मारें, आगि दुनों घर लागी ।।
हिन्दू तुरक की एक राह है, सतगुर इहै बताई।
कहैं कबीर सुनो हो सन्तो, राम न कहेउ खोदाई ।।

(१५)

अरे, इन दोउन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करै बड़ाई गागर छुवन न देई।
बेस्या के पायन तर सोवे यह देखो हिंदुआई ।।
मुसलमान के पीर औलिया मुरगी मुरगा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहै घरहि में करै सगाई ।।
बाहर से एक मुरदा लाये धोय धाय चढ़वाई।
सब सखियाँ मिल जेंवन बैठी घर भर करै बड़ाई ।।
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहै कबीर सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई ।।

(१६)

मन न रँगाये, रँगाये जोगी कपरा।
आसन मारि मँदिर में बैठे, नाम छाड़ि पूजन लागे पथरा ।।
कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौले, दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैले बकरा।
जङ्गल जाय जोगी धुनिया रमौले, काम जराय जोगी बनि गैले हिजरा ।।
मथवा मुड़ाय जोगी कपड़ा रँगौले, गीता बाँचि कै होइ गैले लबरा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जम दरवजवा बाँधल जैबे पकरा ।।

(१७)

रमैया की दुलहिन लूटा बजार।
सुरपुर लूट नागपुर लूटा, तीन लोक मच हाहाकार।
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे, नारद मुनि के परी पिछार ।।

स्त्रिङ्गी की मिङ्गी करि डारी , पारासर कै उदर विदार।
कनफूंका चिरकासी लूटे , लूटे जोगेसर करत विचार।।
हम तो बचिगे साहब दया से , शब्द डोर गहि उतरे पार।
कहत कबीर सुनो भाई साधो , इस ठगनी से रहो हुसियार।।

१८

घूँघट का पट खोल रे , तोहें पीव मिलेंगे।
घट घट में वह साई रमता , कटुक बचन मत बोल रे।
धन जोवन को गरव न कीजै , झूठा पँचरङ्ग चोल रे।
सुन्न महल में दियना वारि ले , आसन सों मत डोल रे।।
जोग जुगुत सों रङ्ग महल में , पिय पायो अनमोल रे।
कहैं कबीर अनन्द भयो है , बाजत अनहद ढोल रे।।

१९

तेरे दया धरम नहिं तन में।
मुखड़ा क्या देखै दरपन में।।
घरवारी तो घर में राजी , फक्कड़ राजी बन में।।
ऐंठी धोती पाग लपेटी , तेल चुवत जुलफन में।
गली गली की सखी रिझाई , दाग लगाया तन में।।
पाथर की एक नाव बनाई , उतरा चाहै छन में।
कहत कबीर सुनो भाई साधो , कायर चढ़ै न रन में।।

२०

मेरा तेरा मनुवाँ , कैसे एक होइ रे।
मैं कहता हौं आँखिन देखी , तू कहता कागद की लेखी।
मैं कहता सुरझावन हारी , तू राख्यो अरुझाइ रे।।
मैं कहता तू जागत रहियो , तू रहता है सोइ रे।
मैं कहता निरमोही रहियो , तू जाता है मोहि रे।।
जुगन जुगन समझावत हारा , कहा न मानत कोइ रे।
तू तो रंगी फिरै विहङ्गी , सब धन डारा खोइ रे।।

सतगुरु धारा निरमल बाहै , वामें काया धोइ रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो , तब ही वैसा होइ रे।।

२१

बीत गये दिन भजन बिना रे।
बाल अवस्था खेल गँवायो , जब जवानि तब मान किया रे।।
लाहे कारन मूल गँवायो , अजहुँ न मिटी तेरे मन की तृषा रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो , पार उतरि गये सन्त जना रे।।

२२

तोहिं मोरी लगन लगाये रे फकिरवा।
सोवत ही मैं अपने मंदिर में , सबदन मारि जगाये रे फकि०।
बूड़त ही भव के सागर में , बहियाँ पकरि समुझाये रे फकि०।
एकै बचन बचन नहिं दूजा , तुम मोसे बन्द छुड़ाये रे फकि०।
कहै कबीर सुनो भाई साधो , सत्त नाम गुन गाये रे फकि०।

२३

अंधियरवा में ठाढ़ि गोरी, का करलू।
जब लगि तेल दिया में बाती , एही उँजिअरवाँ बिछाय धलतू।
मन का पलँग सन्तोष बिछौना , ज्ञान क तकिया लगाय रखतू।
जरि गया तेल बुझाइ गई बाती , सुरत में मुरत समाय रखतू।
कहै कबीर सुनो भाई साधो , जोतिया में जोतिया मिलाय रखतू।

२४

झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहे कै ताना काहे कै भरनी , कौन तार से बीनी चदरिया।
इंगला पिंगला ताना भरनी , सुख मन तार से बीनी चदरिया।।
आठ कँवल दल चरखा डोलै , पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया।
साईं को सियत मास दस लागै , ठोक ठोक कै बीनी चदरिया।।
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी , ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी , ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया।।

२५

रहना नहिं देस बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया , बूंद पड़े घुल जाना है।
यह संसार काँट की बाड़ी , उलझ पुलझ मर जाना है।।
यह संसार झाड़ औ झाँखर , आग लगे बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो , सतगुरु नाम ठिकाना है।।

२६

लोका मति का भोरा रे।
जो कासी तन तजै कबीरा रामै कौन निहोरा रे।।
राम भगति पर जाको हित चित ताको अचरज काहा।
गुरू प्रताप साधु सङ्गति जग जीतै जाति जोलाहा।।
कहत कबीर सुनौ रे सन्तो भरम परौ जनि कोई।
जस कासी तस मगहा ऊसर हृदय राम जो होई।।

२७

जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूट कुंभ जल जलहि समाना यह तथ कहौ गियानी।।
आदे गगना अन्ते गगना मध्ये गगना भाई।
कहै कबीर करम किस लागै झूठी एक उपाई।।

२८

साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन तें उपजी दिन दिन अधिक चली।।
जहँ जहँ डोलों सोइ परिकरमा जो कुछ करौं सो सेवा।
जब सोवों तब करौं दंडवत पूजों और न देवा।।
कहों सो नाम सुनों सो सुमिरन खावँ-पिओं सो पूजा।
गिरह उजाड़ एक सम लेखों भाव न राखों दूजा।।
आँख न मूँदों कान न रूँधों तनिक कष्ट नहिं धारों।
खुले नैन पहिचानों हँसि हँसि सुन्दर रूप निहारों।।

सवद निरंतर से मन लागा मलिन वासना त्यागी।
ऊठत बैठत कबहुँ न छूटै ऐसी तारी लागी।।
कह कबीर यह उनमुनि रहनी सो परगट करि भाई।
दुख सुख से कोइ परे परम पद तेहि पद रहा समाई।।

२९

नैहरे में दाग लगाइ आई चुनरी।
ऊ रँगरेजवा कै मरम न जानै,
नहिं मिलै धोबिया कौन करै उजरी।
तन कै कूँड़ी ज्ञान कै साँदन
साबुन महँग बिचाय या नगरी।।
पहिरि ओढ़ि के चली ससुररिया
गाँवाँ के लोग कहै बड़ी फुहरी।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो
बिन सतगुरु कबहूँ नाही सुधरी।।

३०

समुझ देख मन मीत पियरवा आसिक होकर सोना क्या रे।
रूखा सूखा गम का टुकड़ा चिकना और सलोना क्या रे।
पाया हो तो दे ले प्यारे पाय पाय फिर खोना क्या रे।
जिन आँखिन में नींद घनेरी तकिया और बिछौना क्या रे।
कहै कबीर सुनो भाई साधो सीस दिया तब रोना क्या रे।।

३१

तलफै बिन बालम मोरा जिया।
दिन नहिं चैन रैन नहिं निंदिया तलफ़ तलफ़ के भोर किया।
तन मन मोर रहट अस डोलै सूनी सेज पर जनम छिया।
नैन थकित भये पंथ न सूझै साई बेदरदी सुधि न लिया।
कहै कबीर सुनो भाई साधो हरो पीर दुख जोर किया।

३२

चलो हंस वा लोक में जहं प्रीतम प्यारा।
अगम पंथ सूझै नही नहि दिस ना द्वारा।
रैन दिवस उहवाँ नहीं नहिं रवि ससि तारा।
जहाँ भँवर गुंजार है गति अगम अपारा।
मात पिता सुत बंधु है सब जग्त पसारा।
इहाँ मिले उहाँ बीछुरे हंसा होइ न्यारा।
निरगुन रूप अनूप है तन मन धन वारा।
कहै कबीर गुरु ज्ञान तें रहु सुरति सँभारा।

३३

भाषा तो संतन ने कहिया संसकिर्त रिपिन की बानी है।
ज्यों काली पीली धेनु दुहिया एक ही छीर सो जानी है।।
ज्यों सरिता सागर कूप जथा सिद्धान्त तिहूं में पानी है।
कहैं कबीर एक अर्थ लीजै भिन्न माने सो अज्ञानी है।।

रैदास

रैदासजी कबीर साहब के समय में हुए थे। ये जाति के चमार थे। इनके पिता का नाम रग्घू और माता का नाम घुरबिनिया था। इनका जन्म काशी में हुआ था। ये भी महात्मा रामानन्द के शिष्यों में थे।

रैदासजी और कबीर साहब में बहुत वादविवाद हुआ करता था। रैदासजी जब कुछ सयाने हुए, तब भक्तों और साधुओं की सेवा में अधिक रहने लगे। जो कुछ कमाते, सब साधु-सन्तों को खिला-पिला दिया करते थे। यह बात इनके पिता रग्घू को अच्छी नहीं लगी। उसने स्त्री-सहित रैदासजी को घर से अलग कर दिया। खर्च के लिये वह इनको एक कौड़ी भी नहीं देता था। रैदासजी जूता बनाकर किसी तरह अपना गुज़र करते

और रात दिन भगवत्-चर्चा में मग्न रहा करते थे। ये मांसमदिरा को छूते तक न थे। १२० वर्ष की अवस्था में इन्होंने शरीर छोड़ा।

इनके विषय में बहुत-सी करामात की कहानियाँ लोगों में प्रसिद्ध हैं। गुजरात प्रांत में इनके मत के माननेवाले लाखों आदमी हैं जो अपने को रविदासी कहते हैं। ये मीराबाई के गुरु थे। इनकी कविता से इनकी बड़ी भक्ति प्रकट होती है। रैदासजी के बनाये हुए कुछ दोहे और पद हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

१

हरि सा हीरा छाँड़ि कै, करै आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास॥

२

रैदास रात न सोइये, दिवस न करिये स्वाद।
अहनिसि हरिजी सुमिरिये, छाड़ि सकल प्रतिवाद॥

३

भगती ऐसी सुनहु रे भाई।
आइ भगति तव गई बड़ाई॥
कहा भयो नाचे अरु गाये कहा भयो तप कीन्हे।
कहा भयो जे चरन पखारे जोलौं तत्व न चीन्हे॥
कहा भयो जे मूँड़ मुड़ायो कहा तीर्थ व्रत कीन्हे।
खाली दास भगत अरु सेवक परम तत्व नहिं चीन्हे॥
कह रैदास तेरी भगति दूर है भाग बड़े सों पावे।
तजि अभिमान मेटि आपा पर पिपलिक ह्वै चुनि खावै॥

४

पहले पहरे रैन दे बनजरिया तैं जनम लिया संसार वे।
सेवा चूकी राम की तेरी बालक बुद्धि गँवार वे॥
बालक बुद्धि न चेता तूँ भूला माया जाल वे।
कहा होय पीछे पछिताये जल पहिले न बाँधी पाल वे॥

बीस बरस का भया अयाना थाँभि न सक्का भार वे।
जन रैदास कहै बनजरिया जनम लिया संसार वे।।

५

राम मैं पूजा कहा चढ़ाऊँ। फल अरु मूल अनूप न पाऊँ।।
थनहर दूध जो बछरू जुठारी। पुहुप भँवर जल मीन बिगारी।।
मलयागिर बेधियो भुअंगा। विष अमृत दोउ एकै संगा।।
मन ही पूजा मन ही धूप। मन ही सेऊँ सहज सरूप।।
पूजा अरचा न जानूं तेरी। कह रैदास कवन गति मेरी।।

६

रे चित चेत अचेत काहे बालक को देख रे।
जाति तें कोइ पद नहि पहुँचा राम भगति विशेष रे।।
खट क्रम सहित जे विप्र होते हरि भगति चित दृढ़ नाहिं रे।
हरि की कथा सोहाय नाहीं स्वपच तूलै ताहि रे।।
मित्र शत्रु अजात सबतें अन्तर लावे हेत रे।
लाग वाकी कहाँ जानै तीन लोक पवेत रे।।
अजामिल गज गनिका तारी काटी कुंजर की पास रे।
ऐसे दुरमत मुक्त कीये तो क्यों न तरै रैदास रे।।

७

जो तुम गोपालहि नहिं गैहौ।
तो तुमका सुख में दुख उपजै सुखहि कहाँ ते पैहौ।।
माला नाय सकल जग डहको झूँठो भेख बनैहौ।
झूँठे ते साँचे तब होइ हो हरि की सरन जब ऐहौ।।
कनरस, बतरस और सबै रस झूँठहि मूँड़ डुलैहौ।
जब लगि तेल दिया में बाती देखत ही बुझि जैहौ।।
जो जन राम नाम रँग-राते और रंग न सोहैहौ।
कह रैदास सनो रे कृपानिधि प्रान गये पछितैहौ।।

८

प्रभु जी संगति सरन तिहारी।
जग जीवन राम मुरारी।।
गली गली को जल बहि आयो सुरसरि जाय समायो।
संगत के परताप महातम नाम गंगोदक पायो।।
स्वाँति बूँद बरसै फनि ऊपर सीस विषै होइ जाई।
वही बूँद कै मोती निपजै संगत की अधिकाई।।
तुम चंदन हम रेंड बापुरे निकट तुम्हारे आसा।
संगत के परताप महातम आवै बास सुबासा।।
जाति भी ओछी करम भी ओछा ओछा कसब हमारा।
नीचे से प्रभु ऊँच कियो है कह रैदास चमारा।।

९

अब कैसे छूटै नाम रट लागी।।टेक।।
प्रभु जी तुम चंदन हम पानी। जाकी अँग अँग बास समानी।।
प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा। जैसे चितवत चंद चकोरा।।
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती। जाकी जोति बरै दिन राती।।
प्रभु जी तुम मोती हम धागा। जैसे सोनहि मिलत सोहागा।।
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा। ऐसी भक्ति करै रैदासा।।

धर्मदास

धर्मदासजी जाति के कसौंधन बनिये और बाँधवगढ़ के बड़े भारी महाजन थे। इनके जन्म और मरण के समय का ठीक पता नहीं चलता। परन्तु ये कबीर साहब के समकालीन थे, यह निश्चय है।

धर्मदासजी बालकपन ही से बड़े धर्मात्मा और भगवत्-चर्चा के प्रेमी थे; साधु-संतों और पंडितों का बड़ा आदर सत्कार करते थे। इन्होंने दूर-दूर तक तीर्थों की यात्रायें की थीं।

मथुरा से आते समय कबीर साहब से इनका साक्षात् हुआ। कबीर साहब ने मूर्तिपूजा और तीर्थ-व्रत आदि का खंडन-मंडन कर के इनका चित्त संत-मत की ओर झुकाया। फिर तो ये बराबर कबीर साहब से मिलते रहे और अपना संशय मिटाते रहे। 'अमर सुख निधान' ग्रन्थ में इनकी और कबीर साहब की बातचीत विस्तार के साथ लिखी है। उनमें बहुत-सी ज्ञान की बातें हैं।

कबीर साहब की शरण में आने पर धर्मदासजी ने अपना सारा धन लुटा दिया। सं० १५७५ वि० में जब कबीर साहब परमधाम को सिधारे, तब उनकी गद्दी धर्मदासजी को मिली। उससे पंद्रह या बीस वर्ष के बाद इन्होंने भी इस संसार को छोड़ा।

इनकी शब्दावली में से कुछ पद चुनकर हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

१

मोरे पिया मिले सत ज्ञानी।
ऐसन पिय हम कबहुँ न देखा, देखत सुरत लुभानी।।
आपन रूप जब चीन्हा बिरहिन, तब पिय के मन मानी।।
कर्म जलाय के काजल कीन्हा, पढ़े प्रेम की बानी।।
जब हंसा चले मानसरोवर, मुक्ति भरे जहँ पानी।।
धर्मदास कबीर पिय पाये, मिट गई आवाजानी।।

२

गुरु पैयाँ लागों, नाम लखा दीजो रे।
जनम जनम का सोया मनुवाँ, शब्दन मारि जगा दीजो रे।।
घट अँधियार नैन नहिं सूझै, ज्ञान का दीपक जगा दीजो रे।।
विष की लहर उठत घट अन्तर, अमृत बूँद चुवा दीजो रे।।
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा, खेय के पार लगा दीजो रे।।
धरमदास की अरज गुसाई, अब के खेप निभा दीजो रे।।

३

हम सत्त नाम के बैपारी।
कोई कोई लादे काँसा पीतल, कोई कोई लौंग सुपारी॥
हम तो लाद्यो नाम धनी को, पूरन खेप हमारी॥
पूँजी न टूटै नफ़ा चौगुना, बनिज किया हम भारी॥
हाट जगाती रोक न सकि है, निर्भय गैल हमारी॥
मोति बूँद घटही में उपजै, सुकिरत भरत कोठारी॥
नाम पदारथ लाद चला है, धरम - दास बैपारी॥

४

झरि लागै महलिया, गगन घहराय।
खन गरजै खन बिजुली चमकै, लहर उठै शोभा बरनि न जाय॥
सुन्न महल से अमृत बरसै, प्रेम अनन्द ह्वै साधु नहाय॥
खुली किवरिया मिटी अँधियरिया, धन सतगुरु जिन दिया लखाय॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरन में रहत समाय॥

५

मितऊ मड़ैया सूनी करि गैलो।
अपन वलम परदेस निकरि गैलो हमरा के कछवो न गुन दै गैलो॥
जोगिन ह्वै के मैं बन वन ढूँढ़ीं हमरा के विरह बैराग दै गैलो॥
संग की सखो सब पार उतरि गैली हम धन ठाढ़ी अकेली रहि गैलौ॥
धरमदास यह अरज करतु हैं सार सबद सुमिरन दै गैलो॥

६

मोरा पिया वसै कौने देस हो।
अपने पिया के ढूँढ़न हम निकसी कोई न कहत सनेस हो॥
पिय कारन हम भई हैं बावरी धरचो जोगिनिया कै भेस हो।
ब्रह्मा विष्णु महेस न जानै का जानै सारद सेस हो॥
धनि जो अगम अगोचर पइलन हम सब सहत कलेस हो।
उहाँ के हाल कबीर गुरु जानैं आवत जात हमेस हो॥

गुरु नानक

गुरु नानक का जन्म सं० १५२६ वि०, कार्तिक की पूर्णिमा के दिन, चार घड़ी रात रहे, कल्यानचन्द खत्री की धर्मपत्नी तृप्ता के गर्भ से हुआ। कल्यानचन्द, ज़िला लाहौर, तहसील शरकपुर के तलवंडी नगर के सूबाराय बुलार पठान के कारकुन थे।

गुरु नानक ने बालकपन ही में अपनी विलक्षण बुद्धि के अपूर्व चमत्कार दिखाये। ये बहुत सीधे-सादे और संत स्वभाव के थे। सं० १५४५ वि० में इनका विवाह गुरुदासपुर के मूलचन्द खत्री की कन्या सुलक्षणी से हुआ। संवत् १५५१ और १५५३ वि० में सुलक्षणी देवी के गर्भ से क्रमशः श्रीचन्द्र और लक्ष्मीचंद्र, दो पुत्रों का जन्म हुआ। आगे चलकर श्रीचन्द्र उदासी साधु-सम्प्रदाय के मूल पुरुष हुए। और लक्ष्मीचन्द के वंश के लोग अब तक वर्तमान हैं।

गुरु नानकजी के समय में मुसलमानों के अत्याचार से हिन्दू-जाति त्राहि त्राहि कर रही थी। गुरु नानकजी के सदुपदेश से हिन्दुओं में एक ऐसा सिख समुदाय पैदा हो गया जिसने हिन्दुओं की मान-मर्यादा ही नहीं बचाई; बल्कि मुसलमानी सलतनत की जड़ तक हिला दी। विचार करके देखा जाय तो गुरु नानकजी ने हिन्दुओं का बड़ा भारी उपकार किया।

गुरु नानकजी ने सं० १५५६ से १५७६ तक आगरा, बिहार, बंगाल, आसाम, ब्रह्मा, उड़ीसा, मारवाड़, हैदराबाद, मद्रास, लंका, बद्रीनारायण, नैपाल, सिकम, भूटान, सिंध, मक्का, जद्दा, मदीना, रूम, बग़दाद, ईरान, बिलोचिस्तान, कंधार, क़ाबुल और कश्मीर की यात्रा की। यात्रा में ये जहाँ-जहाँ गये, वहाँ-वहाँ के लोग इन के उपदेश से बहुत लाभ उठाते रहे। काशी में गुरु नानक और कबीर साहब से भी धर्म-चर्चा हुई थी। अंत के १६ वर्ष इन्होंने कर्तारपुर में बिताकर ६९ वर्ष १० महीना और १० दिन की अवस्था में सं० १५९५ में शरीर छोड़ा।

गुरु नानकजी की शिक्षा ने पंजाब में सिखों की एक जाति ही बना

दी। इन के बाद जितने गुरु हुए, सब एक से एक बढ़कर पराक्रमी, प्रतापी और बुद्धिमान हुए। यह गुरु नानकजी ही की शिक्षा का फल था कि गुरु गोविन्दसिंह सरीखे शूरवीर हिन्दुओं में पैदा हुये।

हम गुरु नानकजी की कविता के कुछ नमूने यहाँ उद्धृत करते हैं :—

साखी

कलियाँ थी धड़ले भये, धड़लियों भये सुपैदु।
नानक मता मतो दियाँ, उज्जरि गइया खेड़ु ॥१॥
जागोरे जिन जागना, अब जागनि की बारि।
फेरि कि जागो 'नानका', जब सोवउ पाँव पसारि ॥२॥
मित्राँ दोस्त माल धन, छंडि चले अति भाइ।
संगि न कोई 'नानका', उह हंस अकेला जाइ ॥३॥
जेही पिरीति लगंदिया, तोड़ निवाहू होइ।
'नानक' दरगह जाँदियाँ, ठक्क न सक्कै कोइ ॥४॥
सूरा एकन आँखियन, जो लड़नि दलाँ में जाय।
सूरे सोई 'नानका', जो मंनणु हुकुम रजाय ॥५॥
हिरदे जिनके हरि बसे, से जन कहियहि सूर।
कही न जाई 'नानका', पूरि रह्या भरपूर ॥६॥
मन की दुबिधा ना मिटै, मुक्ति कहाँ ते होइ।
कउड़ी बदले 'नानका', जन्म चल्या नर खोइ ॥७॥
जिन बेले अमृत बसे, जीयाँ होवे दाति।
तिन बेले तू उठि बहु, चिह पहरे पिछली राति ॥८॥

पद

१

इस दम दा मैनूँ कीबे भरोसा, आया आया न आया न आया।
या संसार रैन दा सुपना, कहिं दीखा कहिं नाहिं दिखाया।
सोच विचार करे मत मन में जिसने ढूँढ़ा उसने पाया।
'नानक' भक्तन के पद परसे, निस दिन रामचरन चित लाया ॥

२

सब कछु जीवत को ब्योहार।
मात पिता भाई सुत बांधव, अरु पुन गृह की नार।।
तन तें प्रान होत जब न्यारे टेरत प्रेत पुकार।।
आध घरी कोऊ नहिं राखै घर तें देत निकार।।
मृगतृस्ना ज्यों जग रचना यह देखो हृदै विचार।।
कहु 'नानक' भजे राम नाम नित जातें हो उद्धार।।

३

मन की मनहीं माहिं रही।।
ना हरि भजे न तीरथ सेये चोटी काल गही।।
दारा मीत पूत रथ संपति धन जन पूर्न मही।।
और सकल मिथ्या यह जानो भजना राम सही।।
फिरत फिरत बहुते जुग हार्‌यो मानस देह लही।।
'नानक' कहत मिलन की बिरियाँ सुमिरत कहा नहीं।।

४

जो नर दुख में दुख नहिं मानै।।
सुख सनेह अरु भय नहिं जाके कंचन माटी जानै।।
नहिं निन्दा नहिं अस्तुति जाके लोभ मोह अभिमाना।।
हर्ष शोक तें रहे नियारो नाहिं मान अपमाना।।
आसा मनसा सकल त्यागि कै जगते रहै निरासा।।
काम क्रोध जेहि परसै नाहिन तेहि घट ब्रह्म निवासा।।
गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्ही तिन यह जुगति पिछानी।।
'नानक' लीन भयो गोविन्द सों ज्यों पानी सँग पानी।।

५

रे मन कौन गत होइ है तेरी।
गहि जग में राम नाम, सो तो नहिं सुन्यो कान,
विषयन सों अति लुभान, मति नाहिन फेरी।।

मानस को जनम लीन्ह, सिमरन नहिं निमिष कीन्ह,
दारा सुत भयो दीन, पगहुँ परी बेरी ।।
'नानक' जन कह पुकार, सुपने ज्यों जग पसार,
सिमरत नहिं क्यों मुरार, माया जाकी चेरी ।।

६

सुमरन कर ले मेरे मना ।
तेरि बिति जाति उमर हरिनाम बिना ।
कूप नीर बिन धेनु छीर बिन मंदिर दीप बिना ।
जैसे तरुवर फल बिन हीना तैसे प्राणी हरनाम बिना ।।
देह नैन बिन रैन चंद बिन धरती मेह बिना ।
जैसे पंडित वेद विहीना वैसे प्राणी हरनाम बिना ।।
काम क्रोध मद लोभ निहारो छाँड़ दे अब संतजना ।
कहे 'नानकशा' सुन भगवंता या जगमें नहिं कोइ अपना ।।

७

बिसर गई सब तात पराई । जब से साधू संगत पाई ।।
नहिं कोई बैरी नहिं बेगाना सकल संग हमरी बनि आई ।
जो प्रभु कीन्हों सो भला करि मानो यह सुमती साधू से पाई ।।
सब में रम रहा प्रभु एकाकी पेख पेख 'नानक' बिगसाई ।।

८

साधो मन का मान त्यागो ।
काम क्रोध संगति दुर्जन की ताते अहनिस भागो ।।
सुख दुख दोनों सम करि जानै और मान अपमाना ।
हर्ष शोक ते रहै अतीता तिन जग तत्व पिछाना ।।
अस्तुति निन्दा दोऊ त्यागै खोजै पद निरबाना ।
जन 'नानक' यह खेल कठिन है किनहूँ गुरुमुख जाना ।।

९

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा तोही सङ्ग समाई।।
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है मुकर माँहि जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर घट ही खोजो भाई।।
बाहर भीतर एकै जानो यह गुरु ज्ञान बताई।
जन 'नानक' बिन आपा चीन्हे मिटै न भ्रम की काई।।

सूरदास

सूरदास का जन्म अनुमान से १५४० वि० में और मरण १६४३ वि० में कहा जाता है। उन्होंने ६७ वर्ष की अवस्था में सूरसारावली लिखी। सूरदास का सब से बड़ा ग्रन्थ सूर-सागर है, सूर-सारावली उसीकी सूची है, जो सूर-सागर के बनने के बाद बनी है। सूर-सारावली में लिखा है—

'गुरू प्रसाद होत यह दरसन, सरसठि बरस प्रवीन।
शिव विधान तप करेउ बहुत दिन, तऊ पार नहिं लीन।।'

इससे पता चलता है कि सूर-सारावली लिखते समय सूरदास की अवस्था ६७ वर्ष की थी। उन्होंने साहित्य-लहरी नाम का एक और ग्रन्थ बनाया है। उसमें सूर-सागर के दृष्ट-कूट पदों का संग्रह है। साहित्य-लहरी में सूरदास ने एक स्थान पर लिखा है :—

मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरी नन्द को लिखि सुबल संवत पेख।।
नन्द नन्दन मास छै ते हीन त्रितिया वार।
नन्द नन्दन जनम ते हैं बाण सुख आगार।।
तृतिय ऋक्ष सुकर्म जोग विचारि सूर नवीन।
नन्द नन्दन दास हित साहित्य लहरी कीन।।

अर्थ--मुनि = ७, रस न = रसहीन अर्थात् शून्य, रस = ६, दसन गौरीनन्द = १ = १६०७, नन्द नन्दन मास = वैशाख, छै हीन तृतिया = अक्षय तृतीया, तृतीय ऋक्ष = कृतिका नक्षत्र, सुकर्म योग। (देखो सरदार कवि कृत साहित्य लहरी की टीका)।

इससे प्रकट होता है कि साहित्य लहरी १६०७ वि० में बनी। उस समय सूरदास की अवस्था ६७ वर्ष की थी। क्योंकि साहित्य लहरी और सूर सारावरी के बनने का समय प्रायः एक ही अनुमान किया जाता है। इस अनुमान के आधार पर सूरदास का जन्म (१६०७-६७) १५४० वि० होना सिद्ध होता है।

सूरदास का जन्म दिल्ली के पास 'सीही' गाँव में हुआ था। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। कुछ लोग रुनकता गाँव (रेणुकाक्षेत्र) को, जो आगरा मथुरा की सड़क पर है, इनका जन्मस्थान वतलाते हैं। इनके माता-पिता दरिद्र थे। पिता का नाम रामदास था। सूरदास सात भाई थे। छः भाई मुसलमानों के साथ लड़ाई में मारे गये। सरदार कवि ने सूरदास को चन्द-वरदाई का वंशज वतलाया है।

सूरदास जन्म के अन्धे न थे। ऐसी कहावत है कि एकवार ये एक युवती को देखकर उस पर मुग्ध हो गये। उसकी ओर एकटक ताकते हुए ये बहुत देर तक खड़े रहे। अन्त में वह युवती इनके पास स्वयं आई और कहने लगी--महाराज, क्या आज्ञा है? सूरदास को उस समय अपनी स्थिति पर बड़ी लज्जा आई। इन्होंने यह दोष आँखों का समझकर उस युवती से कहा कि यदि तुम मेरी आज्ञा मानती हो तो सुई से मेरी दोनों आँखें फोड़ दो। युवती ने आज्ञानुसार ऐसा ही किया। तब से सूरदास अन्धे हो गये। भक्तमाल में लिखा है कि सूरदास जन्म के अन्धे थे। परन्तु इस पर सहसा विश्वास नहीं होता; क्योंकि इन्होंने अपनी कविता में रंगों का, ज्योति का और अनेक प्रकार के हाव-भावों का ऐसा यथार्थ वर्णन किया है जो बिना आँख से देखे, केवल सुनकर, नहीं किया जा सकता।

सूरदास की कविता के लालित्य और माधुर्य के विषय में तो कहना

ही क्या है? हिन्दुओं के घर-घर में इनके भजन बड़े प्रेम से गाये और सुने जाते हैं। हिन्दुस्तान के गवैये सूरदास के भजन बड़े चाव से गाते हैं। रामचरित्र लिखने में जैसी तुलसीदासजी ने अपनी प्रतिभा दिखलाई है, उसी तरह श्रीकृष्ण की लीला लिखकर सूरदास ने भी अपनी अनुपम कवित्व-शक्ति का परिचय दिया है। प्रेमी और भक्तजनों के हृदयों में सूरदास के भजनों से आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ता है। कविता-द्वारा बाल-चरित्र का ठीक-ठीक चित्र आँखों के सामने कर देने की इनमें अलौकिक पटुता थी। हिन्दी-साहित्य में सूरदास का गौरव कितना है, यह इस दोहे से भली भाँति समझा जा सकता है--

सूर सूर, तुलसी ससी, उडुगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करहिं प्रकास॥

गाँवों की साधारण जनता ने भी सूर, तुलसी और कबीर की कविता के संबंध में अपनी राय अपनी ही बोली में स्थिर की है। उनकी समालोचना का एक नमूना यह है--

जो कुछ रहा सो अँधरा कहिगा, कठवउ कहेसि अनूठी।
बचा-खुचा सो जोलहा कहिगा, और कहै सो जूठी॥

अँधरा = सूरदास; कठवउ = तुलसीदास; जोलहा = कबीरदास।

गोपियों के विरह-वर्णन में सूरदास ने हृद्गत भावों के झलकाने में कमाल कर दिया है। सूरदास काव्य-शास्त्र के पंडित थे। पुराणों का इन्होंने अच्छा अध्ययन किया था। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने ब्रजभाषा के सुप्रसिद्ध आठ कवियों को मिलाकर अष्टछाप स्थापित किया था। उनके नाम ये हैं--कृष्णदास, परमानन्ददास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी, नन्ददास, गोविन्द स्वामी, सूरदास। इन आठों में सूरदास सर्व-श्रेष्ठ थे। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के उपदेश से इन्होंने श्रीमद्भागवत का उल्था किया, जो सूर-सागर नाम से प्रसिद्ध है। इसमें सवा लक्ष पद थे, किन्तु अब पाँच हज़ार पद ही उपलब्ध हैं। सूर-सागर के सिवा ब्याहलो, नल दमयंती और हरिवंश की टीका भी इन्होंने लिखी थी, जो अप्राप्य हैं।

सूरदास ने ८० वर्ष की अवस्था में गोकुल में शरीर छोड़ा। इनका अंतिम भजन यह है, जो शरीर छोड़ते समय इन्होंने कहा--

खंजन नैन रूप रस माते।
अतिसै चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते।।
चल चल जात निकट स्रवनन के उलट पलट ताटंक फँदाते।
सूरदास अंजन गुन अटके नतरु अबहिं उड़ि जाते।।

प्राचीन मनुष्यों की कहावत है कि ये उद्धव के अवतार थे। इसमें संदेह नहीं कि इनके हृदय में वास्तविक प्रेम था। ये प्रेम की दशा से पूर्ण अभिज्ञ थे और भगवान् श्रीकृष्ण को सखा-भाव से भजनेवाले भक्त थे।

यद्यपि इनके पद-पद में लालित्य भरा है, परन्तु स्थानाभाव से इनके थोड़े से पद सूर-सागर से चुनकर यहाँ लिखे जाते हैं--

१

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पच्छी फिरि जहाज पर आवै।।
कमल नयन को छाँड़ि महातम और देव को ध्यावै।
परम गंग को छाँड़ि पियासो दुर्मति कूप खनावै।।
जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यो क्यों करील फल खावै।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै।।

२

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुवन चलत रेनु तन मंडित मुख में लेप किये।।
चारु कपोल लोल लोचन छबि गोरोचन को तिलक दिये।
लर लटकन मानो मत्त मधुप गन माधुरी मधुर पिये।।
कठुला कंठ बज्र केहरि नख राजत है सखि रुचिर हिये।।
धन्य 'सूर' एकौ पल यह सुख कहा भयो सत कल्प जिये।।

३

जसोदा हरि पालने झुलावैं।
हलरावैं दुलराइ मल्हावैं जोइ सोई कछु गावैं।।
मेरे लाल को आउ निदरिया काहे न आनि सुआवै।
तू काहे न बेगी सी आवे तोकों कान्ह बुलावै।।
कबहूँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहूँ अधर फरकावैं।
सोवत जानि मौन ह्वै ह्वै रही कर कर सैन बतावैं।।
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरे गावैं।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुर्लभ सो नन्द भामिनि पावैं।।

४

लालन हौं वारी तेरे या मुख ऊपर।
माई मेरिहि डीठि न लागे तातें मसि बिंदा दयो भ्रू पर।।
सर्वसु मैं पहिले ही दीनी नान्ही नान्ही दँतुली दू पर।
अब कहा करों निछावरि "सूर" यशोमति अपने लालन ऊपर।।

५

घुटुरुवन चलत श्याम मनि आँगन मात पिता दोउ देखत री।
कबहुँक किलकिलात मुख हेरत, कबहुँ जननि मुख पेखत री।।
लटकन लटकत ललित भाल पर काजर बिंदु भ्रुव ऊपर री।
वह सोभा नैननि भरि देखैं नहि उपमा कहुँ भू पर री।।
कबहुँक दौरि घुटुरुवन लटकत गिरत परत फिरि धावत री।
इतते नंद बुलाइ लेत हैं उतते जननि बुलावति री।।
दंपति होड़ करत आपुस में श्याम खिलौना कीनो री।
'सूरदास' प्रभु ब्रह्म सनातन सुत हित करि दोउ लीनो री।।

६

गहे अँगुरिया तात की नँद चलन सिखावत।
अरबराइ गिरि परत हैं कर टेकि उठावत।।

बार बार बकि श्याम सों कछु बोलि बकावत।
दुहुँधा दोउ दँतुली भई अति मुख छवि पावत।।
कबहुँ कान्ह कर छाँड़ि नंद पग द्वै करि धावत।
कबहुँ धरनि पर बैठिके मन महँ कछु गावत।।
कबहु उलटि चलै धाम को घुटरुन करि धावत।
'सूर' श्याम मुख देखि महर मन हर्ष बढ़ावत।।

७

मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पियत भइ यह अजहूँ है छोटी।।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी।
काढ़त गुहत नहावत ओछत नागिन सी भ्वें लोटी।।
काचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी।
'सूर' श्याम चिरजीवो दोऊ भैया हरि हलधर की जोटी।।

८

खेलन अब मेरी जात बलैया।
जबहिं मोहिं देखत लरिकन सँग तबहिं खिझत बल भैया।।
मोसों कहत तात वसुदेव को देवकी तेरी मैया।
मोल लियो कछु दे वसुदेव को करि करि जतन बटैया।।
अब बाबा कहि कहत नंद को जसुमति को कहै मैया।
ऐसेहि कहि सब मोहिं खिझावत तब उठि चलो खिसैया।।
पाछे नंद सुनत हैं ठाढ़े हँसत हँसत उर लैया।
'सूर' नंद बलिरामहि धिरयो सुनि मन हरख कन्हैया।।

९

कमलनयन कछु करौ बियारी।
लुचुई लपसी सद्य जलेबी सोइ जेंवहु जो लगे पियारी।।
धेवर मालपूआ मुतिलाडू सुघर सजूरी सरस सँवारी।
दूध बरा उत्तम दधि बाटी दाल मसूरी की रुचि न्यारी।।

आछो दूध औटि धौरी को मैं ल्याई रोहिणि महतारी।
'सूरदास' बलराम श्याम दोउ जेवैं हैं जननि जाइ बलिहारी।।

१०

जेंवत श्याम नंद की कनियाँ।
कछुक खात कछु धरनि गिरावत छवि निरखत नंदरनियाँ।।
बरी बरा बेसन बहु भाँतिन व्यंजन विविध अनगनिया।
डारत खात लेत अपने कर रुचि मानत दधिदनियाँ।।
मिश्री दधि माखन मिश्रित करि सुख नावत छविधनियाँ।
आपुन खात नन्द मुख नावत सो सुख कहत न बनियाँ।।
जो रस नन्द जसोदा बिलसत सो नहिं तिहूँ भुवनियाँ।
भोजन करि नन्द अँचवन कियो माँगत 'सूर' जुठनियाँ।।

११

चंद खिलौना लैहौं मैया मेरी, चंद खिलौना लैहौं।।
धौरी को पय पान न करिहौं बेनी सिर न गुथैहौं।
मोतिन माल न धरिहौं उर पर झँगुली कंठ न लैहौं।।
जैहौं लोटि अभी धरनी पर तेरी गोद न ऐहौं।
लाल कहैहौं नँद बबा को तेरो सुत न कहैहौं।।
कान लाय कछु कहत जसोदा दाउहिं नाहिं सुनैहौं।
चंदा हू ते अति सुन्दर तोहिं नवल दुलहिया ब्यैहौं।।
तेरी सौंह मेरी सुन मैया अबहीं ब्याहन जैहौं।
'सूरदास' सब सखा बराती नूतन मंगल गैहौं।।

१२

मैया मेरी, मैं नहि माखन खायो।
भोर भयो गैयन के पाछे मधुबन मोहिं पठायो।
चार पहर बंसीबट भटक्यो साँझ परे घर आयो।।
मैं बालक बहियन को छोटो छीको किस विध पायो।
ग्वाल बाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो।।

तू जननी मन की अति भोरी इनके कहे पतियायो।
जिय तेरे कछु भेद उपज है जनि परायो जायो।।
यह ले अपनी लकुट कमरिया बहुतहि नाच नचायो।
'सूरदास' तब बिहँसि जसोदा ले उर कंठ लगायो।।

१३

मैया मैं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों मेरे पाएँ पिराइ।
जो न पत्याहि पूछ बलदाउहि अपनी सौंह दिवाइ।।
मैं पठवति अपने लरिका कौं आवै मन बहराइ।
'सूर' श्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाइ।।

१४

नैना ढीठ अतिही भए।
लाज लकुट दिखाइ त्रासी नैकहूँ न नए।।
तोरि पलक कपाट घूँघट ओट मेटि गए।
मिले हरि को जाइ आतुर जे हैं गुननि मए।
मुकुट कुण्डल पीतपट कटि ललित भेस ठए।।
जाइ लुब्धे निरखि वह छबि 'सूर' नन्द-जए।।

१५

बिछुरे श्री ब्रजराज आजु तौ नैनन ते परतीति गई।
उठि न गई हरि संग तबहि ते ह्वै न गई सखि श्याममई।।
रूप रसिक लालची कहावत सो करनी कछुवै न भई।
साचे कूर कुटिल ए लोचन ब्यथा मीन छवि मानो छीन लई।
अब काहे जल मोचत सोचत समौ गए ते शूल नए।
'सूरदास' याही ते जड़ भए इन पलकन ही दगा दए।।

१६

जसोदा बार बार यों भाषै।
है कोई ब्रज हितू हमारौ चलत गोपालहि राखै।।

कहा काज मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलायौ।
सुफलक सुत मेरे प्रान हतन को काल रूप ह्वै आयौ।।
बरु ये गोधन हरो कंस सब मोहि बंदी लै मेलौ।
इतने ही सुख कमल नयन मेरी अँखियन आगे खेलौ।।
बासर वदन विलोकत जीवों निसि निज अंक में लाओं।
तेहि बिछुरत जो जीवों कर्मबस तौ हँसि काहि बुलाओं।।
कमल नयन गुन टेरत टेरत अधर वदन कुम्हिलानी।
'सूर' कहाँ लगि प्रकट जनाऊँ दुखित नन्दजू की रानी।।

१७

अरी मोहिं भवन भयानक लागे, माई! श्याम बिना।
देखहिं जाइ काहि लोचन भरि नन्द महरि के अङ्गना।।
लै जु गये अक्रूर ताहि को ब्रज के प्राणधना।
कौन सहाय करे घर अपने मेटे बिघन घना।।
काहि उठाइ गोद करि लीजै करि करि मन मगना।
'सूरदास' मोहन दरसन बिन सुख संपति सपना।।

१८

नैन सलोने श्याम, हरि कब आवहिंगे।
वे जो देखत राते राते फूलन फूले डार।
हरि बिन फूल झरी सी लागत झरिझरि परत अँगार।।
फूल बिनन ना जाऊँ सखीरी हरि बिन कैसे फूल।
सुन री सखी मोहि राम दुहाई लागत फूल त्रिशूल।।
जबतें पनिघट जाऊँ सखी री वा जमुना के तीर।
भरि भरि जमुना उमड़ि चलत है इन नैनन के नीर।।
इन नैनन के नीर सखी री सेज भई घरनाव।
चाहत हौं ताही पै चढ़िके हरि जी के ढिग जावँ।।
लाल पियारे प्रान हमारे रहे अधर पर आय।
'सूरदास' प्रभु कुंज बिहारी मिलत नहीं क्यों धाय।।

१९

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतंग करी दीपक सों आपै प्रान दह्यो॥
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सों सम्पति हाथ गह्यो।
सारङ्ग प्रीति करी जो नाद सों सन्मुख बान सह्यो॥
हम जो प्रीत करी माधव सों चलत न कछू कह्यो।
'सूरदास' प्रभु विन दुख दूनो नैनन नीर बह्यो॥

२०

प्रीति तौ मरनऊ न बिचारै।
प्रीति पतङ्ग जोति पावक ज्यों जरत न आपु सँभारै॥
प्रीति कुरङ्ग नाद स्वर मोहित बधिक निकट ह्वै मारै।
प्रीति परेवा उड़त गगन तें उड़त न आपु सँभारै॥
सावन मास पपीहा बोलत पिउ पिउ करि जो पुकारै।
'सूरदास' प्रभु दरसन कारन ऐसी भाँति बिचारै॥

२१

जिन कोउ काहू के बस होहिं।
ज्यों चकोर दिनकर बस डोलत मोह फिरावत मोहिं॥
हम तौ रीझि लटू भइ लालन महा प्रेम जिय जानि।
बन्ध अबन्ध अमति निशि बासर को सुरझावति आनि॥
उरझे सङ्ग अङ्ग अङ्ग प्रति विरह बेलि की नाई।
मुकुलित कुसुम नैन, निद्रा तजि रूप सुधा सिरराई॥
अति आधीन हीन अति ब्याकुल कहाँ लों करौं बनाइ।
ऐसी प्रीति करी रचना पर 'सूरदास' बलि जाइ॥

२२

कह्यो कान्ह सुन जसुमति मैया।
आवहिंगे दिन चार पाँच में हम हलधर दोउ भैया॥

मुरली वेत विषान देखिये शृङ्गी बेर सबेरो।
लै जिनि जाइ चुराइ राधिका कछुक खिलौना मेरो।।
जादिन तें तुम से बिछुरे हम कोऊ न कहत कन्हैया।
भोरहिं नाहिं कलेऊ कीनो साँझ न पय पीयो ना घैया।।
कहत न बन्यो संदेसो मोपै जननि जितो दुख पायो।
अब हम सों बसुदेव देवकी कहत आपनो जायो।।
कहिये कहा नंद बाबा सों बहुत निठुर मन कीनो।
'सूर' हमहिं पहुँचाइ मधुपुरी बहुरो सोध न लीनो।।

२३

मधुकर हम न होहिं वे बेली।
जिन भजि तजि तुम फिरत और रँग करत कुसुम रस केली।।
वारे ते वर वाजि बढ़ी हैं अरु पोषी पिय पानि।
बिनु पिय परस प्रात उठि फूलत होत सदा हित हानि।।
है बेली बिरहा बृन्दावन उरझी श्याम तमाल।
पुहुप वास रस रसिक हमारे बिलसत मधुप गोपाल।।
योग समीर धीर नहिं डोलत रूप डार ढिग लागि।
'सूर' परागनि तजति हिये ते श्री गुपाल अनुरागि।।

२४

समुझि न परत तुम्हारी ऊधो।
ज्यों त्रिदोष उपजे जक लागत बोलत बचन न सूधो।।
आपुन को उपचार करो कछु तब औरन सिख देहू।
बड़ो रोग उपज्यो है तुमको मौन सवारे लेहू।।
वहाँ भेषज नाना विधि को अरु मधुरिपु से हैं वैद।
हम कातर डरपत अपने सिर यह कलंक है कैद।।
साँची बात छाँड़ि कत झूठी कहो कौन विधि सुनहीं।
'सूरदास' मुकताहल भोगी हंस ज्वारि को चुनहीं।।

२५

अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी।
देख्यो चाहत कमलनैन को निसिदिन रहत उदासी।।
आये ऊधो फिरि गये आँगन डारि गये गर फाँसी।
केसरि को तिलक मोतिन की माला बृन्दावन को वासी।।
काहू के मन की कोऊ न जानत लोगन के मन हाँसी।
'सूरदास' प्रभु तुमरे दरस को जाइ करवट ल्यों कासी।।

२६

ऊधो अँखियाँ अति अनुरागी।
इकटक मग जोवति अरु रोवति भूलेहु पलक न लागी।।
बिन पावस पावस ऋतु आई देखत हैं विदमान।
अब धौं कहा कियो चाहत है छाड़हु निर्गुन ज्ञान।।
सुनि प्रिय सखा श्याम सुन्दर के जानत सकल सुभाइ।
जैसे मिलै सूर के स्वामी तैसी करहु उपाइ।।

२७

हमको हरि की कथा सुनाउ।
ये आपनी ज्ञान गाथा अलि मथुरा ही लै जाउ।।
वे नर नारिन ही समुझहिंगी तेरो बचन बनाउ।
पालागौं ऐसी इन बातनि उनहीं जाइ रिझाउ।।
जो सुचि सखा श्यामसुन्दर को अरु जिय अति सतिभाउ।
तो वारक आतुर इन नैनन वह मुख आनि दिखाउ।।
जो कोउ कोटि करै कैसे हू विधि विद्या व्यवसाउ।
तो सुन 'सूर' मीन को जल बिन नाहिं न और उपाउ।।

२८

ऊधो जी हमहिं न योग सिखैये।
जेहि उपदेस मिलें हरि हमको सो व्रत नेम बतैये।।

मुक्ति रहो घर बैठि आपने निरगुन सुनि दुख पैये।
जेहि सिर केस कुसुम भरि गूंथे तेहि कैसे भसम चढ़ैये।।
जानि जानि सब मगन भये हैं आपुन आपु लखैये।
'सूरदास' प्रभु सुनत न,वा विधि बहुरि कि या ब्रज ऐये।।

२९

ऊधो कहा मति दीन्हीं हमहिं गोपाल।
आवहु री सखी सब मिलि बैठो जो पावें नँदलाल।
घर बाहर तें बोलि लेहु सब जावदेक ब्रजबाल।।
कमलासन बैठहु री माई मूँदहु नैन बिसाल।।
षटपद कही सोऊ करि देखी हाथ कछू नहिं आई।
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन नेकु न देत दिखाई।।
फिरि भई मगन विरह सागर में काहुहि सुधि न रही।
पूरन प्रेम देखि गोपिन को मधुकर मौन गही।।
कछु ध्वनि सुनि स्रवनन चातक की प्रान पलटि तनु आये।
'सूर' सो अब के टेरि पपीहै विरही मृतक जिवाये।।

३०

मुख देखे की कौन मिताई।
जैसे कृपनहिं दीन माँगनो लालच लीने करत बड़ाई।।
प्रीतम सो जो रहे एकरस निसिवासर बढ़ि प्रेम सवाई।
चित महिं और कपट अन्तर्गत ज्यों फल खीर नीर चिकनाई।।
तब वह करी नन्द नन्दन अलि बन बेली रसरास खिलाई।
अब यह कितहीं दूर मधुपुरी ज्यों उड़ि भंवर बेल तजि जाई।।
योग सिखाये क्यों मनमानै क्योंऽब ओसकन प्यास बुझाई।
'सूरदास' उदास भई हम पूरब प्रीति उघरि निज आई।।

३१

ऊधो जोग जोग हम नाही।
अबला सार ज्ञान कहा जानै कैसे ध्यान धराहीं।।

ते ये मूँदन नैन कहत हैं हरि मूरति जा माहीं।
ऐसी कथा कपट की मधुकर हमतें सुनी न जाही।।
स्रवन चीर अरु जटा बँधावहु ये दुख कौन समाहीं।
चंदन तजि अँग भस्म बतावत बिरह अनल अति दाहीं।।
योगी भरमत जेहि लगि भूले सो तो है अपु माहीं।
'सूरदास' ते न्यारे न पल छिन ज्यों घट तें परिछाहीं।।

३२

कहाँ लौ कीजै बहुत बड़ाई।
अति अगाध मन अगम अगोचर मनसो तहाँ न जाई।।
जाके रूप न रेख बरन बपु नाहिन सङ्गत सखा सहाई।
ता निर्गुन सों नेह निरन्तर क्यों निबहै री माई।
जल बिन तरँग भीति बिन लेखन बिन चेतहिं चतुराई।।
या ब्रज में कछु नई चाह है ऊधो आनि सुनाई।।
मन चुभि रह्यो माधुरी मूरति अंग अंग उरझाई।
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन 'सूरदास' सुखदाई।।

३३

कहत कत परदेसी की बात।
मन्दिर अरध अवधि बदि हम सों हरि अहार चलि जात।।
ससि रिपु बरष सूर रिपु जुगवर हर रिपु किये फिरे घात।
मघ पंचक लै गये श्यामघन आइ बनी यह बात।।
नखत वेद ग्रह जोरि अर्द्ध करि को बरजै हम खात।
'सूरदास' प्रभु तुमहिं मिलन को कर मीजत पछितात।।

३४

ऊधो जो तुम हमहिँ बतायो।
सो हम निपट कठिनई करि करि या मन को समुझायो।।
जोग जाँचना जबहिं अगह गहि तब हीं है सो ल्यायो।
भटकि परयो बोहित के खग ज्यों फिरि हरि ही पै आयो।।

अब कै तो सोई उपदेसो जेहि जिय जाय जिआयो।
बारक मिलै 'सूर' के प्रभु तौ करौं आपनो भायो।।

३५

मधुकर इतनी कहियहु जाइ।
अति कृशगात भई ये तुम बिन परम दुखारी गाय।।
जल समूह बरसत दोउ आँखैं हूँकति लीने नाउँ।
जहाँ जहाँ गोदोहन कीनों सूँघति सोई ठाउँ।।
परति पछार खाइ छिनहीं छिन अति आतुर ह्वै दीन।
मानहु 'सूर' काढ़ि डारी है बारि मध्य तें मीन।।

३६

जाके रूप बरन वपु नाही। नैन मूंदि चितवो चित माँहीं।।
हृदय कमल में ज्योति बिराजै। अनहद नाद निरन्तर बाजै।।
इड़ा पिंगला सुखमन नारी। सहज सु तामे बसै मुरारी।।
माता पिता न दारा भाई। जल थल घट घट रह्यो समाई।।
इहि प्रकार भव दुख सरि तरहू। जोग पंथ क्रम क्रम अनुसरहू।।

३७

प्रेम प्रेम तें होय प्रेम, तें पर है जीये।
प्रेम बँधो संसार, प्रेम परमारथ लहिये।।
एकै निश्चय प्रेम को, जीवन मुक्ति रसाल।
साँचो निश्चय प्रेम को, जिहि रे मिलैं गोपाल।।
ऊधो कहि सतभाय, न्याय तुम्हरे मुख साँचे।
योग प्रेमरस कथा, कहो कंचन की काँचे।।
जाके पर है बूझिये, गहिये सोई नेम।
मधुप हमारी सौं कहो, योग भलो या प्रेम।।
सुनि गोपी के बैन, नेम ऊधो के भूले।
गावत गुन गोपाल, फिरत कुंजन में फूले।।

खिन गोपी के पाँ परैं , धन्य सोइ है नेम।
धाइ धाइ द्रुम भेंटहीं , ऊधो छाके प्रेम।।
धनि गोपी धनि ग्वाल , धन्य सुरभी बनचारी।
धनि यह पावन भूमि , जहाँ गोविँद अभिसारी।।
उपदेसन आये हुते , मोहि भयो उपदेस।
ऊधो जदुपति पै चले , धरे गोप को भेस।।
भूले जदुपति नावँ , कह्यो गोपाल गोसाईं।
एक बार ब्रज जाहु , देहु गोपिन दिखराई।।
वृंदावन सुख छाँड़ि कै , कहाँ बसे हो आइ।
गोवर्द्धन प्रभु जानि कै , ऊधो पकरे पाँइ।।
ऊधो ब्रज को नेम , प्रेम बरनो सब आई।
उमग्यो नैनन नीर , बात कछु कह्यो न जाई।।
'सूर' श्याम भूलत भये , रहे नैन जल छाइ।
पोंछि पीतपट सों कह्यो , भलं आये जोग सिखाइ।।

३८

कहाँ लौं कहिये ब्रज की बात।
सुनहु श्याम तुम बिन उन लोगन जैसे दिवस बिहात।।
गोपी गाइ ग्वाल गोसुत वै मलिन बदन कृश गात।
परम दीन जनु सिसिर हिमी हत अंबुज गत बिन पात।।
जाकहुँ आवत देखि दूरतें सब पूछति कुसलात।
चलन न देत प्रेम आतुर उर, कर चरनन लपटात।।
पिक चातक बन बसन न पावहिं बायस बलिहि न खात।
'सूर' श्याम संदेशन के डर पथिक न उहि मग जात।।

३९

सुन ऊधो मोहि नेक न बिसरत वे ब्रजवासी लोग।
तुम उनको कछु भली न कीनी निसिदिन दियो बियोग।।

यदपि वसुदेव देवकी मथुरा सकल राज सुख भोग।
तद्यपि मनहि बसत बंसीवट ब्रज यमुना संयोग।।
वे उत रहत प्रेम अवलम्बन इतते पठयो जोग।
'सूर' उसास छाँड़ि भरि लोचन वढ़यो विरह ज्वर सोग।।

४०

ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाही।
वृंदावन गोकुल तन आवत सघन तृणन की छाँहीं।।
प्रात समय माता जसुमति अस नन्द देखि सुख पावत।
माखन रोटी दह्यो सजायो अति हित साथ खवावत।।
गोपी ग्वाल बाल सँग खेलत सब दिन हँसत खिरात।
'सूरदास' धनि धनि ब्रजवासी जिन सों हँसत ब्रजनाथ।।

४१

हरि बिन कौन दरिद्र हरै।
कहत सुदामा सुनु सुन्दरि जिय मिलन न हरि बिसरै।।
और मित्र ऐसे समया महँ कत पहिचान करै।
विपति परे कुसलात न बूझै बात नहीं उचरै।।
उठिके मिले तंदुल हम दीने मोहन बचन फुरै।
'सूरदास' स्वामी की महिमा टारी विधि न टरै।।

४२

और को जानै रस की रीति।
कहाँ हौं दीन कहाँ त्रिभुवन पति मिले पुरातन प्रीति।।
चतुरानन सन निमिष न चितवत इती राज की नीति।
मोसे बात कही हिरदय की गये जाहि जुग बीति।।
बिनु गोविन्द सकल सुख सुन्दरि भुस पर की सी भीति।
हौं कहा कहों 'सूर' के प्रभु की निगम करत जाकी क्रीत।।

४३

नैना भये अनाथ हमारे।
मदन गोपाल वहाँ तें सजनी सुनियत दूरि सिधारे।।
वे जल सर हम मीन बापुरी कैसे जिवहिं निनारे।
हम चातक चकोर श्यामघन वदन सुधानिधि प्यारे।।
मधुवन बसत आस दरसन की जोइ नैन मग हारे।
'सूरज' श्याम करी पिय ऐसी मृतकहु ते पुनि मारे।।

४४

रुकमिनि मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
वा क्रीड़ा खेलत जमुना तट विमल कदम की छाँही।।
सकल सखा अरु नन्द जसोदा वे चिततें न टराहीं।
सुत हित जानि नन्द प्रतिपालै बिछुरत विपति सहाही।।
यद्यपि सुख निधान द्वारावति तउ मन कहुँ न रहाहीं।
'सूरदास' प्रभु कुंजबिहारी सुमिरि सुमिरि पछिताहीं।।

४५

सखी री श्याम सबै इक सार।
मीठे बचन सुहाये बोलत अन्तर जारनहार।।
भँवर कुरंग काम अरु कोकिल कपटिन की चटसार।
सुनहु सखी री दोष न काहू जो बिधि लिखो लिलार।।
उमड़ी घटा नाखि आवे पावस प्रेम की प्रीति अपार।
'सूरदास' सरिता सर पोखत चातक करत पुकार।।

४६

सखी री श्याम कहा हित जानै।
कोऊ प्रीति करे कैसेहू वे अपनो गुन ठानै।।
देखो या जलधर की करनी बरसत पोषै आनै।
'सूरदास' सरबस जो दीजै कारो कृतहि न मानै।।

४७

मेरे कुँअर कान्ह बिनु सब कुछ वैसहि धरयो रहै।
को उठि प्रात होत ले माखन को कर नेत गहै।।
सूने भवन जसोदा सुत के गुन गुनि सूल सहै।
दिन उठि घेरत ही घर ग्वारिनि उरहन कोउ न कहै।।
जो ब्रज में आनंद हो तो मुनि मनसाहू न गहै।
'सूरदास' स्वामी बिनु गोकुल कौड़ीहू न लहै।।

४८

जनम सिरानो ऐसे ऐसे।

कै घर घर भरमत जदुपति बिन कै सोवत कै वैसे।।
कै कहुँ खानपान रसनादिक कै कहुँ बाद अनैसे।
कै कहुँ रंक कहूँ ईश्वरता नट बाजीगर जैसे।।
चेत्यो नहीं गयो टरि अवसर मीन बिना जल जैसे।
यह गति भई 'सूर' की ऐसी श्याम मिलैं धौं कैसे।।

४९

काया हरि के काम न आई।

भाव भक्ति जहँ हरिजश सुनयो तहाँ जात अलसाई।।
लोभातुर ह्वै काम मनोरथ तहाँ सुनत उठि धाई।
चरन कमल सुन्दर जहँ हरि को क्यों हूँ न जात नवाई।।
जब लगि श्याम अंग नहि परसत आँखें जोग रमाई।
'सूरदास' भगवंत भजन बिनु विषय परम विष खाई।।

५०

सबै दिन गये विषय के हेत।

तीनौ पन ऐसे ही बीते केस भये सिर सेत।।
आँखिन अन्ध स्रवन नहिं सुनियत थाके चरन समेत।
गंगाजल तजि पियत कूपजल हरि तजि पूजत प्रेत।।

राम नाम बिन क्यों छूटोगे चन्द्र गहे ज्यों केत।
'सूरदास' कछु खर्च न लागत राम नाम मुख लेत॥

५१

जो तू राम नाम चित धरतौ।
अबको जनम आगलो तेरो दोऊ जनम सुधरतौ॥
जम को त्रास सबै मिटि जातो भक्त नाम तेरो परतौ।
तंदुल घृत सँवारि श्याम को संत परोसो करतौ॥
होतो नफ़ा साधु की संगति मूल गाँठते टरतौ।
'सूरदास' बैकुंठ पैठ में कोऊ न फेंट पकरतौ॥

५२

दो में एको तो न भई।
ना हरि भजे न गृह सुख पाये वृथा बिहाय गई॥
ठानी हुती और कछु मन में औरै आनि भई।
अविगत गति कछु समुझि परत नहिं जो कछ करत दई॥
सुत सनेह तिय सकल कुटुम मिलि निसिदिन होत खई।
पद नख चद चकोर विमुख मन खात अँगार भई॥
विषय विकार दवानल उपजी मोह बयार बई।
भ्रमत भ्रमत बहुतै दुख पायो अजहुँ न टेव गई॥
कहा होत अबके पछताने होती सिर बितई।
'सूरदास' सेये न कृपानिधि जो सुख सकल मई॥

५३

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगुल कमल पर गज वर क्रीड़त तापर सिंह करत अनुराग॥
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कुंज पराग।
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर ताहू पर अमृत फल लाग॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पालव, ता पर सुक, पिक, मृगमद, काग।
खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर यक मनिधर नाग॥

अंग अंग प्रति और और छवि उपमा ताको करत न त्याग।
'सूरदास' प्रभु पियहु सुधारस मानहु अधरन को बड़ भाग।।

५४

आपको आपनही बिसरो।
जैसे स्वान काँच के मन्दिर भ्रमि भ्रमि भूँकि मरो।।
ज्यों केहरि प्रतिमा के देखत बरबस कूप परो।।
मरकट मूठि छोड़ि नहीं दीनी घर घर द्वार फिरो।
'सूरदास' नलिनी के सुवना कह कौने पकरो।।

५५

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो।
समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो।।
इक नदिया इक नार कहावत मैलोहि नीर भरो।
जब दोनों मिलि एक बरन भये सुरसरि नाम परो।।
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो।
पारस गुन अवगुन नहि चितवै कंचन करत खरो।।
यह माया भ्रम जाल कहावै 'सूरदास' सगरो।
अब की बार मोहिँ पार उतारो नहिँ प्रन जात टरो।।

५६

जादिन मन पंछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं।।
घर के कहैं बेगही काढ़ो भूत भये कोउ खैहैं।
जा प्रीतम से प्रीति घनेरी सोऊ देखि डरैहैं।।
कहँ वह ताल कहाँ वह सोभा देखत धूर उड़ैहैं।
भाई बंधु कुटुम्ब कबीला सुमिरि सुमिरि पछतैहैं।।
बिन गोपाल कोऊ नहिँ अपना जस कीरति रहि जैहै।
सो तो 'सूर' दुर्लभ देवन को सतसंगति में पैहै।।

५७

छाडु मन हरि विमुखन को संग।
जाके संग कुबुद्धी उपजै परत भजन में भंग।।
कागहि कहा कपूर खवाये स्वान न्हवाये गंग।
खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषन अंग।।
पाहन पतित बान नहिँ बेधत रीतो करत निषंग।
'सूरदास' खल कारी कामरि चढ़त न दूजो रंग।।

दोहे

भौंरा भोगी बन भ्रमै, मोद न माने ताप।
सब कुसुमनि मिलि रस करै, कमल बँधावै आप।।१।
सुनि परमित पिय प्रेम की, चातक चितवत पारि।
घन आशा सब दुख सहै, अंत न याँचै बारि।।२।
देखो करनी कमल की, कीनों जल सों हेत।
प्रान तज्यो प्रेम न तज्यो, सूख्यो सरहि समेत।।३।
दीपक पीर न जानई, पावक परत पतंग।
तनु तो तिहि ज्वाला जरचो, चित न भयो रस भंग।।४।
मीन वियोग न सहि सकै, नीर न पूँछै बात।
देखि जु तू ताकी गतिहि, रति न घटै तन जात।।५।
प्रीति परेवा की गनो, चाहत चढ़न अकास।
तहँ चढ़ि तीय जु देखिये, परत छाँड़ि उर स्वाँस।।६।
सुमिर सनेह कुरंग को, पवन न राच्यो राग।
धरि न सकत पग पछ मनों, सर सनमुख उर लाग।।७।
सब रस को रस प्रेम है, विषयी खेलै सार।
तन, मन, धन, यौवन खिसै, तऊ न मानै हार।।८।
तैं जु रत्न पायो भलो, जान्यो साधु समाज।
प्रेम कथा अनुदिन सनी, तऊ न उपजी लाज।।९।

सदा सँघाती आपनो , जिय को जीवन प्रान।
सो तू बिसरचो सहज ही , हरि ईश्वर भगवान ।।१०।।
वेद पुरान स्मृति सबै , सुर नर सेवत जाहि।
महामूढ़ अज्ञान मति , क्यों न सँभारत ताहि ।।११।।
खग मृग मीन पतंग लौं , मै सोधे सब ठौर।
जल थल जीव जिते तिते , कहों कहाँ लगि और ।।१२।।
प्रभु पूरन पावन सखा , प्राननहू को नाथ।
परम दयालु कृपालु प्रभु , जीवन जाके हाथ ।।१३।।
गर्भवास अति त्रास में , जहाँ न एको अंग।
सुनि सठ तेरो प्रानपति , तहाँ न छाँड़्यो संग ।।१४।।
दिना राति पोखत रह्यो , ज्यों तंबोली पान।
वा दुख तें तोहि काढ़ि कै , लै दीनों पय पान ।।१५।।
जिन जड़ ते चेतन कियो , रचि गुन तत्व विधान।
चरन चिकुर कर नख दिये , नयन नासिका कान ।।१६।।
असन बसन बहु विध दये , औसर औसर आनि।
मात पिता भैया मिले , नई रुचिहि पहिचानि ।।१७।।
सजन कुटुम परिजन बढ़े , सुत दारा धन धाम।
महामूढ़ विषयी भयो , चित आकर्ष्यो काम ।।१८।।
खान पान परिधान रस , यौवन गयो व्यतीत।
ज्यो विट परि परतीय बस , भोर भये भय भीत ।।१९।।
जैसे सुख ही मन बढ़्यो , तैसे बढ़्यो अनंग।
धूम बढ़्यो लोचन खस्यो , सखा न सूझ्यो संग ।।२०।।
जम जान्यो सब जग सुन्यो , बाढ़्यो अजस अपार।
बीच न काहू तब कियो , (जब) दूतनि काढ़्यो बार ।।२१।।
कह जानो कहँवा मुवो , ऐसे कुमति कुमीच।
हरिसों हेत बिसारि के , सुख चाहत है नीच ।।२२।।

जो पै जिय लज्जा नहीं, कहा कहौं सौ बार।
एकहु अंक न हरि भजे, रे सठ 'सूर' गँवार ॥२३॥

मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी का असली नाम मुहम्मद था। मलिक इनकी उपाधि थी, और जायस में रहने के कारण लोग इनको जायसी कहते थे। वास्तव में ये जायस के रहनेवाले न थे। पदमावत के तेईसवें दोहे की पहली चौपाई—'जायस नगर धरम असथानू, तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू', से स्पष्ट है कि ये कहीं बाहर से जायस में आये और वहाँ इन्होंने पदमावत लिखी। जायस रायबरेली ज़िले में एक बड़ा क़सबा और रेल का स्टेशन है।

बहुत से लोग कहते हैं कि इनका जन्म-स्थान ग़ाज़ीपुर है। ये एक दरिद्र-कुल में उत्पन्न हुये थे। सात वर्ष की अवस्था में शीतला निकलने से इनकी दाहिनी आँख जाती रही और चेहरा भी ऊबड़-खाबड़ हो गया। इसी अवसर में इनकी माता भी मर गई। पिता शीतला निकलने के पहले ही मर चुके थे। ये अनाथ होकर साधु-फ़क़ीरों के साथ फिरने लगे, और उन्हीं की संगति से इन्होंने बहुत-सी बातें सीखीं। वेदान्त और योग-क्रिया की भी बहुत-सी बातें इनको मालूम थीं। पदमावत में स्थान-स्थान पर इन्होंने अपने इस ज्ञान का परिचय दिया है। अखरावट में तो वेदान्त ही की चर्चा मुख्य है।

योगी समझकर बहुत-लोग इनके शिष्य हो गये। शिष्य लोग इनके बनाये हुए बारह मासों को गाया करते थे। इनका एक चेला अमेठी (जिला सुलतानपुर-अवध) आया। वह इनका बनाया हुआ नागमती का बारहमासा गा-गाकर घर-घर भीख माँगा करता था। एक दिन अमेठी के राजा ने भी उसे सुना। उन्हें वह बहुत पसंद आया। ख़ासकर इस दोहे ने तो उनके हृदय पर बहुत ही प्रभाव डाला—

कँवल जो बिगसत मानसर, बिनु जल गयउ सुखाइ।
सूखि बेलि फिरि पलुहइ, जउ पिउ सींचइ आइ ।।

राजा ने उस चेले से बारहमासे के रचयिता का परिचय पाकर मलिक मुहम्मद को लाने के लिये अपना एक सरदार भेजा। तब से मलिक मुहम्मद अमेठी में रहने लगे। राजा को कोई संतान न थी। मलिक मुहम्मद की कृपा से उनका वंश चला। तब से इनका बहुत आदर होने लगा। वहीं पर इनका देहान्त भी हुआ। राजा ने अपने महल से उत्तर की ओर थोड़ी दूर पर इनकी क़ब्र बनवा दी, जो अबतक है।

एक दिन अवध के एक रईस ने इनके चेहरे को देखकर ठट्ठा मारकर हँस दिया। इस पर इन्होंने बड़े धैर्य से कहा—

मोहिं का हँससि कि कोहरहिं

अर्थात्, मेरी हँसी उड़ाते हो या उस कुम्हार की, जिसने मुझे ऐसा कुरूप गढ़ा है? इस पर रईस साहब बहुत शर्मिंदा हुये और इनका परिचय पाकर उन्होंने अपने अपराध की क्षमा माँगी।

जायसी के जन्म-मरण की ठीक तिथि का पता नहीं चलता। पदमावत में उसका रचना-काल हिजरी सन् ९२७ (सन् १५२०) दिया हुआ है। इससे इनके समय का अनुमान किया जा सकता है।

जायसी ने दो पुस्तकें पद्य में लिखीं, एक पदमावत और दूसरी अखरावट। पदमावत में रानी पद्मावती की कहानी बड़ी कुशलता से लिखी गई है। यद्यपि उसकी भाषा जायस के आसपास की देहाती है, परंतु उसमें रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमा आदि का बहुत सुन्दर समावेश हुआ है। सारी कथा दोहे-चौपाई में है।

पदमावत की भाषा के विषय में "पदमावत भाष्य" के कर्त्ता सुप्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर वासुदेवशरण लिखते हैं—'पदमावत की भाषा ऊपर से देखने पर बोलचाल की देहाती अवधी कही जाती है, किन्तु वस्तुतः वह अत्यंत प्रौढ़, अर्थ-संपत्ति से समर्थ शैली है। अनेक स्थानों पर जायसी ने ऐसी

श्लेषात्मक भाषा का प्रयोग किया है जिसके अर्थ लगातार कई दोहों तक एक से अधिक पक्षों में पूरे उतरते हैं। × × × कवि की इस प्रकार की श्लेषात्मक शैली आश्चर्यकारिणी है। सरल अवधी के शब्दों में जायसी ने अर्थों का चमत्कार उत्पन्न किया है, उससे उनकी भाषा की असाधारण शक्ति ज्ञात होती है।"

मुसलमान होने पर भी प्रसंग के अनुसार हिन्दू देवताओं के प्रति भक्ति का वर्णन करने में जायसी ने बड़ी उदार-हृदयता का परिचय दिया है। एक मुसलमान के द्वारा हिन्दी-भाषा की ऐसी सेवा सर्वथा श्लाघनीय है।

अखरावट पदमावत के बाद बना। अखरावट में क से लेकर प्रायः सभी अक्षरों पर कविता की गई है। इस में ईश्वर की स्तुति और संसार की असारता बतलाई गई है।

जायसी की कविता के कुछ नमूने हम आगे प्रस्तुत करते हैं—

राजा का स्वर्गवास (पदमावत से)

तौलहि श्वास पेट महँ अही। जौलहि दसा जोउ की रही॥
काल आइ देखलाई साँटी। उठि जिय चला छाँड़िके माटी॥
काकर लोग कुटुम घर बारू। काकर अर्थ द्रव्य संसारू॥
वही घड़ी सब भयो परावा। आपन सोइ जो परसा खावा॥
रहि जे हितू साथ के नेगी। सबै लागि काढ़न तेहि बेगी॥
हाथ झार जस चलै जुवारी। तजा राज ह्वै चला भिखारी॥
जब लग जीव रतन सब काहा। भा विन जीवन कौड़ी लाहा॥

गढ़ सौंपा तेहि बादल, गये टेकत वसुदेव।
छोड़ी राम अजोध्या, जो भावै सो लेव॥

पदमावति पुनि पहिर पटोरा। चली साथ पिय के ह्वै जोरा॥
सूरज छिपा रयनि ह्वै गई। पूनो ससि सो अमावस भई॥
छोरे केस मोति लट छूटी। जानो रयनि नखत सब छूटी॥

सेंदुर परा जो सोस उघारी। आगि लाग चहि जग अँधियारी॥
यही दिवस हौं चाहत नाहीं। चलो साथ पिय दै गलबाहीं॥
सारस पँख नहिं जिये निरारे। हौं तुम बिन का जियों पियारे॥
न्योछावर कै तन छहराऊँ। छार होउँ सँग बहुर न आऊँ॥
दीपक प्रीति पतंग ज्यों, जनम निबाह करेउँ।
न्योंछावर चहुँ पास ह्वै, कंठ लागि जिय देउँ॥

पद्मावत का सती होना

नागमती पदमावत रानी। दोउ महासत सती बखानी॥
दोउ सौंत चढ़ि खाट जो बैठी। औ शिवलोक परा तहँ दीठी॥
बैठो कोइ राज औ पाटा। अन्त सबै बैठे पुनि खाटा॥
चन्दन अगर काढ़सर साजा। और गति देय चले लै राजा॥
बाजन बाजहिं होय अगोता। दोउ कन्त लै चाहैं सोता॥
एक जो बाजा भयो बिवाहू। अब दुसरे है और निबाहू॥
जियत जलै जौ कन्त की आसा। मुये रहस बैठे इक पासा॥
आज सूर दिन अथयो, आज रयनि ससि बूड़।
आज नाथ जिय दीजिये, आज अगिनि हम जूड़॥
सर रच दान पुन्य बहु कीन्हा। सात बार फिर भाँवर लीन्हा॥
एक जो भाँवर भयो बियाही। अब दूसर ह्वै गोहन जाही॥
जियत कन्त तुम हम गल लाई। मुये कण्ठ नहिं छाड़हु साई॥
लै सर ऊपर खाट बिछाई। पौढ़ी दोउ कन्त गल लाई॥
और जो गाँठ कन्त तुम जोरी। आदि अन्त लहि जाय न छोरी॥
यह जग काहु जो अथाहि न याथी। हम तुम नाह दोहू जग साथी॥
लागी कण्ठ अंग दै होरी। छार भई जरि अङ्ग न मोरी॥
राती पिय के नेह की, स्वर्ग भयो रतनार।
जो रे उवा सो अथवा, रहा न कोइ संसार॥
वै सहगवन भई जिय आई। बादसाह गढ़ छेंका धाई॥

तबलग सो असबर ह्वै बीता। भये अलोप राम औ सीता॥
आय साह जो सुना अखारा। ह्वै गइ रात दिवस उँजियारा॥
छार उठाय लीन इक मूठी। दीन्ह उड़ाय पिरथबी झूँठी॥
सगरे कटक उठाई माटी। पुल बाँधा जँह जँह गढ़ घाटी॥
जौ लहि उपर छार नहि परै। तौ लहि यह तृस्ना नहिं मरै॥
भा दहवा भा जूझ असूझा। बादल आय पँवर पर जूझा॥
जून्हर भइँ सब इस्त्री, पुरुष भये संग्राम।
बादसाह गढ़ चूरा, चितउर भा इसलाम॥
मैं यह अर्थ पण्डितन बूझा। कहा कि हम कुछ और न सूझा॥
चौदह भुवन जोहत उपराही। सो सब मानुष के घट माहीं॥
तन चितौर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल बुधि पद्मिनि चीन्हा॥
गुरू सुवा जेहि पंथ दिखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया धन्धा। बाचा सोई न यह चित बन्धा॥
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू॥
प्रेम कथा यह भाँति बिचारू। बूझ लेहु जो बूझहि पारू॥
तुरकी अरबी हिन्दवी, भाषा जेती आहि।
जामें मारग प्रेमका, सबै सराहैं ताहि॥
मुहमद कवि यह जोर सुनावा। सुना सो प्रेम पीर का पावा॥
जोरे लाय रकत ले गये। प्रेम प्रीति नयनहिं जल भये॥
औ मैं जान गीत अस कीन्हा। की यह रीति जगत महँ चीन्हा॥
कहाँ सो रतनसेन अब राजा। कहाँ सुवा अस बुध उपराजा॥
कहाँ अलाउदीन सुलतानू। कहँ राघव जेहि कीन्ह बखानू॥
कहँ सुरूप पद्मावति रानी। कुछ न रही जग रही कहानी॥
धन सोई यह कीरति तासू। फूल मरै पर मरै न बासू॥
कैन जगत जस बेचा, कैन लीन जस मोल।
जो यह पढ़ै कहानी, हम सँबरै दोउ बोल॥
मुहमद बृद्ध बैस जो भई। यौवन हम सो अवस्था गई॥

बल जो गयो कै खीन सरीरू। दृष्टि गई नयनहिं दै नीरू।।
दसन गये कै बचा कपोला। बैन गये अनरुच दै बोला।।
बुधि जो गई दै हिय बौराई। गर्व गयो तरिहत शिर नाई।।
स्रवन गये ऊँच जो सूना। स्याही गये सीस भा धूना।।
भँवर गये केसहिं दै भुवा। यौवन गयो जीत लै जुवा।।
जो लहि जीवन जोवन साथा। पुनि सो मीच पराये हाथा।।

अखरावट

ठा ठाकुर बड़ आप गोसाईं। जेइ सिरजा जग अपनइ नाईं।।
आपुहि आप जो देखइ चहा। आपन प्रभुता आपसे कहा।।
सबइ जगत दरपन कै लेखा। आपुहि दरपन आपु हि देखा।।
आपुहि बन औ आपु पखेरू। आपुहि सउजा आपु अहेरू।।
आपुहि पुहुप फूल बन फूले। आपुहि भँवर बासरस भूलै।।
आपुहि फल आपुहि रखवारा। आपुहि सो रस चाखनहारा।।
आपुहि घटघट महँ मुख चाइइ। आपुहि आपन रूप सराहइ।।
पानी महँ जस बुल्ला, तस यह जग उतराइ।।
एकहि आवत देखिये, एकहि जात बिलाइ।।
सा साँसा जड़ लहि दिन चारी। ठाकुर से करि लेहु चिन्हारी।।
अंध न रहहु होहु डिठिआरा। चीन्हि लेहु जो तोहि सँवारा।।
पहले से जो ठाकुर कीजिअ। अइसे जिअन मरन नहिं छीजिअ।।
छाड़हु घिउ अरु मछरी मासू। सूखे भोजन करहु गरासू।।
दूध मास घिव करु न अहारू। रोटी सानि करहु फरहारू।।
यहि विधि काम घटावहु काया। काम क्रोध तिसना मद माया।।
तब बइठउ बजरासन मारी। गहि सुखमना पिंगला नारी।।
प्रेम तन्तु तस लागि रहु, करहु ध्यान चित्त बाँधि।
पारधि जइस अहेर कहँ, लागि रहइ सर साधि।।

नरोत्तमदास

नरोत्तमदास क़स्बा बाड़ी ज़िला सीतापुर के रहने वाले ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १५५० के लगभग माना जाता है। शिवसिंह सरोज मे सं० १६०२ में इनका जीवित रहना लिखा है। ये अच्छे कवि थे। सं० १५८२ में इन्होंने सुदामा-चरित लिखा। इन्होंने ध्रुवचरित्र भी लिखा था। सुदामा-चरित्र हमने देखा है। इनकी कविता बड़ी सुन्दर है। इनके सुदामा चरित्र के कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं --

लोचन कमल दुखमोचन तिलक भाल स्रवननि कुंडल मुकुट धरे माथ हैं। ओढ़े पीत बसन गले में बैजयंती माल संख चक्र गदा और पद्म लिये हाथ हैं। कहत नरोत्तम सँदीपनि गुरू के पास तुमही कहत हम पढ़े एक साथ हैं। द्वारिका के गये हरि दारिद हरेंगे पिय द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं।।१।।

सिच्छक हौं सिगरे जगको तिज ताको कहा अब देति है सिच्छा।
जे तप कै परलोक सिधारत संपति की तिनके नहि इच्छा।
मेरे हिये हरिको पद पंकज बार हजार लै देखु परिच्छा।
औरन के धन चाहिये बावरी बाम्हन के धन केवल भिच्छा।।२।।
दानी बड़े तिहुँ लोकन में जग जीवत नाम सदा जिनको लै।
दीनन की सुधि लेत भली विधि सिद्ध करो पिय मेरो मतो लै।
दीनदयालु के द्वार न जात सो और के द्वार पै दीन ह्वै बोलै।
श्री जदुनाथ से जाके हितू सो तिहूँ पन क्यों कन माँगत डोलै।।३।।
छत्रिन के प्रन जुद्ध जुवा सजि वाजि चढ़े गज राजन हीं।
वैस को वानिज और कृषी पन शूद्र के सेवन नीति यही।
विप्रन को प्रन है जु यही सुख संपति सों कछ काज नहीं।
कै पढ़िबो कै तपोधन है कन माँगत बाँभनै लाज नहीं।।४।।
कोदों सवाँ जुरतौ भरि पेट न चाहति हौं दधि दूध मिठौती।
सीत व्यतीत गयो सिसिआतहि हौं हठती पै तुम्हैं न हठौती।

जो जनती न हितू हरि से तौ मैं काहे को द्वारिका पेलि पठौती।
या घर तें कबहूँ न गयो पिय टूटौ तवा अरु फूटी कठौती ।।५।।
छाँड़ि सबै झक तोहि लगी बक आठहुँ जाम इहै ठक ठानी।
जातहि देहैं लदाय लढ़ा भरि लैहौं लदाय यहै जिय जानी।
पैये अटारी अटा कहँते जिनको विधि दीन्ही है टूटी सी छानी।
जौ पै दरिद्र लिख्यो है ललाट तो काहू के मेटे न जात अजानी ।।६।।

फाटे पट टूटी छानि खायो भीख माँगि आनि विना जग्य विमुख रहत देव पितरई। वे हैं दीनबन्धु दुखी देखि के दयालु ह्वै है दै हैं कछु भलो सो हौं जानत अगत्रई। द्वारिका लौं जात पिय केतौ अलसात तुम काहे को लजात भई कौन सी विचित्रई। जो पै सब जन्म या दरिद्र ही सतायो तोपै कौन काज आइ है कृपानिधि की मित्रई ।।७।।

तैं तो कही नीकी सुनि बात हित ही की यह रीति मित्रई की नित प्रीति सरसाइये। चित्त के मिलेते वित्त चाहिये परसपर मित्र के जो जेंइये तो आप हू जेंवाइये। वे हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप तहाँ यहि रूप जाय कहा सकुचाइये। दुख सुख करि दिन काटे ही बनैगो भूलि विपति परे पै द्वार मित्र के न जाइये ।।८।।

विप्र के भगत हरि जगत विदित बन्धु लेत सब ही की सुधि ऐसे महा-दानिहैं। पढ़े एक चटसार कही तुम कैयो बार लोचन अपार वे तुम्हें न पहिचानि हैं। एक दीनबन्धु कृपासिन्धु फेर गुरुबन्धु तुम सम कौन दीन जाको जिय जानिहैं। नाम लेत चौगुनी गये तें द्वार सौगुनी बिलोकत सहसगुनी प्रीति प्रभु मानिहैं ।।९।।

द्वारिका जाहु जू द्वारिका जाहु जू आठहु जाम इहै जक तेरे।
जौ न कही करिये तौ बड़ो दुख पैहों कहाँ अपनी गति हेरे।।
द्वार खड़े प्रभु के छड़िया तहँ भूपति जान न पावत नेरे।।
पाँच सुपारी तौ देखु विचारि के भेंट को चारि न चाउर मेरे।।१०।।

यह सुनि के तब ब्राह्मनी, गई परोसिनि पास।
सेर पाव चाउर लिये, आई सहित हुलास ।।११।।

सिद्धि करौ गनपति सुमिरि, बाँधि दुपटिया खूँट।
माँगत खात चले तहाँ, माँगत बाली बूट ।।१२।।

मङ्गल सङ्गीत धाम धाम में पुनीत जहाँ नाचैं बारवधू देवनारि अनुहारिका। घंटन के नाद कहूँ बाजन के छाइ रहे कहूँ पिक केकी पढ़ें सुक और सारिका। रतनन ठाट हाट बाटन में देखियत घूमै गज अस्व रथ पत्ति नर नारिका। दसो दिसा भीर द्विज धरत न धीर मन उठति है पीर लखि बलबीर द्वारिका ।।१३।।

दीठि चकचौधि गयी देखत सुबर्नमयी एक तें सरस एक द्वारिका के भौन हैं। पूछे बिन कोऊ कहूँ काहू सों न करै बात देवता से बैठे सब साधि साधि मौन हैं। देखत सुदामैं-धाय पौरजन गहे पाय कृपा करि कहो कहाँ कीने विप्र गौन हैं। धीरज अधीर के हरन पर पीर के बताओ बलवीर के महल यहाँ कौन हैं ।।१४।।

द्वारपाल चलि तहँ गयो, जहाँ कृष्ण जदुराय।
हाथ जोरि ठाढ़ो भयो, बोल्यो सीस नवाय ।।१५।।
सीस पगा न झँगा तन में प्रभु जानें को आहि बसै किहि ग्रामा।
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पाँय उपानह की नहिं सामा ।।
द्वार खरो द्विज दुर्बल देखि रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयालु के धाम बतावत आपनो नाम सुदामा ।।१६।।
लोचन पूरि रहे जल सों प्रभु दूरि तें देखत ही दुख मेट्यो।
सोच भयो सुरनायक के कलपद्रुम के हिय माँझ खखेट्यो ।।
काँपि कुबेर हिये सर से पग जात सुमेरहु रंक से सेट्यो।
रंकते राउ भयो तबहीं जबहीं भरि अंक रमापति भेंट्यो ।।१७।।
ऐसे बेहाल बेवाइन सों पद कंटक जाल लगे पुनि जोये।
हाय महा दुख पायो सखा तुम आये इतै न कितै दिन खोये ।।
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करिके करुनानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं नैनन के जल सों पग धोये ।।१८।।

तन्दुल त्रिय दीने हुते, आगे धरियो जाय।
देखि राजसम्पति विभव, दै नहिं सकत लजाय।।१९।।
अन्तरजामी आप हरि, जानि भगत की रीति।
सुहृद सुदामा विप्र सों, प्रकट जनाई प्रीति।।२०।।
कछु भाभी हमको दियो, सो तुम काहे न देत।
चाँपि गाँठरी काँख में, रहे कहो केहि हेत।।२१।।
आगे चना गुरुमात दिये ते लिये तुम चाबि हमैं नहिं दीनै।
स्याम कही मुसकाय सुदामा सों चोरि की बानि में हौ जु प्रवीने।।
गाँठरी काँख में चापि रहे तुम खोलत नाहिं सुधारस भीने।
पाछिली बानि अजौं न तजी तुम तैसे हि भाभी के तन्दुल कीने।।२२।।
खोलत सकुचत गाँठरी, चितवत हरि की ओर।
जीरन पट फटि छूटि परे, बिखरि गये तेहि ठौर।।२३।।
तन्दुल माँगत मोहन विप्र सँकोच ते देत नहीं अभिलाखे।
है नहिं पास कछू कहि कै तेहि गोपि धनी विधि काँख में राखे।।
सो लखि दीनदयाल तहाँ यह चोरी करी तुम यों हँसि भाखे।
खोलि कै पोट अछोट मुठी गिरिधारन चाउर चाउ सों चाखे।।२४।।
काँपि उठी कमला मन सोचति मों सों कहा हरि को मन औंको।
ऋद्धि कँपी नवनिद्धि कँपी सब सिद्धि कँपी ब्रह्मनायक धोको।।
सोच भयो सुरनायक के जब दूसरी बार लयो भरि भोंको।
मेरु डरयो बकसै जनि मोहि कुबेर चबावत चाउर चौंको।।२५।।
हूल हियरा में कान कानन परी है टेर भेटत सुदामैं स्याम बनै न अघातहीं। कहै नरोत्तम ऋद्धि सिद्धिन में सोर भयो ठाढ़ी थरहरै और सोचै कमला तहीं।। नाकलोक नाग लोक ओक थोक थोक ठाढ़े थरहरैं मुख से कहैं न बातहीं। हालो परयो लोकन में लालो परयो चक्रिन में चालो परयो लोगन में चाउर चबातहीं।।२६।।
भौन भरे पकवान मिठाइन लोग कहै निधि हैं सुखमा के।
साँझ सबेरे पिता अभिलाषत दाख न चाखत सिंधु छमा के।।

बाम्हन एक कोऊ दुखिया सेर पावक चाउर लायो समा के।
प्रीति की रीति कहा कहिये तिहि बैठे चबात हैं कंत रमाके ।।२७।।

मूठी तिसरी भरत ही, रुकमिनि पकरी बाँह।
ऐसी तुम्हें कहा भई, संपति की अनचाह ।।२८।।

कही रुकमिनी कान में, यह धौं कौन मिलाप।
करत सुदामहि आपसों, होत सुदामा आप ।।२९।।

हाथ गह्यो प्रभु को कमला कहै नाथ कहा तुमने चित धारी।
तंदुल खाय मुठी दुइ दीन कियो तुमने दुइ लोक बिहारी ।।
खाय मुठी तिसरी अब नाथ कहा निज बास की आस बिचारी।
रंकहि आप समान कियो तुम चाहत आपहि होन भिखारी ।।३०।।

रूपे के रुचिर थार पायस सहित सिता जीती जिन सोभा है सरद हू के चंदकी। दूसरे पहिति भात सान्यो है सुरभि घृत, फूले फूले फुलका प्रफुल्लि दुति मंदकी ।। पापर मुँगौरी बरा व्यंजन अनेक प्रीति देवता बिलोकि रहे देवकी के नंद की। या बिधि सुदामाजी को आछे कै जेंवाय प्रभु पाछेतैं पछावरि परोसी आनि कंद की ।।३१।।

कह्यो विस्वकर्मा को हरि तुम जाय करि नगर सुदामाजी को रचौ बेग अबही। रतन जटित धाम सुवरनमयी सब, कोट औ बजार बाग फूलनके तबही ।। कल्प वृक्ष द्वार गज रथ असवार प्यादे कीजिये अपार दास दासी देव छबही ।। इन्द्र औ कबेर आदि देव बधू अपसरा गंधरब गुनी जहाँ ठाढ़े रहैं सबही ।।३२।।

नित नित सब द्वारावती, दिखराई प्रभु आप।
भले बाग अनुराग सह, जहाँ न व्यापै ताप ।।३३।।

परम कृपा दिन दिन करी, कृपानाथ जदुराय।
मित्र भावना विस्तरी, दूनों आदर भाय ।।३४।।

दाहिने वेद पढ़ै चतुरानन सामुहे ध्यान महेस धरचो है।
बायें दोऊ कर जोरे सुसेवक देवन साथ सुरेस खरचो है ।।

एतहू बीच अनेक लिये धन पायन आय कुबेर परयो है ।।
देखि बिभो अपनो सपनो बपुरो वह बाँभन चौंकि परयो है ।।३५।।
देनो हुतौ सो दै चुके, विप्र न जानी गाथ।
चलती बेर गोपाल जू, कछु न दीन्हीं हाथ ।।३६।।
गोपुर लौ पहुँचाय के, फिरे सकल दरबार।
मित्र बियोगी कृष्ण के, नेत्र चली जलधार ।।३७।।
हौं कब इत आवत हुतौ, बामहि पठयो पेलि।
कहि हौं धन सों जाइ के, अब धन धरौ सकेलि ।।३८।।
बालापन के मित्र हैं, कहा देउँ मैं साप।
जैसो हरि हमको दियो, तैसो पइयो आप ।।३९।।
और कहा कहिये जहाँ, कञ्चन ही के धाम।
निपट कठिन हरि को हियो, मोकों दियो न दाम ।।४०।।
इमि सोचत सोचत झकत, आये निज पुर तीर।
दृष्टि परी इक बारही, हय गयंद की भीर ।।४१।।

वेई सुरतरु प्रफुलित फुलवारिन में, वेई सरवर हंस बोलन मिलन को। वेई हेम हिरन दिसान दहलीजन में, वेई गजराज हय गरज पिलन को ।। द्वार द्वार छड़ी लिये द्वार पौरिया जो खरे, बोलन मरोर बरजोर ज्यों झिलन को। द्वारिका ते चल्यो भूलि द्वारिका ही आयो नाथ, माँगियो न मो पै चारि चाउर मिलन को ।।४२।।

जगर मगर ज्योति छाय रही चहुँ ओर, अगर बगर हाथी घोरन को सोर है। चौपर को बन्यो है बजार पुनि सोनन के, महल दुकान की कतार चहुँ ओर है ।। भीड़भाड़ धकापेल चहुँ दिसि देखियत, द्वारिका ते दूनों यहाँ प्यादन को जोर है। रहिबो को ठाम है न काहू सों पिछान मेरी, बिन जाने बसे कोऊ हाड़ मेरे तोर है ।।४३।।

फूटी एक थारी बिन टोंटनोकी झारी हुती, बाँस की पिटारी औ पथारी हुती टाटकी। बंटे बिन छुरी औ कमंडलु हौ टोकवो हौ, फटे हुतो पावौ पाटी टूटी एक खाटकी। पथरौटा काठको कठौता कहूँ दीसै नाहिं,

पीतर को लोटो हो कटोरो है न बाटकी। कामरी फटी सी हुती डोंड़न की माला ताक, गोमती की माटो की न सुध कहूँ माट की ।।४४।।

मीराबाई

मीराबाई जोधपुर मेड़ता के राठौर रतनसिंहजी की एकलौती बेटी थी। इनका जन्म कुड़की नामक गाँव में, संवत् १५५५ वि० और सं० १५६० वि० के बीच में हुआ था। इनका विवाह उदयपुर के सीसोदिया राजकुल में महाराना साँगाजी के कुँवर भोजराज के साथ सं० १५७३ में हुआ था। इनका देहान्त कब हुआ—इसका ठीक ठीक पता नही चलता। स्वर्गवासी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का अनुमान है कि मीराबाई ने संवत् १६२० और १६३० वि० के बीच शरीर छोड़ा।

मीराबाई का समय कौन सा है? इस विषय में बड़ा मतभेद है। संतबानी के सम्पादक ने इनका जीवन-समय सं० १५७३ से १६३० तक माना है और इनको जोधपुर के राठौर राव रंजीतसिंह की एकलौती बेटी और उदयपुर के युवराज भोजराज की स्त्री लिखा है। मिश्रबंधु लिखते हैं कि "ये बाईजी मेड़तिया के राठौर रत्नसिंह की पुत्री, राव ईदा जी की पौत्री और जोधपुर के बसानेवाले प्रसिद्ध राव जोधा जी की प्रपौत्री थीं। इन्होंने १५७३ में चौकड़ी नामक ग्राम में जन्म लिया और इनका विवाह उदयपुर के महाराना कुमार भोजराज के साथ हुआ। मीराबाई का देहान्त द्वारिकाजी में सं० १६०३ में हुआ। पहले बहुतों का मत था कि मीराबाई राजा कुंभकरण की स्त्री थी, और बाईजी का जन्म-काल सं० १४७५ का लोग मानते थे। परन्तु जोधपुर के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसादजी ने मीराबाई के बाबत उपर्युक्त बातों का पता लगाया है, जो अब सर्वसम्मत भी है।"

टाड साहब लिखते हैं कि "मैरता निवासी राठौर सर्दार दुदाजी की मीराबाई नामक कन्या से महाराणा कुंभ का विवाह हुआ था।" महाराना कुंभ सं० १४७५ में चित्तौर के सिंहासन पर बैठे। और दूदाजी के पिता

जोधाजी का सं० १५४५ में ६१ वर्ष की अवस्था में देहान्त हो चुका था। दूदाजी अपने १४ भाइयों में चौथे थे। अतएव पिता के मरने के समय उनकी अवस्था कम से कम ३० वर्ष की रही होगी। अर्थात् सं० १५१५ में वे उत्पन्न हुए होंगे। महाराजा कुंभ का देहान्त १५२५ में हुआ; अतएव मीराबाई का राजा कुंभ की रानी होना ही नहीं, बल्कि यह भी असंभव जान पड़ता है कि वे उनके समय में पैदा भी हुई थीं।

रावबहादुर कमलाशंकर प्राणशकर त्रिवेदी, ने 'गुजराती भाषा नुं वृहद् व्याकरण' के 'गुजराती भाषानों इतिहास' प्रकरण मे २९वें पृष्ठ पर लिखा है कि "नरसिंह मेहता अने मीराबाई ई० स० ना १५ मा सैका माँ थई गयाँ छे।" पर गुजरात के साहित्यिकों में भी मीराबाई के सम्बन्ध में बहुत मतभेद चल रहा है। मीराबाई के समय-सम्बन्ध मे उनके पदों से जो कुछ पता चलता है वह यह है, कि वे रैदास की शिष्या थी। उनके कितने ही पदों में यह स्पष्ट लिखा हुआ मिलता है कि वे रैदासजी को गुरु मानती थीं। प्रमाण के लिये यहाँ कुछ पद मीराबाई की शब्दावली से उद्धृत किये जाते हैं—

१—रैदास संत मिले मोहिं सतगुरु दीन्हा सुरत सहदानी। पृष्ठ २०
२—गुरु मिलिया रैदासजी दीन्हों ज्ञान की गुटकी। पृष्ठ २५
३—गुरु रैदास मिले मोहिं पूरे धुर से कलम भिड़ी। पृष्ठ ३६
४—मीरा ने गोविंद मिल्याजी गुरु मिलिया रैदास। पृष्ठ ३७

रैदासजी कबीर साहब के गुरु-भाई थे। कबीर साहब का जन्म सं० १४५५ में और मरण १५७५ में माना जाता है। इसी के आसपास रैदासजी का भी जीवन-काल रहा होगा। इसी समय के भीतर मीराबाई का भी जीवन-समय होना चाहिये, तभी रैदासजी का मीराबाई का गुरु होना प्रमाणित हो सकेगा। पता नहीं, उम्र में रैदास बड़े थे या कबीर। रैदास कब मरे, यह भी अनिश्चित है। यदि दोनों का जन्म-मरण-काल एक ही मान लिया जाय तो मीराबाई के जन्म के समय रैदास १०० वर्ष के रहे होंगे। विवाह के

पहले ही मीराबाई को रैदास ने ज्ञानोपदेश किया होगा; क्योंकि १५७३ में मीराबाई का विवाह हो गया था। विवाह के बाद १५७३ से १५७५ के भीतर रैदास को मीराबाई से मिलाने का मौक़ा मिलना, मेरी राय में, असंभव ही है। सौ-सवा सौ वर्ष की उम्र में रैदास का राजपूताने जाना यदि सभव हो तो मीराबाई का जन्म संवत् १५५५ ही ठीक है। इस हिसाब से मिश्रबंधुओं ने और संतबानी के सम्पादक ने जो मीराबाई का समय निर्धारित किया है, यह ग़लत ठहरता है। उस समय रैदास का मीराबाई से सत्संग होना असभव है।

कहा जाता है कि विवाह होने पर मीराबाई चित्तौड़ गई। वहाँ विवाह होने से दस बरस के भीतर ही वे विधवा हो गईं; परन्तु इनको इस बात का कुछ भी शोक न हुआ; क्योंकि उनके हृदय में गिरिधर गोपाल के लिये बड़ी भक्ति थी और वे रात-दिन गिरिधर नागर ही के प्रेम में मतवाली रहती थीं। अपने कुल की लज्जा छोड़कर जब वे बेधड़क साधु-सेवा करने लगी, तब यह बात उनके देवर विक्रमाजीत को, जो महाराना रतनसिंह के बाद चित्तौड़ की गद्दी पर बैठे थे, बहुत खटकी। उन्होंने मीराको बहुत समझाया, और चम्पा और चमेली नाम की दो दासियाँ इस अभिप्राय से मीरा के पास रख दी कि वे साधु-संगति की ओर से मीरा का चित्त हटाती रहें। परन्तु मीरा की संगति से उन दोनों दासियों पर भी भक्ति का रंग चढ़ गया। तब राना ने अपनी सगी बहन ऊदा को मीरा बाई के पास समझाने के लिये भेजा। परन्तु मीरा अपने प्रण से नहीं टली, उलटे ऊदा ही का चित्त मीरा के प्रेम पर आसक्त हो गया। वह मीरा की चेली हो गई। तब राणा ने मीरा को विष का प्याला भेजा। मीरा ने उसे भगवान् का चरणामृत समझकर पी लिया। कहते हैं कि उस विष का मीराबाई पर कुछ भी असर न हुआ। इतने पर भी जब राणा ने नहीं माना और वे बराबर उपाधि करते रहे, तब मीरा ने घबड़ाकर गोस्वामी तुलसीदासजी को यह पद लिखकर भेजा—

श्री तुलसी सुखनिधान दुख हरन गुसाँई।
बारहिं बार प्रनाम करूँ अब हरो सोक समुदाई॥

घर के स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत मोहिं देत कलेस महाई।।
बालपने ते मीरा कीन्हीं गिरधर लाल मिताई।
सो तो अब छूटत नहिं क्यों हूँ लगी लगन बरियाई।।
मेरे मात पिता के सम हो हरि भक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखियो समुझाई।।

इसके उत्तर में तुलसीदास ने यह लिख भेजा—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही।
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज बनिता, भये सब मङ्गलकारी।।
नातो नेह राम सों मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँख जो फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं।।
'तुलसी' सो सब भाँति परमहित पूज्य प्रानतें प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद एही मतो हमारो।।

इस उत्तर के पाने पर मीराबाई चित्तौड़ छोड़कर रात के समय मेड़ता चली आई। यह कथा बिल्कुल मनगढ़ंत है। मीराबाई का जन्म-काल सं० १५५५ या १५७३ मानने पर तो यह किसी तरह संभव नहीं कि १५८९ में पैदा होने वाले गोस्वामी तुलसीदास से इनका यह पत्र-व्यवहार हुआ हो और उनकी राय से इन्होंने गृह-त्याग किया हो। मीरा और तुलसी के पदों को मिलाकर किसी ने यह नई घटना रच दी है।

मेड़ता में भी उनका मन न लगा तब वृन्दावन चली गई। वृन्दाबन में वे जीव गोस्वामी का दर्शन करने गईं। गोस्वामीजी ने कहा—हम स्त्रियों से नहीं मिलते। मीराबाई ने कहला भेजा—मैं नहीं जानती थी कि गिरिधर लाल के सिवा यहाँ और भी पुरुष हैं। यह सुनते ही जीव गोस्वामी नंगे पैर बाहर आकर मीराबाई को आदर-पूर्वक ले गये। वहाँ कुछ समय रहकर

फिर वे द्वारका चली गई। राणाजी ने मीराबाई को वापस लाने के लिये कई ब्राह्मणों को द्वारका भेजा। मीराबाई ने आना अस्वीकार किया, तब ब्राह्मणों ने वहीं धरना दे दिया और अन्न-जल छोड़ दिया। तब कहा जाता है कि मीराबाई रणछोड़जी से मिलने के लिये मंदिर में गई और वहीं मूर्ति में समा गई।

मीराबाई के हृदय में अगाध प्रेम था। उनके पदों से उनकी हार्दिक-भक्ति प्रकट होती है। मीराबाई संस्कृत भी जानती थीं। उन्होंने गीत-गोविंद की टीका लिखी है। इसके सिवा नरसीजी का मायरा और रागगोविन्द भी उनके रचे हुए कहे जाते हैं। हमने इनमें से कोई पुस्तक नहीं देखी।

मीराबाई की कविता राजपूतानी बोली मिश्रित हिन्दी भाषा में है। गुजराती भाषा में भी मीराबाई ने मधुर कविता रची है। हम यहाँ उनके कुछ पद उद्धृत करते हैं--

१

घड़ी एक नहिं आवड़े, तुम दरसण बिन मोय।
तुमहो मेरे प्राण जी, कासूँ जीवण होय॥
धान न भावै नींद न आवै, विरह सतावै मोय।
घायल सी घूमत फिरूँ रे, मेरा दरद न जाणे कोय॥
दिवस तो खाय गमायो रे, रैण गमाई सोय।
प्राण गमायो झूरताँ रे, नैण गमाई रोय॥
जो मैं ऐसा जाणती रे, प्रीति किये दुख होय।
नगर ढँढोरा फेरती रे, प्रीति करो मत कोय॥
पंथ निहारूँ डगर बुहारूँ, ऊबी मारग जोय।
'मीरा'के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलियाँ सुख होय॥

२

हेरी मैं तो प्रेम दिवाणी, मेरा दरद न जाणे कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस विध सोणा होय॥

गगन मंडल पै सेज पिया की , किस विध मिलणा होय।
घायल की गति घायल जानै , की जिन लाई होय।।
जौहरी की गति जौहरी जानै , की जिन जौहर होय।
दरद की मारी बन बन डोल् , बैद मिल्या नहिं कोय।
'मीरा' की प्रभु पीर मिटैगी , जब वैद सँवलिया होय।।

३

बंसीवारो आयो म्हारे देस , थाँरी साँवरी सुरत वारी बैस।।
आऊँ आऊँ कर गया साँवरा , कर गया कौल अनेक।
गिणते गिणते घिस गई उँगली , घिस गई उँगली की रेख।।
मैं बैरागिण आदि की , थाँरे म्हारे कद को सँदेस।
बिन पाणी बिन साबुन साँवरा , हुइ गई धुई सपेद।।
जोगिण हुई जंगल सब हेरूँ , तेरा नाम न पाया भेस।
तेरी सुरत के कारणे , धर लिया भगवा भेस।।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै , घूँघर वाला केस।
'मीरा' को प्रभु गिरिधर मिल गये, दूना बढ़ा सनेस।।

४

राम मिलण रो घणो उमावो , नित उठ जोऊँ बाटड़ियाँ।
दरसण बिन मोहिं पल न सुहावै , कल न पड़त है आँखड़ियाँ।।
तलफ तलफ के बहु दिन बीते , पड़ी विरह की फाँसड़ियाँ।
अब तो बेगि दया कर साहिब , मैं हूँ तेरी दासड़ियाँ।।
नैण दुखी दरसण को तिरसे , नाभि न बैठे साँसड़ियाँ।
रात दिवस यह आरत मेरे , कब हरि राखे पासड़ियाँ।।
लगी लगन छूटण की नाहीं , अब क्यों कीजै आटड़ियाँ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर , पूरौ मन की आसड़ियाँ।।

५

पायो जी, मैंने नाम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो॥
जनम जनम की पूंजी पाई, जग में सभी खोवायो।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवे, दिन दिन बढ़त सवायो॥
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, हरख हरख जस गायो॥

६

बसो मेरे नैनन में नन्दलाल।
मोहनी मूरति साँवरी सूरति नैना बने बिसाल॥
अधर सुधा रस मुरली राजित उर बैजन्ती माल॥
छुद्रघंटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल।
'मीरा' प्रभु संतन सुखदाई भक्त बछल गोपाल॥

७

करम गति टारे नाहि टरे।
सतवादी हरिचँद से राजा, नीच घर नीर भरे।
पाँच पांडु अरु कुंती द्रोपती, हाड़ हिमालय गरे॥
जज्ञ किया बलि लेण इंद्रासन, सो पाताल धरे।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, विष से अमृत करे॥

८

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।
दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई॥
भाई छोड्या बंधु छोड्या छोड्या सगा सोई।
साध संग बैठ बैठ लोक लाज खोई॥

भगत देख राजी हुई जगत देख रोई।
अँसुवन जल सींच सींच प्रेम बेलि बोई।।
दधि मथ घृत काढ़ लियो डार दई छोई।
राणा विष को प्यालो भेज्यो पीय मगन होई।।
अब तौ बात फैल पड़ी जाणे सब कोई।
'मीरा' राम लगण लागी होणी होय सो होई।।

९

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय।
साँप पिटारा राणा भेज्या मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी सालिगराम गई पाय।।
जहर का प्याला राणा भेज्या अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी हो अमर अँचाय।।
सूल सेज राणा ने भेजी दीज्यो मीरा सुलाय।
साँझ भई मीरा सोवण लागी मानो फूल बिछाय।।
'मीरा' के प्रभु सदा सहाई राखै विघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती गिरधर पै बलि जाय।।

१०

नहिं ऐसो जन्म बारम्बार।
क्या जानूं कछु पुन्य प्रकटे, मानुसा अवतार।।
बढ़त पल पल घटत छिन छिन, चलत न लागे बार।
बिरछ के ज्यों पात टूटे, लागे नहिं पुनि डार।।
भौसागर अति जोर कहिये, विषय ओखी धार।
सुरत का नर बाँधे बेड़ा, बेगि उतरे पार।।
साधु संता ते महंता, चलत करत पुकार।
"दास मीरा" लाल गिरिधर, जीवना दिनचार।।

११

मन रे परसि हरि के चरन।
सुभग सीतल कमल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरन।
जे चरन प्रहलाद परसे, इन्द्र पदवी धरन॥
जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हों, राखि अपने सरन।
जिन चरन ब्रह्मांड भेंट्यो, नख सिखौ श्री भरन॥
जिन चरन प्रभु परसि लीने, तरी गौतम धरन।
जिन चरन कालीहि नाथ्यो, गोप लीला करन॥
जिन चरन धार्‌यो गोबर्द्धन, गरब मघवा हरन।
'दास मीरा' लाल गिरिधर, अगम तारन तरन॥

१२

नातो नामको मो सूँ तनक न तोड़्यो जाय।
पाना ज्यों पीली पड़ी रे, लोग कहै पिंड रोग।
छाने लाँघन मैं किया रे, राम मिलन के जोग॥
बावल बैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाई म्हारी बाँह।
मूरख बैद मरम नहिँ जाने, करक कलेजे माँह॥
जाओ बैद घर आपने रे, म्हारो नाँव न लेय।
मैं तो दाधी बिरह की रे, काहे क औषद देय॥
माँस गलि गलि छीजिया रे, करक रह्या गल माँहि।
आँगुलियाँ की मूँदड़ी म्हाँरे, आवन लागी बाँहि॥
रहु रहु पापी पपीहा रे, पिव को नाम न लेय।
जे कोइ बिरहिन साम्हले तो, पिव कारन जिव देय॥
खिन मंदिर खिन आँगने रे, खिन खिन ठाढ़ी होय।
घायल ज्यूं घूमूं खड़ी, म्हारी बिथा न बूझे कोय॥
काटि कलेजो मैं धरूँ, रे कौआ तू ले जाय।
ज्याँ देसाँ म्हारो पिव बसै रे, वे देखत तू खाय॥

म्हारे नातो नाम को रे, और न ना तो कोय।
'मीरा' व्याकुल बिरहिनी रे, पिय दरसन दीजो मोय।।

१३

माई मेरे नैनन बान परी री।
जा दिन नैना श्याम न देखों बिसरत नाहिँ घरी री।।
चित बस गई साँवरी सूरत उर तें नाहिँ टरी री।
'मीरा' हरि के हाथ बिकानी सरबस दे निबड़ी री।।

हितहरिवंश

गोस्वामी हितहरिवंश का जन्म वैशाख वदी ११ सं० १५५९ में देवबंद (सहारनपुर) में और मरण सं० १६५० के लगभग हुआ। इनके पिता का नाम व्यासजी, माता का तारावती और स्त्री का रुक्मिणी था।

हितहरिवंश जी राधावल्लभ संप्रदाय के संस्थापक थे। ये संस्कृत और हिन्दी के अच्छे कवि थे। ये श्रीकृष्ण की वंशी के अवतार माने जाते हैं। संस्कृत में इन्होंने "राधा सुधानिधि" नामक १७० श्लोकों का एक काव्य रचा। कुछ लोगों का कहना है कि यह ग्रन्थ श्री चैतन्य महाप्रभु के शिष्य स्वामी प्रबोधानंद का रचा हुआ है। इनकी कविता का मुख्य लक्ष्य भक्ति था। हिन्दी में इन्होंने ८४ पद कहे हैं। उनमें से कुछ चुने हुए पद हम नीचे उद्धृत करते हैं—

१

ब्रज नव तरुनि कदम्ब मुकुट मनि श्यामा आजु बनी।।
नख सिखलौं अँग अंग माधुरी मोहे श्याम धनी।
यों राजत कवरी गूथित कच कनक कञ्ज बदनी।।
चिकुर चन्द्रिकनि बीच अरध विधु मानहुँ ग्रसत फनी।।

सौभग रस सिर स्रवत पनारी पिय सीमंत ठनी।
भृकुटि काम कोदंड नैन सर कज्जल रेख अनी।।
भाल तिलक ताटंक गंड पर नासा जलज मनी।
दसन कुन्द सरसाधर पल्लव पीतम मन समनी।।
चिबुक मध्य अति चारु सहज सखि साँवल विन्दु कनी।
प्रीतम प्रान रतन संपुट कुच कंचुकि कसित तनी।।
भुज मृनाल बल हरत वलय जुत परस सरस स्रवनी।
श्याम सीस तरु मनु मिडवारी रची रुचिर रवनी।।
नाभि गंभीर मीन मोहन मन खलन कौ हृदिनी।
कृश कटि पृथु नितंब किंकिनि बृत कदलि खंभ जघनी।।
पद अंबुज जावक युत भूषन प्रीतम उर अवनी।
नव नव भाव विलोम भाम इभ विहरति बर करनी।।
'हितहरिबंस' प्रसंसित श्यामा कीरति बिसद घनी।
गावत स्रवननि सुनत सुखाकर विस्व दुरित दवनी।।

२

चलहि किन मानिनि कुञ्ज कुटीर।
तो बिन कुँवर कोटि वनिता जुत मथत मदन की पीर।।
गदगद सुर बिरहाकुल पुलकित स्रवत विलोचन नीर।
क्वासि क्वासि वृषभाननंदिनी विलपत विपिन अधीर।।
बंसी बिसिख व्याल मालावलि पञ्चानन पिक कीर।
मलयज गरल हुतासन मारुत साखामृग रिपु चीर।।
'हितहरिबंस' परम कोमल चित सपदि चली पिय तीर।
सुनि भयभीत बज्र को पिंजर सुरत-सूर रन-बीर।।

३

आजु बन नीको रास बनायो।
पुलिन पवित्र सुभग यमुना-तट मोहन बेनु बजायो।।

कल कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचुपायो।
जुवतिनु मंडल मध्य श्यामघन सारँग राग जमायो।।
ताल मृदंग उपंग मुरज डफ मिलि रस सिंधु बढ़ायो।
विविध विसद वृषभान नंदिनी अंग सुगंध दिखायो।।
अभिनय निपुन लटकि लट लोचन भृकुटि अनंग नचायो।
तातथेइ ताथेई धरि नव गति पति व्रजराज रिझायो।।
सकल उदार नृपति चूड़ामणि सुख वारिद बरखायो।
परिरंभन चुंबन आलिंगन उचित जुवति जन पायो।।
वरखत कुसुम मुदित नभ नायक इन्द्र निसान बजायो।
'हितहरिबंस' रसिक राधापति जस वितान जग छायो।।

४

छप्पय

ना जानौं छिनु अंत कवन बुधि घटहिं प्रकासित।
छुटि चेतन जु अचेत तेउ मुनि भय विष वासित।।
पारासर सुर इंद्र कलप कामिनि मम फंदा।
परचो देह दुख द्वंद कौन क्रम काल निकंदा।।
इहि डर डरपहि 'हरिवंसहित', जिन विभ्रम गुन सलिलि पर।
जिहि नामनि मंगल लोक तिहुँ, हरि पदु भजु, न बिलंब कर।।

५

छप्पय

तैं भाजन कृत जटित विमल चंदन कृत इंधन।
अमृत पूरि तिहि मध्य करत सरषप बल रिंधन।।
अद्भुत धर पर करत कष्ट कंचन हल वाहत।
वारि करत पावारि मंद बोवन विष चाहत।।
'हितहरिबंस' विचारि कै, यह मनुज देह गुरु चरन गहि।
सकहि तो सब परपंच तजि, श्रीकृष्ण कृष्ण गोविन्द कहि।।

६

आरति कीजै स्यामसुन्दर की। नँद-नंदन श्री राधका-वर की।।
भक्ति को दीप प्रेम करि बाती। साधु संगति कर अनुदित राती।।
आरति ब्रज जुवतिन मन भावै। स्याम लीला 'हितहरिबंस' गावै।।

७

दोहा

तनहिं राखु सतसंग में, मनहिं प्रेमरस भेव।
सुख चाहत "हरिबंसहित", कृष्ण कल्पतरु सेव।।

८

निकसि कुंज ठाढ़े भये, भुजा परस्पर अंस।
राधा-वल्लभ मुख कमल, निरखत 'हितहरिबंस'।।

९

सब सों हित निहकाम मन, बृन्दाबन विश्राम।
राधा-वल्लभ लाल को, हृदय ध्यान मुख नाम।।

१०

रसना कटौ जु अनरटौ, निरखि अनफुटौ नैन।
स्रवन फुटौ जो अनसुनौ, बिनु राधा जसु बैन।।

नरहरि

नरहरि का जन्म सं० १५६२ में फतेहपुर ज़िले के असनी गाँव में हुआ। वे १०५ वर्ष तक जीवित रहे। अकबर के दरबार में इनका अच्छा मान था। एक बार एक कसाई एक गाय लिये जाता था। किसी तरह कसाई के हाथ से छूटकर गाय काँपती हुई नरहरि के घर में जा छिपी। नरहरि को गाय की दशा पर बड़ी दया आई। उन्होंने कसाई को गाय देने से इन्कार कर दिया, और एक छप्पय लिखकर गाय के गले में लटकाकर उसे अकबर के सामने उपस्थित किया। कहते हैं, इसके प्रभाव से अकबर ने उस गाय ही को नहीं छुड़वा दिया, बल्कि अपने राज में गोवध भी बंद कर दिया था। वह छप्पय यह है--

अरिहुँ दन्त तृन धरै, ताहि मारत न सबल कोइ।
हम संतत तृन चरहिं, बचन उच्चरहिं दीन होइ॥
अमृत पय नित स्रवहिं, बच्छ महि थंभन जावहिं।
हिन्दुहिं मधुर न देहिं, कटुक तुरुकहिं न पियावहिं॥
कह कवि "नरहरि" अकबर सुनो, बिनवत गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहिं मारियत, मुयहु चाम सेवइ चरन॥

इनके बनाये हुए नीति विषयक दो ग्रन्थ सुने जाते हैं। इनकी कविता के कुछ नमूने देखिये--

१

नरहरि धरहरि को करै, जननि सुतहिं विष देइ।
बेड़ा हठि खेती चरै, साधु परद्धन लेइ॥
साधु परद्धन लेइ, नाव करिया गहि बोरै।
सोइ पहरू सोइ चोर, प्रीति प्रियतम हठि तोरै॥
नृपति प्रजहिं दुख देइ, कौन समरथ करै धरहरि।
छितिपति अकबर साह, सुनो धरहरि करैं 'नरहरि'॥

२

ज्ञानवान हठ करै, निधन परिवार बढ़ावै।
बँधुआ करै गुमान, धनी सेवक ह्वै धावैं॥
पण्डित किरिया हीन, राँड़ दुरबुद्धि प्रमाने।
धनी न समझै धर्म, नारि मरजाद न माने॥
कुलवंत पुरुष कुल-विधि तजै, बन्धु न मानै बन्धु हित।
संन्यास धारि धन संग्रहै, ये जग में मूरख विदित॥

३

को सिखवत कुल-बधू, लाज गृह-काज रङ्ग रति।
हंसन को सिक्खवत, करन पय पान भिन्न गति॥
सज्जन को सिक्खवत, दान अरु शील सुलच्छन।
सिंहन को सिक्खवत, हनन गज कुंभ ततच्छन॥
विधि रच्यो जानि 'नरहरि' निरखि, कुल सुभाव को मिट्टवै॥
गुण धर्म अकब्बर साह सुन, को नर काको सिक्खवै॥

४

सठन सनेह जु करै, मान बेचै सुलुब्ध कहँ।
पिय बियोग सुख चहै, साँकरै तजै स्वामि कहँ॥
मन बन्धहिं पर रमन, खेल दुर्जन सँग खेलहिं।
नृपति मित्र करि गिनहिं, सर्प मुख अंगुलि मेलहिं॥
चुक्क हित समै 'नरहरि' निरखि, जड़ आगे बिस्तरहिं गुन।
पछतांहि सु ते नर भगति बिन, दौलत दलपति खान सुन॥

५

बैर धनी निरधनी, बैर कायर अरु सूरहिं।
घृत मधु माखी बैर, बैर निम्मूहिं कपूरहिं॥
मूसे सर्पहिं बैर, बैर पावक अरु पानी।
जरा जोबना बैर, बैर मूरख अरु ज्ञानी॥

बड़ बैर मोर जिमि चन्द मन, विरहिन बैर बसन्त सों।
'नरहरि' सुकब्बि कब्बित्त किय, मङ्गन बैर अदत्त सों॥

६

न कछु क्रिया बिन विप्र, न कछु कायर जिय छत्री।
न कछु नीति बिन नृपति, न कछु अच्छर बिन मन्त्री॥
न कछु बाम बिन धाम, न कछु गथ बिन गरुआई॥
न कछ कपट को हेत, न कछु मुख आप बड़ाई॥
न कछु दान सनमान बिन, न कछु सुभोजन जासु दिन।
जन सुनो सकल "नरहरि" कहत, न कछु जनम हरि-भक्ति बिन॥

७

सरवर नीर न पीवही, स्वाति बूंद की आस।
केहरि कबहुँ न तृन चरै, जो ब्रत करै पचास॥
जो ब्रत करै पचास, बिपुल गज्जूह बिदारै।
धन ह्वै गर्व न करै, निधन नहिं दीन उचारै॥
'नरहरि' कुल क सुधाव, मिटै नहिं जब लग जीवै।
बरु चातक मरि जाय, नीर सरवर नहिं पीवै॥

८

सर सर हंस न होत, बाजि गजराज न दर दर।
तर तर सुफर न होत, नारि पतिब्रता न घर घर॥
मन मन सुमति न होत, मलैगिर होत न बन बन॥
फन फन मनि नहिं होत, मुक्त जल होत न घन घन॥
रन रन सूर न होत हैं, जन जन होत न भक्ति हरि।
नर सुनो सकल 'नरहरि' कहत, सब नर होत न एक सरि॥

९

भूमि परत अवतरत, करत बानक विनोद रस।
पुनि जोबन मदमत्त, तत्व इन्द्री अनङ्ग बस॥

विजय हेत जड़ फिरत, बहुरि पहुँच्यो बिरधप्पन।
गयो जन्म गुन गनत, अन्त कछु भयो न अप्पन॥
थिर रहत न कोउ नरपति न बल, रहत एक चहुँ जुग जस।
सुइ अजर अमर 'नरहरि' निरखि, पिये भक्ति भगवंत रस॥

१०

कबहुँ द्वार प्रतिहार, कबहुँ दर दर फिरन्त नर।
कबहुँ देत धन कोटि, कबहुँ कर तर करंत कर॥
कबहुँ नृपति मुख चहत, कहत करि रहत बचन बस।
कबहुँ दास लघु दास, करत उपहास जिभ्य रस॥
कछु जानि न संपति गर्बिये, विपति न यह उर आनिये।
हिय हारि न मानत सतपुरुष, "नरहरि" हरिहिं सँभारिये॥

हरिदास

स्वामी हरिदास ललिता सखी के अवतार समझे जाते हैं। मुलतान के समीप सारस्वत ब्राह्मण-कुल में इनका जन्म हुआ था। कोई-कोई इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण मानते हैं। ये बड़े त्यागी और विरक्त पुरुष थे। इनके प्रायः सभी शिष्य महात्मा और सुकवि थे। इन्होंने निम्बार्क-सम्प्रदाय के अन्तर्गत टट्टी वाली वैष्णव-सम्प्रदाय चलाई। गान-विद्या में ये बड़े प्रवीण थे। तानसेन और बैजू बावरे को गानविद्या इन्हीं ने सिखलाई थी। ये वृन्दाबन में रहा करते थे। अकबर बादशाह भी एक बार तानसेन के साथ भेस बदलकर इनका दर्शन करने के लिये आये थे।

इन्होंने सिद्धान्त के १९ पद और केलिमाल (११० पद) नामक दो ग्रन्थों की रचना की है। इनके जन्म-मरण का ठीक समय विदित नहीं है।

इनकी कविता के कुछ नमूने हम आगे लिखते हैं—

१

राग विहाग

गहो मन सब रस को रस सार।
लोक बेद कुल करमै तजिये भजिये नित्य विहार।
गृह कामिनि कंचन धन त्यागौ सुमिरो श्याम उदार।।
गति 'हरिदास' रीति संतन की गादी को अधिकार।।

२

राग विभास

ज्यों ही ज्यों ही तुम राखत हौ त्यों हीं त्यों हीं रहियतु हों हो हरि।
और अचिरचै पाइ धरौं सु तो कहौ कौन के पैड़ भरि।।
जदपि हौं अपनो भायो कियो चाहौं कैसे करि सकौं जो तुम राखौ पकरि।
कहि 'हरिदास' पिंजरा के जनावर लौ तरफराइ रह्यो उड़िबे कों कितेउ करि ।।

३

काहू को बस नाहिं तुम्हारी कृपा तें सब होय बिहारी बिहारिनि।
और मिथ्या प्रपंच काहे को भाखियै सो तो है हारनि।
जाहि तुम सों हित तासों तुम हित करौ सब सुख कारनि।।
'श्री हरिदास' के स्वामी श्यामा कुंजबिहारी प्राननि के आधारनि।।

४

राग आसावरी

हित तौ कीजै कमल नैन सों जाहित के आगे और हित लागै फीको।
कै हित कीजै साधु सँगति सौं जावै कलमष जीको।।
हरि को हित ऐसो जैसो रँग मजीठ संसार हित कसूँभि दिन दुती को।
कहि 'हरिदास' हित कीजै बिहारी सों और न निबाहु जानि जी को।

५

तिनका बयारि के बस।
ज्यों भावै त्यों उड़ाइ लै जाइ आपने रस।।
ब्रह्मलोक सिवलोक और लोक अस।
कहि 'हरिदास' बिचारि देख्यो बिना बिहारी नाही जस।।

६

हरि के नाम को आलस क्यों करत हैरे काल फिरत सर साधे।
हीरा बहुत जवाहिर संचे कहा भयो हस्ती दर बाँधे।।
बेर कुबेर कछू नहि जानत चढ़े फिरत है काँधे।
कहि 'हरिदास' कछू न चलत जब आवत अन्त की आँधे।।

७

राग कल्यान

हरि को ऐसोई सब खेल।
मृगतृस्ना जग व्याप रही है कहूँ बिजोरो न बेल।
धनमद, जोबनमद औ राजमद ज्यों पंछिन में डेल।
कहि 'हरिदास' यहै जिय जानौ तीरथ को सो मेल।।

८

प्रेम-समुद्र रूप-रस गहिरे कैसे लागै घाट।
बेकारयो दै जानि कहावत जाति पनों की कहा परी बाट।।
काहू को सर परै न सूधो मारत गाल गली गली हाट।
कहि 'हरिदास' बिहारिहिं जानौ तकौ न औघट घाट।।

नन्ददास

नन्ददास को कुछ लोग तुलसीदासजी का सगा भाई बताते हैं। ये स्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। अष्टछाप में इनका भी नाम है। २५२ वैष्णवों की वार्ता में लिखा है कि शिष्य होने के पहले ये एक बार द्वारिका जा रहे थे; पर राह भूलकर सीनन्द गाँव में पहुँचे। वहां एक खत्री की परम सुन्दरी स्त्री पर आसक्त हो गये। उस स्त्री के सम्बन्धी इनसे पिंड छुड़ाने के लिये उसे लेकर गोकुल चले गये, ये भी पीछे पीछे लगे रहे। अंत में विट्ठलनाथजी के उपदेश से इनका मोह भंग हुआ; और ये कृष्ण भगवान के प्रेम में फँस गये।

इन्होंने कई ग्रंथ बनाए हैं। उनके नाम ये है—रास-पंचाध्यायी, अनेकार्थ नाम-माला, रुक्मिणी-मंगल, हितोपदेश, दशमस्कंध भागवत, दान-लीला, मान-लीला, ज्ञान-मंजरी, अनेकार्थ-मंजरी, रूप-मंजरी, नाम-मंजरी, नाम-चिंतामणि-माला, रस-मंजरी, विरह-मंजरी, नाम-माला, नासकेतु पुराण (गद्य) और श्याम-सगाई। भ्रमर-गीत भी इन्हीं का रचित कहा जाता है। इसकी कविता भी बड़ी मनोहारिणी है। २५२ वैष्णवों की वार्ता में लिखा है कि इन्होंने समस्त श्रीमद्भागवत का पद्यानुवाद किया था; परंतु मथुरा के कथा-वाचकों के आग्रह से इन्होंने उसे यमुनाजी में प्रवाहित कर दिया। रास-पंचाध्यायी की रचना इन्होंने अपने एक मित्र की सम्मति से की थी।

भ्रमर-गीत, इनके हिन्दी-भागवत का अंश जान पड़ता है, क्योंकि उसके प्रारंभ में पुस्तक प्रारंभ का कोई लक्षण नहीं। उसमें कुल ७५ पद्य हैं।

रास-पंचाध्यायी और भ्रमर-गीत के कुछ सुन्दर पद हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

रास-पंचाध्यायी

बन्दन करौं कृपानिधान श्रीसुक सुभकारी।
सुद्ध ज्योतिमय रूप सदा सुन्दर अविकारी॥

हरि लीला रस मत्त मुदित नित विचरत जग में।
अद्भुत गति कतहूँ न कटक ह्वै निकसत मगमें ।।१।।
नीलोत्पलदल श्याम अंग नव जोबन भ्राजै।
कुटिल अलक मुखकमल मनो अलि अवलि विराजै ।।
ललित विसाल सुभाल दिपति जनु निकर निसाकर।
कृष्ण भगति प्रतिबन्ध तिमिर कहँ कोटि दिवाकर ।।२।।
कृपा रङ्ग रस ऐन नैन राजत रतनारे।
कृष्ण रसासव पान अलस कछु घूम घुमारे ।।
श्रवण कृष्ण रसभवन गण्ड मण्डल भल दरसै।
प्रेमानन्द मिलिन्द मन्द मुसुकनि मधु बरसै ।।३।।
उन्नत नासा अधर विम्ब सुक की छवि छीनी।
तिन मह अद्भुत भाँति जु कछुक लसित मसि भीनी ।।
कम्बु कण्ठ की रेख देखि हरि धरमु प्रकासै।
काम क्रोध मद लोभ मोह जिहि निरखत नासै ।।४।।
उर वर पर अति छवि की भीर कछु बरनि न जाई।
जिहि भीतर जगमगत निरन्तर कुँअर कन्हाई ।।
सुन्दर उदर उदार रोमावलि राजति भारी।
हियो सरोवर रस भरि चली मनो उमगि पनारी ।।५।।
जिहि रस की कुण्डिका नाभि अस शोभित गहरी।
त्रिवली तामहँ ललित भाँति मनु उपजत लहरी ।।
अति सुदेस कटि देस सिंह सोभित सघनन अस।
जोबन मद आकरसत बरसत प्रेम सुधारस ।।६।।
गूढ़ जानु आजानु-बाहु मद-गज-गति लोलैं।
गङ्गादिकन पवित्र करत अवनी पर डोलैं ।।
जब दिनमनि श्रीकृष्ण दृगन तें दूरि भये दुरि।
पसरि परचौ अँधियार सकल संसार घुमड़ि घिरि ।।७।।
तिमिर ग्रसित सब लोक-ओक लखि दुखित दयाकर।

प्रकट कियो अद्भुत प्रभाव भागवत विभाकर।।
श्री वृन्दाबन चिदघन कछु छबि बरनि न जाई।
कृष्ण ललित लीला के काज गहि रह्यो जड़ताई।।८।।
जहँ नग खग मृग लता कुञ्ज वीरुध तृन जेते।
नहिं न काल गुन प्रभा सदा सोभित रहैं तेते।।
सकल जन्तु अविरुद्ध जहाँ हरि मृग सँग चरहीं।
काम क्रोध मद लोभ रहित लीला अनुसरहीं।।९।।
सब दिन रहत वसन्त कृष्ण अवलोकनि लोभा।
त्रिभुवन कानन जा विभूति करि सोभित सोभा।।
ज्यों लक्ष्मी निज रूप अनूपम पद सेवति नित।
भू बिलसत जु विभूति जगत जगमग रही जित कित।।१०।।
श्री अनन्त महिमा अनन्त को बरनि सकै कवि।
संकरपन सों कछुक कही श्रीमुख जाकी छबि।।
देवन में श्री रमारमन नारायन प्रभु जस।
बन में वृन्दावन सुदेस सब दिन सोभित अस।।११।।
या बन की बर बानिक या बनही बन आवै।
सेस महेस सुरेस गनेस न पारहिं पावै।।
जहँ जेतिक द्रुमजात कल्पतरु सम सब लायक।
चिन्तामणि सम सकल भूमि चिन्तित फलदायक।।१२।।
तिन महँ इक जु कल्पतरु लगि रही जगमग ज्योती।
पात मूल फल फूल सकल हीरा मनि मोती।।
तहँ मुतियन के गन्ध लुब्ध अस गान करत अलि।
नर किन्नर गन्धर्व अपच्छर तिन पर गइ बलि।।१३।।
अमृत फुही सुख गुही अति सुही परत रहत नित।
रास रसिक सुन्दर पियको स्रम दूर करन हित।।
ता सुरतरु महँ और एक अद्भुत छबि छाजै।।

ता तरु कोमल कनक भूमि मनिमय मोहत मन।
दिखियतु सब प्रतिबिम्ब मनौ घर महँ दूसर वन।।
जमुनाजू अति प्रेम भरी नित बहत सुगहरी।
मनि मण्डित महि माँह दौरि जनु परसत लहरी।।१५।।
तहँ इक मनिमय अंक चित्र को सङ्ख सुभग अति।
तापर षोडश दल सरोज अद्भुत चक्राकृति।।
मधि कमनीय करिनिका सब सुख सुन्दर कन्दर।
तहँ राजत ब्रजराज कुँअर वर रसिक पुरन्दर।।१६।।
निकर विभाकर दुति मेंटत सुभ मनि कौस्तुभ अस।
सुन्दर नन्द कुँअर उर पर सोई लागति उडु जस।।
मोहन अद्भुत रूप कहि न आवत छवि ताकी।
अखिल खण्ड व्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी।।१७।।
परमातम परब्रह्म सबनके अन्तरजामी।
नारायन भगवान धरम करि सबके स्वामी।।
बाल कुमर मौगण्ड धरम आक्रान्त ललित तन।
धरमी नित्य किसोर कान्ह मोहत सबको मन।।१८।।
अस अद्भुत गोपाल लाल सब काल बसत जहँ।
याही ते बैकुण्ठ बिभव कुण्ठित लागत तहँ ।।१९।।

पद

नंदभवन को भूषण भाई।
जसुदा को लाल वीर हलधर को, राधारमन परम सुखदाई।।
शिव को धन संतन को सरबस, महिमा वेद पुरानन गाई।।
इंद्र को इंद्र देव देवन को, ब्रह्म को ब्रह्म अधिक अधिकाई।।
काल को काल ईश ईशन को, अतिहि अतुल तोल्यौ नहिं जाई।
'नन्ददास' को जीवन गिरिधर, गोकुल गाँव को कुँवर कन्हाई।।

भ्रमर-गीत

ऊधव को उपदेस, सुनो ब्रजनागरी।
रूप सील लावन्य, सबै गुन आगरी॥
प्रेम धुजा रस रूपिनी, उपजावत सुख पुञ्ज।
सुन्दर श्याम विलासिनी, नव बृन्दावन कुञ्ज॥
सुनो ब्रजनागरी॥१॥
कहन स्याम सन्देस, एक मैं तुम पै आयो।
कहन समै संकेत, कहूँ अवसर नहिँ पायो॥
सोचत ही मन में रह्यो, कब पाऊँ इक ठाउँ।
कहि सँदेस नँदलाल को, बहुरि मधुपुरी जाउँ॥
सुनो ब्रजनागरी॥२॥
सुनत स्याम को नाम, ग्राम गृह की सुधि भूली।
भरि आनँद रस हृदय, प्रेम बेली द्रुम फूली॥
पुलकि रोम सब अँग भये, भरि आये जल नैन।
कण्ठ घुटे गदगद गिरा, बोले जात न बैन॥
व्यवस्था प्रेम की॥३॥
सुनत सखा के बैन, नैन भरि आये दोऊ।
बिवस प्रेम आबेस, रही नाहीं सुधि कोऊ॥
रोम रोम प्रति गोपिका, ह्वै रही साँवरे गात।
कल्पतरोरुह साँवरो, ब्रजबनिता भई पात॥
उलहि अँग अंग तें॥४॥

तानसेन

तानसेन सम्राट् अकबर के दरबारी गवैये और अकबरी दरबार के नौ रत्नों में एक थे। उस समय भारतवर्ष में तानसेन की समता का दूसरा कोई गायक नही था। अकबर तानसेन का बहुत मान भी करते थे। तानसेन की मृत्यु अकबर के सामने ही हो गई थी। उनकी मृत्यु पर अकबर ने अपने हृदय का दुःख इस प्रकार प्रकट किया था--

पीथल सों मजलिस गई, तानसेन सों राग।
हँसिबौ रमिबौ बोलिबौ, गयो बीरबल साथ॥

इस दोहे में पीथल से अभिप्राय बीकानेर के कुमार पृथ्वीराज राठौर से है, जिन्होंने महाराणा प्रताप को अपने विख्यात दोहे लिखकर उनको अकबर की अधीनता न स्वीकार करने की राय दी थी। उक्त दोहे से प्रकट है कि तानसेन भी अकबर के अंतरंग व्यक्तियों में थे।

'आईन अकबरी' में अबुल फ़ज़ल ने अकबर के छत्तीस दरबारी गवैयों में तानसेन का नाम सब से पहले लिखा है। और यह भी लिखा है कि विगत हज़ार वर्षों में तानसेन के बराबर कोई गवैया भारतवर्ष में नही हुआ।

तानसेन का जन्म 'शिवसिंह सरोज' के अनुसार सन् १५३२ में हुआ; पर यह तारीख़ ठीक नही जान पड़ती; क्योंकि तानसेन के जीवन की कुछ घटनाओं से इसकी संगति नहीं बैठती। अतएव विद्वानों का अनुमान है कि उनका जन्म सन् १५२० में हुआ होगा। फ़ारसी इतिहास के अनुसार उनकी मृत्यु अप्रैल सन् १५८९ ई० में हुई थी।

तानसेन के पिता का नाम मकरंद पाँड़े था। वे गौड़ ब्राह्मण थे। किंवदन्ती है कि तानसेन बचपन में बड़े नटखट थे। एक बार वे गोरू चरा रहे थे, तब पास ही के रास्ते से स्वामी हरिदास और उनके कुछ साथी साधु जा रहे थे। तानसेन कहीं आड़ से बाघ की बोली बोले और साधु लोग चौंक-कर भागने लगे; तब तानसेन हँसते हुए निकले। स्वामी हरिदास को तानसेन के कंठ-स्वर पर बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने उनको अपने साथ ले लिया

और उन्हें कविता-रचना तथा संगीत-विद्या सिखाकर कवि और गायक बना दिया। फिर उन्होंने ग्वालियर के सूफ़ी साधु और सुप्रसिद्ध गायक मुहम्मद ग़ौस से शिक्षा प्राप्त की। कहा जाता है कि मुहम्मद गौस ने अपने चेले तानसेन को गायन-शक्ति देने के लिये अपनी जीभ से उनकी जीभ छुई थी। संभव है, इसी कारण तानसेन अपने को मुसलमान मानने लगे हों। यह भी संभव है कि जवानी में मुसलमान रईसों के सम्पर्क में वे ज्यादा रहते हों, इससे वे स्वयं अपने ब्राह्मण-वर्ग से अलग रहते रहे हों। और यह भी संभव है कि मुसलमानों ने जब ग्वालियर को जीत लिया, तब उन्होंने ब्राह्मण कलावंतों को ज़बरदस्ती मुसलमान बना लिया हो, जिनमें तानसेन भी थे। अबुल फ़ज़ल ने अकबरी दरबार के जिन छत्तीस गवैयों के नाम दिये हैं, उनमें पंद्रह तो ग्वालियर ही के थे; वे प्रायः हिन्दू-नाम वाल हैं। जैसे स्वयं मियाँ तानसेन, उनके पुत्र तानतरंग खाँ तथा श्री ज्ञान खाँ, चाँद खाँ, विचित्र खाँ, बीर मंडल खाँ और प्रवीण खाँ आदि; उनके भाई का नाम सुभान खाँ मुसलमानी नाम है। नामों से जान पड़ता है, ये सब हिन्दू थे और ज़बरदस्ती मुसलमान बना लिये गये थे या अन्य किसी कारण से बन गये होंगे। यह भी किंवदन्ती है कि अकबर ने तानसेन को अपने दरबार में रखने के लिये अपनी एक कन्या से उनका विवाह करके उन्हें प्रसन्न कर लिया था, और तब उनको मुसलमान बनना पड़ा था। यह ग़लत जान पड़ता है। संभव है वे किसी सुन्दरी युवती पर आसक्त हो गये हों, और अकबर ने दोनों का विवाह करा दिया हो। पर हिन्दू-धर्म की छाप जो उनके मन पर जन्म से और हरिदास स्वामी के सत्संग से पड़ी थी, वह जन्मभर नहीं उतरी; जो उनके बनाये पदों से स्पष्ट प्रमाणित होती है।

एक बार अकबर ने तानसेन के गुरु हरिदास स्वामी का गान सुनने की इच्छा प्रकट की; पर हरिदास स्वामी ब्रज छोड़कर अकबर के दरबार में जाने को राज़ी नहीं हुए। तब अकबर तानसेन के साथ स्वयं हरिदास स्वामी की कुटी में गया। किसी प्रकार तानसेन ने अपने गुरु को गाने के लिये बाध्य किया। हरिदास स्वामी का गान सुनकर अकबर आनंद-विभोर हो गया।

बाहर आकर उसने तानसेन से पूछा—तानसेन ! तुम हरिदास स्वामी की तरह क्यों नहीं गा सकते ? तानसेन ने कहा—जहाँ-पनाह ! स्वामीजी विश्व के स्वामी के लिये गाते हैं और में दुनिया के एक शासक के लिये।

यह भी कहा जाता है, और उनके पदों से कुछ ऐसा ही प्रकट भी होता है कि तानसेन को अपनी विद्या पर अभिमान हो गया था। अकबर जैसे चक्रवर्ती सम्राट् का अन्यतम आदर पाकर और स्वयं संगीत-कला में पारंगत होने के कारण अभिमान होना स्वाभाविक ही था; पर इससे अन्य गुणीजनों को उनसे द्वेष हो गया और उनका मान-भंग करने की चेष्टा की जाने लगी थी। अकबर ने यह निर्णय दिया कि तानसेन के साथ जो प्रतिद्वंद्विता करेगा, दोनों में से जो हार जायगा, उसका सिर काट लिया जायगा। बैजू बावरे नाम का एक गायक तैयार हुआ। दोनों की परीक्षा के लिये दरबार लगा। पहले बैजू बावरे ने गाया, तब जंगल से कुछ हरिन दौड़ते हुए आये; जिनको बैजू बावरे ने मालायें पहनाई, और वे लौट गये। तब बैजू बावरे ने तानसेन से कहा—अब तुम हरिनों को बुलाओ और मालायें निकाल लो। पर तानसेन ने निष्फल प्रयत्न किया। अब तानसेन का सिर काटा ही जाना चाहिये था; पर बैजू बावरे ने बड़ी उदारता के साथ कहा—अच्छा, एक परीक्षा और भी कर ली जाय। एक पत्थर मँगाया गया। बैजू बावरे ने तानसेन से कहा—अपने स्वर से इसे पिघला दो। तानसेन ने बहुत जोर लगाया, पत्थर नहीं पिघला। तब बैजू बावरे ने गाकर उसे पिघला दिया। अब तानसेन का जीवित बचना कठिन था। अकबर बैजू बावरे पर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे मुँह-माँगा इनाम देने को कहा। तब कोमल-चित्त, उदार-हृदय बैजू बावरे ने धन-धान्य, गाँव और पद न माँगकर यह विनती की कि हम सभी कलावंत भाई-भाई हैं, कोई किसी कला में अधिक निपुण है, कोई किसी में। संसार को सब की आवश्यकता है। अतएव तानसेन को क्षमा कर दिया जाय, और दूसरी याचना मेरी यह है कि ऐसा मुक़ाबला दो कलाविदों में फिर कभी न कराया जाय।

अकबर ने दोनों माँगों को स्वीकार कर लिया और फिर भी बैजू बावरे

को कुछ इनाम देना चाहा, जिसे उसने नहीं लिया। इस तरह तानसेन की जान बची।

हरिन के गले में माला पहनाने और पत्थर पिघलाने की ऐसी कोई घटना अकबर के सामने ज़रूर घटी होगी। हम लोग स्वरों की शक्ति से ऐसे अनभिज्ञ हो गये हैं कि अब ऐसी बातों पर विश्वास ही नहीं होता। बैजू बावरे ने अपने कई पदों में इस घटना की सूचना दी है। देखिये—

१

नाद ब्रह्म अपरंपार किनहूँ न पायो पार,
सीखत पंडित कहायो गीत संगीत गुणीजन
मरजीया ह्वै नग लायो।
सात सप्तक गुपत प्रगट तीन सप्तक गोपाल गायो।
ब्रह्मा वेद उचरायो सारंग बौरायो मोतिन माल पिरायौ।
गरब धर पार चल्यो बार उलट ठहरायौ।
देश देश के गुणी सकल सृष्टि महामुनि
तेऊ रच पच गये भेद नही पायौ॥
तबही बैजू आयौ पाहन पिघलायौ तिनहीं
लुकायौ मृग बोलायौ गर को हार गोपाल ही दिवायौ॥
[राग मुलतानी धनाश्री, चौताल]

२

विद्या सोई भली जामें पइअत हे री लाल।
कुंज भवन में आय बैठे रीझ दई मृग-छाल।
गुप्त सप्त प्रगट छत्तीस डाँडी बाँध आयो,
नायक गोपाल।
बैजू के गाये तें सप्त सुर भूल गये,
पिघले पाखान बूड़े ताल।
[राग धनाश्री, चौताल]

३

यौवन गर्व सखी जिन कीजे रह्यो न काहू पै और न रहेगो।
रावन कुंभकरन हिरनाकुस बड़े बड़े छत्रपति सूर ढहिगो॥
मधुर रसना से पिय संग बोल ले आगे पाछे कोई न कहेगो।
बैजू के साधे सप्त सुर बाजे पिघले पत्थर माँझ ताल ढहेगो॥

[राग घनाश्री, चौताल]

तानसेन ने भी इस विवाद का समर्थन किया है—

नाद-समुद्र को पार न पायो सुनियत गुणी कहायो।
प्रबंध छन्द धारु धुरपद मार्ग देशी द्वैविध गायो॥
ब्रह्मा वेद उचरायो सारँग बौरायो भरथ मत कलिनाथ
हनुमत मत सप्ताध्याय गायो!
अनेक सृष्टि रचि गये पचि गये ब्रह्मा विष्णु रुद्र
महा मुनि प्रश्न भये सारँग बौरायो।
सप्त प्रगट सप्त गुपत नायक गोपाल ध्यायो
तानसेन ताको बैजू पाखान पिघलायो।

इन उदाहरणों से तो यह ध्वनि निकलती है कि विवाद वास्तव में बैजू बावरे का गोपाल नायक के साथ हुआ था, तानसेन के साथ नहीं।

कहा जाता है कि किसी समय, शायद वह वृद्धावस्था होगी, 'दीपक' राग के गाने में एक भूल हो जाने के कारण तानसेन को क्षय-रोग हो गया था। उसके इलाज के लिये, आबहवा बदलने के लिये, वे गुजरात गये थे और भिक्षुक के वेष में एक कुँवे के पास बैठे थे। कुँवें पर दो सुन्दरी युवतियाँ पानी भरने आई थीं। उनके पुकारने के नाम तानी और नानी थे। तानसेन को देखकर नानी ने तानी से कहा—इसको दीपक-राग लग गया जान पड़ता है। यह बात तानसेन ने सुन ली और उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कुँवे पर जाकर उनसे पूछा कि कैसे मालूम हुआ कि मुझे दीपक-राग लगा है। तानी और नानी ने बताया कि वे भी संगीत जानती हैं। तानसेन की प्रार्थना पर उन्होंने

उनको अपने घर ले जाकर ठहराया और कई महीनों की मेहनत से अनेक राग गा-गाकर उनको चंगा कर दिया; पर यह शर्त शपथ दिलाकर करा ली कि किसी को वे उनका नाम न बतायेंगे। चंगे होकर तानसेन अकबर के पास लौट आये। अकबर ने बड़ी खुशियाँ मनाई। अकबर के बड़ा हठ करने पर तानसेन ने उन दोनों युवतियों का नाम बता दिया। अकबर ने गुजरात के हाकिम को लिखकर शाही सम्मान के साथ दोनों को आगरे बुलवाया, और उनको जोधाबाई के अतिथि के रूप में बड़े सत्कार के साथ रक्खा। एक दिन उनके मुख से दीपक राग सुनने की इच्छा से बड़ा समारोह किया गया। उन देवियों की प्रतिज्ञा थी कि अपने पतियों के सिवा वे अन्य किसी पुरुष को अपना गुण न दिखायेंगी। तानसेन की जो सेवा उन्होंने कर दी थी, वह पतियों से पूछकर, केवल सेवाभाव से दुःखी का दुःख दूर करने की भावना से, की थी। तानसेन को यह बात मालूम थी, पर राज-हठ के सामने उनकी नहीं चली। राज्य के शिष्ट पुरुषों और स्त्रियों के सामने दोनों देवियों ने दीपक राग गाया, जिससे दीपक जल उठा। दर्शकों ने बड़ा आनंद मनाया; अकबर ने लाखों रुपये के सामान पुरस्कार में देने के लिये रखवा छोड़ा था; पर दीपक जलते ही दोनों युवतियों ने छिपी हुई कटार से आत्म-हत्या कर ली। सभा में हाहाकार मच गया; और तानसेन अपने को प्रतिज्ञा-भंग का दोषी मानकर ऐसे मर्माहत हुए कि वे विक्षिप्त हो गये और दरबार छोड़कर चले गये। विक्षिप्तावस्था में वे जंगलों और ऊजड़ स्थानों में गाते हुए वे घूमा करते थे। उस समय के उनके गाने तिल्लाना कहलाते हैं, जिनमें तानी और नानी शब्द भरे पड़े हैं। इसके बाद वे फिर अकबरी दरबार में नहीं आये।

तानसेन की मृत्यु के बाद उनका शरीर ग्वालियर ले जाया गया और ग्वालियर के किले के नीचे, मुहम्मद ग़ौस की क़ब्र के पास, खुले आँगन में वह दफनाया गया। इस मज़ार पर उनकी मृत्यु के दिन हरसाल बड़ा जलसा होता है, जिसमें उत्तर भारत के कलावंत और गवैये जमा होते हैं। उसीके पास इमली का एक पेड़ है। लोगों का विश्वास है कि उसके पत्ते चबाने से कंठ-स्वर मधुर हो जाता है।

अपनी जवानी के दिनों में तानसेन कुछ दिनों तक शेरशाह के पुत्र दौलत खाँ के दरबार में भी रह चुके थे। दौलत खाँ की मृत्यु के बाद वे रीवाँ चले गये और बांधव-नरेश राजा रामचंद्र बघेले के आश्रय में बहुत वर्षों तक रहे। सन् १५६२ में अकबर ने उन्हें अपने दरबार में बुला लिया। उस समय अकबर की अवस्था केवल बीस वर्ष की थी। यह आश्चर्य की बात है कि इतनी छोटी अवस्था ही में, जब कि गद्दी पर बैठे उसे छः ही वर्ष हुए थे, अकबर को संगीत का ऐसा शौक था कि उसने तानसेन की प्रशंसा सुनकर रीवां से उन्हें, कहा जाता है कि ज़बरदस्ती बुला लिया।

तानसेन के गानों से विदित होता है कि वे अच्छे कलावंत और संगीतज्ञों के सम्राट् होने के सिवा अच्छे कवि भी थे। यह भी आश्चर्य ही है कि संस्कृत के सुमधुर और भावपूर्ण शब्दों से जड़ी हुई उनकी कविता अकबर समझता और हिन्दू देवी-देवताओं की स्तुति को वह पसंद भी करता था। तानसेन की कविता की भाषा ब्रजभाषा थी। अकबर स्वयं ब्रजभाषा में कविता करता था। उसके दरबार में ब्रजभाषा के कवियों का अच्छा जमघट था, जिनमें, रहीम, बीरबल, गंग, हरिनाथ आदि तो हिन्दी के प्रमुख कवि गिने जाते हैं। पृथ्वीराज राठौर डिंगल में कविता करते थे, दरबार में उनका भी बड़ा मान था। तानसेन के समय में अरबी-फ़ारसी के शब्दों से लदी हुई उर्दू का जन्म नहीं हुआ था, इससे उनके ध्रुपदों में पुरानी और प्रचलित हिन्दी और संस्कृत ही के शब्द आये हैं।

तानसेन को संस्कृत का भी अच्छा ज्ञान जान पड़ता है, जो उनके पदों में सर्वत्र लक्षित होता है। तानसेन के पदों से प्रकट होता है कि वे अपनी जातीय संस्कृति के सिद्धान्तों तथा रामायण, महाभारत, पुराण, तंत्र-मंत्र, हिन्दू-देवी देवताओं के सहज-स्वरूप और कवि-कला से सुपरिचित श्रद्धावान् और भक्त ब्राह्मण थे।

यहाँ तानसेन के कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं—

१

प्रभास्कर भास्कर दिनकर दिवाकर भानु प्रगटे विहान।
तेरे उदै ते पाप ताप छटे कर्म धर्म प्रेम नेम होय
गुरु ज्ञान और ध्यान।
जगमगात जगत पर जगच्चक्षु ज्योति रूप
कश्यपसुत जगत के प्रान।
तानसेन के प्रभु उदै जगत कपाट खुलत
दीजिये विद्या कृपानिधान।।
[राग भैरव, ताल चौताल]

२

मुरारे त्रिभुवनपते इन्द्र सुरपते शेषनाग है फन पते।
क्षीर उदधि सलिलपते कौस्तुभ मणि रतननपते
दिनकर दिननपते विष्णु कमलापते।
शशि उड़गनपते हनुमान बलनपते।
नारद भक्तनपते साजन मृदङ्ग बीनपते।।
चिर चिरजीवो साह अकबर नरनपते
तानसेन तानपते।।

३

रंग जुगत सों गाय सुनावै ताल मूल सुर संगत आवै।
दुगन तिगन चौगुन सो भेद बजावै जब लागठाट परमान दिखावै।
अपने मुख ते न गुणी कहावै ताल मूल को ब्योरो न पावै।
तानसेन कहै होवै गुनीजन छत्रपति अकबर को रिझावै।।

४

भोर भये भैरव गावत भर मुरली में
श्री वृन्दाबन मध बनवारी।

सप्त स्वर तीन ग्राम अकइस मूरछना
लाग ठाट उरपति रपधारी।।
मधु माधवी भैरवी बंगाली बरारी सैन्धवी
यह भैरव की संग नारी।
तानसेन के प्रभु तानन मानन मोह लीनी ब्रजनारी।।

५

हेम किरीटिनी उषा देवी कनक बरनी सविता-गेहिनी।
उदत मधुर हास जग हँसायौ।
सिन्धु बाटि उदत भानु बिमल सोह जैसे मानौं,
दिसा नायरी कनक गागरी पानी भरि भरि मंगल अस्नान करायौ।
बिहग मधुर ललित तान गावै भुवन नव जीवन,
आनँद मगन सब जग जन मंगल गीत गायौ।
आई उषा कँवल नेत्री गायत्री जगधात्री लै कै
अरुन किरन मंजन तानसेन मानस तामस दूर लायौ।।
[राग ललित भैरव, ताल चौताल]

६

अन्त काल कृपा करो।
हिआ पर ठाढ़ौ हरि कँवल नैन कवँला पति
मुरली अधर ललित मधुर बंकिम भइ बंक बिहारी।
बदन खीन इंद्रियहीन पाप सुंवरि सुंवरि अस्थिर प्रान;
निरासा प्रवर विश्व अँधार, गेह छोड़ि प्रान जात हरि!
विषय आपद सुख संपद
धन जन दारा बांधव सुत सब कौ छोड़ि
चलि हौ, एक करम अब संगि रहियो।
पतित पावन प्रभु जनार्दन पतित दीन तानसेन

विश्व मोहन, पारगामी प्रान
आश्रय दीजै गोलोक बिहारी।
[रागिनी भैरवी, ताल चौताल]

७

जगत जीवन सविता देव अस्ताचल में जात,
अँधार जगत मोहित होके मोह माया में सुपत।
पसु पंछी कलरव कर जात, सब आपे कौ
पवन भये रहत गुपत।
प्रकृति स्तब्ध मुगध मोहजाल नर नारी
जीव जन्तु अचेतन होत आवत नींद सरन।
तानसेन प्रभु कृपानिधान जगत कारन
अज्ञान तम सों जात लुपत।
[रागिनी सायरी, ताल चौताल]

८

सरस सुन्दर ऋतुराज बसंत आवत भावन,
कुंज कुंज फूलि फूलि भँवर गूंजै कोयलि
पंचम गान मनावै नर नारी।
कानन कानन फूटत चमेली बकुल गंधराज
बेली मोतिया गुलाब सुगंध मनोहारी।
पवन चलत मंद मंद बिछुड़ि गंध चहुँ दिस,
गुंजन भ्रनन नाद पंचम पूरत सबहूँ बन भुव।
रतिपति भज जुवक जुवती, नाचत गावत
हिन्दोल माति, गोविन्द मंगल तानसेन गायौ री।
[रागिनी हिन्दोल, ताल चौताल]

९

बादर आयो री, बाल पिअ बिन लागइ डरपावन।
एक तो अँधेरी कारी, बिजरी चवंकत उमड़ घुमड़ बरखावन।

जबतें पिआ परदेस गॅवन कीनौ तब ते बिरह भयो मो तन तावन।
सावन आयो अति झर लावन तानसेन प्रभु न आवै मनभावन।
[राग मल्हार, ताल चौताल]

१०

चंद्रवदनी मृगनयनी हँस गवॅनी, चली है पूजन महादेव।
कर लिये अग्र थार, पुहपन के गूंथे हार, मुख दीयरा
जराये देवन में देव महादेव।
सोलह सिंगार बतीसौ आभरन सज नख सिख सुन्दर-
ताई छबि, बरनी न जाइ है निरमल मंजन कर सेव।
तानसेन कहै धूप दीप पुष्प पत्र नैवेद्य लै ध्यान लगाय
हर हर हर आदि देव।
[राग भैरव, ताल चौताल]

११

साईं तू न आवै आज, आधी रात, माँझ माँझ
सिंहनी जगावै सिंह कानन पुकार।
चंदन घसत घसत घस गये नख मेरे
बासना न पूरत माँग को निहार।
धिक जनम मेरे जग में जीवन मेरे बिमुख
लगावै नाथ पकरि बेनु बार बार।
हौं जन दीन अति नयन हू बारि बहै
तानसेन अन्तर बानी धुरुपद पुकार।
[रागिनी बिहाग, ताल चौताल]

१२

महादेव महाकाल धूरजटी सूली पंच बदन प्रसन्न नेत्र।
परमेश्वर परात्पर महाजोगी महेश्वर परम पुरुष प्रेम मय

परा सान्तिदाता।
सरितागन भिन्न भिन्न पंथ जैसे आवत सिंधुवा
पाइ रहत मगन।
तानसेन कहै तैसे भगत भिन्न भिन्न मूरति उपासत
ए मही बमूह आवत।
[राग भैरव, ताल धीमा तिताला]

१३

जगत जीवन हौ प्रभु भगत बछल तूँ ही भगवान, भगत
हिअ पंकजराज अचलराज राज राजेश्वर अगन भुवन पालक।
तू ही माता तं ही पिता तू ही धाता बान्धव तू ही प्रिय प्रानाराम
तू ही सान्ति सुख गति मोछ भक्तिदाता ब्रह्मतारक।
प्रान बल्लह बहु बल्लह, तानसेन कौ एक बल्लह, माया
मोह मुगध चीत संसार ताप तपत, सान्तिदाता
दीजै सान्ति दीन कौ।
[रागिनी अलैया, ताल चौताल]

१४

भोरही भैरव राग आलापे हो प्यारे बंसिआन।
खरज रिषभ गांधार मध्यम पंचम धैवत निपाद तान।
आरोही अवरोही अस्थायी संचाई ताल काल और मान।
उरपति रपलाग डांट देसी मारग तानसेन के सुनो
साह अकबर यह बिधि मुरली में कीने गान।।
[राग भैरव, ताल चौताल]

टोडरमल

टोडरमल खत्री थे। इनका जन्म सं० १५८० में और मरण सं० १६४६ में हुआ। ये बादशाह अकबर के भूमि-कर विभाग के प्रधान अमात्य थे। एक बार ये बंगाल के गवर्नर भी बनाये गये थे और इन्होंने कई बार पठानों को भी परास्त किया था। बही-खाते का सब से पहले इन्होंने ही प्रचार किया था। ये हिन्दी कविता भी करते थे। उसके कुछ नमूने नीचे देखिये—

सोहै जिन सासन में आतमानुसासन सु जीके दुखहारी सुखकारी साँची सासना। जाको गुन भद्रकार गुण भद्र जाको जानि भद्र गुन धारी भव्य करत उपासना।। ऐसे सार सास्त्र को प्रकास अर्थ जीवन को बनै उपकार नासै मिथ्या भ्रम वासना। ताते देस भासा अर्थ को प्रकास करु जाते मन्द बुद्धि हूँ के हिये होवै अर्थ भासना।। १।।

गुन बिनु धन जैसे, गुरु बिन ज्ञान जैसे, मान बिन दान जैसे, जल बिन सर है। कण्ठ बिन गीत जैसे, हित बिन प्रीति जैसे, वेश्या रस रीति जैसे, फल बिन तर है।। तार बिन जन्त्र जैसे, स्याने बिन मंत्र जैसे, पुरुष बिन नारि जैसे, पुत्र बिन घर है। 'टोडर' सुकवि तैसे मन में विचारि देखो धर्म बिन धन जैसे पच्छी बिना पर है।। २।।

जार को विचार कहा, गनिका को लाज कहा, गदहा को पान कहा, आँधरे को आरसी। निगुनी को गुन कहा, दान कहा दारिदी को, सेवा कहा सूम की अरण्डन की डार सौ।। मदपी को सुचि कहा, साँच कहा लम्पट को, नीच को बचन कहा, स्यार की पुकार सी। 'टोडर' सुकवि ऐसे हठी ते न टारे टरै, भावे कहो सूधी बात भावे कहो फारसी।।।३।।

बीरबल

महाराज बीरबल का जन्म सं० १५८५ वि० में, तिकवाँपुर ज़िला कानपूर में, एक साधारण ब्राह्मण के घर में हुआ। इनके पिता का नाम गङ्गादास था। प्रयाग के क़िले में जो अशोक-स्तम्भ है उस पर यह खुदा हुआ है--

"संवत् १६३२ शाके १४९३ मार्ग बदी ५ सोमवार गङ्गादास सुत महाराज बीरबल श्री तीरथ राज प्रयाग की यात्रा सुफल लिखितं।"

भूषण कवि ने इनका जन्मस्थान त्रिविक्रमपुर लिखा है, जो यमुना के तट पर बसा है और वही भूषण का भी जन्म-स्थान है। अतएव जो लोग बीरबल का जन्मस्थान नारनौल बताते हैं, उन्हें भूषण का यह दोहा देखना चाहिये--

द्विज कनौज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर।
बसत त्रिविक्रमपुर सदा, तरनि तनूजा तीर॥
बीर बीरबल से जहाँ, उपजे कवि अरु भूप।
देव बिहारीश्वर जहाँ, विश्वेश्वर तद्रूप॥

पर श्रीयुत विसेन्ट स्मिथ ने अकबरके इतिहासमें लिखा है कि, 'Birbal, orginally a poor Brahman, named Maheshdas, was born at Kalpi adout 1528, and consequently was fourteen years older than Akbar. He was at first in the service of Raja Bhagwandas, who sent him to Akbar early in the reign.' "अर्थात् बीरबल एक ग़रीब ब्राह्मण था, जिसका नाम महेशदास था। वह १५२८ में कालपी में पैदा हुआ। वह अकबर से लगभग १५ वर्ष बड़ा था। वह पहले राजा भगवानदास की सेवा में था। राजा ने उसे अकबर को दे दिया था।" डाक्टर ग्रियर्सन भी अपने The Modern Vernacular Literature of Hindustan

में बीरबल का नाम महेशदास ही लिखते हैं। बदाऊनी ब्रह्मदास नाम बतलाता है। बीरबल के जन्मस्थान के सम्बन्ध में भी बड़ा मतभेद चला आता है।

महाराज बीरबल अकबर के मन्त्री थे। अकबर इनको बहुत मानते थे। इन्होंने कई बार सेनापति का भी काम किया था और कई लड़ाइयाँ जीती थी। यहाँ तक कि सं० १६४० में, उत्तर पश्चिम सीमांत-प्रदेश के युद्ध ही में इनका प्राणान्त भी हुआ। जब इनके मरने का समाचार बादशाह अकबर को मिला, तब अकबर ने अत्यन्त दुःखी होकर यह सोरठा पढ़ा—

दीन देखि सब दीन, एक न दीन्हों दुसह दुख।
सो अब हम कहँ दीन, कछुक न राख्यो बीरबर॥

अकबर के दरबार में कट्टर मुसलमान वज़ीरों के बीच में रहकर भी इन्होंने हिंदुओं का बड़ा हित-साधन किया था। इनके ही प्रभाव से हिन्दुओं की बहुत सी कठिनाइयाँ दूर हुई थीं और हिन्दुओं को ऊंचे-ऊंचे पद मिले थे। अकबर बीरबल पर बड़ा विश्वास रखते थे। ये अपनी युक्ति-पूर्ण बातों से बादशाह का मनोरंजन भी खूब करते थे। एक साधारण दशा से अपने बुद्धि-बल के द्वारा उन्नति करके ये अकबर के नवरत्नों में हो गये थे और शाही दरबार से इन्होंने एक बड़ी जागीर और महाराजा की पदवी पाई थी। कविता में इनका उपनाम ब्रह्म था।

ये स्वयं ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे और कवियों का बड़ा आदर करते थे। केशवदास को एक बार इन्होंने एक छंद पर छः लाख रुपये दिये थे और ओड़छा-नरेश पर एक करोड का अर्थ-दंड क्षमा करा दिया था।

इनका लिखा कोई ग्रंथ देखने में नहीं आता। केवल पुस्तकों में कहीं-कहीं इनके कुछ छंद मिलते हैं। इनकी कविता बड़ी ही चमत्कार-पूर्ण और ललित होती थी। उसका नमूना देखिये—

उछरि उछरि भेकी झपटै उरग पर उरग पै केकिन के लपटैं लहकि हैं।
केकिन के सुरति हिये की ना कछू, है भये एकी करी केहरि न बोलत बहकि है॥ कहै कवि 'ब्रह्म' बारि हेरत हरिन फिरैं बैहर बहत बड़े

जोर सों जहकि है। तरनि के तावन तवा सी भई भूमि रही दसहू दिसान में दवारि सी दहकि है।।१।।

एक समै हरि धेनु चरावत बेनु बजावत मञ्जु रसालहि।
डीठि गई चलि मोहिन की वृषभानुसुता उर मोतिन मालहि।।
सो छवि 'ब्रह्म' लपेटि हिये करसों कर लै कर कंज सनालहि।
ईस के सीस कुसुम्भ की माल मनो पहिरावति व्यालिनि व्यालहि।।२।।
सखि भोर उठी बिन कंचुकी कामिनि कान्हर तें कार केलि घनी।
कवि 'ब्रह्म' भनै छवि देखत ही कहि जात नहीं मुखतें बरनी।।
कुच अग्र नखच्छत कंत दयो सिर नाय निहारि लियो सजनी।
ससिसेखर के सिर से सु मनों निहुरे ससि लेत कला अपनी।।३।।
पूत कपूत कुलच्छनि नारि लराक परोस लजाय न सारो।
बन्धु कुबुद्धि पुरोहित लम्पट चाकर चोर अतीथ धुतारो।।
साहब सूम अराक तुरंग किसान कठोर दिवान नकारो।
'ब्रह्म' भनै सुनु साह अकब्बर बारहो बाँधि समुद्र में डारो।।४।।
पेट में पौंढ़ के पौढ़ें महीपर पालना पौंढ़के बाल कहाये।
आई जबै तरुनाई त्रिया सँग सेज पै पौंढ़ के रंग मचाये।
छीर समुद्र के पौंढ़नहार को 'ब्रह्म' कबौं चित तें नहिं ध्याये।
पौंढ़त पौंढ़त पौंढ़त ही सो चिता पर पौंढ़न के दिन आये।।५।।

बीरबल के नाम से कुछ पहेलियाँ भी प्रसिद्ध हैं। उनमें से दो एक ये हैं :—

कर बोलै कर ही सुनै, स्रवन सुनै नहिं ताहि।
कहैं पहेली बीरबल, सुनिये अकबर साहि।।
'नाड़ी'।

मारो तो वह जी उठै, बिन मारे मर जाय।
कहैं पहेली बीरबल, मुर्दा आटा खाय।।
'तबला'।

तुलसीदास

तुलसीदासजी ने अपने जीवन के सम्बन्ध में हमें बहुत कम जानने दिया है। अपनी कविता में जहाँ कहीं उन्होंने अपने दुःख के दिनों को याद किया है और उनसे बच निकलने के लिए भगवान् को उसकी कृपा का धन्यवाद दिया है, उनसे हम इतना ही सही-सही जान सके हैं कि बचपन में उन्होंने बहुत ही दुःख सहे और दीनता के अनेक आघातों से बचते हुए उन्होंने अपने जीवन को सुरक्षित रक्खा, और जिसे एक महान् दानी की तरह समस्त मनुष्य-जाति के लिए उन्होंने दान कर दिया।

बचपन में उनको कैसे-कैसे शारीरिक और मानसिक कष्ट सहने पड़े, उनकी थोड़ी-सी झलक हम उनकी इन पंक्तियों में पायेंगे :—

द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहू।
हे दयालु दुनि दस दिसा दुख दोष दलन छम,
पर कियो न संभाषन काहू॥
हा हा करि दीनता कही द्वार द्वार बारबार
परी न छार मुँह बायो॥
असन बसन बिन बावरो जहँ तहँ उठि धायो॥
महिमा मान प्रिय प्रान ते तजि खोलि खलनि आगे,
खिनु खिनु पेट खलायो।
साँच कहौ नाच कौन सों जो न मोहि
लोभ लघु निलज नचायो॥

उनका दुःख देखकर दुःख भी दुःखी हो जाता था :—

जननी जनक तज्यो जनमि करम बिनु बिधिहुँ सृज्यो अवडेरे।
फिरेउ ललात बिनु नाम उदर लगि दुखउ दुखित मोहिं हेरे॥

उन्होंने सभी जातियों के टुकड़े खाये थे :—

जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस,
खाये टूक सबके बिदित बात दुनी सो।

कुत्ते को जो टुकड़ा फेंका जाता था, उसके लिए भी वे ललाते रहते थे :–

नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकन लागि ललाई।

वे मट्ठे के लिए तरसते रहते, तेल की खली खाते और कोदो (धान्य) का कना (चूरा) पाकर तो परमानंदित ही हो जाते थे––

छाछी को ललात,

तथा

हुतो ललात कृसगात खात खरि मोद पाइ कोदौ कनै।

शरीर पर एक कथरी और हाथ में मिट्टी का एक करवा ही उनका धन था :––

पातक पीन कुदारिद दीन मलीन धरे कथरी करवा है।
राम को किंकर सो तुलसी समुझेहि भलो कहिबो न रवा है।।

दरिद्रता के दुःखों से वह इतने दबे हुए थे कि भीख माँगने के बोल भी नहीं सीख सके और सिर्फ 'राम राम' बोलकर भीख माँगते फिरते थे। इससे लोगों ने उनका नाम ही 'राम बोला' रख लिया। माता-पिता तो नाम रख ही नही पाये थे, समाज में किसने रामबोला नाम रक्खा, वह यह भी नहीं जानते थे। इसी से उनका कहना है कि राम ने नाम रख दिया था––

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम।

वही 'राम बोला' तुलसीदास के नाम से विख्यात हुए। ये उद्‌गार उनकी वृद्धावस्था में उनके मुँह से निकले थे। दरिद्रता का ऐसा सजीव वर्णन शायद ही किसी कवि ने किया हो। एक-एक वाक्य में करुणा का एक जगत्-सा बसा हुआ है।

यह भगवान् का एक चमत्कार ही था कि उसने ऐसे एक माता-पिता हीन, घर-द्वार विहीन, निराश्रित अनाथ को नीचे से उठाकर सम्मान के पर्वत पर इतने ऊँचे पहुँचा दिया, जिसके लिए बड़े-बड़े राजा-महाराजा,

करोड़पती और लोक-नेता भी तरसते हैं। और उसी परम दरिद्र के हाथ से भगवान् ने रामचरितमानस जैसा विभव बँटवाया, जिसका मूल्य समूचा एक देश देकर भी नही चुकाया जा सकता, और जिसके लिए राजा-रंक सभी समान श्रद्धा से हाथ फैलाते हैं और वह सब के लिए सुलभ भी है।

उनके समय का सम्राट् अकबर अब नहीं है; इतिहास-ग्रंथों में अब उसका नाम ही शेष है; पर तुलसीदास कम से कम पंद्रह करोड़ जनता के अब भी स्वामी और हितकारी सखा हैं। और जबतक हिन्दू-जाति जीवित रहेगी, तबतक वे अमर रहेंगे। वे प्रत्येक हिन्दी भाषा-भाषी हिन्दू के जीवन के अंधकार-मय रास्तों पर एक सन्मित्र की तरह दीपक लिए निरंतर खड़े मिलते हैं।

तुलसीदास जिस समय में हुए थे, उस समय देश की क्या दशा थी, उसकी कुछ झलक उनके ग्रन्थों में इस प्रकार मिलती है--

कलिमल ग्रसे धरम सब, लुप्त भये सद्ग्रंथ।
दंभिन निज मत कलपि करि, प्रकट किये बहु पंथ॥
गोड़ गँवार• नृपाल महि, यमन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥
जेहि विधि होइ धरम निरमूला। सो सब करहिं वेद प्रतिकूला॥
जेहि जेहि देस धेनु दिज पावहि। नगर गाँव पुर आगि लगावहि॥
जप जोग विरागा तप मख भागा, स्रवन सुनइ दस सीसा।
आपुन उठि धावइ रहइ न पावइ, धरि सब घालइ खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा, धरम सुनिय नहिं काना।
तेहि बहु विधि त्रासइ देस निकासइ जो कह वेद पुराना॥

यहाँ दससीसा से अभिप्राय तत्कालीन मुगल-सम्राट् या उसके अमीर उमरावों से है।

इस प्रकार हिन्दू-धर्म के विरुद्ध ऊपर से आघात पर आघात हो रहे थे,

भीतर साम्प्रदायिक कलह जोरों पर था; शैव और वैष्णव सम्प्रदायों में घोर शत्रुता चल रही थी; बौद्ध-धर्म वैदिक-धर्म से लोगों की आस्था हटा कर यद्यपि स्वय अग्राह्य हो गया था, पर अनेक विकृत रूपों में उसका प्रभाव तब भी कायम था।

गोरखनाथ ने अपना अलग पंथ चला लिया था; कबीर के निर्गुणवाद से मस्तिष्क तो झकझोर उठता था जरूर, पर हृदय को स्पर्श करने की शक्ति उसमें नही थी। संस्कृत-साहित्य से हिन्दू-समाज का संबंध टूट गया था। संस्कृत-भाषा का रूप भी पाली, प्राकृत और अपभ्रंश होते-होते हिन्दी, अवधी, ब्रजभाषा, गुजराती, मराठी आदि में बदल गया था। संस्कृत से अलग होते ही वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और दर्शन तथा शक्तिदायी काव्यों से प्राप्त होने वाले ज्ञान की धारा भी अवरुद्ध हो गई थी, ऋषि मुनियों के तत्त्वज्ञान, दार्शनिकों के आत्मचिंतन और स्मृतिकारों के सामाजिक नियमों के ज्ञान से वंचित होकर हिन्दू-समाज बिना पाल की नाव हो गया था।

हिन्दू-जाति की यह दुर्दशा देखकर तुलसीदास के हृदय को मार्मिक व्यथा हुई जान पड़ती है। वे संस्कृत-साहित्य के अच्छे विद्वान् थे; वेद उपनिषद्, स्मृति, दर्शन, पुराण और काव्यों का उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था; उनको लगा कि हिन्दू-समाज यदि अपने प्राचीन मार्ग पर चलता होता तो उसकी ऐसी दुर्गति न होती। पर प्राचीन और वर्तमान के बीच में मत-मतान्तरों ही की नहीं, भाषा की भी चौड़ी खाई बन चुकी थी। देश और समाज की ऐसी दुर्दशा देखकर केवल वे पछताकर नहीं रह गये, बल्कि एक कर्मयोगी की तरह उसके सुधार में लग गये और बाहर से नहीं, बल्कि हृदय के रास्ते उन्होंने समाज में प्रवेश किया और कविता को उसका एक साधन बनाया। उनके इस प्रयोग का नाम रामचरितमानस है; जिसे हम प्राचीन और वर्तमान के बीच की चौड़ी खाई पर सेतु-बंध कह सकते हैं। रामचरित मानस के उत्तरकांड में तत्कालीन समाज के अधःपतन का जो चित्र तुलसीदास ने खींचा है, उसे देखकर किसी भी सहृदय का अश्रुपात हुए बिना न

रहेगा। यह कितना बड़ा काम हुआ है। हिन्दू-समाज में अपने राजर्षियों और ऋषिमुनियों के भव्य चरित्रों से जो अविचल प्रेम है, धर्म और मर्यादा-पालन की ओर जो उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है, रामचरितमानस से मानों उसमें फिर से प्राण आ गया। धर्मानुराग, उदार चरित्रों की चर्चा, पाप-पुण्य की व्याख्या और गृहस्थाश्रम-धर्म की उपयोगितां आदि विषय जो सूख रहे थे, फिर से पनप उठे। हिन्दू-समाज ने मानों वह वस्तु पा ली, जो युग-युगान्तर से उसकी थी और खो गई थी। अकेले रामचरितमानस को पाकर ऐसा जान पड़ने लगा, मानों उसने अपना सर्वस्व पा लिया।

इस प्रयोग का कुछ खुलासा कर देने से उनके कौशल को हम अच्छी तरह समझ लेंगे। पहले उन्होंने राम को अपने काव्य का प्रधान नायक चुना। क्योंकि राम का उदार-चरित्र संस्कृत कवियों और सांप्रदायिक आचार्यों के उपदेशों-द्वारा साधारण-जन-समाज में शताब्दियों से प्रवेश पा चुका था। राम की उसी लोक-प्रसिद्ध कथा को उन्होंने अपने साँचे में ढाल लिया और उसी पर अपने प्रयोग की नीव रक्खी। हिन्दू-जाति के धर्म-विद्वेषियों से अपने प्रयोग की रक्षा के लिए उन्होंने जो दूरदर्शिता दिखलाई और अपने ग्रंथों में कहीं भी 'हिन्दू' शब्द नहीं आने दिया, उससे उनकी गहरी सतर्कता प्रकट होती है।

गृहस्थाश्रम आर्य-जाति की नींव है। रामचरितमानस उसी गृहस्थाश्रम का एक काव्य बना। सारे काव्य में गृहस्थ-धर्म पर भिन्न-भिन्न दिशाओं से पड़े हुये आघातों का प्रदर्शन हुआ है। दशरथ महाराज को कई स्त्रियों से विवाह करने का परिणाम देखना पड़ा; रानियों में सौतिया-डाह का प्रसंग आया; कैकेयी और मंथरा का कुचक्र चला; राम को राज्य छोड़ कर बन जाना पड़ा; भरत के सामने राज्य का प्रलोभन आया; सब पर गृहस्थाश्रमधर्म को विजय मिली। काव्य के प्रत्येक पात्र ने गृहस्थाश्रम धर्म की पुष्टि की; सबने अपनी-अपनी मर्यादा का पालन दृढ़ता और निष्ठा से किया।

इस प्रकार दशरथ के परिवार को आदर्श बनाकर तुलसीदास ने हमें गृहस्थ-धर्म के शास्त्रीय स्वरूप की याद दिलाई। परिवार में दशरथ, उनकी

रानियों, राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न, पुत्रों तथा सीता, गुरु वशिष्ठ और सुमन्त्र मन्त्री आदि भिन्न-भिन्न स्वभावों के व्यक्ति हैं; फिर भी सब अपने अपने स्वभावों का प्रदर्शन करते हुए गृहस्थ-धर्म के एक केन्द्र की परिक्रमा करते हुए दिखाई पड़ते हैं। पिता-पुत्र में, भाई-भाई में, सौतों में, सास-पतोहू में, गुरु-शिष्य में, मित्रों में और स्वामी-सेवक में श्रुति-स्मृति-सम्मत कैसा व्यवहार होना चाहिए, तुलसीदास ने सबका उदाहरण देकर हमें बताया। राम को मर्यादा-पुरुषोत्तम सत्पुरुष के रूप में उन्होंने ऐसा चित्रित किया कि जनता उनका अनुसरण करने के लिए उत्साहित हो उठी। सबने समझा कि ऐसा ही उनके परिवारों में हो, तो वे सुखी हो सकते हैं।

राम के व्यक्तित्व में उन्होंने उन सारे गुणों को भर दिया, जिनकी आवश्यकता उस समय के प्रत्येक गृहपति को थी, जिनके द्वारा समाज सुदृढ़ और संगठित होता। गृहपति को कैसा होना चाहिए, इसके लिए उन्होंने रामै का आदर्श सामने रक्खा।

मानस भर में उन्होंने बड़ी सजगता के साथ सर्वत्र राम के शील-स्नेह-युक्त स्वभाव की सराहना की है।

को रघुबीर सरिस संसारा। सील सनेह निबाहन हारा।

राम अकारण ही करुणामय हैं, और हैं 'स्वारथ रहित सखा सबही के'। किसी से कोई चूक हो जाती है तो राम उसे भूल जाते हैं; पर उसके हृदय के प्रेम को सैकड़ों बार स्मरण करते हैं—

रहति न प्रभु चित चूक किये की। करत सुरति सै बार हिये की।

राम को केवल प्रेम ही प्यारा है—

रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा।

राम के बोलने, मिलने और विनय की प्रशंसा उनके बैरी भी करते हैं—

बैरिहु राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि विनय मन हरहीं।

राम ने शत्रु का भी अहित नहीं किया—

अरिहु क अनभल कीन्ह न रामा।

भरत राम के सौतेले भाई थे और उन्ही के कारण और उनकी माता ही के कुचक्र से राम को राज्य छोड़कर वन जाना पड़ा, फिर भी भरत पर राम का प्रेम और विश्वास अविचल बना रहा। वे कहते हैं—

सुनहु लखन भल भरत सरीखा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीखा॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥

सीता, लक्ष्मण, शत्रुघ्न तथा गुरु वशिष्ठ के साथ भी राम का व्यवहार मर्यादा से पूर्ण था। कैकेयी के प्रति भी राम में द्वेष-बुद्धि कभी नहीं आई। इस प्रकार एक परिवार को सुदृढ़ बनाने का प्रयोग दिखलाकर तुलसीदास ने पारिवारिक और सांप्रदायिक कलह को शांत करने का रूपक बाँधा।

उनके समय में देश में शैव, वैष्णव, वेदान्ती और संत इन चार मतवालों का आपस में बड़ा विद्रोह चल रहा था। काशी उसका मुख्य केन्द्र था। तुलसीदास ने चारों के लिए राम-कथा का एक केन्द्र निर्माण किया, और मानस के चार घाट बनाये। एक घाट पर शिव-पार्वती शैव मत के, दूसरे घाट पर याज्ञवल्क्य-भरद्वाज वेदान्त के, तीसरे पर काकभुशुंडि और गरुड़ संतमत के और चौथे पर गुरु और गोसाई वैष्णव मत के प्रतिनिधि-स्वरूप बैठकर राम-कथा कह रहे हैं। सब राम को परब्रह्म मानते है और उधर राम कहते हैं—

शिवद्रोही मम दास कहावै। सो नर सपनेहुं मोहिं न भावै।

इस तरह मुख्यतः शैवों और वैष्णवों की कलह-शान्ति का उपाय रचा गया, और वह सफल भी हुआ। आज जो हम शैवों और वैष्णवों का विद्वेष निर्मूल हुआ पाते हैं, वह रामचरितमानस ही का प्रभाव है। हमें भी गर्व होना चाहिए कि यह गौरव हमारी हिन्दी को मिला है।

संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में व्यास और तुलसीदास दो ही कवि ऐसे दिखाई पड़ते हैं, जिन्होंने कविता को लोक-कल्याण का साधन बनाया। आदि कवि वाल्मीकि के समय में तो रामराज्य था, समाज को संगठित करने और उसे ऊपर उठाने का प्रश्न ही उनके सामने नहीं था। कालिदास

आदि संस्कृत के बड़े-बड़े कवियों के समय में देश सुखी था, चिंता की कोई बात ही नहीं थी; इससे लोक-मनोरंजन और बुद्धि-विनोद ही कविता का मुख्य क्षेत्र बन गया था। तुलसीदास की तरह समाज को सर्वांग-स्वस्थ बनाने की भावना किसी में नहीं थी। संस्कृत और हिन्दी के अन्य कवियों ने अपने-अपने आश्रयदाताओं और साहित्य-रसिकों के लिए कविता की; पर तुलसीदास ने तो मनुष्य-मात्र के हित के लिए कविता की। वे स्वयं कहते हैं:—

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सबकर हित होई।

राम के चरित्र में तुलसीदास ने उनके एक गुण को, सारे रामचरित-मानस भर में, जहाँ-जहाँ अवसर मिला है, और प्रसंग निकालकर भी विशेष रूप से प्रदर्शित किया है, वह है निम्न श्रेणी के लोगों के साथ प्रेम-पूर्ण व्यवहार करना; उनका तिरस्कार न करना, उनसे घृणा न करना। केवट को तो राम का सखा ही कहा गया है। वशिष्ठ तक को उससे छाती से लगाकर भेंट कराया गया। लंका से वापस आते समय राम उसे अयोध्या ले आये और विदा करते समय ये वचन कहे—

जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू॥
तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता॥

राम-सखा को इससे कितना हर्ष हुआ होगा, उसे विचार-शील सज्जन स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

दूसरे गृध्रराज जटायु थे। उनका क्रिया-कर्म राम ने उनको पिता के समान मानकर किया; और कहा भी—

मेरे जान तात कछु दिन जीजै।
देखिय आपु सुवन सेवा सुख मोहि पितु को सुख दीजै।

तीसरे हनुमान थे। वे वानर-जाति के थे। वे राम के अनन्य सेवक थे। राम ने उनके संबंध में कहा—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुरनर मुनि तनुधारी ।।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा ।।

तुलसीदास कहते हैं--

प्रभु तरु तर कपि डार पर, ते किय आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम सों, साहेब सील निधान ।।

चौथे शबरी भीलनी की कथा लोक में प्रसिद्ध ही है।

दलित जातियों की जो दशा आज है, वही तुलसीदास के समय में भी थी। इससे हिन्दू-समाज कमजोर पड़ रहा था। तुलसीदास ने राम के व्यवहारों को दिखलाकर हमें सुझाया है कि हम अपनी कमजोरी को समझें, राम का अनुकरण करें, और दलितों को प्रेम-पूर्वक अपनायें।

रामचरितमानस किसी संप्रदाय-विशेष का ग्रन्थ नही है। उसमें सब मतों, सब विचारों और सब प्रकार के सिद्धांतों के पोषक तत्व विद्यमान हैं। इससे ज्ञानी से लेकर मूढ़ तक सब श्रेणी के मनुष्यों के कल्याण की बातें उसमें मिलती हैं, और यही उसकी विशेषता है। तुलसीदास के राम साधारण-जन के लिए तो 'मंगलमूल अमंगलहारी, द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी' हैं और ज्ञानवान के लिए परब्रह्म है--

संभु बिरंचि बिस्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना ।।

उपकारी पुरुषों के लिए चराचरमय जगत-स्वरूप हैं--

अहंकार सिवबुद्धि अज, मन ससि चित्त महान।
मनुज बास चर अचर मय, रूप राम भगवान ।।

इस प्रकार तुलसीदास ने रामचरितमानस द्वारा लोक-संग्रह का अद्भुत काम किया है।

वे एक उच्चकोटि के रससिद्ध कवि थे। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। उनके पहले जायसी ने एक प्रेम-कथा जरूर लिखी थी, पर व्यक्ति और समाज के समूचे स्वरूप का निर्माण करनेवाला तत्त्व उसमें

नहीं था। सिद्धों और नाथों के दोहे और साखियाँ भी बिजली की चमक जैसे थे।

जायसी की भाषा किसी समय सहज रही होगी, आज तो वह दुरूह हो गई है। पर तुलसीदास ने उसी भाषा में संस्कृत शब्दों का मिश्रण करके उसका रूखापन मिटा दिया और देहात के ठेठ शब्दों को संस्कृत के सुधावर्षी शब्दों के बीच में बैठाकर भाषा की आयु और उसका गौरव भी बढ़ा दिया। संस्कृत के हजारों शब्द रामचरितमानस का साथ पाकर गाँवों की अपढ़ और अशिक्षित जनता तक पहुँचे हुए हैं। इससे गाँव और नगर में विचारों की समता आ गई।

जोड़कर देखा गया है कि अकेले रामचरितमानस में तुलसीदास ने ५६७६२ शब्दों का और शेष ग्यारह ग्रन्थों में ७००५६ शब्दों का, कुल मिला कर १२६८२१ शब्दों का प्रयोग किया है। इतने शब्दों का प्रयोग तो शायद ही हिन्दी के किसी कवि ने किया हो। इनमें से ५० हजार शब्द भी संस्कृत के मान लिये जायँ तो इतने संस्कृत शब्दों से गाँववालों को परिचित कराने का श्रेय तुलसीदास ही को है।

तुलसीदास के निज के असली सिद्धांत रामचरितमानस से नहीं मालूम हो सकते। वह लोक-संग्रहात्मक ग्रन्थ है; उसमें बहुत से सिद्धांतों और विचारों का समन्वय है। उनके निजी सिद्धांत और विचार उनकी विनय-पत्रिका में हैं। वे राम के अनन्य भक्त थे और अवतारवादी थे; पर काम-धाम छोड़कर केवल राम-राम जपना और बेकार जीवन बिताना उनका सिद्धांत नहीं था। विनय-पत्रिका में वे कहते हैं--

नाहिन आवत आन भरोसो।
यहि कलिकाल सकल साधन तरु है स्रम फलनि फरो सो॥
तप तीरथ उपवास दान मख जेहि जो रुचै करो सो।
पायेहि पै जानिय करम फल भरि भरि बेद परोसो॥

एक स्थान पर और कहते हैं--

अस कछु समुझि परत रघुराया।
बाक्य ज्ञान अत्यंत निपुन भव पार न पावै कोई।
निसि गृह-मध्य दीप की बातन्हि तम निवृत्त नहिं होई ।।
जैसे कोइ इक दीन दुखित अति असनहीन दुख पावै।
चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न बिपति नसावै ।।
जब लगि नहि हृदि प्रकास अरु बिषय आस मन माही।
तुलसिदास तब लगि जग जोनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं ।।

एक वैष्णव भक्त होते हुए भी उन्होंने शुद्धि को समयानुकूल जानकर अब से चार सौ वर्ष पहले उसका समर्थन किया था। राम के मुख से उन्होंने कहलाया--

सनमुख होइ जीव मोहि जबही। जनम कोटि अघ नासौं तब हीं ।।
कोटि बिप्र अघ लागे जाही। आये सरन तजौं नहिं ताही ।।

तुलसीदास स्वयं कहते हैं--

स्वपच सबर खस जवन जड़, पाँवर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात ।।

इस दोहे में तो स्पष्टतः कहा गया है कि राम का नाम लेकर मुसलमान भी शुद्ध अर्थात् हिन्दू हो सकता है।

हिन्दी में सब से पहले तुलसीदास ही ने सुराज और रामराज्य की आवाज उठाई है। वे चाहते थे कि पहले हमें सुराज मिले; फिर हम उसे रामराज्य की विशेषताओं से पूर्ण कर लें।

उनके संकल्प कल्याणकारी थे; उनके प्रयत्न मंगलदायक थे; उनके मुख से एक समाज की सरस्वती बोली थी, इससे हृदय-हृदय ने उसे अपनी अन्तर्पीड़ा की अमोघ औषधि मानकर अपना लिया। अक्षरों का बाँध उनकी वाग्धारा को रोक नही सका। जिनको अक्षरज्ञान नहीं होता, वे अहीर, चमार, धोबी, नाई आदि जातियां अपने जातीय गीतों में उनके काव्य का पुट देकर गान करती हैं और आनन्द और उपदेश ग्रहण करती हैं। यदि

लोगों को अक्षर-ज्ञान न हो, और कालिदास और शेक्सपियर आदि प्रसिद्ध कवि पाठ्य-पुस्तकों में न रखे जायें, तो उनका नाम भी कोई न जानेगा। पर तुलसीदास के लिए यह बात नहीं कही जा सकती। उनकी वाणी अक्षरों के घेरे को लाँघकर अपढ़ लोगों के मुख में भी पहुँच गई है। आज तुलसीदास को हम गरीब की झोपड़ी से लेकर राजमहल तक समान रूप से आदरित होते पाते हैं। यह हमारे सौभाग्य की बात है। तुलसीदास के उपदेश हमारे जीवन में प्रकाश पहुँचाते हैं; हममें सदाचार की भावना उत्पन्न करते हैं; हमें पाप-पुण्य का भेद बताते हैं और हमें भगवान की ओर ले जाते हैं। हम अपने उद्धारकर्त्ता महाकवि को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हैं।

इस अभूतपूर्व महाकवि का जन्म संवत् १५८९ वि० में, सोरो (ज़िला एटा) में हुआ। यह भी प्रसिद्ध है कि उनका जन्म राजापुर में हुआ था। जन्मस्थान अभीतक विवादास्पद है। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी कहा जाता है। ये सनाढ्य ब्राह्मण थे। स्व० लाला सीताराम भी इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण बतलाते हैं। पर सर्वसाधारण में, खासकर वैष्णव साधुओं में, ये सरयूपारीण ब्राह्मण प्रसिद्ध हैं। इनके गुरु का नाम नरहरिदास था। रामचरितमानस के प्रारंभ में "बंदउँ गुरु-पद-कञ्ज, कृपासिन्धु नर रूप हरि" इस सोरठे के 'नर-रूप-हरि' पद से, लोग उनके गुरु का नाम नरहरि निकालते हैं। इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था। स्त्री पर इनका प्रेम अधिक था। एक दिन वह नैहर चली गई। इनसे पत्नी-वियोग न सहा गया। ये ससुराल जाकर स्त्री से मिले। स्त्री को लज्जा आई। उसने ये दोहे कहे :—

लाज न लागत आपुको, दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि चरम मय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ, होति न तौ भव भीति॥

यह बात गोसाईं जी को लग गई, और वे विरक्त हो गये। स्त्री बेचारी

को क्या मालूम था कि उसकी साधारण-सी बात का ऐसा परिणाम होगा। उसने बहुत विनती की, और भोजन करने को कहा, परन्तु इन्होंने एक न सुनी, और उसी समय ये ससुराल से चले गये और अयोध्या या काशी में जा कर साधू हो गये। यह घटना तुलसीदास के प्रेम की प्रौढ़ता प्रकट करती है। इनके हृदय में प्रेम का समुद्र लहरें मार रहा था। प्रेम की अटूट धारा जो क्षण भर पहले स्त्री की ओर बह रही थी, उसी को दूसरे ही क्षण में इन्होंने श्रीराम की ओर फेर दी, जो इनके जीवन के अन्तिम दम तक बड़े वेग से बहती रही। उस प्रेम की धारा ने तुलसीदास को अजर-अमर कर दिया। कौन जानता था कि एक छोटी-सी घटना से इनके जीवन का प्रवाह इस प्रकार बदल जायगा।

घर छोड़ने के पीछे एक बार स्त्री ने यह दोहा इनके पास लिख भेजा---

कटि की खीनी कनक सी, रहत सखिन सँग सोय।
मोहि फटे की डर नहीं, अनत कटे डर होय॥

इसके उत्तर में गोसाईजी ने लिखा---

कटे एक रघुनाथ सँग, बाँधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेम रस, पतिनी के उपदेस॥

वृद्धावस्था में एक दिन तुलसीदास चित्रकूट से लौटते हुए एक गाँव में एक कुटी पर टिक गये। संयोग की बात थी, वह कुटी इनकी धर्मपत्नी की थी, जिसमें इनके घर छोड़ने के बाद वह भी घर छोड़कर रहने लगी थी। स्त्री भी वृद्धा हो चुकी थी। उसने पहले तो इन्हें पहचाना नहीं, अतिथि-सत्कार के लिये चौका आदि लगा दिया। पीछे बातचीत होने पर उसने पहचाना कि ये मेरे पति हैं। उसकी इच्छा हुई कि मैं भी पति के साथ रहूँ। रात भर आगा पीछा सोचकर उसने सबेरे अपने को तुलसीदास के सामने प्रकट किया, और अपनी इच्छा कह सुनाई। परन्तु गोसाईजी ने अस्वीकार किया। इस अचानक भेंट का प्रभाव दोनों ओर कैसा पड़ा होगा, यह अनुमान करने पर बड़ा करुण जान पड़ता है। गोसाईजी और उनकी

स्त्री को अपनी युवावस्था के उस एक दिन की घटना याद आई होगी, जब उन दोनों का वियोग हुआ था।

गोसाईजी काशी और अयोध्या में बहुत रहा करते थे। परन्तु मथुरा, वृन्दाबन, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, चित्रकूट, जगन्नाथजी और सोरों (शूकरक्षेत्र) में भी भ्रमण किया करते थे। काशीजी में इनके कई स्थान प्रसिद्ध हैं, जहाँ ये रहते थे।

अन्य साधु-संतों की तरह इनके माहात्म्य की भी बहुत सी कथाएँ लोक में प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि हनुमानजी की कृपा से इनको श्रीरामचन्द्र जी का दर्शन भी हुआ था।

काशी में टोडरमल्ल नाम के एक जमींदार से गोसाईं जी का बड़ा प्रेम था। उनके मरने पर इन्होंने ये दोहे कहे थे—

महतो चारो गाँव को, मन को बड़ो महीप।
तुलसी या कलिकाल में, अथये टोडर दीप॥
तुलसी राम सनेह को, सिर धरि भारी भार।
टोडर काँधा ना दियो, सब कहि रहे उतार॥
तुलसी उर थाला विमल, टोडर गुन गन बाग।
ये दोउ नयननि सींचिहौं, समुझि समुझि अनुराग॥
रामधाम टोडर गये, तुलसी भये असोच।
जियबो मीत पुनीत बिनु, यही जानि संकोच॥

अकबर के प्रसिद्ध वज़ीर नवाब खानखाना (रहीम) से भी गोसाईंजी का बड़ा स्नेह था। आमेर के राजा मानसिंह भी इनका बड़ा आदर करते थे। कहते हैं कि ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि नन्ददासजी तुलसीदासजी के सगे भाई थे। तुलसीदासजी से सूरदासजी, नाभाजी और केशवदासजी से भी भेंट हुई थी।

तुलसीदासजी की कीर्ति भारत ही में नहीं, इंग्लैंड, अमेरिका, जर्मनी, आस्ट्रिया और रूस आदि देशों में भी फैल चुकी है। इनके 'रामचरितमानस'

का अंग्रेज़ी अनुवाद हो चुका है। रूसी भाषा में सन् १९४८ में अनुवाद हुआ। भारत की प्रांतीय भाषाओं में भी बंगला, उड़िया, मराठी, गुजराती तथा संस्कृत और अंग्रेज़ी में भी इसके अनुवाद हुए हैं। इनकी कविता पर अंग्रेज़ी में कितनेही निबंध लिखे जा चुके हैं।

तुलसीदास के विषय में अंग्रेज़ों की क्या सम्मति है, इस सम्बन्ध में हम प्रसिद्ध इतिहासकार श्रीयुत विसेंट स्मिथ की सम्मति यहाँ उद्धृत करते हैं:—

"वह कवि हिन्दी-कविता-कानन में सब से बड़ा वृक्ष है। उनका नाम न तो आईन-ए-अकबरी में मिलेगा और न मुसलमान इतिहासकारों की पुस्तकों में, और न उनका पता किसी फ़ारसी इतिहासकार के बयान से तैयार की हुई किसी योरोपीय लेखक की पुस्तक में ही लगेगा। तो भी वे अपने समय में भारत में सर्वश्रेष्ठ पुरुष थे। यहाँ तक कि उन्हें अकबर से बड़ा कहा जा सकता है; क्योंकि लाखों स्त्री और पुरुषों के हृदय पर उन्होंने जो विजय प्राप्त की है, वह उस बादशाह की जीती हुई कितनी ही लड़ाइयों से अधिक चिरस्थायिनी है। × × ×

"जिस ग्रंथ पर उनकी कीर्ति अवलम्बित है, उसका नाम 'रामायण' है। कवि ने उसे 'रामचरितमानस' कहा है। उत्तर हिन्दुस्तान के हिन्दुओं को यह ग्रंथ उतना ही प्यारा है जितना ईसाइयों को बाइबिल। हिन्दी-साहित्य में यह ग्रन्थ अद्वितीय है।"

तुलसीदासजी के रचे हुये निम्नलिखित ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—

१—रामचरितमानस, २—कवितावली ३—दोहावली, ४—गीतावली, ५—रामाज्ञा, ६—विनय-पत्रिका, ७—बरवै रामायण, ८—रामलला नहछ, ९—वैराग्य संदीपनी, १०—श्रीकृष्ण-गीतावली, ११—पार्वती-मङ्गल, १२—जानकी-मंगल।

इनके सिवा और भी कितने ही काव्य-ग्रंथ तुलसीदासजी के रचे हुए कहे जाते हैं।

संवत् १६८० वि०, श्रावण शुक्ला सप्तमी को तुलसीदास ने असी और गंगा के संगम पर शरीर छोड़ा। उस समय का यह दोहा प्रसिद्ध है—

संवत् सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
सावन शुक्ला सत्तमी, तुलसी तज्यो सरीर।।

मृत्यु के समय गोसाईंजी ने यह दोहा पढ़ा था—

रामनाम जस बरनि कै, भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये, अबही तुलसी सोन।।

इस प्रकार हिन्दी-भाषा को अनंत काल के लिये गौरव और हिन्दू-जाति को अक्षय अन्तर्बल प्रदान करके महात्मा तुलसीदास ने अपना जीवन सफल किया। यहाँ मानस से कुछ प्रसंगों के अलग-अलग उदाहरण दिये जाते हैं, जिनसे कवि की अद्भुत प्रतिभा का परिचय मिलता है—

सीता की शोभा

जनम सिंधु पुनि बंधु बिष, दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि, चन्द बापुरो रंक।।
घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहिं पाई।।
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही।।
बैदेही मुख पटतर दीन्हें। होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हें।।
सिय सोभा नहिं जाय बखानी। जगदंबिका रूप-गुन-खानी।।
उपमा सकल मोहिं लघु लागी। प्राकृत नारि-अंग-अनुरागी।।
सीय बरनि तेहि उपमा देई। कुकबि कहाइ अजस को लेई।।
जौ पटतरिय तीय महँ सीया। जग अस जुबति कहाँ कमनीया।।
गिरा मुखर तनु अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी।।
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिय रमासम किमि बैदेही।।
जौ छबि सुधा-पयोनिधि होई। परम-रूप-मय कच्छप सोई।।
सोभा रजु मंदरसिंगारू। मथइ पानि पंकज निज मारू।।

एहि बिधि उपजइ लच्छि जब, सुन्दरता सुखमूल।
तदपि सँकोच समेत कबि, कहहिं सीय सम तूल।।

ग्रामीणों का चित्र

राम, लक्ष्मण और सीता बन को जा रहे थे, तब रास्ते में उन्हें गाँव-वाले मिलते जाते थे। उनके मन में इन पथिकों को देखकर जो कौतूहल होता था, उसका ठीक-ठीक चित्र सामने खड़ाकर देने में तुलसीदास ने जो क्षमता दिखलाई है, वह अद्वितीय है, अनुपम है—

सुनत तीरबासी नर नारी। धाये निज निज काज बिसारी॥
लषन राम सिय सुन्दरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥
अति लालसा सबहिं मन माही। नाउ गाउँ बूझत सकुचाही॥
जे तिन्ह महँ वयवृद्ध सयाने। तिन्ह करि जुगुति राम पहिचाने॥
सकल कथा तिन्ह सबहिं सुनाई। बनहिं चले पितु आयसु पाई॥
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं। रानी राय कीन्ह भल नाही॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये बन बालक ऐसे॥
राम लषन सिय रूप निहारी। होहिं सनेह बिकल नर नारी॥
पथिक अनेक मिलहिं मगु जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता॥
राजलषन सब अंग तुम्हारे। देखि सोच अति हृदय हमारे॥
मारग चलहु पयादेहिं पायें। जोतिष झूठ हमारेहि भायें॥
अगमु पंथु गिरि कानन भारी। तेहि महुँ साथ नारि सुकुमारी॥
करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई॥
जाब जहाँ लोग तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुमहिं सिरु नाई॥

एहि बिधि पूछहिं प्रेम बस, पुलक गात जल नैन।
कृपासिन्धु फेरहिं तिन्हहिं, कहि बिनीत मृदु बैन॥

सीता लषन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई॥
सुनि सब बाल वृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृह काज बिसारी॥
राम लषन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भये मगन देखि दोउ बीरा॥
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्ह सुर मनि ढेरी॥
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं। लोचन लाहु लेहु छन एहीं॥

रामहिं देखि एक अनुरागे । चितवत चले जाहिं सँग लागे ।।
एक नयन मग छबि उर आनी । होहिं सिथिल तन मन बर बानी ।।

एक देखि बटछाँह भलि , डासि मृदुल तृन पात ।
कहहिं गवाँइय छिनुक स्रमु , गवनब अबहिं कि प्रात ।।

एक कलस भरि आनहिं पानी । अँचइय नाथ कहहिं मृदु बानी ।।
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी । राम कृपालु सुसील बिसेखी ।।
जानी स्रमित सीय मन माही । घरिक बिलम्बु कीन्ह बट छाही ।।
मुदित नारि नर देखहिं सोभा । रूप अनूप नयन मनु लोभा ।।
बरनि न जाइ मनोहर जोरी । सोभा बहुत थोरि मति मोरी ।।
राम लषन सिय सुन्दरताई । सब चितवहिं चित मन मति लाई ।।
थके नारि नर प्रेम पियासे । मनहुँ मृगी मृग देखि दियासे ।।
सीय समीप ग्रामतिय जाहीं । पूछत अति सनेह सकुचाहीं ।।
बार बार सब लागहिं पाये । कहहिं बचन मृदु सरस सुभाये ।।
राजकुमारि बिनय हम करहीं । तिय सुभाय कछु पूछत डरहीं ।।
स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी । बिलगु न मानब जानि गँवारी ।।
राजकुँअर दोउ सहज सलोने । इन्ह तें लहि दुति मरकत सोने ।।

स्यामल गौर किसोर बर , सुन्दर सुखमा अयन ।
सरद सर्बरी नाथ मुख , सरद सरोरुह नयन ।।

कोटि मनोज लजावनिहारे । सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ।।
सुनि सनेहमय मंजुल बानी । सकुचि सीय मन महुँ मुसुकानी ।।
तिन्हहिं बिलोकि बिलोकति धरनी । दुहुँ सकोच सकुचति बर बरनी ।।
सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी । बोली मधुर बचन पिकबयनी ।।
सहज सुभाय सुभग तन गोरे । नामु लषन लघु देवर मोरे ।।
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी । पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि । निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सयननि।
भई मुदित सब ग्राम बधूटी । रंकन्ह राय रासि जनु लूटी ।।

पारबती सम पतिप्रिय होहू । देबि न हम पर छाँड़बि छोहू ।।
पुनि पुनि बिनय करिय कर जोरी । जौ एहि मारग फिरिय बहोरी ।।
दरसन देब जानि निज दासी । लखी सीय सब प्रेम पियासी ।।
मधुर बचन कहि कहि परितोषी । जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषी ।।
तबहिं लषन रघुबर रुख जानी । पूछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी ।।
सुनत नारि नर भये दुखारी । पुलकित गात बिलोचन बारी ।।
मिटा मोदु मन भये मलीने । बिधि निधि दीन्हि लेत जनु छीने ।।
समुझि करम गति धीरजु कीन्हा । सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा ।।

लषन जानकी सहित तब, गवनु कीन्ह रघुनाथ ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि, लिये लाइ मन साथ ।।

फिरत नारि नर अति पछिताही । दैवहि दोषु देहि मन माही ।।
सहित बिषाद परसपर कहही । बिधि करतब उलटे सब अहही ।।
निपट निरंकुस निठुर निसंकू । जेहि ससि कीन्ह सरुज सकलंकू ।।
रूखु कलपतरु सागरु खारा । तेहि पठये बन राजकुमारा ।।
जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू । कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू ।।
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना । रचे बादि बिधि बाहन नाना ।।
ए महि परहिं डासि कुस पाता । सुभग सेज कत सृजत बिधाता ।।
तरु बर बास इन्हहिं बिधि दीन्हा । धवल धामु रचि रचि श्रमु कीन्हा ।।

जौं ए मुनि पट धर जटिल, सुन्दर सुठि सुकुमार ।
बिबिध भाँति भूषन बसन, बादि किये करतार ।।

जौं ए कंद मूल फल खाहीं । बादि सुधादि असन जग माहीं ।।
एक कहहिं ए सहज सुहाये । आपु प्रगट भये बिधि न बनाये ।।
जहँ लगि बेद कही बिधि करनी । स्रवन नयन मन गोचर बरनी ।।
देखहु खोजि भुवन दस चारी । कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी ।।
इन्हहिं देखि बिधि मनु अनुरागा । पटतर जोगु बनावइ लागा ।।

कीन्ह बहुत श्रम एक न आये। तेहि इरिषा बन आनि दुराये ।।
एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहि परम धन्य करि मानहिं ।।

आस्रम सागर सांतरस, पूरन पावन पाथ।
सेन मनहँ करुना सरित, लिय जात रघुनाथ ।।

बोरति ग्यान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे ।।
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुवर कर भंगा ।।
बिषम बि ोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा ।।
केवट ' ' ग बड़ि नावा। सकहिं न खेइ एक नहि आवा ।।

अजेय रथ

रावण से युद्ध करने के लिये जब राम रण-भूमि में गये, तब न उनके पास न रथ था और न पैर में जूते थे। यह देखकर विभीषण को चिंता हुई और उसने राम पर अपनी मनोव्यथा प्रकट भी की। राम के मुख से तुलसीदास ने उसे जो उत्तर दिलाया है, वह प्रत्येक मनुष्य के लिए जीवन-साफल्य का एक गुर है। राम ने कहा—

रावन रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयेउ अधीरा ।।
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा ।।
नाथ न रथ नहिं तनु पदत्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना ।।
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होइ सो स्यंदन आना ।।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ।।
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे ।।
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना ।।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा ।।
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना ।।
कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। येहि सम बिजय उपाय न दूजा ।।
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहुँ न कतहुँ रिपु ताके ।।

महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर ।।

मानस की सूक्तियाँ

बंदौं संत असज्जन चरना । दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ।।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं । मिलत एक दारुन दुख देहीं ।।
परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर-पीड़ा सम नहिं अधमाई ।।
काहु न कोउ दुख सुख कर दाता । निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ।।
सुमति कुमति सब के उर रहही । नाथ पुरान निगम अस कहही ।।
जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना । जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ।।
गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी । सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी ।।
उचित कि अनुचित किये बिचारू । धर्म जाइ सिर पातक भारू ।।

अनुचित उचित बिचार तजि, जे पालहिं पितु बैन ।।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति ऐन ।।

बिनु संतोष न काम नसाहीं । काम अछत सुख सपनेहु नाहीं ।।
राम भजन बिन मिटहिं कि कामा । थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा ।।
बिनु बिज्ञान कि समता आवइ । कोउ अवकास कि नभ बिन पावइ ।।
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई । बिनु महि गंध कि पावइ कोई ।।
बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा । जल बिनु रस कि होइ संसारा ।।
सील कि मिल बिन बुध सेवकाई । जिमि बिनु तेज न रूप गोसाई ।।
निज सुख बिन मन होइ कि थीरा । परस कि होइ बिहीन समीरा ।।
कवनिउँ सिद्धि कि बिन बिस्वासा । बिनु हरि भजन कि भवभय नासा ।।

बिन बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिन द्रवहिं न राम ।
रामकृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह बिश्राम ।।

परद्रोही कि होइ निहसंका । कामी पुनि कि रहइ निकलंका ।।
भव कि परहिं परमातम-बिंदक । सुखी कि होहिं कबहुँ परनिंदक ।।
राज कि रहइ नीति बिनु जाने । अघ कि रहइ हरि चरित बखाने ।।
पावन जस कि पुन्य बिन होई । बिनु अघ अजस कि पावइ कोई ।।
धन्य सो भूप नीति जो करई । धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई ।।
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा । धन्य जन्म हरिभक्ति अभंगा ।।

कवि कोविद गावहिं अस नीती । खल सन कलह नहीं भल प्रीती ।।
उदासीन नित रहिय गुसाईं । खल परिहरिय स्वान की नाईं ।।

फूलइ फलइ न बेत, यदपि सुधा बरसहिं जलद ।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं विरंचि सत ।।

बायस पालिय अति अनुरागा । होइ निरामिष कबहुँ कि कागा ।।
संत सहहिं दुख परहित लागी । पर दुख हेत असंत अभागी ।।
साधु चरित सुभ सरिस कपासू । निरस बिसद गुनमय फल जासू ।।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । बंदनीय जेहि जग जस पावा ।।
खल सन इव परबंधन करई । खाल कढ़ाइ विपति सहि मरई ।।
को न कुसंगति पाइ नसाई । रहइ न नीच मते चतुराई ।।
मुनि गन निकट बिहँग मृग जाही । बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ।।
हित अनहित पसु पच्छी जाना । मानुष तन गुन ज्ञान निधाना ।।

काटे पै कदली फरै, कोटि जतन करि सींच ।
बिनय न मान खगेस सुनु, डाँटे पै नव नीच ।।

नहिं कोउ अस जनमा जग माही । प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ।।
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलत न कछु संदेहू ।।
तृषित बारि बिन जो तनु त्यागा । मुये करै का सुधा तड़ागा ।।
का वर्षा जब कृषी सुखाने । समय चूकि पुनि का पछताने ।।
दुइ कि होइ इक संग भुवाला । हँसब ठठाइ फुलाउब गाला ।।
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ।।
कर्म प्रधान विश्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फल चाखा ।।
आरत कहहिं बिचारि न काऊ । सूझ जुआरिहिं आपन दाऊ ।।

जल पय सरिस बिकाइ, देखहु प्रीति कि रीति भल ।
बिलग होइ रस जाइ, कपट खटाई परत ही ।।

कसे कनक मनि पारिख पाये । पुरुष परखिये समय सुभाये ।।
प्रभु अपने नीचहुँ आदरहीं । अग्नि धूम गिरि तृन सिर धरहीं ।।

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ।।
तनय मातु पितु पोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ।।
धन्य जनम जगतीतल तासू । पितहि प्रमोद चरित सुनि जासू ।।
चारि पदारथ करतल ताके । प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके ।।

गुरु श्रुति सम्मत धर्मफल, पाइय बिनहिं कलेस ।
हठ बस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेस ।।
सहज सुहृद गुरु स्वामिसिख, जो न करइ सिर मानि ।
सो पछताइ अघाइ उर, अवसि होय हित हानि ।।

सेवक सुख चह मान भिखारी । व्यसनी धन सुभ गति व्यभिचारी ।।
लोभी जस चह चारु गुमानी । नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी ।।
राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा । हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा ।।
विद्या बिनु विवेक उपजाये । श्रम फल पढ़े किये अरु पाये ।।
संग ते यती कुमंत्र तें राजा । मान तें ज्ञान पान तें लाजा ।।
प्रीति प्रणय बिन मद तें गुनी । नासहिं बेगि नीति अस सुनी ।।
नवनि नीच कै आत दुखदाई । जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ।।
परहित बस जिनके मन माहीं । तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ।।

सचिव वैद गुरु तीन जो, प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तीन कर, होइ वेगही नास ।।

बरु भल बास नरक कर ताता । दुष्ट संग जनि देहिं विधाता ।।
कादर मन कर एक अधारा । दैव दैव आलसी पुकारा ।।
सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपिन सन सुन्दर नीती ।।
ममता रत सन ज्ञान कहानी । अति लोभी सन विरति बखानी ।।
क्रोधिहिं सम कामिहिं हरि-कथा । ऊसर बीज बये फल यथा ।।
कौल काम बस कृपिन बिमूढ़ा । अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ।।
सदा रोग बस संतत क्रोधी । बिष्णु बिमुख श्रुति संत बिरोधी ।।
तन पोषक निंदक अघ खानी । जीवत शव सम चौदह प्रानी ।।

राकापति षोड़स उगहिं, तारागन समुदाय।
सकल गिरिन्ह दव लाइयै, रवि बिन राति न जाय ।।

पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे ।।
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहही। ऐसे नर निकाय जग अहहीं ।।
बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर जग थोरे ।।
अति संघर्षन करै जो कोई। अनल प्रकट चंदन ते होई ।।
संत बिटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्हि कै करनी ।।
संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन पै कहइ न जाना ।।
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं सो संत पुनीता ।।
नहिं दरिद्र सम दुख जग माही। संत मिलन सम सुख कछु नाहीं ।।

मुखिया मुख सों चाहिये, खान पान को एक।
पालै पोषै सकल अँग, तुलसी सहित विवेक ।।

बरवै रामायण

कुंकुम तिलक भाल श्रुति कुंडल लोल ।
काकपच्छ मिलि सखि कस लसत कपोल ।।१।।
केस मुकुत सखि मरकत मनि मय होत।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ।।२।।
सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर ।।३।।
सिअ मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाय।
निसि मलीन वह निसि दिन यह बिगसाय ।।४।।
चंपक हरवा अँग मिलि अधिक सुहाइ।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाइ ।।५।।
सिअ तुअ अंग रंग मिलि अधिक उदोत।
हार बेलि पहिरावौं चंपक होत ।।६।।

का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि।
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि ॥७॥
गरब करहु रघुनन्दन जनि मन माँह।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छाँह ॥८॥
स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम।
इनते भइ सित कीरति अति अभिराम ॥९॥
बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाय।
ए अँखियाँ दोउ बैरिनि देहिँ बुताय ॥१०॥
डहकनि है उजियरिया निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागै मोंहि बिनु राम ॥११॥
अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया कै मुँदरी कंकन होइ ॥१२॥
जान आदिकवि तुलसी नाम प्रभाउ।
उलटा जपत काल तें भये ऋषिराउ ॥१३॥
केहि गनती महँ गनती जस बन घास।
राम जपत भये तुलसी तुलसीदास ॥१४॥
नाम भरोस नाम बल नाम सनेहु।
जनम जनम रघुनन्दन तुलसिंहि देहु ॥१५॥

दोहावली

आसन दृढ़ आहार दृढ़, सुमति ज्ञान दृढ़ होइ।
तुलसी बिना उपासना, बिन दूलह की जोइ ॥१॥
रामचरन अवलम्ब बिनु, परमारथ की आस।
चाहत बारिद बुंद गहि, तुलसी उड़न अकास ॥२॥
स्वारथ परमारथ सकल, सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता, उचित न तुलसी तोर ॥३॥

जहाँ राम तहँ काम नहिं , जहां काम नहिं राम।
तुलसी कबहूँ होत नहिं , रवि रजनी इक ठाम ।।४।।
सम्पति सकल जगत्तकी , स्वासा सम नहिं होइ।
सो स्वासा तजि राम पद , तुलसी अलग न खोइ ।।५।।
तुलसी सो अति चतुरता , राम चरन लवलीन।
पर मन पर धन हरन को , गनिका परम प्रबीन ।।६।।
स्वामी होनो सहज है , दुर्लभ होनो दास।
गाडर लाये ऊन को , लागी चरन कपास ।।७।।
तुलसी सब छल छाँड़ि कै , कीजै राम सनेह।
अन्तर पति सों है कहा , जिन देखी सब देह ।।८।।
कोटि बिघ्न संकट बिकट , कोटि सत्रु जो साथ।
तुलसी बल नहिं करि सकै , जो सुदिष्ट रघुनाथ ।।९।।
लगन महूरत जोग बल , तुलसी गनत न काहि।
राम भये जेहि दाहिने , सबै दाहिने ताहि ।।१०।।
ऊँची जाति पपीहरा , पियत न नीचो नीर।
कै जाँचै घनश्याम सों , कै दुख सहै शरीर ।।११।।
होइ अधीन जाँचै नहीं , सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी माँगनहिं , को बारिद बिनु देइ ।।१२।।
मान राखिबो माँगिबो , पिय सों सहज सनेहु।
तुलसी तीनों तब फबै , जब चातक मत लेहु ।।१३।।
गङ्गा जमुना सरसुती , सात सिन्धु भर पूर।
तुलसी चातक के मते , बिन स्वाती सब धूर ।।१४।।
एक भरोसो एक बल , एक आस विश्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ जस , चातक तुलसीदास ।।१५।।
राम राम रटिबो भलो , तुलसी खता न खाय।
लरिकाई ते पौरिबो , धोखेहुँ बूड़ि न जाय ।।१६।।

तुलसी विलम्ब न कीजिये , भजि लीजै रघुबीर।
तन तरकस तें जात है , स्वाँस सारसो तीर ।।१७।।
असन वसन सुत नारि सुख , पापिहुँ के घर होइ।
सन्त समागम रामधन , तुलसी दुर्लभ दोइ ।।१८।।
तुलसी मीठे वचन तें , सुख उपजत चहुँ ओर।
वसीकरन यह मंत्र है , परिहरु वचन कठोर ।।१९।।
तुलसी अपने राम कहँ , भजन करहु निरसङ्क।
आदि अन्त निर्वाहिबो , जैसे नव को अङ्क ।।२०।।
तुलसी राम सनेहु करु , त्यागि सकल उपचारु।
जैसे घटत न अङ्क नव , नव के लिखत पहारु ।।२१।।
तुलसी संत सुअंबु तरु , फूलि फलहिँ पर हेत।
इतते ये पाहन हनत , उतते वे फल देत ।।२२।।
गोधन गजधन वाजिधन , और रतन धन खान।
जब आवत सन्तोष मन , सब धन धूरि समान ।।२३।।
काम क्रोध मद लोभ की , जौलों मन में खान।
तौलों पंडित मूरखौ , तुलसी एक समान ।।२४।।
प्रेम बैर अरु पुन्य अघ , जस अपजस जय हान।
बात बीज इन सबन को , तुलसी कहहिँ सुजान ।।२५।।
तौ लगि जोगी जगत गुरु , जौ लगि रहत निरास।
जब आसा मन में जगी , जब गुरु जोगी दास ।।२६।।
उरग तुरँग नारी नृपति , नर नीचो हथियार।
तुलसी परखत रहब नित , इनहिं न पलटत बार ।।२७।।
दुर्जन दर्पन सम सदा , करि देखो हिय गौर।
सन्मुख की गति और है , बिमुख भये पर और ।।२८।।
सिष्य सखा सेवक सचिव , सुतिय सिखावनु साँच।
सुनि करिये पुनि परिहरिय , पर मनरंजन पाँच ।।२९।।

दीरघ रोगी दारिदी , कटु बच लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान जौ , तऊ त्यागिबे जोग ।।३०।।
बहु सुत बहु रुचि बहु वचन , बहु अचार ब्यवहार।
इनको भलो मनाइबो , यह अज्ञान अपार ।।३१।।
सहि कुवास साँसति असम , पाय अनट अपमान।
तुलसि धर्म न परिहरहिँ , ते वर सन्त सुजान ।।३२।।
तुलसी साथी बिपत के , विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्यव्रत , राम भरोसो एक ।।३३।।
तुलसी असमय के सखा , साहस धर्म विचार।
सुकृत सील सुभाव ऋजु , राम चरन आधार ।।३४।।
राग रोष गुन दोष को , साखी हृदय सरोज।
तुलसी बिकसत मित्र लखि , सकुचत देखि मनोज ।।३५।।
खग मृग मीत पुनीत किय , वनहुँ राम नयपाल।
कुनय बालि रावन घरहिँ , सुखद बंधु किय काल ।।३६।।
तुलसी जो कीरति चहहिँ , पर कीरति को खोइ।
तिनके मुँह मसि लागि है , मुये न मिटि हैं धोइ ।।३७।।
नीच चंग सम जानिये , सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि देत महि गिरि परत , खैंचत चढ़त अकास ।।३८।।
राम नाम मनि दीप धरु , जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो , जो चाहसि उजियार ।।३९।।
साहिब ते सेवक बड़ो , जो निज धर्म सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि , नाँघि गये हनुमान ।।४०।।
सूर समर करनी करहिँ , कहि न जनावहिं आप।
विद्यमान रिपु पाइ रन , कायर करहिं प्रलाप ।।४१।।
जूझे तें भल बूझिबो , भली जीति ते हारि।
डहके ते डहकाइबो , भलो जु करिय विचार ।।४२।।

मंत्री गुरु अरु वैद्य जो , प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीन कर , होइ बेगिही नास ।।४३।।
हृदय कपट बर बेष धरि , वचन कहै गढ़ि छोलि।
अबके लोग मयूर ज्यों , क्यों मिलिये मन खोलि ।।४४।।
अमिय गारि गारेउ गरल , नारि करी करतार।
प्रेम बैर की जननि जुग , जानहिं बुध न गँवार ।।४५।।
तुलसी अपनो आचरन , भलो न लागत कासु।
तेहि न बसात जो खात नित , लहसुनहू की बासु ।।४६।।
मुखिया मुख सों चाहिये , खान पान को एक।
पालै पोसै सकल अँग , तुलसी सहित विवेक ।।४७।।
हित पुनीत सब स्वारथहिं , अरि असुद्ध बिनु जाड़।
निज मुख मानिक सम दसन , भूमि परे ते हाड़ ।।४८।।
तुलसी पावस के समै , धरी कोकिला मौन।
अब तो दादुर बोलि हैं , हमैं पूछि हैं कौन ।।४९।।
तुलसी हमसों राम सों , भलो मिलो है सूत।
छाँड़े बनै न सँग रहै , ज्यों घर माँहि कपूत ।।५०।।
व्याधा बधो पपीहरा , परो गंग जल जाय।
चोंच मूँदि पीवै नहीं , जल पिये मो पन जाय ।।५१।।
बार बार बर माँगहूँ , हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायिनी , भक्ति सदा सतसंग ।।५२।।
सात स्वर्ग अपवर्ग सुख , धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिलि , जो सुख लव सतसंग ।।५३।।
तुलसी रा के कहत ही , निकसत पाप पहार।
फिरि भीतर आवत नहीं , देत मकार किवार। ५४।।
तुलसी काया खेत है , मनसा भये किसान।
पाप पुन्य दोउ बीज हैं , बुवै सो लुनै निदान ।।५५।।

आवत ही हर्षे नहीं , नैनन नहीं सनेह।
तुलसी तहाँ न जाइये , कंचन बरसे मेह ।।५६।।
तुलसी कबहुँ न त्यागिये , अपने कुल की रीति।
लायक ही सों कीजिये , ब्याह बैर अरु प्रीति ।।५७।।
तुलसी जस भवितव्यता , तैसी मिलै सहाय।
आपु न आवै ताहि पै , ताहि तहाँ लै जाय ।।५८।।
जगतें रहु छत्तीस ह्वै , रामचरन छः तीन।
तुलसी देखु विचारि हिय , है यह मतौ प्रवीन ।।५९।।
रैन को भूषन इन्दु है , दिवस को भूषन भान।
दास को भूषन भक्ति है , भक्ति को भूषन ज्ञान ।।६०।।
ज्ञान को भूषन ध्यान है , ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन शांतिपद , तुलसी अमल अदाग ।।६१।।
तुलसी मिटै न मोहतम , किये कोटि गुन ग्राम।
हृदय कमल फूलै नहीं , बिनु रवि कुल रवि राम ।।६२।।
सुनत लखत श्रुति नयन बिनु , रसना बिनु रस लेत।
बास नासिका बिनु लहै , परसै बिना निकेत ।।६३।।
सोई ज्ञानी सोइ गुनी , जन सोइ दाता ध्यानि।
तुलसी जाकै चित भई , राग द्वेष की हानि ।।६४।।

विनय-पत्रिका

१

गाइये गनपति जगबंदन , संकर सुवन भवानी नंदन।
सिद्धिसदन गजबदन बिनायक , कृपासिंधु सुंदर सब लायक ।।
मोदकप्रिय मुद मंगल-दाता , विद्यावारिधि बुद्धिविधाता।
माँगत 'तुलसीदास' कर जोरे , बसहिं रामसिय मानस मोरे ।।

Hindi

२

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु बेद बड़ाई भानी॥
निज घर की बर बात बिलोकहु हो तुम परम सयानी।
सिव की दई संपदा देखत श्री सारदा सिहानी॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयों नकबानी॥
दुख दीनता दुखी इनके दुख जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं भीख भली मैं जानी॥
प्रेम प्रसंसा विनय ब्यंग जुत सुनि विधि की वर बानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन जगत मातु मुसुकानी॥

३

ऐसी तोहि न बूझिये हनुमान हठीले।
साहेब कहूँ न राम से तोसे न बसीले॥
तेरे देखत सिंह को सिसु मेढक लीले।
जानत हौं कलि तेरेऊ मनु गुन गन कीले॥
हाँक सुनत दसकंन्ध के भये बन्धन ढीले।
सो बल गयो किधौं भये अब गर्ब गहीले॥
सेवक को परदा फटै तुम समरथ सीले।
अधिक आपु ते आपनो सुनि मान सहीले॥
साँसति 'तुलसीदास' की सुनि सुजस तुही ले।
तिहूँ काल तिनको भलो जे राम रँगीले॥

४

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भव भय दारुनं।
नव कंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुनं॥

कन्दर्प अगनित अमित छवि नव नील नीरज सुन्दरं।
पटपीत मानहु तड़ित रुचि सुचि नौमि जनक सुतावरं॥
भजु दीनबंधु दिनेस दानव दैत्य वंस निकंदनं।
रघुनन्द आनँदकन्द कौसलचन्द दसरथ-नन्दनं॥
सिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदार अंग विभूषनं।
आजानु भुज सर चाप धर संग्राम जित खर दूषनं॥
इमि बदत 'तुलसीदास' शंकर शेष मुनि मनरंजनं।
मम हृदय-कंज निवास करु कामादि खलदल-गंजनं॥

५

मेरो मन हरि हठ न तजै।
निस दिन नाउँ देत सिख बहु विधि करत सुभाव निजै।
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै॥
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहि भजै॥
लोलुप भ्रमत गृह पसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै॥
हौं हारचो करि जतन विविध विध अतिसय प्रबल अजै।
'तुलसिदास' बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै॥

६

अब लौं नसानी अब न नसैहौं।
राम कृपा भवनिसा सिरानी जागे फिरि न डसैहौं॥
पायों नाम चारु चिन्तामनि उर करतें न खसैहौं।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं॥
परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुकर पन करि 'तुलसी' रघुपति-पद-कमल बसैहौं॥

७

ऐसे राम दीन-हितकारी।
अति कोमल करुनानिधान बिनु कारन पर उपकारी॥

साधन हीन दीन निज अघ बस सिला भई मुनि नारी।
गृहते गवनि परसि पद पावन घोर सापते तारी॥
हिंसारत निषाद तामस बपु पसु समान बनचारी।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेम बस नहिं कुल जाति विचारी॥
यद्यपि द्रोह कियो सुरपति सुत कहि न जाइ अति भारी।
सकल लोक अवलोकि सोकहत सरन गये भय टारी॥
विहँग जोनि आमिष अहार-पर गीध कौन ब्रतधारी।
जनक समान क्रिया ताकी निज कर सब भांति सँवारी॥
अधम जाति सबरी जोषित जड़ लोक वेद ते न्यारी।
जानि प्रीति दै दरस कृपानिधि सोउ रघुनाथ उधारी॥
कपि सुग्रीव बन्धु भय ब्याकुल आयो सरन पुकारी।
सहि न सके दारुन दुख जन के हत्यो वालि सहि गारी॥
रिपु को अनुज विभीषन निसिचर कौन भजन अधिकारी।
सरन गये आगे ह्वै लीन्हों भेंट्यो भुजा पसारी॥
असुभ होइ जिनके सुमिरे ते बानर रीछ बिकारी।
वेद विदित पावन किये ते सब महिमा नाथ तुम्हारी॥
कहँ लगि कहों दीन अगनित जिनकी तुम बिपति निवारी।
कलि मल ग्रसित 'दास तुलसी' पर काहे कृपा बिसारी॥

८

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरि पद भजु करम बचन अरु हीते॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बलीते।
हम हम करि धन धाम सँवारे अन्त चले उठि रीते॥
सुत बनितादि जानि स्वारथ रत न करु नेह सबहीते।
अन्तहुँ तोहिं तजैंगे पामर तू न तजै अबहीते॥
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जीते।
बुझै न काम अगिनि 'तुलसी' कहुँ विषय भोग बहु घीते॥

९

तू दयाल, दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुञ्ज हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसों।
मो समान आरत नहिं आरतहर तोसों॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू ठाकुर, हौं चेरो।
तात मात गुरु सखा तू सब विध हित मेरो॥
तोहि मोहि नातो अनेक मानिये जो भावै।
ज्यों त्यों 'तुलसी' कृपाल चरन सरन आवै॥

१०

ममता तू न गई मेरे मन तें।
पाके केस जन्म के साथी लाज गई लोकन तें।
तन थाके कर कम्पन लागे जोति गई नैनन तें॥
स्रवन वचन न सुनत काहु के बल गये सब इन्द्रिन तें।
टूटे दसन वचन नहिं आवत सोभा गई मुखन तें॥
कफ पित वात कंठ पर बैठे सुतहिं बुलावत कर तें।
भाइ बन्धु सब परम पियारे नारि निकारत घर तें॥
जैसे ससिमण्डल बिच स्याही छूटै न कोटि जतन तें।
'तुलसिदास' बलि जाउँ चरन तें लोभ पराये धन तें॥

११

कबहुँक हौं इहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपाल कृपा तें सन्त सुभाव गहौंगो॥
जथा लाभ सन्तोष सदा काहू सौं कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो॥
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान सम सीतल मन परगुन औगुन न कहौंगो॥

परिहरि देह जनित चिंता दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि भक्ति लहौंगो।

१२

अस कछु समुझि परत रघुराया।
बिनु तव कृपा दयालु दास हित मोह न छूटै माया॥
वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन भव पार न पावै कोई।
निसि गृह मध्य दीप की बातन्हि तम निवृत्त नहिं होई॥
जैसे कोइ इक दीन दुखित अति असन हीन दुख पावै।
चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न विपति नसावै॥
षटरस बहु प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै।
बिनु बोले संतोष जनित सुख खाइ सोइ पै जानै॥
जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास, अरु विषय आस मन माहीं।
तुलसिदास तब लगि जग जोनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं॥

१३

जानत प्रीति रीति रघुराई।
नाते सब हाते करि राखत राम सनेह सगाई॥
नेह निबाहि देह तजि दसरथ कीरति अचल चलाई।
ऐसे हू पितु तें अधिक गीध पर ममता गुन गरुआई॥
तिय बिरही सुग्रीव सखा लखि प्रानप्रिया बिसराई।
रन परचो बन्धु बिभीषन ही को सोच हृदय अधिकाई॥
घर, गुरु गृह, प्रियसदन, सासुरे, भई जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि सबरी के फलन की रुचि माधुरी न पाई॥
सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई।
केवट मीत कहे सुख मानत बानर बन्धु बड़ाई॥
तुलसी राम सनेह सील लखि जो न भगति उर आई।
तौं तोहि जनमि जाय जननी जड़ तनु तरुनता गँवाई॥

१४

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो।।
करम उपासन ज्ञान वेदमत सो सब भाँति खरो।
मोहिं तो सावन के अन्धहिं ज्यों सूझत हरो हरो।।
प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी तहँ ताको काज सरो।
मेरे तो माय बाप दोऊ आखर हौं सिसु अरनि अरो।।
संकर साखि जो राखि कहउँ कछू तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो रामनामहिं ते तुलसिहि समुझि परो।।

१५

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि रामभक्ति सुरसरिता आस करत ओसकन की।।
धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता, न वारि, पुनि हानि होति लोचन की।।
ज्यों गच काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की।।
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति जन की।
तुलसिदास प्रभु! हरहु दुसह दुख करहु लाज निज पन की।।

१६

नाहिंन आवत आन भरोसो।
यहि कलिकाल सकल साधन तरु है स्रम फलनि फरो सो।।
तप, तीरथ, उपवास, दान, मख जेहि जो रुचै करो सो।
पायेहि पै जानिबो करम फल भरि भरि बेद परोसो।।
आगम बिधि जप जोग करत नर सरत न काज खरो सो।
सुख सपनेहु न जोग सिधि साधन रोग बियोग धरो सो।।

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ग्यान बिराग हरो सो।
बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम धरो सो॥
बहु मत सुनि बहु पन्थ पुरानन जहाँ तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहि लगत राज डगरो सो॥
तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिरि फिरि पचि मरै मरो सो।
रामनाम बोहित भवसागर चाहे तरन तरो सो॥

गीतावली

१

पौढ़िये लाल पालने हौ झुलावौं।
बाल बिनोद मोद मंजुल मनि किलकनि खानि खुलावौं।
तेइ अनुराग ताग गुहिबे कहुँ मति मृगनयनि बुलावौं॥
'तुलसी' भनित भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौं।
चारु चरित रघुबर तेरे तेहि गाइ चरन चित लावौं॥

२

जागिये कृपानिधान जानिराय रामचन्द्र
जननि कहै बार बार भोर भयो प्यारे।
राजिव लोचन बिसाल प्रीति वापिका मराल
ललित कमल बदन उपर मदन कोटि वारे॥
अरुन उदित विगत सर्वरी ससांक किरिनहीन
दीन दीप ज्योति मलिन दुति समूह तारे।
मनहु ज्ञान घन प्रकास बीते सब भौबिलास
आस त्रास तिमिरतोम तरनि तेज जारे॥
बोलत खग निकर मुखर मधुर करि प्रतीत सुनहु
श्रवन प्रान जीवन धन मेरे तुम वारे।
मनहु वेद बन्दी मुनिबृन्द सूत मागधादि
बिरुद बदत जय जय जय जयति कैटभारे॥

सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल
भागे जंजाल विपुल दुख कदम्ब टारे।
'तुलसिदास' अति अनन्द देख के मुखारबिंद
छूटे भ्रम फन्द परम मन्द द्वन्द भारे॥

३

आँगन फिरत घुटुरुवनि धाये।
नील जलद तनु स्याम राम सिसु जननि निरखि मुख निकट बोलाये॥
बन्धक सुमन अरुन पदपंकज अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आये।
नूपुर जनु मुनिवर कलहंसनि रचे नीड़ दै बाँह बसाये॥
कटि मेखल, बर हार, ग्रीव दर, रुचिर बाँह भूषन पहिराये।
उर श्रीवत्स मनोहर हरिनख हेम मध्य मनिगन बहु लाये॥
सुभग चिबुक द्विज अधर नासिका स्रवन कपोल मोहिं अति भाये।
भ्रू सुन्दर करुनारस पूरन, लोचन मनहुँ जुगल जलजाये॥
भाल बिसाल ललित लटकन बर, बाल दसा के चिकुर सोहाये।
मनु दोउ गुरु सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आये॥
उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत ओढ़ाये।
नील जलद पर उडुगन निरखत ताज सुभाव मनो तड़ित छपाये॥
अंग अंग पर मार निकर मिलि छबि समूह लैलै जनु छाये।
तुलसिदास रघुनाथ रूप गुन तौ कहौं जो बिधि होहिं बनाये॥

४

राम! हौं कौन जतन घर रहिहौं?
बार बार भरि अंक गोद लै ललन कौन सों कहिहौं॥
इहि आँगन बिहरत मेरे बारे! तुम जो संग सिसु लीन्हें।
कैसे प्रान रहत सुमिरत सुत बहु बिनोद तुम्ह कीन्हें॥
जिन्ह स्रवननि कल बचन तिहारे सुनि सुनि हौं अनुरागी।
तिन्ह स्रवननि बनगवन सुनति हौं, मो तें कौन अभागी?

जुग सम निमिष जाहिं रघुनंदन बदन कमल बिनु देखे।
जौ तनु रहै बरष बीते, बलि, कहा प्रीति इहि लेखे?।।
तुलसीदास प्रेमबस श्रीहरि देखि बिकल महतारी।
गदगद कंठ, नयन जल, फिरि फिरि आवन कह्यो मुरारी।।

५

जननी निरखति बान धनुहियाँ।
बार बार उर नैननि लावति प्रभुजू की ललित पनहियाँ।।
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सवारे।
उठहु तात! बलि मातु बदन पर, अनुज सखा सब द्वारे।।
कबहुँ कहति यों "बड़ी बार भइ जाहु भूप पहँ, भैया।
बंधु बोलि जेंइय जो भावै गई निछावरि मैया।।"
कबहुँ समुझि बनगवन राम को रहि चकि चित्र लिखी सी।
तुलसिदास वह समय कहे तें लागति प्रीति सिखी सी।।

६

जब जब भवन बिलोकति सूनो।
तब तब बिकल होति कौसल्या दिन दिन प्रति दुख दूनो।
सुमिरत बाल बिनोद राम के सुन्दर मुनि मनहारी।
होत हृदय अति सूल समुझि पद पंकज अजिर बिहारी।।
को अब प्रात कलेऊ माँगत रूठि चलैगो, माई।
स्याम तामरस नैन स्रवत जल काहि लेउँ उर लाई।।
जीवौं तौ बिपति सहौं निसि बासर मरौं तौ मन पछितायो।
चलत बिपिन भरि नयन राम को बदन न देखन पायो।।
तुलसिदास यह दुसह दसा अति दारुन बिरह घनेरो।
दूरि करै को भूरि कृपा बिनु सोकजनित रुज मेरो?।।

७

आली ! हौं इन्हहिं बुझावौं कैसे ?
लेत हिये भरि भरि पति को हित मातु हेतु सुत जैसे ।।
बार बार हिहिनात हेरि उत जो बोलै कोउ द्वारे ।
अङ्ग लगाइ लिये बारे तें करुनामय सुत प्यारे ।।
लोचन सजल, सदा सोवत से, खान पान बिसराये ।
चितवत चौंकि नाम सुनि सोचत राम सुरति उर आये ।।
तुलसी प्रभु के बिरह बधिक हठि राजहंस से जोरे ।
ऐसेहु दुखित देखि हौं जीवति राम लषन के घोरे ।।

८

राघौ ! एक बार फिरि आवौ ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहिं सिधावौ ।।
जे पय प्याइ पोखि कर पंकज बार बार चुचुकारे ।
क्यों जीवहिं, मेरे राम लाड़िले ! ते अब निपट बिसारे ।।
भरत सौगुनी सार करत हैं अति प्रिय जानि तिहारे ।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे मनहुँ कमल हिम मारे ।।
सुनहु पथिक ! जो राम मिलहिं बन कहियो मातु सँदेसो ।
तुलसी मोहि और सबहिन तें इन्हको बड़ो अँदेसो ।।

९

सत्य कहौं मेरो सहज सुभाउ ।
सुनहु सखा कपिपति लंकापति तुम्ह सन कौन दुराउ ।।
सब बिधि हीन दीन अति जड़मति जाको कतहुँ न ठाउँ ।
आयो सरन भजौं न तजौं तेहि यह जानत ऋषिराउ ।।
जिन्हके हौं हित सब प्रकार चित नाहिंन और उपाउ ।
तिनहिं लागि धरि देह करौं सब डरौं न सुजस नसाउ ।।

पुनि पुनि भुजा उठाइ कहत हौं सकल सभा पतिआउ।
नहिं कोऊ प्रिय मोहि दास सम कपट प्रीति बहि जाउ॥
सुनि रघुपति के बचन बिभीषन प्रेम मगन मन चाउ।
तुलसिदास तजि आस त्रास सब ऐसे प्रभु कहँ गाउ॥

१०

बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता॥
दूध भात की दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहौं।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम लषन उर लैहौं॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
गनक बोलाइ पाँय परि पूछति प्रेम मगन मृदु बानी॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट तें समाचार लै आयो।
प्रभु आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो॥

११

कैकेयी जौ लौं जियति रही।
तौलों बात मातु सों मुँह भरि भरत न भूलि कही॥
मानी राम अधिक जननी तें जननिहु गँस न गही।
सीय लषन रिपुदवन राम रुख लखि सबकी निबही॥
लोक बेद मरजाद दोष गुन गनि चित चखन चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम सनेह सही॥

श्रीकृष्ण-गीतावलि से

१

मोकह झूँठहिँ दोस लगावहिँ।
मैया इनहिं बानि पर गृह की नाना युक्ति बनावहिं॥
इन्ह के लिये खेलिबो छाँड्यो तऊ न उबरन पावहिं।
भाजन फोरि बोरि कर गोरस देन उलहनों आवहिं॥

कबहुंक बाल रोवाइ पानि गहि मिस यहि करि उठि धावहिं।
करहिं आपु सिर धरहिं आन के बचन बिरंचि हरावहिं।।
मेरी टेव बूझ हलधर सों संतत संग खेलावहिं।
जे अन्याउ करहिं काहू को ते शिशु मोहि न भावहिं।।
सुनि सुनि बचन चातुरी ग्वालिनि हँसि हँसि बदन दुरावहिं।
बाल गोपाल केलि कल कीरति तुलसिदास मुनि गावहिं।।

२

अबहिं उरहनो दै गई, बहुरो फिरि आई।
सुनु मैया तेरी सौं करो याकी टेक लरन की सकुच बेंचेसि खाई।।
या ब्रज में लरिका घने हौं ही अन्याई।
मुँह लाए मूड़हि चढ़ी अंतहु अहिरिनि तोहिं सूधी करि पाई।।

३

छाड़ो मेरे ललित ललन लरिकाई।
ऐहैं देखु कालि तेरे वै ब्याह कि बात चलाई।।
डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि हँसिहैं नई दुलहिआ सुहाई।
उबटि नहाहु गुहों चोटिया बलि देखि भलो बर करहिं बड़ाई।।
मातु कह्यो करि कहत बोलि दे भइ बड़ि बार कालि तो न आई।
जब सोइबो तात यों हाँ कहि नयन मीचि रहे पौढ़ि कन्हाई।।
उठि कह्यो भोर भयो भँगुली दै मुदित महर लखि आतुरताई।
बिहँसी ग्वालि जान तुलसी प्रभु सकुचि लगे जननी उर धाई।।

४

हरि को ललित बदन निहारु।
निपटहीं डाटति निठुर ज्यों लकुट करते डारु।।
मंजु अंजन सहित जलकन चुवत लोचन चारु।
श्याम सारस मगन मनो शशि स्रवत सुधा सिंगारु।।

सुभग उर दधि बुद सुंदर लखि अपनपो वारू।
मनहुँ मरकत मृदु सिखर पर लसत बिसद तुषारु।।
कान्ह हूँ पर सतर भौंहें महरि मनहिं विचारु।
दासतुलसी रहति क्यों रिस निरखि नन्दकुमारु।।

५

देखु सखी हरि बदन इन्दु पर।
चिक्कन कुटिल अलक अवली छवि कहि न जाय शोभा अनूपबर।।
बाल भुअंगिनि निकर मनहुं मिलि रही घेरि रस जानि सुधाकर।
तजि न सकहिं नहिं करहिं पान कहो कारन कौन विचारि डरहिं उर।।
अरुन बनज लोचन कपोल सुभ श्रुति मंडित कुंडल अति सुन्दर।
मनहु सिंधु निज सुतहिं मनावन पठये युगल बसीठि वारिचर।।
नँदनन्दन मुख की सुन्दरता कहि न सकहिं श्रुति शेष उमा वर।
तुलसिदास त्रिलोक्य विमोहन रूप कपट नर त्रैविधि शूल हर।।

६

गोपाल गाकुल बल्लभी प्रिय गोप गोसुत बल्लभं।
चरणारविन्दमहं भजे भजनीय सुर नर दुर्लभं।।
घनश्याम काम अनेक छवि लोकाभिराम मनोहरं।
किंजल्क बसन किसोर मूरति भूरि गुन करुनाकरं।।
सिर केकिपच्छ बिलोल कुंडल अरुन बनरुह लोचनं।
गुञ्जावतंस विचित्र सब अँग धातु भव भय मोचनं।।
कच कुटिल सुन्दर तिलक भ्रू राका मयंक समाननं।
अपहरत तुलसीदास त्रास बिहार बृन्दा काननं।।

जानकी-मङ्गल

सोहर छन्द

देखि सपुर परिवार जनक हिय हारेउ।
नृप-समाज जनु तुहिन बनज बन मारेउ।।

कौसिक जनकहिं कहेउ देहु अनुसासन।
लखहिं भानुकुल भानु इसान-सरासन॥
मुनिवर तुम्हरे बचन मेरु महि डोलहिं।
तदपि उचित आचरन पाँच भल बोलहिं॥
बान बान जिमि गयउ गँवहिं दसकन्धर।
को अवनीतल इन सम बीर धुरन्धर॥
पारबती मन सरिस अचल धनु धालक।
हैं पुरारि तेउ एक नारि ब्रत पालक॥
सो धनु कहिय बिलोकन भूप किसोरहिं।
बेध कि सिरिस सुमन कन कुलिस कठोरहिं॥
रोम रोम छबि निदरत सोम मनोजनि।
देखिय मूरति मलिन करिय मुनि सो जनि॥
मुनि हँसि कहेउ जनक यह मूरति सोहइ।
सुमिरत सकृत मोह मल सकल बिछोहइ॥

पार्वती-मङ्गल

तजे भोग जिमि रोग लोग अहिगन जनु।
मुनि मनसहुँ ते अगम तपहिं लायो मनु॥
सकुचहि बसन बिभूषन परसत जो बपु।
तेहि सरीर हर हेत अरंभेउ बड़ तपु॥
पूजहिं शिवहिं समय तिहुँ करहिं निमज्जन।
देखि प्रेम ब्रत नेम सराहहिं सज्जन॥
नींद न भूख पियास सरिस निसि बासर।
नयन नीर मुख नाम पुलक तनु हिय हर॥
कन्द मूल फल असन कबहुँ जल पवनहिं।
सूख बेल के पात खात दिन गवनहिं॥

नाम अपरना भयउ परन जब परिहरे।
नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे।।
देखि सराहहिं गिरिजहिं मुनिवर मुनि बहु।
अस तप सुना न दीख कबहुँ काहू कहुँ।।
देखि दसा करुनाकर हर दुख पायउ।
मोर कठोर सुभाय हृदय अस आयउ।।

कवितावली

१

अवधेस के द्वारे सकारे गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकिहौं सोच विमोचनको ठगि सी रही जे न ठगे धिक से।।
तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से विकसे।।

२

तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन कंज की मंजुलताई हरै।
अति सुन्दर सोहत धूर भरे छवि भूरि अनंग को दूरि धरै।।
दमकैं दँतियाँ दुति दामिन ज्यों किलकैं कल बाल विनोद करै।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मन्दिर में विहरैं।।

३

वर दंत की पंगति कुन्द कली अधराधर पल्लव बोलन की।
चपला चमकै घन बीचैं जुगै छवि मोतिन माल अमोलन की।।
घुघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की।
नेवछावर प्रान करैं तुलसी बलि जाऊँ लला इन बोलन की।।

४

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं।।

राम को रूप निहारति जानकि कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं।।

५

कीर के कागर ज्यों नृप चीर विभूषन उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मृग बास के रूप ज्यों पंथ के साथ ज्यौं लोग लुगाई।।
संग सुबंधु पुनीत प्रिया मनो धर्म क्रिया धरि देह सोहाई।
राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाउ की नाईं।।

६

पुरते निकसी रघुवीर बधू धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की पटु सूखि गए मधुराधर वै।।
फिर बूझति हैं चलनोऽब कितो पिय पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तियकी लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अति चारु चली जल च्वै।।

७

जल को गये लक्खन हैं लरिका परिखो पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछ पसेउ बयारि करौं अरु पाय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े।।
तुलसी रघुवीर प्रिया स्रम जानि कै बैठि बिलम्ब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यो पुलको तन बारि बिलोचन बाढ़े।।

८

सीस जटा उर बाहु बिसाल बिलोचन लाल तिरीछी सी भौंहैं।
तून सरासन बान धरे तुलसी बन मारग में सुठि सोहैं।।
सादर बारहि बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूँछति ग्रामबधू सिय सों कहो साँवरो सो सखि सावरो को हैं।।

९

कतहुँ बिटप भूधर उपारि अरि सैन बरष्षत।
कतहुँ बाजि सो बाजि मर्दि गजराज करष्षत।।

चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत।
विकट कटक विद्दरत वीर वारिद जिमि गज्जत।।
लंगूर लपेटत पटकि महि जयति राम जय उच्चरत।
तुलसीस पवन-नन्दन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत।।

१०

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी। जीविका बिहीन लोग सिद्यमान सोचबस कहैं एक एकन सों कहाँ जाइ का करी। वेदहूँ पुरान कही लोकहूँ बिलोकियत साँकरे समै के राम रावरे कृपा करी। दारिद दसानन दबाई दुनी दीन-बन्धु दुरित दहत देखि तुलसी हहा करी।।

११

को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहिं कीन्हों?
को न लोभ दृढ़ फन्द बाँधि त्रासन करि दीन्हों?
कौन हृदय नहिं लाग कठिन अति नारि नयनसर?
लोचन-जुत नहिं अन्ध भयो श्री पाय कौन नर?
सुर नाग लोक महि मण्डलहु को जु मोह कीन्हो जय न?
कह तुलसिदास सो ऊबरै जेहि राख राम राजिव-नयन।।

बलभद्र मिश्र

बलभद्र मिश्र सनाढ्य ब्राह्मण ओड़छा निवासी पंडित काशीनाथ के पुत्र और प्रसिद्ध कवि केशवदास के बड़े भाई थे। केशवदास ने अपनी कवि-प्रिया में इनका नाम लिखा है। इनका जन्मकाल सं० १६०० वि० के लगभग माना जाता है। इनके रचे हुए नखशिख, भागवत-भाष्य, बलभद्री व्याकरण, हनुमन्नाटक टीका, गोबर्द्धन सतसई टीका और दूषण विचार आदि ग्रंथ कहे जाते हैं। इनमें से नखशिख और दूषण विचार आदि दो तीन ग्रंथों के सिवाय

अन्य ग्रंथ अभी तक नहीं मिले हैं। अबतक इनकी जितनी कविताएं मिली, उनके देखने से ये बड़े अच्छे कवि जान पड़ते हैं। नमूने के तौर पर इनके कुछ छंद नीचे लिखे जाते हैं:—

१

पाटल नयन कोकनद के से दल दोऊ
बलभद्र बासर उनींदो लखी बाल मैं।
सोभा के सरोवर में बाड़व की आभा कैधों
देवधुनि भारती मिली है पुन्य काल मैं॥
काम कैवरत कैधों नासिका उडुप बैठ्यो
खेलत सिकार तरुनी के मुख ताल मैं।
लोचन सितासित मैं लोहित लकीर मानो
बाँधे जुग मीन लाल रेसम के जाल मैं॥

२

मरकत सूत कैधों पन्नग के पूत अति
राजत अभूत तमराज कैसे तार हैं।
मखतूल गुन ग्राम सोभित सरस स्याम
काम मृग कानन कै कोहू के कुमार हैं॥
कोप की किरनि कै जलज नल नील तंत
उपमा अनंत चारु चँवर सिंगार हैं।
कारे सटकारे भीजे सोंधे सो सुगंध बास
ऐसे बलभद्र नवबाला तेरे बार हैं॥

दादू दयाल

दादू दयाल का जन्म फाल्गुन शुक्ला अष्टमी, बृहस्पतिवार संवत् १६०१ वि० में हुआ था। जन्मस्थान कहाँ था, इस विषय में बड़ा मतभेद पाया जाता है। दादू-पंथी लोग कहते हैं कि इनका जन्म अहमदाबाद (गुजरात) में हुआ था। महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी ने इनका जन्म-स्थान जौनपुर बतलाया है। परन्तु दादू दयाल की कविता की भाषा देखने से गुजरात देश ही उनका जन्म-स्थान प्रतीत होता है।

ये किस जाति के थे, इसमें भी बड़ा झगड़ा है। कोई इन्हें गुजराती ब्राह्मण बतलाता है, कोई मोची और कोई धुनिया कहता है। सर्वसाधारण में ये धुनिया ही प्रसिद्ध हैं; परन्तु 'जाति पाँति पूछै ना कोई, हरि को भजै सो हरि का होई' इस कहावत के अनुसार हमें इनका गुण ही देखना चाहिये। गुण की कोई जाति नहीं है। जाति चाहे ऊँच हो या नीच, गुण का आदर सर्वत्र होगा। कबीर ने कहा है—

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥

दादू दयाल का गुरु कौन था, इसका भी ठीक-ठीक पता नहीं। लोग कहते हैं कि कमाल इनके गुरु थे। कमाल कबीर के पुत्र थे। दादू दयाल की पदावली में कबीर का नाम तो कई स्थानों पर आया है, परन्तु कमाल का एक स्थान पर भी नहीं। दादू दयाल ने गुरु की महिमा भी बहुत गाई है। ऐसी दशा में यदि कमाल इनके गुरु होते, तो उनका नाम भी कहीं न कहीं आता ही।

दादू-पंथियों के अनुसार, कबीर साहब की तरह दादू दयाल भी बालक रूप में, लोदीराम नागर ब्राह्मण को साबरमती नदी (अहमदाबाद) में बहते हुए मिले थे। इनके विषय में भी बहुत सी चमत्कार की कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। ये बड़े क्षमाशील थे, इसी से लोगों ने इन्हें 'दयाल' की पदवी दी थी। और ये सब को दादा कहा करते थे, इसीसे लोग इन्हें 'दादू' कहने लगे।

दादू दयाल आमेर में, जो जयपुर की पुरानी राजधानी है, १४ वर्ष तक रहे। वहाँ से जयपुर, मारवाड़, बीकानेर आदि स्थानों में घूमते हुए सं० १६५६ में नराना में, जो जयपुर से २० कोस पर है, आकर ठहर गये। वहाँ से तीन-चार कोस पर भराने की पहाड़ी है, वहाँ भी ये कुछ समय तक रहे, और सं० १६६० में वहीं इन्होंने शरीर छोड़ा। इसी कारण से वह स्थान बहुत पवित्र समझा जाता है। समस्त दादू-पंथियों के मुखिया वहीं रहते हैं। वहाँ दादू दयाल का एक मन्दिर है। उसमें उनके कपड़े और पोथियाँ अबतक हैं। वहाँ प्रति वर्ष फागुन सुदी ४ से द्वादशी तक, नौ दिन बड़ा भारी मेला लगता है। इस पंथ में दो प्रकार के साधू पाये जाते हैं, एक भेसधारी विरक्त, दूसरे नागा। भेसधारी विरक्त गेरुआ वस्त्र पहनते हैं और कथा-कीर्तन में अपना समय बिताते हैं। नागा सफ़ेद सादे कपड़े पहनते हैं और खेती, फौज की नौकरी तथा वैद्यक आदि करके जीविका चलाते हैं। जयपुर राज्य की नागों की सेना प्रसिद्ध ही है। दोनों प्रकार के साधू विवाह नही करते। गृहस्थों के लड़कों को चेला मूँड़कर अपना पंथ चलाते हैं। ये लोग न तो तिलक लगाते हैं और न गले में कंठी पहनते हैं। प्रायः हाथ में एक सुमिरनी रखते हैं। सिर पर टोपी या पगड़ी पहनते हैं, और आते जाते समय एक दूसरे से "सत्त राम" कहते। दादू दयाल के शिष्यों में सुन्दरदास, रज्जबजी, जनगोपाल और मोहनदास आदि अच्छे कवि हो गये हैं।

दादू दयाल निरंजन निराकार परब्रह्म के उपासक थे, और उसी को सब में रमने वाला राम कहकर सुमिरन करते कराते थे।

ये हिन्दी, फ़ारसी, गुजराती, मारवाड़ी और मराठी आदि कई भाषाओं के ज्ञाता थे। गुजराती और हिन्दी-भाषा में इनकी कविताएँ बड़ी ही हृदय-वेधक हुई हैं। जब मैं इनकी कविता का अध्ययन कर रहा था, तब कई स्थानों पर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि संसार-प्रसिद्ध महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि के भावों से उनमें विशेष महीन और प्रेमाभिसिक्त भाव हैं। दोनों के भाव और कहने के ढंग में कहीं कहीं बड़ी समता पाई जाती है।

दादू दयाल की साखी में वह रस नहीं है जो कबीर साहब की साखी में पाया जाता है। परन्तु दादू दयाल के पदों में प्रेम का जो मनोहर रूप प्रकट हुआ है वह कबीर साहब के थोड़े ही भजनों में पाया जाता है। कबीर साहब की तरह दादू दयाल भी हिन्दू-मुसलमानों में भेद नहीं मानते थे, यह उनके पदों से साफ़ साफ़ प्रकट होता है।

यहाँ हम दादू दयाल के कुछ चुने हुए दोहे और पद प्रकाशित करते हैं—

घीव दूध में रमि रह्या, व्यापक सब ही ठौर।
दादू बकता बहुत हैं, मथि काढ़ै ते और॥१॥
दादू दीया है भला, दिया करो सब कोय।
घर में धरा न पाइये, जो कर दिया न होय॥२॥
यह मसीत यह देहरा, सतगुरु दिया दिखाइ।
भीतरि सेवा बंदगी, बाहिर काहे जाइ॥३॥
कहि कहि मेरी जीभ रहि, सुणि सुणि तेरे कान।
सतगुरु बपुरा क्या करै, जो चेला मूढ़ अजान॥४॥
सुख का साथी जगत सब, दुख का नाही कोइ।
दुख का साथी साइयाँ, दादू सतगुरु होइ॥५॥
दादू देख दयाल कौ, सकल रहा भरपूर।
रोम रोम में रमि रह्या, तू जिनि जानै दूर॥६॥
मिसरी माँहैं मेल करि, माल बिकाना बंस।
यों दादू महिगा भया, पारब्रह्म मिलि हंस॥७॥
केते पारिख पचि मुये, कीमति कही न जाइ।
दादू सब हैरान हैं, गूँगे का गुड़ खाइ॥८॥
जब मन लागै राम सों, तब अनत काहे को जाइ।
दादू पाणी लूण ज्यों, ऐसै रहै समाइ॥९॥
क्या मुँह ले हँसि बोलिये, दादू दीजै रोइ।
जनम अमोलक आपणा, चले अकारथ खोइ॥१०॥

एक देस हम देखिया, जहँ सत नहिं पलटै कोइ।
हम दादू उस देस के, जहँ सदा एक रस होइ ॥११॥
सुरग नरग संसय नहीं, जिवण मरण भय नाहिं।
राम बिमुख जे दिन गये, सो सालैं मन माँहिं ॥१२॥
म ही मेरे पोट सर, मरिये ताके भार।
दादू गुरु परसाद सों, सिर थैं धरी उतार ॥१३॥
दादू मारग कठिन है, जीवत चलै न कोइ।
सोई चलिहै बापुरा, जे जीवत मिरतक होइ ॥१४॥
काया कठिन कमान है, खींचै बिरला कोइ।
मारे पाँचौ मिरगला, दादू सूरा सोइ ॥१५॥
जे सिर सौंप्या राम कौं, सो सिर भया सनाथ।
दादू दे ऊरण भया, जिसका तिसके हाथ ॥१६॥
कहताँ सुनताँ देखताँ, लेताँ देताँ प्राण।
दादू सो कतहूँ गया, माटी धरी मसाण ॥१७॥
जिहि घर निंदा साधु की, सो घर गये समूल।
तिनकी नीव न पाइये, नाँव न ठाँव न धूल ॥१८॥

पद

१

हुसियार रहो मन मारैगा। साईं सतगुरु तारैगा ॥
माया का सुख भावै, मूरिख मन बौरावै रे ॥
झूठ साच करि जाना, इन्द्री स्वाद भुलाना रे ॥
दुख कौं सुख करि मानै, काल झाल नहिं जानै रे ॥
दादू कहि समझावै, यह अवसर बहुरि न पावै रे ॥

२

भाई रे ऐसा पंथ हमारा।
द्वै पख रहित पंथ गहि पूरा अबरण एक अधारा ॥

वाद विवाद काहू सौं नाहीं माहिं जगत थै न्यारा ।।
सम दृष्टी सूं भाई सहज में आपहि आप विचारा ।।
मैं, तैं, मेरी यहु मत नाही निरबैरी निरविकारा ।
पूरण सबै देखि आपा पर निरालम्भ निरधारा ।।
काहू के सङ्गी मोह न ममिता सङ्गी सिरजनहारा ।
मन ही मनसूं समझि सयाना आनँद एक अपारा ।।
काम कलपना कदे न कीजे पूरण ब्रह्म पियारा ।
इहि पँथ पहुँचि पार गहि 'दादू' सो तत सहजि सँभारा ।।

३

आव रे सजणाँ आव , सिर पर धरि पाँव ।
जानी मैंडा जिंद असाड़े , तू रावैं दा राव वे सजणाँ आव ।।
इत्थाँ उत्थाँ जित्थाँ कित्थाँ , हौ जीवाँ तो नाल वे ।
मीयां मैडा आव असाड़े , तू लालों सिर लाल वे सजणाँ आव ।।
तन भी डेवाँ मन भी डेवाँ , डेवाँ प्यण्ड पराण वे ।
सच्चा साई मिलि इत्थाई , जिन्दा करां कुरबाण वे सजणाँ आव ।।
तूं पाकौं सिर पाक वे सजणाँ तू खूबौ सिर खूब ।
दादू भावै सजणाँ आवै , तू मीठा महबूब वे सजणाँ आव ।।

(पंजाबी भाषा)

४

म्हारा रे ह्वाला ने काजे रिदै जीवा ने हूँ ध्यान धरूँ ।
आकुल थाये प्राण म्हारा कोने कही पर करूँ ।।
सँभारचो आवे रे ह्वाला ह्वेला एहों जोइ ठरूँ ।
साथी जी साथै थइनि पेली तीरे पार तरूँ ।।
पीव पाखे दिन दुहेला जाये घड़ी बरसाँ सौं केम भरूँ ।
दादू रे जन हरि गुण गाताँ पूरण स्वामी ते वरूँ ।।

(गुजराती भाषा)

५

बटाऊ रे चलना आजि कि कालि ।
समझि न देखै कहा सुख सोवै रे मन राम सँभालि ।।
जैसे तरवर विरस बसेरा पछ्छी बैठे आइ ।
ऐसे यहु सब हाट पसारा आप आप कौं जाइ ।।
कोइ नहिं तेरा सजन सँगाती जिन खोवे मन भूल ।
यहु संसार देखि जिन भूलै सब ही सेंवल फूल ।।
तन नहिं तेरा धन नहि तेरा कहा रह्यो इहि लागि ।
दादू हरि बिन क्यों सुख सोवै काहे न देखे जागि ।।

६

जागि रे सब रैणि विहाणी । जाइ जनम अँजुली कौं पाणी ।।
घड़ी घड़ी घड़ियाल बजावै । जे दिन जाइ से बहुरि न आवै ।।
सूरज चन्द कहैं समझाइ । दिन दिन आयू घटती जाइ ।।
सरवर पाणी तरुवर छाया । निस दिन काल गरासै काया ।।
हंस बटाऊ प्राण पयाना । दादू आतमराम न जाना ।।

७

बातैं बादि जाहिंगी भइये ।
तुम जिन जानौ बातनि पइये ।।
जब लग अपना आप न जाणै , तब लग कथनी काची ।
आपा जाणि साई कूँ जाणै , तब कथनी सब साची ।।
करणी बिना कन्त नहि पावै , कहे सुने का होई ।
जैसी कहै करै जे तैसी , पावेगा जन सोई ।।
बातनि हीं जे निरमल होवै , तौ काहे कूँ कसि लीजै ।
सोना अगिनि दहैं दस बारा , तब यहु प्राण पतीजै ।।
यों हम जाणा मन पतियाना , करनी कठिन अपारा ।
'दादू' तन का आपा जारै , तौ तिरत न लागै बारा ।।

गंग

गंग बड़े प्रतिभाशाली और अकबर के दरबारी कवि थे। अब्दुलरहीम खानखाना इनको बहुत चाहते थे। गंग के जन्म और मरण की तिथि का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। परन्तु अनुमान से यह माना जा सकता है कि इनकी और रहीम की अवस्था में बहुत कम अन्तर रहा होगा। रहीम का जन्म सं० १६१० में और मृत्यु १६८२ वि० में हुई। अतएव गंग का भी जन्मकाल १६१० के आस ही पास होगा।

गंग और औरङ्गजेब के सम्बन्ध की एक कथा भी लोक में बहुत प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि औरङ्गजेब ने एक बार कविता से बहुत प्रसन्न होकर गंग को एक हथिनी पुरस्कार में दी। हथिनी बुड्ढी थी। गंग ने हथिनी का मज़ाक़ उड़ाते हुए यह छन्द रचा--

तिमिरलङ्ग लई मोल चली बब्बर के हलके।
रही हुमायूँ साथ गई अकबर के दलके॥
जहाँगीर जस लियो पीठि को भार छुड़ायो।
साहजहाँ करि न्याय ताहि को माँड़ चटायो॥
बल रहित भई पौरुष थक्यो, भगी फिरत बन स्यार डर।
औरङ्गजेब करनी सोई, लै दीन्ही कवि 'गङ्ग' घर॥

इस कथा में सत्य का कुछ अंश हो या न हो, गङ्ग औरङ्गजेब के समय तक जीवित रहे हों या नहीं, पर एक बुढ़िया हथिनी के साथ मुग़ल खान्दान का ख़ासा मज़ाक उड़ाया गया है।

गङ्ग बड़े ही धुरन्धर कवि थे। यद्यपि इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता, परन्तु जो कुछ फुटकर छन्द मिलते हैं, उनसे इनकी उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय मिलता है।

इनका एक छप्पै सुनकर अब्दुर्रहीम खानखाना ने इनको ३६ लाख रुपये दिये थे। वह छप्पै यह है:--

चकित भँवर रहि गयौ गमन नहि करत कमल बन।
अहि फनि मनि नहि लेत तेज नहि बहत पवन घन।।
हंस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिलै अति।
बहु सुन्दरि पद्मिनी पुरुष न चहै न करै रति।।
खलभलित सेस कवि 'गङ्ग' भनि अमित तेज रवि रथ खस्यो।
खानानखान बैरम सुवन जि दिन क्रोध करि तँग कस्यो।।

इनके कुछ छन्द नीचे लिखे जाते हैं :—

बैठी थी सखिन संग पिय को गवन सुन्यो सुख के समूह में वियोग आग भरकी। 'गङ्ग' कहै त्रिविध सुगन्ध लै पवन बह्यो लागत ही ताके तन भई बिथा जर की।। प्यारी को परसि पौन गयो मानसर पहँ लागत ही औरे गति भई मानसर की। जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो जल जरि गयो पङ्क सूख्यो भूमि दरकी।।१।।

नवल नवाब खानखाना जू तिहारी त्रास भागे देसपती धुनि सुनत निसान की। 'गङ्ग' कहै तिनहूँ की रानी राजधानी छाँड़ि फिरै बिललानी सुधि भूली खानपान की।। तेऊ मिली करिन हरिन मृग बानरन तिनहूँ की भली भई रच्छा तहाँ प्रान की। सची जानी करिन भवानी जानी केहरिन मृगन कलानिधि कपिन जानी जानकी।।२।।

प्रबल प्रचण्ड बली बैरम के खानखाना तेरी धाक दीपन दिसान दह दहकी। कहै कवि 'गङ्ग' तहाँ भारी सूर वीरन के उमड़ि अखण्ड दल प्रलै पौन लहकी।। मच्यो घमसान तहाँ तोप तीर बान चलै मंडि बल-वान किरपान कोपि गहकी। तुड काटि मुंड काटि जोसन जरह काट नीमा जामा जीन काटि जमी आनि ठहकी।।३।।

झुकत कृपान मयदान ज्यों उदोत भान एकन तें एक मनो सुखमा जरद की। कहैं कवि 'गङ्ग' तेरे बल की बयाार लागे फूटी गज घटा घन घटा ज्यों सरद की। एते मान सोनित की नदियाँ उमड़ि चलीं रही न निसानी कहूँ महि में गरद की। गौरी गह्यो गिरिपति गनपति गह्यो गौरी गौरीपति गह्यो पूँछ लपकि वरद की।।४।।

फूटि गये हीरा की बिकानी कनी हाट हाट काहू घाट मोल काहू बाढ़ मोल को लयो। टूट गई लङ्का फूट मिल्यो जो बिभीषन है रावन समेत बंस आसमान को गयो।। कहै कवि 'गङ्ग' दुरजोधन से छत्रधारी तनक में फूटें तें गुमान वाको नै गयो। फूटे तें नरद उठि जात बाजी चौसर की आपुस के फूटे कहु कौन को भलो भयो।।५।।

आवत हौं चले शिव सैलतें गिरीश जाँचे मिल्यो हुतो मोंह जहां सागर सगर को। कविन की रसना की पालकी पै चढ़ो जात संग सोहै रावरो प्रताप तेज वर को।। कवि 'गङ्ग' पूछी तुम को हौ कित जैहौ, उन कह्यो मोसों हँसि कै सनेसो ऐसो थर को। जस मेरो नाम मेरो दसो दिसि काम मेरो कोहयो प्रनाम हौं गुलाम बीरबर को।।६।।

देखत के वृच्छन में दीरघ सुभायमान कीर चल्यो चखिबे को प्रेम जिय जग्यो हैं। लाल फल देखि कै जटान मड़रान लागे देखत बटोही बहुतेरे डगमग्यो है।।'गङ्ग' कवि फल फूटे भुआ उधिरान लखि सबन निरास ह्वै कै निज गह भग्यो है। ऐसो फलहीन वृच्छ बसुधा में भयो यारो सेमर बिसासी बहुतेरन को ठग्यो है।।७।।

मृगहू ते सरस बिराजत बिसाल दृग देखिये न अति दुति कौलहू के दल मैं।'गंग' घन दुज से लसत तन आभूषन ठाढ़े द्रुम छाँह देख ह्वै गई बिकल मैं। चख चित चाय भरे सोभा के समुद्र माँझ रही ना सँभार दसा औरे भई पल मैं। मन मेरो गरुओ गयो री बूड़ि मैं न पायो नैन मेरे हरुये तिरत रूप जल मैं ।।८।।

चकई बिछुरि मिली तू न मिली प्रीतम सों गंग कवि कहै ये तो कियो मान ठानरी। अथये नछत्र ससि अथई न तेरी रिस तू न परसन परसन भयो भान री। तू न खोली मुख खोलो कंज औ गुलाब मुख चली सीरी वाय तू न चली भो बिहान री। राति सब घटी नाहीं करनी ना घटी तेरी दीपक मलीन ना मलीन तेरो मान री।।९।।

अधर मधुप ऐसे वदन अधिकानी छवि विधि मानो विधु कीन्हों रूप को उदधि कै। कान्ह देखि आवत अचानक मुरछि परचो बदन छपाइ सखियान लीन्हों मधि कै। मारि गई 'गंग' दृग सर बेधि गिरिधर आधी चितवनि मैं अधीन कीन्हों अधिकै। बान बधि बधिक बधे को खोज लेत फेरि बधिक बधू ना खोज लीन्हीं फेरि बधि कै।।१०।।

मालती शकुंतला सी को है कामकंदला सो हाजिर हजार चारु नटी नौल नागरैं। ऐल फैल फिरत खवास खास आस पास चोवन का चहल गुलाबन की गागरैं। ऐसी मजलिस तेरी देखी बीरबर आज 'गंग' कहै गूँगी ह्वै कै रही है गिरा गरैं। महि रह्यो मागधनि गीत रह्यो ग्वालियर गोरा रह्यो गोर ना अगर रह्यो आगरैं।।११।।

राजे भाजे राज छोड़ि रन छोड़ि रजपूत रौतौ छोड़ि राउत रनाई छोड़ि रानाजू। कहै कवि 'गंग' हूल समुद के चहूँ कूल कियो न करैं कबूल तिय खसमाना जू। पश्चिम पुरतगाल कासमीर अवताल खक्खर को देस बाढ़यो भक्खर भगाना जू। रूम साम लोम सोम बलक बदाखशान खैल फैल खुरासान खीझे खानखाना जू।।१२।।

कोप कशमीर तें चल्यो है दल साजि बीर धीर ना धरत गल गाजिबें को भीम है। सुन्न होत साँझे ते बजत दंत आधीरात तीसरे पहर में दहल दै असीम है। कहै कवि 'गंग' चौथे पहर सतावै आनि निपट निगोरो मोहि जानि कै यतीम है। बाढ़ी शीत शंका काँपै कर ह्वै अतङ्का लघुशंका के लगे ते होत लंकाकी मुहीम है।।१३।।

कहेते न समझे न समझाये समझे सुकवि लोग कहें ताहि मानत असार सी। काक को कपूर जैसे मरकट को भूषन ज्यों ब्राह्मन को मक्का जैसे मीर को बनारसी। बहिरे के आगे तान गाये तो सवाद जैसे हिजड़े के आगे नारि लागत अँगार सी। कहें कवि 'गंग' मन माँहि तो बिचारि देखो मूढ़ आगे विद्या जैसे अंधे आगे आरसी।।१४।।

तारा की जोत में चंद्र छिपै नहिं सूर छिपै नहिं बादर छाये।
रन्न चढ़े रजपूत छिपै नहिं दाता छिपै नहिं माँगन आये।।
चंचल नारि को नैन छिपै नहिं प्रीति छिपै नहिं पीठ दिखाये।
'गंग' कहै सुन साह अकब्बर कर्म छिपे न भभूत लगाये।।१५।।

बुरो प्रीति को पंथ, बुरो जंगल को बासो।
बुरो नारि को नेह, बुरो मूरख सों हासो।।
बुरी सूम की सेव, बुरो भगिनी पर भाई।
बुरी कुलच्छन नारि, सास घर बुरो जमाई।।
बुरो पेट पंपाल है, बुरो युद्ध से भागनो।
'गंग' कहे अकबर सुनो, सबसे बुरो है माँगनो।।१६।।

दलहि चलत हलहलत भूमि थल थल जिमि चल-दल।
पल पल खल खलभलत बिकल बाला कर कुल कल।
जब पटहध्वनि युद्ध धुधु धुद्धुव धुद्धुव हुव।
अरर अरर फटि दरकि गिरत धसमसति धुकन ध्रुव।
भनि 'गंग' प्रबल महि चलत दल जहँगीर शाह तुव भार तल।
फुं फुं फनिन्द फन फुंकरत सहस गाल उगिलत गरल।।१७।।

मृगनैनी की पीठ पै बेनी लसै सुख साज सनेह समोइ रही।
सुचि चीकनी चारु चुभी चित में भरि भौन भरी खुशबोइ रही।
कवि 'गंग' जू या उपमा जो कियो लखि सूरति ता श्रुति गोइ रही।
मनो कंचन के कदली-दल पै अति साँवरी साँपिन सोइ रही।।१८।।

मन घायल पायल मायल ह्वै गढ़ लंकते दूरि निसंक गयो।
तहँ रूप नदी त्रिबली तरि कै करि साहस सागर पार भयो।
कवि गंग भनै बटपार मनोज रुमावलि सों ठग संग लयो।
परि दोऊ सुमेरु के बीच मनोभव मेरो मुसाफिर लूट लयो।।१९।।

हरिनाथ

हरिनाथ नरहरि के पुत्र थे। शाहजहाँ बादशाह की इन पर बड़ी कृपा रहती थी। शाहजहाँ के सिवाय अन्य राजा-महाराजाओं के यहाँ भी इनका अच्छा मान था, और इनको विदाई में घोड़े, हाथी, रथ, पालकी और गाँव आदि मिलते थे।

एक बार आमेर के राजा सवाई मानसिंह की प्रशंसा में इन्होंने नीचे लिखे दोहे पढ़कर एक लाख रुपया दान पाया--

बलि बोई कीरति लता, कर्ण करी द्वैपात।
सींची मान महीप नें, जब देखी कुम्हिलात।।१।।
जाति जाति ते गुन अधिक, सुन्यो न कबहूँ कान।
सेतु बाँधि रघुबर तरे, हेला दै नृप मान।।२।।

जब रुपया लेकर हरिनाथ दरबार से घर की ओर चले, मार्ग में एक ब्राह्मण मिला। उसने यह दोहा कहा--

दान पाय दोई बढ़े, की हरि की हरिनाथ।
उन बढ़ि ऊँचे पग किये, इन बढ़ि ऊँचे हाथ।।

इस दोहे से प्रसन्न हो हरिनाथ ने सब धन-धान्य जो कुछ पाया था, उस ब्राह्मण को दे दिया; और आप खाली हाथ घर चले गये।

एक बार हरिनाथ बाँधवगढ़ के बघेल राजा रामचन्द्र के दरबार में गये। वहाँ राजा से दान-सम्मान पाकर उन्होंने अपनी विपत्ति को संबोधन करके यह सवैया पढ़ा--

आज लौं तोसों औ मोसों विपत्ति बढ़ी रही प्रीति की रीति सहेली।
तो हित झार पहार मझाय कै आय कै देखी है भूमि बघेली।।
श्री हरिनाथ सो मान करै मति मेरी कही यह मानि लै हेली।
भेंटत हौं राजा रामनरेसहिं भेंटि लै री फिर भेंट दुहेली।।

इस सवैया से प्रसन्न होकर राजा ने हरिनाथ को एक लाख रुपया पुरस्कार दिया।

अब ज़रा हरिनाथ के चिड़ीखाने का वर्णन सुनिये—

बाजपेयी बाज सम पाँड़े पच्छिराज सम,
हंस से त्रिवेदी और सोहैं बड़े गाथ के।
कुही सम सुकुल मयूर से तिवारी भारी,
जुर्रा सम मिस्सिर नवैया नहीं माथ के॥
नीलकंठ दीक्षित अवस्थी हैं चकोर चारु,
चक्रवाक दुबे गुरु सुख शुभ साथ के।
येते द्विज जाने रङ्ग रङ्ग के मैं आने,
देस देस में बखाने चिरीखाने हरिनाथ के॥

रहीम

रहीम का पूरा नाम नवाब अब्दुल्रहीम खानखाना था। इनके बाप का नाम बैरम खाँ था। इनका जन्म सं० १६१० में हुआ। ये अकबर के प्रधान सेनापति, मंत्री और दरबार के नवरत्नों में से एक रत्न थे। अकबर इनका बहुत आदर करते थे।

रहीम अरबी, फ़ारसी, संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे। इनकी सभा सदा पंडितों से भरी रहती थी। ये बड़े दानी, परोपकारी, सज्जन और श्रीकृष्णचन्द्र के अनन्य उपासक थे। श्रीकृष्ण के लिये इनकी कविता में इनके विशुद्ध प्रेम की बड़ी ही मनोहर झलक दिखाई पड़ती है। इनका स्वभाव बहुत ही सरल, सरस और दयापूर्ण था। कहा जाता है कि जीवन भर में इन्होंने कभी किसी पर क्रोध नहीं किया। वर्ष में एक बार किसी नियत दिन पर ये अपने घर की सारी सम्पत्ति दान कर दिया करते थे। इनको संसार का बड़ा गहरा अनुभव था। सं० १६८२ में ये परलोक सिधारे।

जो मुग़ल साम्राज्य का उच्च पदाधिकारी, सहृदय, विद्वान्, सुकवि, रसिक, दयालु, दानबीर और भक्त था, उसके जीवन की घटनायें भी बड़ी मनोहर और अद्भुत होंगी, इसमें सदेह ही क्या है? रहीम के विषय में बहुत सी किम्वदन्तियाँ लोगों में प्रचलित हैं। उनमें से कितनी सच और कितनी झूठी हैं, इसका निर्णय करना इतिहास के अभाव में बहुत कठिन है। अतएव सत्य असत्य का निर्णय समालोचकों पर छोड़कर पाठकों के मनोरंजन के लिये कुछ किम्वदन्तियों का उल्लेख यहाँ किया जाता है।

१

अकबर के दरबार में गंग बड़े प्रतिभाशाली कवि थे। रहीम उनको बहुत चाहते थे। एक दिन गंग ने रहीम की प्रशंसा में यह छप्पय सुनाया—

चकित भँवर रहि गयो गमन नहिं करत कमल बन।
अहि फनि मनि नहिं लेत तेज नहिं बहत पवन घन॥
हंस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिलै अति।
बहु सुन्दरि पद्मिनी पुरुष न चहै न करैं रति॥
खलभलित सेस कवि गंग भनि अमित तेज रवि रथ खस्यो।
खानानखान बैरम-सुवन जि दिन क्रोध करि तेंग कस्यो॥

कहते है कि इस छप्पय से रहीम इतने प्रसन्न हुये कि उसी समय इन्होंने ३६ लाख की एक हुंडी, जो खज़ाने में जमा होने के लिये आई थी, उठाकर गंग को दे दी। यदि यह घटना सच हो तो, सचमुच रहीम बड़े ही निस्पृह और दानवीर थे।

२

गोसाईं तुलसीदासजी से भी रहीम का परिचय था। एक दिन एक याचक ब्राह्मण को तुलसीदासजी ने इनके पास भेजा। उसको अपनी कन्या के विवाह के लिये कुछ धन की आवश्यकता थी। तुलसीदासजी ने यह आधा दोहा भी लिख कर उस ब्राह्मण के हाथ भेजा था—

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, यह चाहत सब कोय।

रहीम ने इस दोहे को इस तरह पूरा करके उस ब्राह्मण को बहुत-सा धन देकर तुलसीदासजी के पास भेज दिया—

गोद लियो हुलसी* फिरै, तुलसी से सुत होय।

३

रहीम महाराणा प्रतापसिंह की देशभक्ति और उनके स्वाभिमान की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। एक बार इनके घर की बेगमें राजपूतों के हाथ पड़ गई। राणाजी ने बड़े ही आदर के साथ उनको रहीम के पास भेज दिया। तब से राणाजी पर रहीम की बड़ी श्रद्धा रहने लगी। इसका बदला चुकाने के लिये इन्होंने एक बार अकबर को मेवाड़ पर एक बड़ी चढ़ाई करने से रोका भी था। राणाजी के विषय में इन्होंने राजपूतानी बोली मे बहुत से दोहे बनाये थे, उनमें से एक यह है :—

ध्रम रहसी, रहसी धरा, खिस जासे खुरसाण।
अमर विसम्भर ऊपरैं, रखिओ नहचौ राण॥

एक बार रहीम का एक नौकर छुट्टी लेकर घर गया। घर में उसकी नवबधू का पहले पहल आगमन हुआ था। दम्पति के नवीन प्रेम में छुट्टी के सारे दिन बात की बात में चले गये। स्त्री ने पति को घर में कुछ दिन और रहने के लिये बहुत आग्रह किया; किन्तु नौकरी छूट जाने के भय से पुरुष ने छुट्टी पूरी होने के बाद घर पर ठहरने का साहस नहीं किया। तब स्त्री ने एक बरवै लिखकर और लिफ़ाफ़े में बन्द करके पुरुष को दिया और कहा कि इसे अपने मालिक को दे देना। पुरुष ने ऐसा ही किया। रहीम ने लिफ़ाफ़ा खोला तो उसमें केवल यह लिखा था :—

***हुलसी तुलसीदासजी की माता का नाम था, और हुलसी का दूसरा अर्थ 'हर्ष से फूली हुई' भी होता है।**

प्रेम प्रीति कौ बिरवा, चल्यौ लगाय।
सींचन की सुधि लीज्यौ, मुरझि न जाय।।

रहीम ने सारा रहस्य समझ लिया। इन्होंने नौकर को बुलाकर घर रहने के लिये एक लम्बी छुट्टी दी और उसकी स्त्री के लिये बहुत-से गहने और कपड़े भेजे।

यह छन्द इतना पसन्द आया कि इन्होंने इसी छन्द में बरवै नायिका भेद लिख डाला। यह नायिका भेद शृंगार-रस की एक बहुमूल्य संपत्ति है। घटना और उसका परिणाम दोनों ही बहुत सरस हैं।

५

अकबर के मरने पर जहाँगीर ने रहीम को राजद्रोह के अभियोग में क़ैद कर दिया। क़ैद में इन्हें बड़े-बड़े कष्ट झेलने पड़े। जेल से किसी तरह छुटकारा मिला, तब इन्हें आर्थिक कष्ट ने आ घेरा; क्योंकि जहाँगीर ने इनकी सम्पत्ति पहले ही जब्त कर ली थी। ये दुःखी होकर चित्रकूट चले आये। इस हालत में भी याचक लोग इन्हें घेरे रहते थे। दान-शक्ति की क्षीणता से इनको बड़ा मानसिक कष्ट होता था। इन्होंने याचकों को साफ़ साफ़ कह दिया कि :—

ये रहीम दर दर फिरैं, माँगि मधुकरी खाँहिं।
यारो यारी छोड़ दो, वे रहीम अब नाहिं।।

किन्तु याचक कब मानने लगे। एक दिन एक याचक ने इन्हें बहुत विवश किया और इन्हीं का यह दोहा उसने पढ़ सुनाया—

रहिमन दानि दरिद्र तर, तऊ जाँचिबे जोग।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुआँ खनावत लोग।।

इससे विवश होकर इन्होंने रीवाँ-नरेश के पास यह दोहा लिख भेजा—

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेस।
जापर विपदा परति है, सो आवत यहि देस।।

इस दोहे पर मुग्ध होकर रीवाँ-नरेश ने एक लाख रुपया रहीम के पास भेज दिया। रहीम ने सब रुपया उस याचक को दे दिया।

६

दरिद्रावस्था से दुःखी होकर रहीम ने एक भुजवे के यहाँ भाड़ झोंकने की नौकरी कर ली। एक दिन ये भाड़ झोंक रहे थे। उसी समय रीवाँ-नरेश उधर से निकले। उन्होंने रहीम को पहचानकर कहा—

जाके सिर अस भार, सो कस झोंकत भार अस।

यह सुनकर रहीम ने सिर उठाकर देखा तो रीवाँ नरेश खड़े दिखाई पड़े। इन्होंने तत्काल यह उत्तर दिया :—

रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार में*

*

रहीम की कविता नीति और ज्ञान के तत्व से पूर्ण है। छोटे-छोटे दोहों में इन्होंने जो बड़े-बड़े भाव भर दिये हैं, वे मन को मुग्ध कर लेते हैं। इनकी कविता का प्रधान गुण सरलता है। इन्होंने कहीं-कहीं ग्रामीण शब्दों का प्रयोग करके भी अपने भाव व्यक्त किये हैं। हिन्दी ही में नहीं, संस्कृत और फ़ारसी आदि भाषाओं में भी रहीम ने बड़ी सरस कविता की है। इनके रचे हुये निम्न-लिखित ग्रन्थों के नाम प्रसिद्ध हैं :—

रहीम-सतसई, बरवै नायिका-भेद, रास-पंचाध्यायी, शृङ्गार-सोरठ, मदनाष्टक, दीवान फ़ारसी और वाक़यात बाबरी का फ़ारसी अनुवाद तथा खेट-कौतुक-जातकम्।

इनमें 'बरवै नायिका भेद' ही समूचा छपा हुआ मिलता है। शेष हिन्दी-ग्रन्थों का पता ही नहीं। शृङ्गार-सोरठ और मदनाष्टक के नमूने

***यह घटना मुझे कोइरीपुर (जौनपुर) में बिन्दा नाम के अपढ़ भिक्षुक की ज़बानी मालूम हुई।**

सम्पादक।

के छन्द मिलते हैं, जो इस पुस्तक में दे दिये गये हैं। रहीम-सतसई के अभी तक थोड़े ही दोहे मिले हैं। हाँ, खेट-कौतुक-जातकम् पूरा मिलता है। रहीम ने 'बरवै नायिका भेद' के प्रारम्भ में कहा है कि:—

कवित कह्यो, दोहा कह्यो, तुल्यो न छप्पै छन्द।
बिरच्यो इहै विचारि कै, यह बरवै रस छन्द॥

इससे जान पड़ता है कि रहीम ने कवित्त और छप्पै भी लिखे हैं। हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग ने "रहीम" नामक पुस्तक प्रकाशित की थी। उसमें रहीम की सब कविताएँ, जो मिलती हैं, संगृहीत थीं।

रहीम की जितनी कवितायें अबतक मिली हैं, वे उनकी एक प्रतिभाशाली कवि प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त हैं। यहाँ रहीम की कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते हैं—

रहीम-सतसई

कहि रहीम इक दीपतें, प्रगट सबै दुति होय।
तनु सनेह कैसे दुरै, दृग दीपक जरु दोय॥१॥
तरुवर फल नहिं खात है, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम परकाज हित, सम्पति सुचहिं सुजान॥२॥
जिहि रहीम चित आपनो, कीन्हों चतुर चकोर।
निसि वासर लागो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर॥३॥
रीति प्रीति सबसों भली, बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम की, बहुरि न सङ्गति होत॥४॥
कहि रहीम धन बढ़ि घटे, जात धनिन की बात।
घटे बढ़े तिनको कहा, घास बेंचि जे खात॥५॥
दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहचानि।
सोच नहीं वित हानि को, जो न होय हित हानि॥६॥
को रहीम पर द्वार पर, जात न जिय पछितात।
संपति के सब जात हैं, विपति सबहि लै जात॥७॥

जो रहीम होती कहूँ , प्रभु गति अपने हाथ।
तौ को धौं केहि मानतो , आप बड़ाई साथ ।।८।।
जो रहीम मन हाथ है , मनसा कहुँ किन जाहिं।
जल में जो छाया परी , काया भीजति नाहिं ।।९।।
तेहि प्रमान चलिबो भलो , जो सब दिन ठहराय।
उमड़ि चलै जल पारतें , जो रहीम बढ़ि जाय ।।१०।।
यों रहीम सुख दुख सहत , बड़े लोग सह शांति।
उवत चन्द्र जिहि भाँति सो , अथवत वाही भाँति ।।११।।
माह मास लहि टेसुआ , मीन परे थल भौर।
त्यों रहीम जग जानिए , छूटे आपनो ठौर ।।१२।।
कहि रहीम संपति सगे , बनत कहुत बहु रीत।
बिपति कसौटी जे कसे , तेई साँचे मीत ।।१३।।
तबही लग जीबो भलो , दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत , हमहिं न रुचै रहीम ।।१४।।
रहिमन दानि दरिद्र तर , तऊ जाँचिबे जोग।
ज्यों सरितन सूखा परे , कुवाँ खनावत लोग ।।१५।।
रहिमन देखि बड़ेन को , लघु न दीजिये डारि।
जहाँ काम आवै सुई , कहा करे तरवारि ।।१६।।
बड़ माया को दोष यह , जो कबहूँ घटि जाय।
तौ रहीम मरिबो भलो , दुख सहि जिये बलाय ।।१७।।
धनि रहीम गति मीन की , जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अंत बसि , कहा भौंर को भाय ।।१८।।
दादुर मोर किसान मन , लग्यो रहै घन माहिं।
पै रहीम चातक रटनि , सरवर को कोउ नाहिं ।।१९।।
अमर बेलि बिन मूल की , प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि , खोजत फिरिये काहि ।।२०।।

रहिमन अति न कीजिये , गहि रहिये निज कानि।
सहिजन अति फूले तऊ , डार पात की हानि ।।२१।।
सरवर के खग एक से , बाढ़त प्रीति न धीम।
पै मराल को मानसर , एकै ठौर रहीम ।।२२।।
कहु रहीम केतिक रही , केती गई बिहाय।
माया ममता मोह परि , अंत चले पछिताय ।।२३।।
जो रहीम करिबो हुतो , ब्रज को यही हवाल।
तौ कत मातहि दुख दियो , गिरिवर धरि गोपाल ।।२४।।
दीरघ दोहा अर्थ के , आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली , सिमिट कूदि कढ़ि जाहिं ।।२५।।
जे रहीम विधि बड़ किए , को कहि दूषण काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो , तऊ नखत तें बाढ़ि ।।२६।।
रहिमन याचकता गहे , बड़े छोट ह्वै जात।
नारायन हूं को भयो , बावन आँगुर गात ।।२७।।
ए रहीम घर घर फिरैं , माँगि मधुकरी खाहिं।
यारौ यारी छोड़ि दो , अब रहीम वे नाहिं ।।२८।।
हरि रहीम ऐसी करी , ज्यों कमान सर पूर।
खेंचि आपनी ओर को , डारि दियो पुनि दूर ।।२९।।
संतत संपति जानिके , सबको सब कोई देइ।
दीनबन्धु बिन दीन की , को रहीम सुधि लेइ ।।३०।।
समय दसा कुल देखि के , लोग करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को , तुम बिन को भगवान ।।३१।।
सर सूखे पंछी उड़ैं , औरे सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के , कहु रहीम कहँ जाहिं ।।३२।।
धूर धरत नित सीस पर , कहु रहीम किहिं काज।
जिहि रज मुनि पतिनी तरी , सो ढूँढ़त गजराज ।।३३।।

दीन सबन को लखत है , दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै , दीनबन्धु सम होय ।।३४।।
राम न जाते हरिन सँग , सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहुँ , होति आपने हाथ ।।३५।।
कहु रहीम कैसे निभै , बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने , उनके फाटत अंग ।।३६।।
जो रहीम ओछो बढ़ै , तौ तितही इतराय।
प्यादे से फ़रज़ी भयो , टेढ़ो टेढ़ो जाय ।।३७।।
खीरा को मुँह काटिके , मलियत लोन लगाय।
रहिमन करुये मुखन की , चहियत यही सजाय ।।३८।।
नैन सलोने अधर मधु , कहु रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लौन पर , अरु मीठे पर लौन ।।३९।।
जो विषया संतन तजी , मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन कर , स्वान स्वाद सों खात ।।४०।।
जो रहीम दीपक दसा , तिय राखत पट ओट।
समै परे ते होति है , वाही पटकी चोट ।।४१।।
रहिमन राज सराहिये , ससि सम सुखद जो होय।
कहा बपुरो भानु है , तप्यो तरैयन खोय ।।४२।।
कमला थिर न रहीम कहि , यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू , क्यों न चंचला होय ।।४३।।
रहिमन कहत सुपेट सों , क्यों न भयो तू पीठ।
रीतें अनरीतें करत , भरे बिगारत दीठ ।।४४।।
जे गरीब सों हित करैं , धनि रहीम वे लोग।
कहा सुदामा बापुरो , कृष्ण मिताई जोग ।।४५।।
जो रहीम उत्तम प्रकृति , का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं , लपटे रहत भुजंग ।।४६।।

यह न रहीम सराहिये , देन लेन की प्रीति।
प्रानन बाजी राखिये , हारि होय कै जीति ।।४७।।
आप न काहू काम के , डार पात फल मूर।
औरन को रोकत फिरैं , रहिमन कूर बबूर ।।४८।।
रहिमन सूधी चाल सों , प्यादा होत वज़ीर।
फ़रज़ी मीर न हो सकैं , टेढ़े की तासीर ।।४९।।
बड़े पेटके भरन में , है रहीम दुख बाढ़ि।
यातें हाथी हहरि के , दये दाँत द्वै काढ़ि ।।५०।।
यों रहीम सुख होत है , बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि , आँखिन को सुख होत ।।५१।।
ओछो काम बड़े करैं , तौ न बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमन्त को , गिरिधर कहै न कोय ।।५२।।
जो बड़ेन को लघु कहौ , नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरिधर मुरलीधर कहे , कछु दुख मानत नाहिं ।।५३।।
ससि सकोच साहस सलिल , मान सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात है , घटत घटत घटि सीम ।।५४।।
यह रहीम निज संग लै , जनमत जगत न कोय।
बैर प्रीति अभ्यास जस , होत होत ही होय ।।५५।।
बड़े दीन को दुख सुनै , लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती , कहु रहीम पहिचानि ।।५६।।
रहिमन राम न उर धरै , रहत विषय लपटाय।
पसु खर खात सवाद सों , गुर गुलियाये खाय ।।५७।।
दुरदिन परे रहीम कहि , दुरथल जैयत भागि।
ठाढ़े हूजत घूर पर , जब घर लागत आगि ।।५८।।
प्रीतम छवि नैनन बसी , पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि , आप पथिक फिरि जाय ।।५९।।

गुरुता फबै रहीम कहि , फबि आई है जाहि।
उर पर कुच नीके लगैं , अनत बतौरी आहि ॥६०॥
कुटिलन संग रहीम कहि , साधू बचते नाहिं।
ज्यों नैना सैना करैं , उरज उमेठे जाहिं ॥६१॥
कौन बड़ाई उदधि मिलि , गंग नाम भयो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी , पर घर गये रहीम ॥६२॥
मानसरोवर ही मिलै , हंसनि मुकता भोग।
सफरिन भरे रहीम सर , बक बालकनहिं जोग ॥६३॥
रहिमन बिगरी आदि की , बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं , तऊ बावनै नाम ॥६४॥
रहिमन रिस सहि तजत नहिं , बड़े प्रीति को पौरि।
मूंकन मारत आवई , नींद बिचारी दौरि ॥६५॥
मनसिज माली की उपज , कही रहीम न जाय।
फूल स्याम के उर लगे , फल स्यामा उर आय ॥६६॥
जेहि रहीम तन मन दियो , कियो हिए बिच भौन।
तासों दुख सुख कहन की , रही बात अब कौन ॥६७॥
जो पुरुषारथ ते कहूँ , सम्पति मिलति रहीम।
पेट लागि बैराट घर , तपत रसोई भीम ॥६८॥
सब कोऊ सब सों करै , राम जुहार सलाम।
हित रहीम तब जानिये , जा दिन अँटकै काम ॥६९॥
ज्यों रहीम गति दीप की , कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगै , बढ़े अँधेरो होय ॥७०॥
छोटेन सों सोहैं बड़े , कहि रहीम यहि लेख।
सहसन को हैय बाँधियत , लै दमरी की मेख ॥७१॥
सम्पति भरम गँवाइ के , हाथ रहत कछु नाहिं।
ज्यों रहीम ससि रहत हैं , दिवस अकासहि माहिं ॥७२॥
अनुचित उचित रहीम लघु , करहि बड़ेन के जोर।
ज्यों ससि के संजोग ते , पचवत आगि चकोर ॥७३॥

काम कछू आवै नहीं, मोल न कोऊ लेइ।
बाजू टूटे बाज को, साहब चारा देइ ॥७४॥
धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय ॥७५॥
माँगे घटत रहीम पद, कितो करो बढ़ि काम।
तीन पैग बसुधा करी, तऊ बावनै नाम ॥७६॥
नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पसु ते अधिक, रीझेहु कछू न देत ॥७७॥
रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नाहिं गरब को लेस।
भार धरें संसार को, तऊ कहावत शेष ॥७८॥
रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझहिं सब ताहि ॥७९॥
रहिमन अब वे बिरछ कहँ, जिनकी छाँह गँभीर।
बागन बिच बिच देखियत, सेंहुँड़ कंज करीर ॥८०॥
मुकता करै कपूर करि, चातक जीवन जोय।
येतो बड़ो रहीम जल, ब्याल बदन बिष होय ॥८१॥
ससि की सीतल चाँदनी, सुन्दर सबहि सुहाय।
लगे चोर चित में लटी, घटि रहीम मन आय ॥८२॥
अमृत ऐसे बचन में, रहिमन रिस की गाँस।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की फाँस ॥८३॥
रहिमन मनहि लगाय के, देखि लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा, नारायन बस होय ॥८४॥
रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ ॥८५॥
गुन ते लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि।
कूपहुँ ते कहुँ होत है, मन काहू को बाढ़ि ॥८६॥

रहिमन मन महराज के , दृग सों नहीं दिवान।
जाहि देखि रीझे नयन , मन तेहि हाथ बिकान ।।८७।।
बिरह रूप घन तम भयो , अवधि आस उद्योत।
ज्यों रहीम भादों निसा , चमकि जात खद्योत ।।८८।।
रहिमन लाख भली करौ , अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पियत हूँ , साँप सहज धरि खाय ।।८९।।
जैसी परै सो सहि रहै , कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत सब , सीत घाम औ मेह ।।९०।।
सीत हरत तम हरत नित , भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तेहि रवि को कहा , जो घटि लखै उलूक ।।९१।।
नहिं रहीम कुछ रूप गुन , नहिं मृगया अनुराग।
देसी स्वान जो राखिए , भ्रमत भूखही लाग ।।९२।।
कागज को सो पूतरा , सहजहि में घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखो , सोऊ खैंचत बाय ।।९३।।
बिगरी बात बनै नहीं , लाख करौ किन कोय।
रहिमन बिगरे दूध को , मथै न माखन होय ।।९४।।
मथत मथत माँखन रहै , दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है , भीर परे ठहराय ।।९५।।
होय न जाकी छाँह ढिग , फल रहीम अति दूर।
बा.हु सो बिन काज ही , जैसे तार खजूर ।।९६।।
यों रहीम गति बड़ेन की , ज्यों तुरंग व्यवहार।
दाग दिवावत आपु तन , सही होत असवार ।।९७।।
रहिमन निज मन की व्यथा , मनहीं राखौ गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब , बाँटि न लैहैं कोय ।।९८।।
रहिमन चुप ह्वै बैठिये , देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइ हैं , बनत न लगि हैं देर ।।९९।।

गहि सरनागति राम की , भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर , और न कछु उपाव ।।१००।।
रहिमन वे नर मरि चुके , जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनसे पहिले वे मुए , जिन मुख निकसति नाहिं ।।१०१।।
जाल परे जल जात बहि , तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को , तऊ न छाँड़ति छोह ।।१०२।।
धन दारा अरु सुतन में , रहत लगाए चित्त।
क्यों रहीम खोजत नहीं , गाढ़े दिन को मित्त ।।१०३।।
अमी हलाहल मद भरे , स्वेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकिझुकि परत, जिहि चितवत इक बार ।।१०४।।
कमला थिर न रहोम कहि , लखत अधम जे कोइ।
प्रभु की सो अपनी कहै , क्यों न फजीहत होइ ।।१०५।।
रहिमन पानी राखिये , बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरै , मोती मानुस चून ।।१०६।।
जाय समानी उदधि में , गंग नाम भयो धीम।
काकी महिमा ना घटी , पर घर गये रहीम ।।१०७।।
मानसरोवर ही मिले , हंसन मुक्ता भोग।
सफरी भरे रहीम ए , विपुल बिलोकन जोग ।।१०८।।
बढ़त रहीम धनाढ्य धन , धनै धनी को जाइ।
घटे बड़ै तिन को कहा , भीख माँगि जो खाइ ।।१०९।।
रहिमन रहिला की भली , जो परसै चित लाय।
परसत मन मैला करे , सो मैदा जरि जाय ।।११०।।
खैर खून खाँसी खुसी , बैर प्रीति मधु पान।
रहिमन दाबे ना दबे , जानत सकल जहान ।।१११।।
गगन चढ़ै फिर क्यों तिरै , रहिमन बहुरी बाज।
फेरि आइ बंधन परै , पेट अधम के काज ।।११२।।

काज परे कछु और है , काज सरे कछु और।
रहिमन भाँवर के भये , नदी सेरावत मौर ।।११३।।
रहिमन चाक कुम्हार को , माँगे दिया न देइ।
छेद में डंडा डारि के , चहै नाँद लइ लेइ ।।११४।।
अब रहीम मुसकिल परी , गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं , झूठे मिलैं न राम ।।११५।।
रहिमन कोऊ का करै , ज्वारी चोर लबार।
जो पति राखनहार है , माखन चाखनहार ।।११६।।
रहिमन बिपदा तू भली , जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में , जानि परत सब कोय ।।११७।।
साधु सराहै साधुता , जती जोखिता जान।
रहिमन साँचे सूर को , बैरी करै बखान ।।११८।।
करत निपुनई गुन बिना , रहिमन निपुन हजूर।
मानो टेरत बिटप चढ़ि , मोहिं समान को कूर ।।११९।।
यों रहीम सुख होत है , उपकारी के अंग।
बाँटनवारे के लगै , ज्यों मेहँदी को रंग ।।१२०।।
भूप गनत लघु गुनिन को , गुनी गनत लघु भूप।
रहिमन गिरि तें भूमि लौं , लखो तो एकै रूप ।।१२१।।
तैं रहीम मन आपनो , कीन्हों चारु चकोर।
निसि बासर लाग्यो रहै , कृष्णचन्द्र की ओर ।।१२२।।
माँगे मुकुरि न को गयो , केहि न त्यागियो साथ।
माँगत आगे सुख लह्यो , ते रहीम रघुनाथ ।।१२३।।
छिमा बड़ेन को चाहिये , छोटेन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो , जो भृगु मारी लात ।।१२४।।

सोरठा

रहिमन मोहि न सुहाय , अमी पियावत मान बिन।
जो विष देय बुलाय , प्रेम सहित मरिबो भलो ।।१२५।।

बरवै नायिका भेद

लहरत लहर लहरिया , लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया , बिथुरे बार ।।१।।
लागेउ आनि नबेलियहि , मनसिज बान।
उकसन लाग उरोजवा , दृग तिरछान ।।२।।
कवन रोग दुहुँ छतियाँ , उपजेउ आय।
दुखि दुखि उठै करेजवा , लगि जनु जाय ।।३।।
औचक आय जोबनवाँ , मोहिं दुख दीन।
छुटि गो सङ्ग गोइयवाँ , नहिं भल कीन ।।४।।
भोरहिं बोलि कोइलिया , बढ़वत ताप।
घरि घरि एक घरिअवा , रहु चुपचाप ।।५।।
बाहर लैके दियवा , बारन जाय।
सासु ननद ढिग पहुँचत , देति बुझाय ।।६।।
होइ कत आय बदरिया , बरखहिं पाथ।
जैहौं घन अमरैया , सुगना साथ ।।७।।
जैहौं चुनन कुसुमिआँ , खेत बड़ि दूर।
नौवा केरि छोहरिया , मुहिं सँग कूर ।।८।।
जस मद मातल हथिया , हुमकत जाति।
चितवति जाति तरुनियाँ , मन मुसुकाति ।।९।।
खीन मलिन विषभैया , औगुन तीन।
मोहिं कहत बिधुबदनी , पिय मतिहीन ।।१०।।
त अब जासि बेइलिया , बरु जरि मूल।
बिन पिय सूल करेजवा , लखि तुव फूल ।।११।।
का तुम जुगल तिरियवा , झगरत आय।
पिय बिन मनहुँ अटरिया , मुहिं न सुहाय ।।१२।।
कासों कहौं सँदेसवा , पिय परदेसु।
लगेहु चहत नहिं फूले , तेहि बन टेसु ।।१३।।

पिय आवत अँगनैया , उठि कै लीन।
साथे चतुरु तिरियवा , बैठक दीन ।।१४।।
कठिन नीद भिनुसरवा , आलस पाय।
धन दै मूरख मितवा , रहल लोभाय ।।१५।।
सुभग बिछाइ पलँगिया , अंग सिंगार।
चितवति चौंकि तरुनियाँ , दै दृग द्वार ।।१६।।
बन घन फूलहि टेसुआ , बगियन बेलि।
चले बिदेस पियरवा , फगुआ खेलि ।।१७।।
पीतम इक सुमिरिनियाँ , मुहि देइ जाहु।
जेहि जपि तोर बिरहवा , करब निबाहु ।।१८।।
लखि अपराध पियरवा , नहिं रिस कीन।
बिहँसत चँदन चउकिया , बैठक दीन ।।१९।।
करत न हिय अपरधवा , सपनेहु पीय।
मान करन की बिरियाँ , रहिगो हीय ।।२०।।
लै कर सुघर खुरपिया , पिय के साथ।
छइबे एक छतरिया , बरसत पाथ ।।२१।।
सघन कुंज अमरैया , सीतल छाँह।
झगरति आइ कोइलिया , पुनि उड़ि जाह ।।२२।।
खेलत जानेसि टोलवा , नन्दकिसोर।
छुइ बृषभानु कुँअरिया , होइ गइ चोर ।।२३।।
पीतम मिले सपनवाँ , भो सुखखानि।
आनि जगायेसि चेरिया , भइ दुखदानि ।।२४।।
पिय मूरति चितसरिया , चितवत बाल।
चितवत अवध सबेरवा , जपि जपि माल ।।२५।।
बिरहिन और बिदेसिया , भौ इक ठौर।
पिय मुख तकत तिरियवा , चन्द चकोर ।।२६।।

सखियन कीन सिँगरवा , रचि बहु भाँति।
हेरति नैन अरसिया , मुरि मुसुकाति ।।२७।।
छाकहु बइठि दुअरिया , मीजहु [illegible]याय।
पिय तन पेखि गरमियाँ , बिजन डुलाय ।।२८।।
टूटि खाट घर टपकत , टटिऔ टूटि।
पिय कै बाँह सिर्हनवाँ , सुख कै लूटि ।।२९।।
डील ओखि जल अँचवनि , तरुनि सुगानि।
धरि खसकाइ घइलना , मुरि मुसुकानि ।।३०।।
बालम अस मन मिलयउँ , जस पय पानि।
हंसिनि भई सवतिया , लइ बिलगानि ।।३१।।
पथिक आइ पनिघटवाँ , कहत 'पियाव'।
पैयाँ परउँ ननदिया , फेरि कहाव ।।३२।।

शृंगार-सोरठ

पलटि चली मुसुकाय , दुति रहीम उजियाय अति।
बाती सी उसकाय , मानो दीनी दीप की ।।१।।
दीपक हिये छिपाय , नवल बधू घर लै चली।
कर बिहीन पछिताय , कुच लखि निज सीसै धुनै ।।२।।
गई आगि उर लाय , आगि लेन आई जो तिय।
लागी नही बुझाय , भभकि भभकि बरि बरि उठै ।।३।।

मदनाष्टक

ललित ललित माला , वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला , चाँदनी में खड़ा था ।।
कटि तट बिच मेला , पीत सेला नवेला।
अलि बन अलबेला , यार मेरा अकेला ।।

केशवदास

केशवदास सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम काशीनाथ था। इनका जन्म सं० १६१२ के लगभग हुआ। ओड़छा-नरेश महाराजा रामसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह इनका विशेष आदर करते थे। महाराजा बीरबल ने इनको केवल एक छंद पर छः लाख रुपये दिये थे। वह छंद यह है :—

केसवदास के भाल लिख्यो बिधि रंक को अंक बनाय सँवारचो।
धोये धुवैं नहिं छूटो छुटै बहु तीरथ जाय कै नीर पखारचो।
ह्वै गयो रंक ते राव तबै जब बीरबली नृप-नाथ निहारचो।
भूलि गयो जग की रचना चतुरानन बाय रह्यो मुख चारचो॥

केशवदास ने महाराजा बीरबल के द्वारा इन्द्रजीतसिंह पर एक करोड़ का जुरमाना अकबर से माफ़ करा दिया था। इनका शरीरांत सं० १६७४ के लगभग हुआ।

ये संस्कृत के बड़े पंडित थे। इनकी कविता बहुत गूढ़ होती थी। इसीसे प्रसिद्ध देव कवि ने इन्हें 'कठिन काव्य का प्रेत' कहा है। और इनकी कविता के विषय में यह भी प्रसिद्ध है कि 'कवि को दीन न चहै बिदाई। पूछै केसव की कविताई।'

इनके रचे हुये आठ ग्रन्थ कहे जाते हैं—रसिक-प्रिया, कवि-प्रिया, राम-चंद्रिका, विज्ञान-गीता, वीरसिंहदेव-चरित्र, जहाँगीर-चंद्रिका, नखशिख और रत्न-बावनी। इनमें से चार बहुत प्रसिद्ध हैं— रामचन्द्रिका, कवि-प्रिया, रसिक-प्रिया और विज्ञान-गीता। लोग कहते हैं कि रामचन्द्रिका इन्होंने तुलसीदासजी के कहने से लिखी। रामचन्द्रिका महाकाव्य है। कविप्रिया अलंकार-प्रधान ग्रंथ है। यह प्रवीणराय वेश्या के लिये लिखा गया था। प्रवीणराय काव्य-कला में इनकी शिष्या थी। रसिक-प्रिया शृंगार-प्रधान ग्रंथ है। इसमें रसों का वर्णन है। विज्ञान-गीता एक साधारण ग्रंथ है।

केशवदास आचार्य थे, इसमें संदेह नहीं। इनकी कोई कोई कविता अन्य कवियों की कविता की तरह सुनते ही समझ में नहीं आ जाती। उसके लिये कुछ विचार की आवश्यकता पड़ती है। परंतु जितना ही उसे अधिक विचारिये, उतनी ही मिठास भी बढ़ती जाती है।

केशवदास रसिक भी एक ही थे। वृद्धावस्था में इन्होंने केशों की सफ़ेदी देखकर कहा—

केसव केसनि अस करी , जस अरिहूँ न कराहिँ।
चन्द्रवदनि मृगलोचनी , बाबा कहि कहि जाहिँ ।।

इससे प्रकट होता है कि वृद्ध होने पर भी इनका मन वृद्ध नहीं हुआ था।

इनकी कविता के कुछ नमूने हम यहाँ उद्धृत करते हैं :—

१

विप्र न नेगी कीजिये , मूढ़ न कीजे मित्त।
प्रभु न कृतघ्नी सेइये , दूषण सहित कवित्त ।।

२

धीरज मोचन लोचन लोल विलोकि कै लोककी लीकति छूटी।
फूटि गये श्रुति ज्ञान के केसव आँख अनेक विवेक की फूटी।।
छोड़ि दई सरिता सब काम मनोरथ के रथ की गति छूटी।
त्यों न करे करतार उबारक जो चितवै वह बारवधूटी।।

३

तोरि तनी टकटोरि कपोलनि जोरि रहे कर त्यों न रहौंगी।
पान खवाइ सुधाधर पान कै पाइ गहे तस हौं न गहौंगी।
केसव चूक सबै सहिहौं मुख चूमि चलै यह तो न सहौंगी।
कै मुख चूमन दे फिरि मोहि कै आपनी धाय सों जाय कहौंगी।

४

भूषन सकल घनसारही के घनस्याम, कुसुम कलित केसरही छवि छाई सी। मोतिन की लरी सिर कंठ कंठ माल हार, और रूप ज्योति जात हेरत हेराई सी।। चंदन चढ़ाये चारु सुन्दर सरीर सब, राखी जनु सुभ्र सोभा बसन बनाई सी। सारदा सी देखियतु देखो जाइ केसोराइ ठाढ़ी वह कुँवरि जुन्हाई में अन्हाई सी।।

५

मन ऐसो मन मृदु मृदुल मृणालिका के सूत कैसो सुर ध्वनि मननि हरति है। दास्यो कैसो बीज दाँत पाँत से अरुन ओंठ, केसोदास देखि दृग आनंद भरति है।। येरी मेरी तेरी मोहि भावत भलाई तातें, बूझति हौं तोहि और बूझत डरति है। माखन सी जीभ मुख कंज सी कोमलता में काठ सी कठेठी बात कैसे निकरति है।।

६

पंडित पुत्र, सुधी पतिनी जु पतिव्रत प्रेम परायन भारी।
जानै सबै गुन, मानै सबै जग, दान विधान दया उर धारी।
केसव रोगनही सो वियोग, संयोग सुभोगन सों सुखकारी।
साँच कहे, जग माँह लहे जस, मुक्ति यहै चहुँ वेद विचारी।।

७

बाहन कुचाली, चोर चाकर, चपल चित, मित्र मति हीन, सूम स्वामी उर आनिये।। पर बस भोजन, निवास वास कुकुरन, वरषा प्रवास, केसोदास दुखदानि ये। पापिन के अंग संग, अंगना अनंग बस, अपजस युत सुत, चित हित हानि ये। मूढ़ता, बुढ़ाई, व्याधि, दारिद, झुठाई, आधि, यहई नरक नरलोकनि बखानिये।।

८

कैटभ सों नरकासुर सों पल में मधु सों मुर सों जिन मारचो।
लोक चतुर्दस केसव रच्छक पूरन वेद पुरान विचारचो।
श्री कमला कुच कुंकुम मंडित पंडित देव अदेव निहारचो।
सो कर माँगन को बलि पै करतारहु ने कर तार पसारचो।।

९

जौ हौं कहौं रहिये तो प्रभुता प्रगट होति चलन कहौं तौ हित हानि नाही सहनो। भावै सो करहु, तौ उदास भाव प्राननाथ साथ लै चलहु कैसे लोक लाज वहनो।। केसोदास की सों तुम सुनहु छबीले लाल चलेही बनत जो पै नाही राज रहनो। जैसियै सिखाओ सीख तुमहीं सुजान प्रिय तुमहीं चलत मोहिं जैसो कछु कहनो।।

१०

धिक मंगन गुनहिं गुत सु धिक सुनत न रीझिय।
रीझ सु धिक बिन मौज मौज धिक देत सु खीझिय।।
दीबो धिक बिन साँच साँच धिक धर्म न भावै।
धर्म सु धिक बिन दया दया धिक अरि कहँ आवै।।
अरि धिक चित्त न सालई, चित धिक जहँ न उदार मति।
मति धिक केशव ज्ञान बिनु, ज्ञान सु धिक बिनु हरिभगति।।

११

पातक हानि पिता सँग हारिबो गर्व के सूलनि तें डरिये जू।
तालनि को बँधिबो बध रोर को नाथ के साथ चिता जरियेजू।।
पत्र फटें ते कटे रिन केसव कैसहू तीरथ में मरियेजू।
नीकी लगै ससुरारि की गारि औ डाँड़ भलो जो गया भरिये जू।।

१२

पाप की सिद्धि सदा ऋन बृद्धि सुकीरति आपनी आप कही की।
दुःख को दान जु सूतक न्हान जु दासी की संतति संतत फीकी।।

बेटी को भोजन भूषन राँड़ को केसव प्रीति सदा पर ती की।
जुद्ध में लाज दया अरि को अरु ब्राह्मण जाति सों जीति न नीकी॥

१३

सोने की एक लता तुलसी वन क्यों बरनों सुनि बुद्धि सकै छ्वै।
केसवदास मनोज मनोहर ताहि फले फल श्रीफल से द्वै॥
फूलि सरोज रह्यो तिन ऊपर रूप निरूपन चित चले च्वै।
तापर एक सुवा सुभ तापर खेलत बालक खंजन के द्वै॥

१४

दुरिहै क्यों भूषन बसन दुति यौवन की देह हूँ की ज्योति होति द्यौस ऐसी राति है। नाहक सुवास लागे ह्वै है कैसी केसव सुभावती की बास भौंर भीर फारे खाति है। देखि तेरी सूरति की मूरति बिसूरति हूँ, लालनि के दृग देखिबे को ललचाति है। चालि है क्यों चंदमुखी कुचन के भार भये कचन के भार ही लचकि लंक जाति है॥

१५

भूत की मिठाई कैसी साधु की झुठाई जैसी स्यार की ढिठाई ऐसी छीन छहू ऋतु है। धीरा कैसो हास केसोदास दासी कैसो सुख सूर की सी संक अंक रंक कैसो वितु है। सूम कैसो दान महामूढ़ कैसो ज्ञान गौरी गौरा कैसो मान मेरे जान समुदितु है। कौने है सँवारी वृषभानु की कुमारी यह तेरी कटि निपट कपट कैसो हितु है॥

१६

किधौं मुख कमल ये कमला की ज्योति होति किधौं चारु मुख चन्द्र चन्द्रिका चुराई है। किधौं मृग लोचनि मरीचिका मरीचि कैधौं रूप की रुचिर रुचि सुचि सों दुराई है। सौरभ की सोभा की दसन घन दामिनी की केसव चतुर चित ही की चतुराई है। एरी गोरी भोरी तेरी थोरी थोरी हाँसी मेरी मोहन की मोहिनी की गिरा की गुराई है॥

१७

बन में वृषभानु कुमारि मुरारि रमे रुचि सों रस रूप पिये।
कल कूजत पूजत काम कला विपरीति रची रति केलि हिये।।
मणि सोहत श्याम जराई जरी अति चौकी चलै चल चार हिये।
मखतूल के झूल झुलावत केसव भानु मनो सनि अंक लिये।।

१८

चंचल न हूजै नाथ अंचल न खैंचो हाथ, सोवै नेक सारिकाऊ सुक तौ सुवायो जू। मन्द करौ दीप द्युति चन्द मुख देखियत, दौर के दुराय आऊँ द्वार तौ दिखायो जू।। मृगज मराल बाल बाहिरै बिड़ारि देऊँ, भायो तुम्हैं केसव सु मोहूँ मन भायो जू। छल के निवास ऐसे बचन विलास सुनि, सौगुनो सुरत हूँ तैं स्याम सुख पायो जू।।

१९

पाँइ परै मनुहार करै पलका पर पाँइ धरै भय भीने।
सोइ गई कहि केसव कैसहूँ कोर करोरहूँ सौंहन कीने।।
साहस कै मुख सों मुख दै छिन में हरि मान महा सुख लीने।
एक उसाँसही के उससे सिगरेई सुगन्ध बिदा करि दीने।।

२०

प्रथम सकल सुचि मंजन अमल बास, जावक सुदेश केश पाश को सम्हारिबो। अङ्गराग भूषण विविध मुख वास राग, कज्जल कलित लोल लोचन निहारिबो।। बोलनि हँसनि मृदु चलनि चितौनि चारु, पल पल प्रति पतिव्रत परिपारिबो। केसोदास सो बिलास करहु कुँवरि राधे, इहि बिधि सोरह श्रृँगारनि श्रृँगारिबो।।

२१

भाव जहाँ व्यभिचारी वे पै रमै पर नारी, द्विजै गन दंडधारी चोरी पर पीर की। मानिनीनही के मन मानियत मान-भंग, सिन्धुहिं उलाँघि जाति कीरति सरीर की। भूलै तो अधोगति न पावत है केसौदास, मीचही सोँ है वियोग इच्छा गंग नीर की। बन्ध्या बासनानि जानु विधिना सो बाटिनिकी ऐसी रीति राजनीति राजै रघुबीर की।।

२२

कवि कुल ही के श्रोफलन, उर अभिलाष समाज।
तिथिही को छय होत है, रामचन्द्र के राज।।

२३

लूटिबे के नाते पाप पट्टनै तौ लूटियत, तोरिबे को मोह तरु तोरि डारियतु है। घालिबे के नाते गर्ब घालियत देवन के, जारिबे के नाते अघ ओघ जारियतु है। बाँधिबे के नाते ताल बाँधियत केसौदास, मारिबे के नाते तौ दरिद्र मारियतु है। राजा रामचन्द्र जूके नाम जग जीतियतु, हारिबे के नाते आन जन्म हारियतु है।।

२४

कुटिल कटाच्छ कठोर कुच, एकै दुःख अदेय।
द्वि स्वभाव अश्लेष में, ब्राह्मण जाति अजेय।।

पृथ्वीराज और चम्पादे

पृथ्वीराज बीकानेर के राजा रायसिंह के भाई थे, और अकबर के दरबार में रहा करते थे। कहा जाता है कि इन्हीं की रानी किरणमयी अत्यन्त सुन्दरी थी, जिसे नवरोज़ के अवसर पर अकबर ने एक दूती के द्वारा बहकाकर एक कोठरी में बन्द कर दिया, और स्वयं उस कोठरी में घुसकर वह बलात्कार किया चाहता था। पर किरणमयी ने उस भारत के शाहंशाह को उठाकर पृथ्वी पर दे मारा और कटार निकालकर उसके गले पर रख दी। अकबर ने जब माता कहकर क्षमा माँगी, तब कहीं उसके प्राण बचे।

प्रसिद्ध देशभक्त महाराणा प्रतापसिंह जब अकबर से विद्रोह कर के राज्य छोड़कर बनों में घूमते थे, तब एक दिन उनकी कन्या के हाथ से एक जङ्गली बिलाव घास की रोटी, जो वह खा रही थी, छीनकर ले गया। कन्या रोने लगी। इस घटना का राणाजी के हृदय पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अकबर के पास संधि का प्रस्ताव लिख भेजा।

टाड साहब लिखते हैं—'प्रताप का पत्र पाकर अकबर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने आज्ञा दी कि राज्य भर में नाच गान हो, और आनन्द मनाया जावे। मारे हर्ष के उसने वह पत्र पृथ्वीराज को दिखलाया। पृथ्वीराज बीकानेर-नरेश राजसिंह के छोटे भाई थे, जो दुर्भाग्य से मुग़लों के यहाँ क़ैद थे। वे बड़े वीर, साहसी और स्वदेश-प्रेमी थे। वीर ही नहीं, बल्कि वे एक अच्छे कवि भी थे। वे अपनी कवित्व-शक्ति से मनुष्य का मन मोह सकते थे, और आवश्यकता पड़ने पर तलवार लेकर युद्ध में भी विजय प्राप्त कर सकते थे। लड़कपन ही से वे प्रतापसिंह की वीरता, उदारता और स्वदेश-भक्ति पर मोहित होकर उन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। उनको विश्वास नहीं था, कि प्रतापसिंह ने अकबर को ऐसा पत्र लिखा होगा। अतएव स्वाभाविक निडरता से उन्होंने अकबर से कहा—'मैं प्रताप को भली भाँति जानता हूँ। यह पत्र उनका नहीं है। और तो क्या, यदि आप अपना ताज भी दे दें, तो भी तेजस्वी प्रताप आपके वश में नहीं होंगे।' इसके पश्चात् उन्होंने अकबर की

अनुमति से प्रतापसिंह को एक पत्र लिखा। पत्र कविता में था। उस कवित को अब भी कभी कभी राजपूत लोग बड़े आनन्द से गाते हैं।

पत्र की मूल प्रति कहीं नहीं मिलती। उसके कुछ दोहे प्रसिद्ध हैं, उन्हें हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

घर बाँकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण।
घणाँ नरिन्दा घेरियो, रहै गिरिन्दाँ राण ॥१॥

जिसकी भूमि अत्यंत विकट है, और दिन अनुकूल है, जो वीर अभिमान को नहीं छोड़ता, वह महाराणा बहुत राजाओं से घिरा हुआ पहाड़ी में निवास करता है।

पातल राण प्रवाड़ मल, बाँकी घड़ा बिभाड़।
खूंदाड़ै कुण है खुराँ, तो ऊभाँ मेवाड़ ॥२॥

हे विकट सेनाओं के विध्वंस करने वाले और युद्ध में मल्ल महाराणा प्रतापसिंह! तेरे खड़े रहते मेवाड़ को घोड़ों के खुरों से खुंदाने वाला कौन है?

माई एहा पूत जण, जेहा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओधकै, जाण सिराणै साँप ॥३॥

हे माता! तू ऐसा पुत्र उत्पन्न कर, जैसा राणा प्रताप है। जिसको अकबर सिरहाने का साँप जानकर सोता हुआ चौंक उठता है।

अइरे अकबरियाह, तेज तुहालो तुरकड़ा।
नम नम नीसरियाह, राण बिना सह राजवी ॥४॥

ऐ अकबर, तेरा तेज देखकर बड़ा आश्चर्य होता है, जिसके सामने महाराणा के सिवाय सब राजा लोग झूक-झुककर निकलते हैं।

सह गावड़ियो साथ, एकण बाड़ै बाड़ियो।
राण न मानी नाथ, ताँड़े साँड़ प्रतापसी ॥५॥

हे अकबर ! तू ने गाय रूपी सब राजाओं को एक बाड़े में इकट्ठा कर लिया; परन्तु साँड़ रूपी प्रतापसिंह तेरी नाथ को नहीं मानकर गरज रहा है।

पातल पाघ प्रमाण, साँभी साँगा हर तणी।
रही सदा लग राण, अकबर सूँ ऊभी अणी ।।६।।

महाराणा संग्रामसिंह के पोते प्रतापसिंह की पगड़ी ही गिनती में सच्ची है, जो अकबर के सामने अपनी नोक को ऊँचा उठाये रही।

चोथो चीतोड़ाह, वाटो वाजंती तणो।
माथै मेवाड़ाह, थारै राण प्रतापसी ।।७।।

हे चित्तौड़ के स्वामी महाराणा प्रतापसिंह ! हे मेवाड़पति ! पगड़ी तेरे ही सिर पर है।

अकबर समद अथाह, तिहँ डूबा हिन्दू तुरक।
मेवाड़ां तिण माहें, पोयण फूल प्रतापसी ।।८।।

अकबर रूपी अथाह समुद्र में हिन्दू तुरुक सब डूब गये। परन्तु मेवाड़ के स्वामी महाराणा प्रताप उसमे कमल के फूल के समान रहे।

अकबरिये इक वार, दागल की सारी दुनी।
अणदागल असवार, चेटक राण प्रतापसी ।।९।।

अकबर ने एक ही बार मे सारी दुनिया को कलंकित कर दिया। परन्तु चेटक घोड़े के असवार राणा प्रताप निष्कलंक रहे।

अकबर घोर अँधार, ऊँघाणाँ हिन्दू अवर।
जागै जगदातार, पोहरे राण प्रतापसी ।।१०।।

अकबर रूपी घोर अंधकार मे सब हिन्दू सो गये। परन्तु जगत् का दाता राणा प्रताप (धर्म-धन की रक्षा के लिये) पहरे पर खड़ा है।

हिन्दूपति परताप, पत, राखो हिन्दुआणरी।
सहो विपत संताप, सत्य सुपथ करि आपणी ।।११।।

हे हिन्दूपति प्रताप! हिन्दुओं की लज्जा रक्खो। अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये सब कष्टों को सहो।

चम्पा चीतोड़ाह, पोरस तणो प्रतापसी।
सौरभ अकबर साह, अलियल आभड़िया नहीं ॥१२॥

चित्तौड़ चम्पा है, प्रताप उसकी सुगंध है। अकबर-रूपी भौंरा उसके पास नहीं फटकता। (चम्पा के फूल पर भौंरा नहीं बैठता)।

पातल जो पतसाह, बोलै मुख हूता बयण।
मिहर पछम दिस माँह, ऊगै कासप राव वत ॥१३॥

महाराणा प्रतापसिंह यदि बादशाह को अपने मुख से बादशाह कहें, तो कश्यप जी के संतान भगवान् सूर्य पश्चिम दिशा में उगें।

पटकूँ मूछाँ पाण, कै पटकूं निज तन करद।
दीजै लिख दीवाण, इण दो महली बात इक ॥१४॥

हे दीवान! मैं अपनी मूँछ पर हाथ फेरूँ, या अपने शरीर को तलवार से काट डालूँ; इन दोनों में से एक बात लिख दीजिए।

राठौर-वीर पृथ्वीराज की कविता पढ़कर प्रताप को इतना साहस हुआ कि मानों उन्हें दश हज़ार राजपूतों की सहायता मिल गई। वे अपनी प्रतिज्ञा* पर दृढ़ हुए। पत्र के उत्तर में महाराणा प्रताप ने नीचे लिखे दोहे भेजे थे:—

---

*प्रतापसिंह की प्रतिज्ञा यह थी कि वे कभी किसी यवन को सिर न झुकावेंगे। एक बार एक भाट अकबर के सामने मुजरा करने गया। सामने पहुँचकर उसने पगड़ी उतार ली। उसको नंगे सिर देखकर अकबर ने कारण पूछा, तब उसने कहा—यह पगड़ी महाराणा प्रतापसिंहजी ने अपने हाथ से दी है। मैं इसे आप के सामने झुकाना नहीं चाहता। यह सुनकर अकबर ने प्रतापसिंह की बड़ी प्रशंसा की।

तुरुक कहासी मुख पतो, इण तनसूँ इकलिंग।
ऊगै जाहीं ऊगसी, प्राची बीच पतंग ।।१।।

भगवान् एकलिंग की शपथ है, इस शरीर से अर्थात् प्रताप के मुख से बादशाह तुरुक ही कहलावेगा। और सूर्य का उदय जहाँ से होता है वहीं, पूर्व ही में, होगा।

खुसी हूँत पीथल कमध, पटको मूछाँ पाण।
पछटण है जेतै पतो, कमला सिर केवाण ।।२।।

हे वीर पृथ्वीराज, आप प्रसन्न होकर मूछों पर हाथ फेरिये। जबतक प्रतापसिंह है, तलवार को यवनों के सिर पर ही जानिये।

साँग मूँड़ सहसी सको, सम जस जहर सवाद।
भड़ पीथल जोतो भलाँ, वैण तुरक सूं बाद ।।३।।

राणा प्रताप सिर पर भाला सहेगा; क्योंकि बराबर वाले का यश विष के समान होता है। हे भट पृथ्वीराज, आप तुरुक से बातों के युद्ध में विजय पावें।

अकबर के साथ विवाद होने का पता जब पृथ्वीराज की रानी को लगा, तब उसने यह दोहा लिखकर पृथ्वीराज के पास भेजा--

पति जिद की पतसाह सूँ, यहै सुणी मैं आज।
कहँ पातल अकबर कहाँ, करियो बड़ो अकाज ।।

हे प्राणपति! मैंने आज यह सुना कि आपने महाराणा के सम्बन्ध में अकबर से विवाद किया है। कहाँ अकबर और कहाँ प्रताप! आपने बड़ा अनर्थ किया।

इसके उत्तर में पृथ्वीराज ने यह कवित्त लिख भेजा—

जब तें सुने हैं बैन तब तें न मोको चैन पाती पढ़ि नैक सो बिलंब न लगावेगो। लेकै जमदूत से समस्त राजपूत आज आगरे में आठों याम ऊधम मचावेगो ।। कहै पृथिराज प्रिया नैक उर धीर धरो चिरजीवी राना श्री मलेच्छन भगावेगो। मन को मरद मानी प्रबल प्रतापसिंह बब्बर ज्यों तड़प अकब्बर पै आवेगो ।।

अर्थ स्पष्ट है।

पृथ्वीराज ने महाराणा प्रताप के विषय में और भी बहुत से पद्य रचे थे, उनमें से एक गीत नीचे दिया जाता है—

गीत

नर तेथ निमाणा निलजी नारी अकबर गाहक वट अवट।
चौहटै तिण जायर चोतोड़ो बेचै किम रजपूत वट॥
रोजायताँ तणैं नवरोजे जेथ मुसाणा जणो जण।
हिन्दू नाथ दिलीचे हाटे पतो न खरचै क्षत्री पण॥
पर पेंच लाज दीठ नह व्यापण खोटो लाभ अलाभ खरो।
रज बेचबाँ न आवे राणो हाटे मीर हमीर हरो॥
पेखे आपतणा पुरुषोत्तम रह अणियाल तणैं वल राण।
खत्र बेचियाँ अनेक खत्रियाँ खत्रवट थिर राखी खूमाण॥
जासी हाट बात रहसी जग अकबर ठग जासी एकार।
रह राखियो खत्री ध्रम राणै सारा ले वरती संसार॥

जहाँ पर मानहीन पुरुष और लज्जाहीन स्त्रियाँ हैं, और अकबर जैसा ग्राहक है, उस चौपड़ के बाजार में जाकर चित्तौड़ का स्वामी राजपूती का भाग कैसे बेंचेगा?

मुसलमानों के नवरोज़ के समय प्रत्येक व्यक्ति लुट गया। परंतु हिन्दुओं का पति प्रतापसिंह उस दिल्ली के बाज़ार में अपना क्षत्रियपन क्यों खरचे?

वंश-लज्जा से भरी दृष्टि पर अन्य का प्रपंच नहीं व्यापता। इसी से पराधीनता के सुख के लाभ को बुरा और अलाभ को अच्छा समझकर बादशाही दूकान पर रज बेचने के लिये हमीर का पोता राणा प्रतापसिंह कदापि नहीं आता।

अपने पुरुषाओं का उत्तम कर्तव्य देखते हुये महाराणा ने भाले के

बल से क्षत्रिय-धर्म को अचल रक्खा और अन्य क्षत्रियों ने अपने क्षत्रियत्व को विक्रय कर डाला।

ठग रूपी अकबर भी एक दिन इस संसार से चला जायगा और हाट भी उठ जायगी। परंतु संसार में यह बात अमर रह जायगी कि क्षत्रिय-धर्म में रहकर उस धर्म को केवल राणा प्रताप ही ने रक्खा; अब सब उसे काम में लाओ।

पृथ्वीराज बड़े रसज्ञ कविथे। उनकी पहली रानी लालादे भी कविता करती थी। ऐसी रसमयी रमणी के साथ कवि पृथ्वीराज का दिन बड़े चैन से कटता था। परन्तु दुर्भाग्य से लालादे का भरी जवानी में स्वर्गवास हो गया। जब उसकी देह चिता पर जल रही थी, तब पृथ्वीराज ने कहा :—

तो राँध्यों नहिं खावस्यां, रे! बासदे निसड्ड!
मो देखत तू बालिया, लाल रहंदा हड्ड॥

अर्थात्, ऐ आग! मैं तेरा राँधा हुआ कोई पदार्थ नहीं खाऊँगा। तूने मेरे देखते ही लालादे को जला दिया, और उसका हाड़ ही शेष रहा!

उस दिन से वे आग की पकी हुई कोई चीज़ नहीं खाते थे। जब वे बहुत दुर्बल हो गये, तब लोगों ने समझा-बुझाकर उनका विवाह जैसलमेर के राव लहरराज की बेटी चम्पादे से कराया। चम्पादे बड़ी ही सुन्दरी और प्रसन्नमुखी थी। लालादे से भी वह गुण और रूप में बढ़कर थी। पृथ्वीराज उसको बहुत प्यार करते थे। पति की संगति से चम्पादे ने भी कविता करनी सीख ली थी।

एक दिन पृथ्वीराज बालों में कंघी कर रहे थे। चम्पादे उनके पीछे खड़ी थी। पृथ्वीराज ने दाढ़ी में से एक सफेद बाल निकालकर फेंक दिया। तब चम्पादे मुँह फेरकर हँसने लगी। पृथ्वीराज ने दर्पण में उसकी परछाईं देखकर पीछे देखा और फिर लज्जित होकर कहा—

पीथल[1] धोला[2] आवियाँ[3], बहुली लागी खोड़ ।
पूरे जोबन पदमणी, ऊभी[4] मुक्ख मरोड़ ।।
पीथल पली[5] टमुक्कियाँ[6], बहुली लग गई खोड़ ।
स्वामीनी[7] हाँसा करे, ताली दे मुख मोड़ ।।
पीथल पली टमुक्कियाँ, बहुली लागी खोड़ ।
मरवण[8] मत्त गयंद ज्यों, ऊभी मुक्ख मरोड़ ।।

यह सुनकर चम्पादे ने पृथ्वीराज के मन की ग्लानि मिटाने के लिये कहा—

प्यारी कहे पीथल सुनो, धोलाँ दिस मत जोय ।
नराँ, नाहराँ,[9] डिगमराँ[10], पाकाँही रस होय ।।
खेड़ज[11] पक्काँ धोरियाँ[12], पंथज गउधाँ[13] पाव ।
नराँ तुरंगाँ बन फलाँ, पक्काँ पक्काँ साव ।।

इसी प्रकार इन दोनों, राजा-रानी का जीवन बड़े आनन्द से बीता। पृथ्वीराज ने डिङ्गल भाषा में रुक्मिणी-मङ्गल काव्य बनाया था।

---

१ पृथ्वीराज । २ सफ़ेद । ३ आगये । ४ खड़ी ५ सफ़ेद बाल ६ चमक आये । ७ स्वामी की । ८ कामिनी स्त्री । ९ बैलों । १० दिगम्बर, योगी, यती । ११ खेती । १२ बैलों । १३ ऊँट ।

देवीदास

देवीदास तुलसीदास के समकालीन कवि हैं। ये मारवाड़ के निवासी थे, इससे पूर्वी प्रान्तों में इनकी कविता का प्रचार बहुत कम है, पर राजपूताने में देवीदास के कवित्त बहुतों को कंठस्थ हैं और कहीं-कहीं इनके कवितों का लिखित संग्रह भी मिलता है। सन् १९२८ में मैं जोधपुर गया था, तब एक मन्दिर के पुजारी के पास 'देवीदासजीरा कवित्त' नाम की हस्तलिखित पुस्तक मैंने देखी थी। मैंने उसकी नकल भी करा ली थी। उसमें कुल एक सौ कवित्त और सवैये थे। उसके सिवा देवीदास की और कोई लिखित या मुद्रित पुस्तक मेरे देखने में नहीं आई। मेरी जानकारी में देवीदास की कोई पुस्तक अभी तक कहीं प्रकाशित भी नहीं हुई।

हिन्दी में नीतिकार कवियों की बहुत कमी है। गिनती के दो तीन कवि हैं; जैसे गिरिधर कविराय, घाघ और वृन्द आदि; इनमें गिरिधर कविराय और घाघ की कविता साधारण कोटि के गृहस्थों के काम की है और उन्हीं में उनका खूब प्रचार भी है। वृन्द की कविता में यद्यपि उच्च कोटि के भाव हैं, पर कहने का उनका ढंक कुछ ऐसा फीका है कि बिना किसी खास प्रयत्न के उनका प्रचार नहीं हो सकता। लोगों में जैसी लालसा गिरिधर कविराय और घाघ के छन्दों को कंठस्थ करने की पाई जाती है, वैसी वृन्द के दोहों की नहीं। पर 'देवीदास' की कविता सब दृष्टियों से सर्वोत्तम है। यदि देवीदास की नीति पुस्तकाकार छपी हुई मिलती तो मुझे विश्वास है, उनका प्रचार किसी भी कवि से कम न हुआ होता।

देवीदास का परिचय मुझे सीकर के इतिहास में मिला। वह इस प्रकार है :—।

"देवीदास शेखावटी के राव लूणकरण के मंत्री थे और जाति के वैश्य थे। एक दिन राव लूणकरण ने पूछा—बुद्धि बड़ी? कि धन?

देवीदास ने कहा—बुद्धि।

होते-होते साधारण बातचीत ने विवाद का रूप धारण कर लिया

और राव लूणकरण को क्रोध आ गया। उन्होंने जरा ताने के साथ कहा—तो भाई रायसल के पास लाम्याँ चले जाओ और अपने सिद्धान्त की परीक्षा करो न?

रायसल राव लूणकरण के भाई थे और लाम्याँ गाँव जागीर में पाकर वहीं रहते थे। जागीर साधारण थी और मुश्किल से उनके गुज़र भर को थी।

देवीदास मनस्वी पुरुष थे। राव राजा का ताना सुनकर वे उठ खड़े हुए और सलाम करके लाम्याँ चले गये। रायसल ने उनका हृदय से स्वागत किया और उन्हें अपने पास रख लिया।

देवीदास का मन किसी और काम में लगता ही न था। उनको रात दिन यही चिंता लगी रहती थी कि किस प्रकार वे बुद्धि की श्रेष्ठता सिद्ध करें। अन्त में रायसल को लेकर बादशाह अकबर के पास दिल्ली जाने का उन्होंने निश्चय किया।

रायसल तो एक मामूली जागीरदार थे। दिल्ली में जाकर शाही सरदारों के बीच खड़े होने के लिये कुछ ठाटबाट चाहिये। उन्होंने अपने एक मित्र रैवासा के चंदेल ठाकुर रासोजी से घोड़े माँगे। रासोजी ने १५० घोड़े दिये।

रायसल और उनके लश्कर के साथ देवीदास दिल्ली पहुँचे और किसी तरह बादशाही दरबार में प्रवेश पाने की ताक-झाँक में लगे।

संयोग से उसी समय कतलू खाँ ने अफ़गान पठानों की एक बड़ी फौज लेकर भारत पर हमला कर दिया। देवीदास ने इसे बड़ा सुयोग समझा और रायसल को उसके मुकाबले के लिये भेजी जाने वाली शाही फौज में भरती करा दिया। रायसल को उन्होंने यह सलाह दी कि ऐसे मौके पर लड़ना, जब कि सलीम की नज़र तुम्हारे ऊपर पड़े। शाही फौज शाहजादा सलीम की मातहती में भेजी गई थी।

लाहौर में दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। एक बार ऐसा हुआ कि अफ़गान-सेना ने सलीम को घेर लिया। सलीम बड़े संकट में पड़ गया।

मौक़ा देखकर रायसल ने अपने बहादुर राजपूत सिपाहियों को ललकारते हुए बीच में अपना घोड़ा कुदाया और पहुँचते ही अफ़गान-सेना के सरदार को मार गिराया। अफगान-सेना पीछे हट गई। इतने में सलीम की फौज ने आगे बढ़कर मैदान जीत लिया।

विजय लाभ करके शाही फौज दिल्ली आई। सलीम ने लड़ाई का हाल अकबर को सुनाते हुए यह भी कहा कि एक बार दुश्मनों ने अचानक मुझे घेर लिया। अगर एक बहादुर राजपूत ने आगे बढ़कर दुश्मन को न मार गिराया होता तो मेरी जान बचनी मुश्किल थी।

अकबर ने उस बहादुर राजपूत का परिचय जानना चाहा, पर सलीम ने उस दिन के बाद उसे कभी देखा ही नहीं। उसका पता नहीं लगा। 'हमने मारा' 'हमने मारा' कहने वाले तो कई निकल आये, पर सलीम ने सिर हिलाकर सब को इन्कार कर दिया।

गुण-ग्राही अकबर उस वीर राजपूत को खोज निकालने के लिये चिंतित हो उठा। उसने एक तरकीब निकाली। उसने हुक्म दिया कि उस मौके पर जितनी फौजें जिस लिबास में थीं, उसी लिबास में सजकर मेरे सामने से निकलें।

यह समाचार पाकर नीति-निपुण देवीदास ने रायसल को कहा—पधारिये, आपकी खोज हो रही है।

फौज के जवान एक-एक करके बादशाह के सामने से गुज़रने लगे। ज्योंही रायसल सामने आये, सलीम ने कहा—यही वह बहादुर राजपूत है।

अकबर ने रायसल को अपने पास बुलाया और उस मौके की लड़ाई का हाल पूछकर उसने विश्वास किया कि सलीम ने ठीक-ठीक पहचाना यह जानकर कि रायसल नौकरी की इच्छा से दिल्ली आये हैं, अकबर ने दो बार 'शाबाश' कहकर १२५० का मनसब और दरबारी का खिताब देकर उनको सम्मानित किया।

कर्नल टाड ने लिखा है कि राव लूणकरण भी दरबार में मौजूद थे।

रायसल को देखकर उन्होंने तिरस्कार करते हुए कहा—मेरी आज्ञा बिना यहाँ क्यों आया ?

पर अकबर रायसल की वीरता पर हृदय से प्रसन्न था, इससे राव लूणकरण की नाराज़ी का कोई प्रभाव नहीं हुआ।

अकबर ने रायसल को ज़नानी ड्योढ़ी का काम सौंपा। रायसल हरएक काम में देवीदास की सम्मति लिया करते थे और उन्ही के आदेश पर चलते थे। देवीदास ने उनको यह सम्मति दी कि धोती के नीचे पीतल का कच्छा पहनकर तब वे जनानी ड्योढ़ी पर जाया करें। कच्छे का ताला बंद करके उसकी चाभी देवीदास अपने पास रख लेते थे।

एक दिन रायसल स्नान कर रहे थे। धोती के नीचे पीतल का कच्छा किसी ने देख लिया। यह बात बादशाह के कानों तक पहुँची। बादशाह ने रायसल को बुलाकर कच्छा पहनने का कारण पूछा। रायसल ने सब साफ़-साफ़ बता दिया।

बादशाह ने परीक्षा के लिये नौकर भेजकर देवीदास से चाभी मांग भेजी। देवीदास ने निर्भय होकर चाभी देने से इन्कार किया।

इससे अकबर बहुत प्रसन्न हुआ। जनानी ड्योढ़ी का काम सचमुच बड़े खतरे का होता है। अकबर ने देवीदास और रायसल दोनों को उनके पवित्र उद्देश्य के लिये सम्मानित किया।

बादशाह की कृपा रायसल पर बढ़ती ही गई और बादशाह ने उनको दस परगनों का पट्टा दिया, जिसमें कुछ परगने राव लूणकरण के भी थे।

एक बड़ी जागीर के स्वामी बनकर रायसल देवीदास के साथ लाम्यां आये। दिल्ली के बादशाह का विशेष कृपापात्र समझकर राव लूणकरण ने रायसल का स्वागत किया। पर रायसल ने ज़रा भर भी अभिमान नहीं प्रकट किया और अपने बड़े भाई का पूर्ववत् सम्मान किया; बल्कि उनके परगने भी उनको वापस कर दिये।

राव लूणकरण ने आग्रह किया कि जब बादशाह ने दिया है, तब आप उसे क्यों नहीं लेते ?

रायसल ने हँसकर कहा—बुद्धि तो अब भी बड़ी है।

इस प्रकार देवीदास ने सिद्ध कर दिया कि बुद्धि धन से बड़ी है। देवीदास का सम्मान राव लूणकरण और रायसल दोनों करते रहे।"

बस, देवीदास के बारे में हमें इतना ही मालूम है। वे कहाँ जन्मे, कब जन्मे, कब मरे और उन्होंने क्या-क्या रचनायें की, इन बातों का कोई पता अभी तक नहीं लगा है। खोज की आवश्यकता है।

यद्यपि देवीदास राजपूताने के थे, पर उनकी भाषा में मारवाड़ी शब्द शायद ही एक-दो मिलेंगे। उनकी भाषा तीन सौ वर्ष पुरानी होने पर भी नई-सी लगती है। इससे मालूम होता है कि साहित्य का उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था।

देवीदास उच्चकोटि के जीवन से परिचित थे। इसीसे उनकी नीति में जीवन को उन्नत बनानेवाले भाव पद-पद में चमकते हुए मिलते हैं।

नमूने के लिये यहाँ देवीदास के दस कवित्त दिये जाते हैं।

१

कौन यह देस कौन काल कौन बैरी मेरो,
कौन मेरे हितू ताहि ढिग ते न टारिबो।
केती निज आमद खरच केतो केतो बल,
तेहि उनमान बैन मुँह ते निकारिबो।
संपति के आवन को कौन मेरो साधन है,
ताहू को उपाव अरु दाँव उर धारिबो।
राजनीति राजन को प्रतिदिन 'देवीदास'
चारि घरी राति रहे इतनो बिचारिबो॥

२

पहले विवाद व्यवहार धन को न कीजै,
जाँचिये न तापै आय माँगै ताहि दीजिये।

मित्र के घरे में घरनी सों मिलि बैठिये न,
हँसिये न दूरि बैठि बात छोरि लीजिये।
कोऊ भेद पारें तो न भूले 'देवीदास' कहै,
मन की दुराइये न ताते भये खीजिये।
प्रीति खोयो चाहिये तो कीजिये परे सों प्रीति,
प्रीति राख्यो चाहिये तो इतनो न कीजिये॥

३

मूसे पर साँप राखे साँप पर मोर राखे,
बैल पर सिंह राखे वाके कहा भीति है।
पूतनि को भूत राखे भूत को विभूत राखे,
छमुख को गजमुख यह बड़ी रीति है।
काम पर बाम राखे विष को अमृत राखे,
आग पर पानी राखे सोइ जग जीति है।
'देवीदास' देखो ज्ञानी संकर की सावधानी,
सब विधि लायक पै राखे राजनीति है॥

४

कीरति को मूल एक रैन दिन दान देबो,
धरम को मूल एक साँच पहिचानिबो।
बढ़िबे को मूल एक ऊँचो मन राखिबो है,
जानिबे को मूल एक भली बात मानिबो।
व्याधि मूल भोजन उपाधि मूल हाँसी 'देव',
दारिद को मूल एक आलस बखानिबो।
हारिबे को मूल एक आतुरी है रन माँझ
चातुरी को मूल एक बात कहि जानिबो॥

५

पेट को निपट सुद्ध आँखन लजीलो वीर,
उर को गँभीर होय मीठो होय मुख को।
बाँह को पगार पुनि पाय को अडिग होय,
बोलन को साँचो 'देवीदास' सूधो रुख को।
मन को उदार ढीलो हाथ को अकेलो टेक,
काछ ही को काठो है सहैया सुख दुख को।
पचिकै पितामह ने ऐसो जो सँवारचो तब,
याते कछु औरहू सिंगार है पुरुष को?

६

छोटे-छोटे फूलन को सूरन की वारि करै,
पतरे से पौधा पानी डारि प्रति पारिबो।
फूली फुलवारिन के फूल तोरि लेवै, खरे,
घने दरखत एक ठौर तें उखारिबो।
नीचे परे पायनि तें टेकनि दे ऊँचो करै,
ऊँचे चढ़ि गये ते जरूर काटि डारिबो।
राजन को मालिन को प्रतिदिन 'देवीदास',
चारि घरी राति रहे इतनो विचारिबो।।

७

आरत गुमान करै दारिदी ह्वै सोवै घरै,
सुखी औरै अनुसरै ऐसे मूढ़ और हैं।
ज्ञानी ह्वै प्रपंच राचै त्यागी ह्वै गृही को जाँचै,
राजा ह्वै कृपिनता के सूम सिर मौर हैं।
गनिका कुरूप धनवान ह्वै फकीरी धरै,
बाँधि के सिथिल भयो रात दिन जोर है।

जग में जो बसिये तो हँसिये न काहू 'देवी',
हँस्योई जो चाहै तो ये हँसिबे को ठौर है।।

८

बिनु कहे सब जानै सासन सिर पै मानै,
साहब की मोर मानै मन भाइयतु हैं।
दुख सुख जो न आनै थोर हो रहै अघानै,
धनी काजै प्रान देइ तेई गाइयतु है।
निडर मैं डर राखै डर मैं निडर होय,
लाज सों लपेटो रहे छवि छाइयतु है।
घरी घरी अरजी न करै बरजी न होय,
ऐसे चाकर तो पूरे पुन्य पाइयतु हैं।।

९

बातनि बहनहार बित्त के लहनहार,
अन्तर में कारे और ऊपर तें गोरे हैं।
जानिये उनहिं थोरे दिन के रहनहार,
देकर कुमंत्र सामी संकट में बोरे हैं।
नाहिन अनीति के सहनहार हम तेरी,
पोरि के रहनहार बाँभन हैं भोरे हैं।
राजन के चित्त के गहनहार घने पर,
'देवीदास' हित के कहनहार थोरे हैं।।

१०

जिनके उदार चित्त गाँव बीच मित्त पूरे,
गुनवंत सबही के 'देवी' सुखदात हैं।

रूप के उजारे नैन तारनि में राखि लीजै,
बोलनि में मोल लेत ऐसे मुख बात हैं।
साथ लागे सुख फिरें निराधार दुख फिरें,
भाग खुलैं जहाँ को तहाँ ई चलि जात हैं।
कापुरुष गुनहीन दीन मन नीच नर,
बाप की तलाई बीच बैठे कीच खात हैं॥

उसमान

उसमान ग़ाज़ीपुर के रहनेवाले थे। इनके पिता का नाम शेख हसन था। ये जहाँगीर बादशाह के समय में हुये। संवत् १६७० में इन्होंने चित्रावली नाम की एक प्रेम-कहानी लिखी, जो दोहा-चौपाइयों में है। सुनते हैं, इन्होंने और भी कुछ ग्रन्थ लिखे थे। इनके जन्म-मरण के समय का ठीक-ठीक पता नहीं चलता।

चित्रावली की कथा बड़ी मनोहर है। उस में चित्रावली की वाटिका का वर्णन, उसका नख-सिख, विरह, षट्ऋतु और बारहमासा आदि देखने योग्य हैं। कुँवर-ढूंढ़न-खंड में कवि ने कितने ही देशों और प्रदेशों का वर्णन किया है। सब से अचम्भे की बात तो यह है कि कवि न उस में अँगरेज़ों का भी वर्णन किया है। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने सन् १६१२ में सूरत में अपना गुदाम बनाया था, और सन् १६१३ का रचा हुआ यह ग्रन्थ है। ग़ाज़ीपुर ऐसे छोटे नगर में रहकर अँगरेज़ों के विषय में इतनी जानकारी रखना कवि के लिये साधारण बात नहीं है।

हम यहाँ का० ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित चित्रावली से कुँवर-ढूंढ़न-खंड का कुछ अंश उद्धृत करते हैं और उसी पुस्तक से कुछ उत्तम दोहे भी प्रस्तुत करते हैं :—

चौपाई

जिन पच्छधूँ दिस कीन्ह पयाना , पहिलहिं गा सो देस मुलताना ।
देखेसि सिंधी लोग सवाई , महिरावन सब सेवहिं साई ।।
हेरेसि ठट्ठा नगर सुहावा , बिहँग हरिन सेवैं गंजावा ।
कादुल हेरि मोगल कर देसा , जहाँ पुहिम पति होइ नरेसा ।।
देखेसि रूम सिकंदर केरा , स्याम रहा होइ सकल अँधेरा ।
देखेसि मक्का विद्या अस्थाना , हीय अंध तें पाहन जाना ।।
हाजी सँग मिलि गयउ मदीना , का भा गये जो साफ़ न सीना ।
गा बगदाद पीर के तीरा , जेहि निहचै तेहि संग हमीरा ।।
इस्ताम्बोल मिसर पुनि हेरा , गा लदाख लहु कीन्हेसि फेरा ।।
दखिन देस को जे पगु धारा , चला ताकि सो लंक पहारा ।
पहिलेहि गै हेरिस गुजराता , सुन्दर धनी लोग सुख राता ।।
गयो जाम जहँ कच्छी होई , लोग सुरूप सुखी सब कोई ।
बलंदीप देखा अँगरेजा , जहाँ जाइ नहिं कठिन करेजा ।।
ऊँच नीच धन संपति हेरा , मद बराह भोजन जिन केरा ।
जहाँ जाइ उहँ बन्दर साजा , लगा संग चढ़ि गयउ जहाजा ।।

दोहे

"मान" करहु जो करि सकहु , कथनी अकथ अपार ।
कथे कर न कछु आवइ , करनी करतब सार ।।१।।
कौन भरोसा देह का , छाड़हु जतन उपाइ ।
कागद की जस पूतरी , पानि परे घुलि जाय ।।२।।
तब लहु सहिये बिरह दुख , जब लगि आव सो वार ।
दुःख गये तब सुक्ख है , जानै सब संसार ।।३।।
सब कहँ अमिरित पाँच है , बंगाली कहँ सात ।
केला, काँजी, पान, रस , साग, माछरी, भात ।।४।।

छत्री सुनि जो ना करै , तिय अरु गाय जोहारि।
पुहुमी कुल गारी चढ़ै , सरग होइ मुख कारि।।५।।
लोयन जाहि कटाच्छ सर , मारि प्रान हरि लीन्ह।
अधर बचन ततखिन दोऊ , अमिय सींचि जिव दीन्ह।।६।।
कहाँ सो विक्रम सकबेंधी , कहाँ सो राजा भोज।
हम हम करत हेराइगे , मिला न खोजे खोज।।७।।

मलूकदास

बाबा मलूकदास का जन्म, लाला सुन्दरदास कक्कड़ खत्री के घर में, बैसाख वदी ५, सं० १६३१ में, गाँव कड़ा, जिला इलाहाबाद में हुआ। इनकी भुजा इतनी लम्बी थी कि घुटने तक आ जाती थी। लड़कपन में ये गाँव-गाँव कम्बल बेंचा करते थे। साधुओं को और गरीबों को बिना दाम लिये ही कम्बल दे दिया करते थे। कुछ दिनों के बाद ये अपना सारा समय भगवद्भजन ही में बिताने लगे। इनकी कीर्ति दूर-दूर तक फैली और हजारों लोग दर्शन को आने लगे। इनके गुरु का नाम विट्ठलदास था। वे द्राविड़-देश के महात्मा थे। बाबा मलूकदास सदा गृहस्थाश्रम में रहे। इनकी एक कन्या थी। थोड़ी ही अवस्था में स्त्री और पुत्री दोनों का देहान्त हो गया।

संवत् १७३९ में, १०८ वर्ष की अवस्था में मलूकदासजी ने चोला छोड़ा। शरीर छोड़ने से पहले ही इन्होंने अपनी मृत्यु का ठीक-ठीक समय अपने चेलों को बतला दिया था।

मलूकदासजी के पंथ की मुख्य गद्दियाँ कड़ा (प्रयाग), जैपुर, गुजरात, मुलतान, पटना, कलापुर, नैपाल और काबुल में हैं। जगन्नाथपुरी में भी मलूकदास का स्थान है, जहाँ इनके नामका टुकड़ा अबतक मिलता है।

मलूकदास की कविता ज्ञान से भरी है। इनके कुछ चुने हुये पद और साखियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं।

१

दर्द दिवाने बावरे, अलमस्त फ़क़ीरा।
एक अक़ीदा लै रहे, ऐसे मन धीरा॥
प्रेम पियाला पीवते, बिसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूमते, ज्यों माता हाथी॥
उनकी नज़र न आवते, कोई राजा रंका।
बंधन तोड़े मोह के, फिरते निहसंका॥
साहब मिल साहब भये, कछु रही न तमाई।
कह मलूक तिस घर गये, जहँ पवन न जाई॥

२

दीनदयाल सुनी जब तें तब तें हिय में कछु ऐसी बसी है।
तेरो कहाय के जाउँ कहाँ मैं तेरे हित की पट खैंच कसी है॥
तेरोइ एक भरोस मलूक को तेरे समान न दूजो जसी है।
एहो मुरारि पुकारि कहौं अब मेरी हँसी नहिं तेरी हँसी है॥

३

भील कब करी थी भलाई जिय आप जान फील कब हुआ था मुरीद कहु किसका? गीध कब ज्ञान की किताब का किनारा छआ व्याध और बधिक निसाफ कहु तिसका? नाग कब माला लैके बंदगी करी थी बैठ मुझको भी लगा था अजामिल का हिसका। एतें बदराहों की बदी करी थी माफ जन मलूक अजाती पर एती करी रिस का?॥

साखी

जहाँ जहाँ बच्छा फिरै, तहाँ तहाँ फिरै गाय।
कहें मलूक जहँ संतजन, तहाँ रमैया जाय॥ १॥

अजगर करे न चाकरी , पंछी करै न काम।
दास मलूका यों कहै , सब के दाता राम।। २।।
गर्व भुलाने देह के , रचि रचि बाँधे पाग।
सो देही नित देखि के , चोंच सँवारे काग।। ३।।
मलुका सोई बीर है , जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानई , सो काफ़िर बेपीर।। ४।।
माला जपों न कर जपों , जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करै , मैं पायो बिसराम।। ५।।
जबलगि थो अँधियार घर , मूस थके सब चोर।
जब मंदिर दीपक बरयो , वही चोर धन मोर।। ६।।
दया धर्म हिरदे बसै , बोलै अमृत बैन।
तेई ऊँचे जानिये , जिनके नीचे नैन।। ७।।
आदर मान महत्व सत , बालापन को नेह।
ये चारो तबही गये , जबहिं कहा कछु देह।। ८।।
प्रभुताही को सब मरै , प्रभु को मरै न कोय।
जो कोई प्रभु को मरै , तो प्रभुता दासी होय।। ९।।

४

ना वह रीझै जप तप कीन्हें ना आतम के जारे।
ना वह रीझै धोती नेती ना काया के पखारे।।
दाया करै धरम मन राखै घर में रहै उदासी।
अपना सा दुख सब का जानै ताहि मिलै अविनासी।।
सहै कुसबद बादहू त्यागै छाड़ै गर्व गुमाना।
यही रीझ मेरे निरंकार की कहत मलूक दिवाना।।

५

गर्व न कीजै बावरे , हरि गर्व अहारी।
गर्वहिं तें रावन गया , पाया दुख भारी।।

जरन खुदी रघुनाथ के , मन नाहिं सुहाती ।
जाके जिय अभिमान है , ताकी तोरत छाती ।।
एक दया और दीनता , ले रहिये भाई ।
चरन गहो जाय साधुके , रीझैं रघुराई ।।
यही बड़ा उपदेस है , पर द्रोह न करिये ।
कह मलूक हरि सुमिरिके , भौसागर तरिये ।।

प्रवीनराय

प्रवीनराय वेश्या थी। यह ओड़छा के महाराज इन्द्रजीतसिंह के यहाँ रहती थी । केशवदासजी ने इसी के लिये 'कवि-प्रिया' बनाई थी। यह उनकी शिष्या थी। कविप्रिया में इसकी प्रशंसा में उन्होंने लिखा है—

रतनाकर लालित सदा , परमानंदहि लीन ।।
अमल कमल कमनीय कर , रमा कि राय प्रवीन ।।
राय प्रवीन कि सारदा , सुचि रुचि राजत अंग ।।
बीना पुस्तक धारिनी , राजहंस सुत संग ।।

यह बड़ी सुन्दरी थी। वेश्या होने पर भी अपने को पतिव्रता समझती थी। पढ़ी लिखी थी। कविता भी अच्छी करती थी। इंद्रजीतसिंह ने संगीत का एक अखाड़ा बनवाया था, जिसमें परम रूपवती, हाव-भाव-कटाक्ष में कुशल छः पातरें थीं—प्रवीनराय, रंगराय, नवरंगराय, तीनतरंग, विचित्र नयना और ललित लोचना। और सब तो गाने-बजाने और नाचने में प्रवीण थीं, किन्तु प्रवीनराय इन गुणों के सिवा काव्य-रचना में भी बड़ी निपुण थी। इसी से इन्द्रजीतसिंह के हृदय में इसे सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। इसके गुणों की प्रशंसा सुनकर अकबर बादशाह ने इसे बुला भेजा। तब इसने इन्द्रजीत सिंह के पास जाकर यह सवैया कहा—

आई हौं बूझन मन्त्र तुम्हें निज स्वासन सों सिगरी मति गोई।
देह तजौं की तजौं कुलकानि हिये न लजौं लजिहै सब कोई।।
स्वारथ औ परमारथ को पथ चित्त विचारि कहौ तुम सोई।
जामें रहै प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भंग न होई।।

इन्द्रजीतसिंह ने प्रवीनराय को अकबर के पास नहीं जाने दिया। इससे रुष्ट होकर अकबर ने इन्द्रजीतसिंह पर एक करोड़ का जुरमाना कर दिया और प्रवीनराय को ज़बरदस्ती बुला भेजा। तब प्रवीनराय अकबर के दरबार में गई। वहाँ उसने अकबर से इस प्रकार प्रार्थना की—

बिनती राय प्रबीन की, सुनिये साह सुजान।
जूठी पतरी भखत हैं, बारी बायस स्वान।।
अङ्ग अनङ्ग तहीं कुछ संभु सु केहरि लंक गयंदहिं घेरे।
भौंह कमान तहीं मृग लोचन खंजन क्यों न चुगै तिल नेरे।।
है कच राहु तहीं उदै इन्दु सु कीर के बिम्बन चोंचन मेरे।
कोऊ न काहू सों रोस करै सु डरै डर साह अकब्बर तेरे।।

प्रवीनराय की प्रवीणता देखकर अकबर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे इन्द्रजीत ही के पास रहने दिया। केशवदास के उद्योग और महाराजा वीरबल की प्रेरणा से अकबर ने इन्द्रजीतसिंह का एक करोड़ जुरमाना भी माफ़ कर दिया।

प्रवीनराय का लिखा कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। कुछ फुटकर छंद मिलते हैं। उनमें से कुछ यहाँ लिखे जाते हैं:—

१

सीतल समीर ढार, मंजन कै घनसार अमल अँगौछे आछे मन से सुधारिहौं। दैहौं ना पलक एक लागन पलक पर मिलि अभिराम आछी तपनि उतारिहौं।। कहत 'प्रवीनराय' आपनी न ठौर पाय सुन बाम नैन या बचन प्रतिपारिहौं। जबहीं मिलेंगे मोहिं इन्द्रजीत प्रानप्यारे दाहिनो नयन मूँदि तोहिं सों निहारिहौं।।

२

ऊँचे ह्वै सुर बस किये , सम ह्वै नर बस कीन।
अब पताल बस करन को , ढरकि पयानो कीन ।।

३

कमल कोक श्रीफल मँजीर कलधौत कलस हर।
उच्च मिलन अति कठिन दमक बहु स्वल्प नील धर ।।
सरवर सरवन हेम मेरु कैलास प्रकासन।
निसि वासर तरुवरहि काँस कुन्दन दृढ़ आसन ।।
इमि कहि प्रवीन जल थल अपक अविध भजित तिय गौरि सँग।
कलि खलित उरज उलटे सलिल इंदु सीस इमि उरज ढँग ।।

४

कूर कुरकुट कोटि कोठरी निवारि राखौं चुनि दै चिरैयन को मूँदि राखों जलियों। सारँग में सारँग सुनाइ के 'प्रबीन' बीना सारँग दै सारँग की जोति करों थलियों ।। बैठि परयंक पै निसंक ह्वै कै अंक भरौं करोंगी अधर पान मैन मत्त मिलियो। मोहिं मिले इन्द्रजीत धीरज नरिन्द राय एहो चंद आज नेकु मंद गति चलियो ।।

मुबारक

सैयद मुबारक अली बिलग्रामी का जन्म सं० १६४० में हुआ। ये अरबी, फ़ारसी और संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। इनकी कविता बड़ी सरस है। इनका रचा हुआ 'अलक-शतक' और "तिल-शतक" प्रकाशित हो चुका है। और भी इनके बहुत से स्फुट छंद मिलते हैं।

इनकी कविता के कुछ नमूने देखिये —

कान्ह की बाँकी चितौनि चुभी झुकि काल्हि ही झाँकी है ग्वालि गवाछनि।
देखी है नोखी सी चोखी सी कोरनि ओछे फिरै उभरै चित जा छनि॥
मारचो सँभार हिये में "मुबारक" यै सहजै कजरारे मृगाछनि।
सींक लै काजर दे री गँवारिन आँगुरी तेरी कटैगी कटाछनि॥१॥

पानिप के पुंज सुघराई के सदन सुख सोभा के समूह और सावधान मौज के। लाजन के बोहित प्रमोहित प्रमोदन के नेह के नकीब चक्रवर्ती चित चोज के॥ दया के दिवान पतिव्रता के प्रधान पूरे नैन ये मुबारक बिधान नवरोज के। सफरी के सिरताज मृगन के महाराज साहब सरोज के मुसाहब मनोज के॥२॥

कनक बरन बाल नगन लसत भाल मोतिन के माल उर सोहैं भली भाँति है। चन्दन चढ़ाई चारु चंदमुखी मोहिनी सी प्रात ही अन्हाइ पगु धारे मुसकाति है॥ चूनरी विचित्र स्याम सजि कै मुबारक जू ढाँकि नख सिख तें निपट सकुचाति है। चन्द्रमैं लपेटि कै समेटि के नखत मानो दिन को प्रणाम किये रात चली जाति है॥३॥

अलक-वर्णन

अलक मुबारक तिय बदन, लटकि परी यों साफ़।
खुसनवीस मुनासी मदन, लिख्यो काँच पर क़ाफ़॥१॥
अलक डोर मुख छवि नदी, बेसरि बंसी लाइ।
दै चारा मुकतानि को, मो चित चली फँदाइ॥२॥

जगी मुबारक तिय वदन , अलक ओप अति होइ।
मनो चन्द के गोद में , रही निसा सी सोइ ॥३॥
लगि दृग अंजन ढिग अलक , देत मुबारक मोद।
जनु साँपिन सुत आपनी , भेंटति भरि भरि गोद ॥४॥
चिबुक कूप में मन परयो , छवि जल तृषा विचारि।
कढ़त मुबारक ताहि तिय , अलक डोर सी डारि ॥५॥

तिल-वर्णन

सब जग पेरत तिलन को , थक्यो चित्त यह हेरि।
तब कपोल को एक तिल , सब जग डारयो पेरि ॥१॥
चिबुक कूप रसरी अलक , तिल सु चरस दृग बैल।
बारी बैस शृंगार की , सींचत मनमथ छैल ॥२॥
मन जोगी आसन कियो , चिबुक गुफ़ा में जाय।
रह्यो समाधि लगाय कै , तिल सिल द्वारे लाय ॥३॥
चिबुक सरूप समुद्र में , मन जान्यो तिल नाव।
तरन गयो बूड़्यो तहाँ , रूप कहर दरियाव ॥४॥
गोरी के मुख एक तिल , सो मोहि खरो सुहाय।
मानहुँ पंकज की कली , भौंर विलंब्यो आय ॥५॥

रसखान

रसखान दिल्ली के पठान थे। इन्होंने अपने को बादशाही खान्दान का लिखा है। कुछ लोग सैयद इबराहीम पिहानीवाले ही को रसखान समझते हैं। इनका जन्म सं० १६४० और मरण १६८५ के लगभग कहा जाता है।

युवावस्था में ये एक बनिये के लड़के पर आसक्त थे। रात-दिन उसके साथ फिरा करते थे, यहाँ तक कि उसका जूठा भी खाते थे। लोग इनकी हँसी उड़ाते थे; परन्तु ये किसी की परवाह न करते थे। एक बार चार वैष्णव आपस में बातचीत करते समय कहते थे कि ईश्वर में ऐसा ध्यान लगाना चाहिये, जैसा रसखान ने बनिये के लड़के में लगाया है। रसखान ने इसे सुन लिया। ये वैष्णवों से मिले। वैष्णवों ने इनके सामने ही श्रीकृष्ण का गुण-कीर्तन किया। उसी समय से ये श्रीकृष्ण के उपासक हो गये। मुसलमान होने पर भी गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने इनको अपना शिष्य कर लिया। और इनकी गिनती गोसाईंजी के २५२ मुख्य शिष्यों में होने लगी। २५२ वैष्णवों की वार्ता में इनका भी चरित्र लिखा है।

ये बड़े प्रेमी जीव थे। इश्क का लुत्फ़ तो इन्होंने नौजवानी ही से उठाया था, इससे प्रेम की महिमा ये भलीभाँति समझते थे। इन्होंने सं० १६७१ में प्रेम-वाटिका नामक दोहों का एक ग्रन्थ बनाया। उसके कुछ दोहे सुनिये—

दम्पति सुख अरु विषय रस, पूजा निष्ठा ध्यान।
इनतें परे बखानिये, सुद्ध प्रेम रसखान ॥१॥
मित्र कलत्र सुबन्धु सुत, इन में सहज सनेह।
शुद्ध प्रेम इन में नहीं, अकथ कथा सविसेह ॥२॥
इक अंगी बिनु कारनहिं, इकरस सदा समान।
गनै प्रियहिं सरबस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ॥३॥
डरै सदा चाहै न कछु, सहै सबै जो होय।
रहै एक रस चाहि कै, प्रेम बखानौं सोय ॥४॥

अति सूछम कोमल अतिहिं , अति पतरो अति दूर।
प्रेम कठिन सबतें सदा , नित इकरस भरपूर ।।५।।

अपने विषय में इन्होंने यह लिखा है :—

देखि गदर हित साहिबी , दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा बंस की , ठसक छोड़ि रसखान ।।१।।
प्रेम निकेतन श्री बनहिं , आय गोवर्धन धाम।
लह्यो सरन चित चाहि कै , जुगल सरूप ललाम ।।२।।

इनकी कविता में प्रेम की प्रधानता है। भक्त और प्रेमी होकर शृंगार रस पर भी इन्होंने बड़ी ललित कविता की है। इनकी दो पुस्तकें मिलती हैं—सुजान रसखान और प्रेम वाटिका। सुजान रसखान में १२९ छंद हैं। प्रेमवाटिका में ५२ दोहे हैं। इनके रचे हुये सुजान रसखान में से कुछ छन्द चुनकर हम नीचे प्रकाशित करते हैं—

१

मानस हौं तो वही रसखान बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हौं तौ कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन ।।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जौ खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदम्ब की डारन ।।

२

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवौ निधि को सुख नन्द की गाय चराइ बिसारौं ।।
रसखानि कबौं इन आँखिन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूँ कलधौत के धाम करीर के कुंजन ऊपर वारौं ।।

३

आयो हुतो नियरे रसखान कहा कहूँ तू न गई वहि ठैया।
या ब्रज में सिगरी बनिता सब वारति प्राननि लेत बलैया ।।

कोऊ न काहू की कानि करै कछु चेटक सो जु करयो जदुरैया।
गाइगा तान जमाइगो नेह रिझाइगो प्रान चराइगो गैया।।

४

सोहत है चँदवा सिर मौर के जैसियै सुन्दर पाग कसी है।
तैसियै गोरज भाल बिराजति जैसी हिये बनमाल लसी है।।
रसखानि बिलोकत बौरी भई दृग मूँदि कै ग्वालि पुकारि हँसी हे।
खोलि री घूँघट खोलौं कहा वह मूरति नैनन माँझ बसी है।।

५

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुवेद बतावैं।।
जाहि हिये लखि आनंद ह्वै जड़ मूढ़ हिये रसखानि कहावै।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै।।

६

तेरी गलीन में जा दिन तें निकसे मनमोहन गोधन गावत।
ये ब्रज लोग सों कौन सी बात चलाइ कै जो नहीं नैन चलावत।।
वे रसखानि जो रीझिहैं नेकु तौ रीझि कै क्यों बनवारि रिझावत।
बावरी जोपै कलङ्क लग्यो तौ निसंक ह्वै क्यों नहीं अंक लगावत।।

७

दानी भये नये माँगत दान हो जानि है कंस तौ बन्धन जैहौ।
टूटे छरा बछरादिक गोधन जो धन है सो सबै धन दैहौ।।
रोकत हो बन में रसखानि चलावत हाथ घनो दुख पैहौ।
जैहै जो भूषन काहू तिया को तो मोल छला के लला न बिकैहौ।।

सेनापति

सेनापति कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। ये अनूपशहर ज़िला बुलन्दशहर के रहनेवाले थे। इनके पिता का नाम गंगाधर, पितामह का परशुराम और गुरु का नाम हीरामणि था। इनका जन्म काल सं० १६४६ के आसपास माना जाता है। इनके मृत्यु-काल का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। सेनापति ने स्वयं अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

दीक्षित परशुराम दादो है विदित नाम
जिन कीने यज्ञ जाकी जग में बड़ाई है।
गंगाधर पिता गंगाधर के समान जाके
गंगा तीर बसति अनूप जिन पाई है॥
महाजान मनि विद्या दानहू ते चिन्तामनि
हीरामनि दीक्षित तें पाई पंडिताई है।
सेनापति सोई सीतापति के प्रसाद जाकी
सब कवि कान दै सुनत कविताई है॥

सेनापति ने 'काव्य-कल्पद्रुम' और 'कवित्त-रत्नाकर" नामक दो ग्रन्थ रचे थे। कवित्त-रत्नाकर सं० १७०६ में सम्पूर्ण हुआ। इन्होंने अपनी कविता की स्वयं अपने मुँह से बड़ी प्रशंसा की है। वास्तव में इनकी कविता बड़ी चमत्कारपूर्ण होती है भी। इनका षट्ऋतु-वर्णन तो बड़ा ही अद्भुत हुआ है। हम इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे उद्धृत करते हैं—

केतो करो कोय पैये करम लिखोय तातें दूसरी न होय उर सोय ठहराइये। आधी ते सरस बीति गई है बरस अब दुज्जन दरस बीच रस न बढ़ाइये। चिन्ता अनुचित धरु धीरज उचित सेनापति ह्वै सुचित रघुपात गुन गाइये। चारि बरदानि तजि पाय कमलेच्छन के पायक मलेच्छन के काहे को कहाइये॥१॥

महा मोह कन्दनि में जगत जकन्दनि में दिन दुख दंदनि में जात है बिहाय कै। सुख को न लेस है कलेस सब भाँतिन को सेनापति याही तें कहत अकुलाय कै।। आवै मन ऐसी घरबार परिवार तजौ डारौं लोक लाज के समाज बिसराय कै। हरिजन पुंजनि में बृन्दावन कुंजनि मैं रहौं बैठि कहुँ तरवर तर जाय कै।।२।।

पान चरनामृत को गान गुन गानन को हरि कथा सुने सदा हिये को हुलसिबो। प्रभु के उतीरन की गूदरी औ चीरन की भाल भुज कंठ उर छापन को लसिबो। सेनापति चाहत है सकल जनम भरि वृन्दाबन सीमा तें न बाहर निकसिबो। राधा मन रंजन की सोभा नैन कंजन की माल गुरे गुंजन को कुंजन को बसिबो।।३।।

धातु सिलदारु निरधारु प्रतिमा को सार सो न करतार है।बचार बीच गेह रे।। राखि दीठि अन्तर जहाँ न कछु अन्तर है जीभ को निरन्तर जपावत हरे हरे।। अंजन विमल सेनापति मन रंजन दै जपि के निरंज ; परम पद लेह रे। करि न संदेह रे वही है मन देहरे कहा है बीच देहरे कहा है बीच देहरे।।४।।

नाहीं नाहीं करै थोरे माँगे सब देन कहै मंगन को देखि पट देत बार बार हैं। जिनके लखत भली प्रापति की घरी होत सदा सब जन मन भाय निरधार है। भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य कन कन जोरे दान पाट परिवार है। सेनापति बचन की रचना बिचारि देखो दाता और सूम दोऊ कीन्हे एक सार है।।५।।

नूतन जोबन बारी मिली ही जोवन बारी, सेनापति बनबारी मन में बिचारिये। तेरी चितवनि ताके चुभी चित बनिता के उचित बनि ताके मया के पग धारिये।। सुधि न निकेतन की चढ़ी उनके तन की पीर मीन-केतन की जाइ कै निवारिये। तो तजि अनवरत वाके और न बरत कीजै लाल नव रत बाल न बिसारिये।।६।।

फूलन सों बाल की बनाइ गुही बेनी लाल भाल दीनी बेंदी मृगमद की असित है। अङ्ग अङ्ग भूषन बनाइ ब्रजभूषन जू बीरी निज कर कै खवाई अति हित है ।। ह्वै कै रस बस जब दीबे को महावर के सेनापति स्याम गह्यो चरन ललित है। चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आँखिन सों कही प्रानपति ! यह अनुचित है ।।७।।

जो पै प्रानप्यारे परदेस को पधारे तातें विरह तें भई ऐसी ता तिय की गति है। करि कर उपर कपोलहिं कमल नैनी सेनापति अनमनि बैठियै रहति है ।। कागहिं उड़ावै कबौं कबौं करै सगुनौती कबौं बैठि अवधि के बासर गिनति है। पढ़ी पढ़ी पाती कबौं फेरि कै पढति कबौं प्रीतम के चित्र में स्वरूप निरखति है ।।८।।

जनक नरिन्द नन्दिनी को बदनारविन्द सुन्दर बखानो सेनापति बेद चारि कै। बरनी न जाइ जाकी नेकहू निकाई लोनु राई करि पंकज निसंक डारे मारि कै ।। बार बार जाकी बराबरि को विधाता अब रचि पचि विधु को बनावत सुधारि कै। पूनो को बनाय जब जानत न वैसो भयो कुहू के कपट तब डारत बिगारि कै ।।९।।

चल्यो हनुमान रामबान के समान जान सीता सोध काज दसकंधर नगर को। राम को जुहारि बाहु बल को सँभारि करि सब ही के संसै निरवारि डारि डर को ।। लागी है न वार फाँदि परयो पारावार कौन सेनापति कविता बखाने वेगचर को। खोलत पलक जैसे एक ही पलक बीच दृगनि को तारो दौरि मिलै दिनकर को ।।१०।।

रावन को वीर सेनापति रघुबीर जू की आयो है सरन छाँड़ि ताही मद अंध को। मिलत ही ताको राम कोप कै करी है ओप नाम जोय दुर्जन दलन दीनबंध को। देखो दानवीरता निदान एक दान ही में कीन्हे दोऊ दान को बखाने सत्य संध को। लंका दसकंधर की दीनी है विभीषन को संका विभीषन की सो दीनी दसकंध को ।।११।।

बसंत

लाल लाल टेसू फूलि रहे हैं विलास संग श्याम रंग भई मानो मसि में मिलाये हैं। तहाँ मधु काज आइ बैठ मधुकर पुज मलय पवन उपवन वन धाये हैं। सेनापति माधव महीना में पलास तरु देखि देखि भाव कविता के मन आये हैं। आधे अंग सुलगि सुलगि रहे आधे मानो विरही दहन काम क्वैला परचाये हैं ।।१२।।

केतक असोक नव चंपक बकुल कुल कौन धौं वियोगिन को ऐसो बिकरालु है। सेनापति साँवरे की सूरत की सुरति की सुरति कराय करि डारतु बिहालु है। दच्छिन पवन एती ताहू की दवन जऊ सूनो है भवन परदेसु प्यारो लालु है। लाल हैं प्रवाल फूले देखत बिसाल जऊ फूले और साल पै रसाल उर सालु है ।।१३।।

ग्रीष्म

बृष को तरनि तेज सहसौ किरनि कर ज्वालन के जाल विकरालु बरसतु हैं। तचति धरनि जग जरत धरनि सीरी छाँह को पकरि पथी पंछी विरमतु हैं। सेनापति नेक दुपहरी के ढरत होतु धमका विषम यों न पातु खरकतु हैं। मेरे जान पौनो सीरी ठौर को पकरि कोनो घरी एकु बैठि कहूँ वा में बितवतु हैं ।।१४।।

सेनापति तपन तपत उतपति जैसो छायो रति पति तातें विरह बरतु हैं। लुवन की लपटैं तें चहुँ ओर लपटैं पै ओढ़े सलिल पटै न चैन उपजतु हैं ।। गगन गरद धूँधि दसौ दिसा रही रूँधि मानो नभ भारकी भसम बरसतु है। बरनि बताई छिति व्योम की तताई जेठ आयो आततायी पुटपाक सो करतु है ।।१५।।

पावस

दूरि जदुराई सेनापति सुखदाई देखो आई ऋतु पावस न पाई प्रेम पतियाँ। धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी औ दरकी सुहागिन की छोह भरी छतियाँ। आई सुधि बर की हिये में आनि खरकी सुमिरि प्रान प्यारी यह प्रीतम की बतियाँ। बीती औधि आवन की लाल मन भावन की डग भई बावन की सावन की रतियाँ ।।१६।।

सेनापति उनये नये जलद सावन के चारि हूँ दिसान घुमरत भरे तोइ के। सोभा सरसाने न बखाने जात कहुँ भाँति आने हैं पहार मानो काजर के ढोइ के। घन सो गगन छ्यो तिमिर सघन भयो देखि न परत गयो मानो रवि खोइ के। चारि मास भरि घोर निसा को भरम करि मेरे जान याही तें रहत हरि सोई के ॥१७॥

शरद्

विविध बरन सुर चाप ते न देखियत मानो मनि भूषन उतारि धरे भेष हैं। उन्नत पयोधर बरसि रसु गिरि रहे नीके न लगत फीके सोभा के न लेस हैं। सेनापति आये तें सरद रितु फूलि रहे आसपास कास खेत खेत चहूँ देस हैं। जीवन हरन कुंभजोनि के उदै ते भए बरषा विरिध ताके सेत मानो केस हैं ॥१८॥

कातिक की राति थोरी थोरी सियराति सेनापति को सुहाति सुखी जीवन के गन हैं। फूले हैं कुमुद फूली मालती सघन बन फूलि रहे तारे मानो मोती अनगन हैं॥ उदित विमल चंद चाँदनी छिटिक रही राम कैसो जस अध ऊरध गगन है। तिमिर हरन भयो सेत है बरन सब मानहुँ जगत छीरसागर मगन है ॥१९॥

हेमन्त

सूरे तजि भाजी बात कातिक में जब सुनी हिम की हिमाचल ते चमू उतरति है। आये अगहन कीनो गहन दहन हू को तितहुँते चली कहूँ धीर न धरति है। हिय में परी है हूल दौरि गहि तजी तूल अब निज मूल सेनापति सुमिरति है। पूस में तिया के ऊँचे कुच कनकाचल में गढ़ वै गरम भई सीत सों लरति है ॥२०॥

आयो सखी पूसौ भूलि कंत सों न रूसौ केलिही सौं मन मूसौ जीव ज्यों सुख लहतु है। दिन की घटाई रजनी की अधटाई सीतताई हू को सेनापति बरनि कहतु है॥ याही ते निदान प्रात वेगि उदै होत नाहिं द्रोपदी के चीर कैसो राति को महतु है। मेरे जान सूरज पताल तपतालै माँझ सीत को सतायो कहलाइ कै रहतु है ॥२१॥

शिशिर

सिसिर में ससि को सरूप पावे सबिताऊ घामहुँ में चाँदनी की दुति दमकति है। सेनापति होति सीतलता है सहस् गुनी रजनी की झाँई बासर में झमकति है। चाहत चकोर सूर ओर दृग छोर करि चकवा की छाती तजि धीर धसकति है।। चंद के भरम होत मोद है कुमोदिनी को ससि संक पंकजनी फूलि न सकति है।।२२।।

सिसिर तुषार के बुखार से उखारतु है पूस बीते होत सून हाथ पाइ ठिरिकै। द्योस की छुटाई की बड़ाई बरनी न जाइ सेनापति गाई कछु सोचि कै सुमिरि कै।। सीत ते सहसकर सहस चरन ह्वै के ऐसे जातु भाजि तम आवत है घिरि कै। जौलों कोक कोकी को मिलत तौलों होत राति कोक अधबीच ही तें आवतु है फिरिकै।।२३।।

सुन्दरदास

सुन्दरदास जाति के ढूसर गोती खंडेलवाल बनिये थे। इनके पिता का नाम परमानंद और माता का सती था। इनका जन्म चैत्र सुदी ९ सं० १६५३ वि० को द्योसा (जयपुर राज्य) में हुआ।

जब सुन्दरदास छः बरस के हुये, दादूदयाल द्योसा में पधारे। ये उसी समय से दादूदयाल के शिष्य हो गये और उनके साथ रहने लगे। संवत् १६६० में दादूदयाल का शरीरान्त होने तक ये नाराणा में रहे। फिर जगजीवन साधु के साथ अपने माता-पिता के घर द्योसा में आ गये। वहाँ सं० १६६३ तक रहकर फिर जगजीवन के साथ काशी चले आये। काशी में ये उन्नीस बरस अर्थात् तीस बरस की अवस्था तक संस्कृत, वेदान्त, दर्शन और पुराण आदि पढ़ते रहे। संस्कृत के अतिरिक्त सुन्दरदासजी हिन्दी, फ़ारसी, गुजराती और मारवाड़ी आदि भाषायें भी अच्छी तरह जानते थे।

सं० १६८२ में सुन्दरदास जी काशी से लौटे। उस समय इनके साथ और भी साधु थे। उनमें एक फ़तहपुर (शेखावाटी) का भी था। ये उसी

के साथ फ़तहपुर चले गये। फ़तहपुर में इनके गुरु भाई प्रागदास पहले ही से मौजूद थे। अतएव फ़तहपुर के साध-भक्त महाजनों की प्रार्थना से ये भी वहीं ठहर गये। फ़तहपुर के नवाब अलिफ़ खाँ, दौलत खाँ और ताहिर खाँ के साथ भी इनका बड़ा मेल हो गया था। अलिफ़ खाँ भी भाषा के कवि थे।

सं० १६८८ में प्रागदास का देहान्त हो जाने पर इनका चित्त फ़तहपुर में बहुत कम लगता था। इससे ये प्रायः देशाटन के लिये चले जाया करते थे।

सुन्दरदासजी डीलडौल में बड़े सुन्दर, गोरे रङ्ग के, तेजस्वी और लम्बे थे। आँखें बड़ी सुन्दर और चमकदार थीं। बोलते बहुत मधुर थे। स्वभाव ऐसा अच्छा था कि जो इनसे मिलता, बस, वह इनका भक्त ही हो जाता। बालकों से ये बड़ा प्रेम रखते थे। ये बाल ब्रह्मचारी थे। स्त्री-चर्चा से इनको बड़ी घृणा थी। ये स्वच्छता को बहुत पसंद करते थे। इसी से देश-देश के मलिन व्यवहार की इन्होंने खूब ही दिल्लगी उड़ाई है। गुजरात के लिये—'आभड़ छोत अतीतसों कीजिये, बिलाईरु कूकुर चाटत हाँड़ी', मारवाड़ के लिये—'बृच्छन नीर न उत्तम चीर सुदेशन में गत देश है मारू', दक्षिण के लिये—'राँधत प्याज बिगारत नाज न आवत लाज करें सब भच्छन', पूर्व के लिये—'ब्राह्मण छत्रिय बैसरु सूदर चारो हि वर्न के मच्छ बघारत', फ़तहपुर की स्त्रियों के लिये—'फूहड़ नार फ़तेपुर की' आदि वाक्यों से इनका मनोभाव प्रकट होता है। मालवा और उत्तराखंड इन्हें बहुत प्रिय थे।

सुन्दरदास बाल-कवि थे। इनकी कविता से प्रकट होता है कि ये अच्छे ज्ञानी और काव्य-कला-मर्मज्ञ थे। अन्य संतों की बानी की अपेक्षा मुझे इनकी कविता में अधिक भाव समझ पड़ा है। इन्होंने वेदान्त पर अच्छी कविता की है। इनके रचे छोटे-मोटे ग्रंथों की संख्या ४० से अधिक है।

कुछ के नाम ये हैं :—हरिबोल चितावनी, साखी, सवैया, सुन्दर सांख्य, तर्क चितामणि, ज्ञान विलास, सुन्दर विलास, सहजानन्द, अद्भुत उपदेश आदि।

सुन्दरदास ने कार्तिक सुदी ८ बृहस्पतिवार संवत् १७४६ को साँगानेर (जयपुर के पास) में शरीर छोड़ा। शरीर छोड़ते समय इन्होंने ये दोहे कहे थे –

मान लिये अंतःकरण , जे इन्द्रन के भोग।
सुन्दर न्यारो आतमा , लगो देह को रोग।।
वैद्य हमारे राम जी , औषधि हू हरि नाम।
सुन्दर यहै उपाय अब , सुमिरण आठौ जाम।।
सुन्दर संसय को नही , बड़ो महूच्छव एह।
आतम परमातम मिलो , रहो कि बिनसो देह।।
सात बरस सौ में घटै , इतने दिन की देह।
सुन्दर आतम अमर है , देह खेह की खेह।।

सुन्दरदासजी की जहाँ दाह-क्रिया की गई थी, वहाँ एक गुमटी बनी है। उसमें सफेद पत्थर पर यह लिखा है––

संवत सत्रह सै छोयाला। कार्तिक सुदि अष्टमी उजाला।
तीजे पहर भरस्पति वार। सुन्दर मिलिया सुन्दर सार।।

फ़तहपुर के आश्रम में अब भी सुन्दरदास के कपड़े और उनके हाथ की लिखी पुस्तकें आदि चीजें रक्खी हैं। सन् १९११-१२ में जब मैं फ़तहपुर में था, तब एक दिन मेरे सहृदय मित्र श्री केशवदेवजी नेवटिया मुझे सुन्दरदास का आश्रम और इनके वस्त्र अदि दिखाने ले गये थे।

इनके कुछ छन्द नीचे लिखे जाते हैं :––

कौन कुबुद्धि भई घट अंतर तू अपने प्रभुसूँ मन चौरै।
भूलि गया विषया सुख मे सठ लालच लागि रह्यो अति थोरै।।
ज्यूं कोउ कंचन छार मिलावत लेकरि पत्थर सूँ नग फोरै।
सुन्दर या नरदेह अमूलक तीर लगी नवका कित बोरै।।१।।
गेह तज्या पुनि नेह तज्यो पुनि खेह लगाइ के देह संवारी।
मेघ सहै सिर सीत सहै तन धूप सहै जु पँचागिनि बारो।।

भूख सहै रहि रूख तरे पर सुन्दरदास सभै दुख भारी।
डासन छाड़िके कासन ऊपर आसन मारिकै आस न मारी ।।२।।

काहू सों न रोष तोष काहू सों न राग द्वेष काहू सों न बैर भाव काहू सो न घात है। काहू सो न बकबाद काहू सों नही विषाद काहू सों न संग न तौ काहू पच्छपात है। काहू सों न दुष्ट बैन काहू सों न लेन देन ब्रह्म को विचार कछ और न सुहात है। सुन्दर कहत सोई ईसन को महाईस सोई गुरुदेव जाके दूसरी न बात है।।३।।

बोलियो तौ तब जब बोलिबे की सुधि होइ न तौ मुख मौन गहि चुप होइ रहिये। जोरिये तौ तब जब जोरिबे की जानि परै तुक छंद अरथ अनूप जामें लहिये। गाइये तौ तब जब गाइबे को कंठ होइ स्रौन के सुनत ही में मन जाइ गहिये। तुक भंग छन्द भंग अरथ मिलै न कछु सुन्दर कहत ऐसी बानी नहीं कहिये ।।४।।

पतिही सूँ प्रेम होइ पतिही सूँ नेम होइ पतिहीं सूँ छेम होइ पति ही सूँ रत है। पतिही है जज्ञ जोग पतिही है रस भोग पतिही सूँ मिटै सोग पतिही को जत है। पतिही है ज्ञान ध्यान पतिही है पुन्य दान पतिही है तीर्थ नान्ह पतिही को मत है। पति बिनु पति नाहिं पति बिनु गति नाहिं सुन्दर सकल विधि एक पतिव्रत है।।५।।

ब्रह्म तें पुरुष अरु प्रकृति प्रगट भई प्रकृति तें महत्तत्व पुनि अहंकार है। अहंकार हू ते तीन गुन सत रज तम तम हू तें महाभूत विषय पसार है। रज हू तें इन्द्रो दस पृथक पृथक भई सत्त हू तें मन आदि देवता विचार है। ऐसे अनुक्रम करि सिष्य सूँ कहत गुरु सुन्दर सकल यह मिथ्या भ्रम जार है।।६।।

सुनत नगारे चोट बिकसै कमल मुख अधिक उछाह फूल्यो मायहू न तन में। फेरे जब साँग तब कोई नहिं धीर धरै कायर कँपायमान होत देखि मन में। कूद के पतंग जैसे परत पावक माहिं ऐसे टूटि परै बहु साँवत के घन में। मारि घमसान करि सुन्दर जुहारै स्याम सोई सूरबीर रोपि रहै जाइ रन में।।७।।

पाँव रोपि रहै रन माहि रजपूत कोऊ हय गज गाजत जुरत जहाँ दल है। बाजत जुझाऊ सहनाई सिंधु राग पुनि सुनतहि कायर की छुटि जात कल है।। झलकत बरछी तिरीछी तरवार बहै मार मार करत परत खलभल है। ऐसे जुद्ध में अडिग्ग सुन्दर सुभट सोई घर माहिं सूरमा कहावत सकल है।।८।।

आसन बसन बहु भूषन सकल अंग सम्पति विविध भाँति भरयो सब घर है। स्रवन नगारो सुनि छिनन में छांड़ि जात ऐसे नहिं जानै कछु मेरो वहाँ मर है। तन में उछाह रन माँह टूक टूक होइ निर्भय निसंक वाके रंचहू न डर है। सुन्दर कहत कोउ देह को ममत्व नाहिं सूरमा को देखियत सीस बिनु धर है।।९।।

कामिनी की देह अति कहिये सघन बन जहाँ सु तौ जाय कोऊ भूलि कै परत है। कुंजर है गति कटि केहरि की भय यामें बेनी कारी नागिन सी फन को धरत है। कुच है पहार जहाँ काम चोर बैठो तहाँ साधि कै कटाच्छ बान प्रान को हरत है। सुन्दर कहत एक और अति भय तामें राछली बदन खाँव खाँव ही करत है।।१०।।

देखहु दुरमति या संसार की।
हरि सों हीरा छाँड़ि हाथ तें, बाँधत मोट बिकार की।।
नाना विधि के करम कमावत, खबर नहीं सिर भार की।
झूठे सुख में भूलि रहे हैं, फूटी आँख गँवार की।।
कोइ खेती कोइ बनजी लागै, कोई आस हथ्यार की।
अंधु धुंध में चहुँ दिसि ध्याये, सुधि बिसरी करतार की।।
नरक जानि कै मारग चालै, सुनि सुनि बात लबार की।
अपने हाथ गले में बाही, पासी माया जार की।।
बारम्बार पुकार कहत हौं, सौंहैं सिरजनहार की।
सुन्दरदास बिनस करि जैहै, देह छिनक में छार की।।११।।

पुरुष प्रकृति संयोग जगत् उपजत है ऐसे।
रवि दर्पण दृष्टांत अग्नि उपजत है तैसे।

सुई होंहिं चैतन्य यथा चुम्बक के संगा।
यथा पवन संयोग उदधि में उठहिं तरंगा।।
अरु यथा सूर संयोग पुनि चक्षु रूप कौं गहत है।
यों जड़ चेतन संयोग तें सृष्टि उपजती कहत है।।१२।।

गज क्रीड़त अपने रङ्गा, वन में मदमत्त अनङ्गा।
बलवन्त महा अधिकारी, गहि तरवर लेइ उपारी।
इक मनुप तहाँ कोउ आवा, तिहि कुञ्जर देखन पावा।
उन ऐसी बुद्धि विचारी, फिर आवा नग्र मझारी।
तब कह्यो नृपति सौं जाई, इक गज वन माँझ रहाई।
जौ लै आवै गज भाई, दैहौं तब बहुत बधाई।
तब बिदा होइ घर आवा, मन में कछु फिकिर उपावा।
तब बुद्धि विधाता दीनी, कागद की हथिनी कीनी।
तब दूत तहाँ लै जाहीं, गज रहत जहाँ बन माहीं।
तहँ खन्दक कीना जाई, पतरे तृन दीन छवाई।
तृन ऊपर मृतिका नाखी, तब ऊपर हथिनी राखी।
हथिनी को देखि स्वरूपा, सठ धाइ परचो अँधकूपा।
धाइ परचो गज कूप में, देखा नहीं विचारि।
काम-अंध जानै नही, कालबूत की नारि।।१३।।

दूभर रैनि विहाय अकेली सेजरी।
जिनके संगन पीव विरहिनी से जरी।
बिरहै संकल वाहि विचापी सेजरी।
सुन्दर दुःख अपार न पाऊँ सेजरी।।१४।।
तो सही चतुर तूँ जान परबीन अति
परै जनि पिंजरे मोह कूवा।।
पाइ उत्तम जनम लाइ लै चपल मन
गाइ गोविन्द गुन जीति जूवा।।

आपही आपु अज्ञान नलिनी बँध्यो
विना प्रभु विमुख कै बेर मूवा ।।
दास सुन्दर कहै परम पद तौ लहै
राम हरि राम हरि बोल सूवा ।।१५।।
सुन्दर जो गाफिल हुआ , तौ वह साई दूर ।
जो बंदा हाज़िर हुआ , तौ हाजराँ हजूर ।।१६।।
रसु सोई अमृत पिवै , रन सोई जिहि ज्ञान ।
सुप सोई जो बुद्धि विन , तीनौं उलटे जान ।।१७।।
लालन मेरा लाड़ला , रूप बहुत तुझ माहिं ।
सुन्दर राखै नैन में , पलक उघारै नाहिं ।।१८।।
सुन्दर पंछी बिरछ पर , लियो बसेरा आनि ।
राति रहे दिन उठि गये , त्यों कुटुम्ब सब जानि ।।१९।।
लौन पूतरी उदधि मैं , थाह लेन कौं जाइ ।
सुन्दर थाह न पाइये , बिचही गई बिलाइ ।।२०।।

बिहारीलाल

कविवर बिहारीलाल ककोर कुल के चौबे ब्राह्मण थे। इनका जन्म अनुमान से सं० १६६० में ग्वालियर के निकट बसुआ गोविन्द पुर में हुआ। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सं० १७२० में इनकी मृत्यु हुई।

बिहारीलाल जयपुर के महाराज जयसिंह के यहाँ रहा करते थे। एक बार जयसिंह अपनी छोटी रानी के प्रेम में इतने अनुरक्त हो गये कि उन्होंने बाहर निकलना ही बन्द कर दिया। इससे दरबारियों में बड़ी व्याकुलता फैली। तब उनकी प्रेरणा से बिहारी लाल ने यह दोहा लिख कर किसी तरह महाराज के पास भिजवाया :—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु , नहिं बिकास यहि काल ।
अली कली ही में बँध्यो , आगे कवन हवाल ।।

दोहे का गूढ़ अभिप्राय समझकर महाराजा बाहर चले आये। उस दिन से दरबार में बिहारीलाल का सम्मान बढ़ चला। इनको एक अशर्फी प्रतिदिन मिला करती थी।

जयपुर ही में इन्होंने सतसई बनाई, जो अपने ढंग की एक ही पुस्तक है। शृङ्गार-रस का ऐसा मनोहर ग्रंथ अभी तक हिन्दी-साहित्य में दूसरा नहीं है। इसकी लगभग तीस टीकाएँ हो चुकी हैं। इतने पर भी रसिकों की तृप्ति नहीं हुई है। इसकी एक और टीका स्व० पंडित पद्मसिंह शर्म्मा की है। यह टीका अब तक की सब टीकाओं से उत्तम मानी जाती है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने इस टीका के लिये टीकाकार पंडित पद्मसिंह को १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक देकर सम्मानित किया था। कहा नहीं जा सकता कि शर्म्माजी की इस टीका से रसिकों की प्यास बुझेगी या बढ़ेगी। स्व० लाला भगवानदीन ने भी 'बिहारी बोधिनी' नाम से सतसई की एक टीका प्रकाशित कराई है। अंतिम टीका स्व० बाबू जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर' की है, जो अधिक प्रामाणिक मानी जाती है।

सतसई में कुल ७१९ दोहे हैं। एक-एक दोहे में बिहारीलाल ने इतना चमत्कार भर दिया है कि उसमें श्रेष्ठ कवियों की कल्पना-शक्ति की खासी झलक दिखाई पड़ती है। यों तो बिहारीलाल के सभी दोहे अशर्फियों के मोल के हैं, परन्तु स्थानाभाव से हम उन सब को यहाँ देने में असमर्थ हैं। उनमें से कुछ चुने हुये दोहे नीचे दिये जाते हैं :—

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तनु की झाँई परे, स्याम हरित द्युति होय॥१॥
मकराकृत गोपाल के, कुंडल सोहत कान।
धँस्यो मनो हिय घर समर, ड्योढ़ी लसत निसान॥२॥
अधर धरत हरि के परत, ओट दीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष रँग होति॥३॥
अपने अँग के जानिके, यौवन नृपति प्रवीन।
स्तन मन नयन नितम्ब को, बड़ो इजाफ़ा कीन॥४॥

बिहँसि बुलाय बिलोकि उत , प्रौढ़ तिया रस घूमि।
पुलकि पसीजति पूतको , पिय चूम्यो मुख चूमि ।।५।।
कंज नयनि मञ्जन किये , बैठी व्यौरति बार।
कच अँगुरिन बिच दीठि दै , चितवति नन्दकुमार ।।६।।
पहुँचति डटि रन सुभट लौं , रोकि सकै सब नाहिं।
लाखनहूँ की भीर में , आँखि वहीं चलि जाहि ।।७।।
छिनकु उघारति छिन छुवति, राखति छिनकु छिपाय।
सब दिन पिय खंडित अधर , दर्पन देखति जाय ।।८।।
चाह भरी अति रिस भरी , विरह भरी सब बात।
कोरि सँदेसे दुहुन के , चले पौरि लौं जात ।।९।।
जुवति जोन्ह में मिलि गई , नेकु न होति लखाइ।
सौंधे के डोरे लगी , अली चली सँग जाइ ।।१०।।
तू रहि सखि हौंहीं लखौं , चढ़ि न अटावलि बाल।
बिनही ऊगे ससि समुझि , दैहै अरघ अकाल ।।११।।
नाक चढ़ै सी बी करै , जितै छबीली छैल।
फिरि फिरि भूलि उहै गहै , पिय कँकरीली गैल ।।१२।।
अलि इन लोयन को कछू , उपजी बड़ी बलाय।
नीर भरे नितप्रति रहै , तऊ न प्यास बुझाय ।।१३।।
इन दुखिया अँखियान को , सुख सिरजोई नाहिं।
देखत बनै न देखते , बिन देखे अकुलाहिं ।।१४।।
लरिका लेबे के मिसुनि , लंगर मों ढिग आय।
गयो अचानक आँगुरी , छाती छैल छुवाय ।।१५।।
डग कुडगति सी चलि ठठकि , चितई चली निहारि।
लिये जात चित चोरटी , वहै गोरटी नारि ।।१६।।
फेरि कछू करि पौर ते , फिर चितई मुसक्याय।
आई जामन लेन को , नेहै चली जमाय ।।१७।।

यद्यपि सुन्दर सुघर पुनि , सगुनो दीपक देह।
तऊ प्रकास करै तितो , भरिये जितो सनेह ।।१८।।
जो चाहत चटक न घटै , मैलो होय न मित्त।
रज राजस न छुवाइये , नेह चीकने चित्त ।।१९।।
अनियारे दीरघ नयनि , किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरे कछु , जिहि वस होत सुजान ।।२०।।
बर जीते सर मैन के , ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनान तें , हरि नीके ये नैन ।।२१।।
बेसर मोती धनि तुही , को पूछै कुल जाति।
पीबो कर तिय अधर को , रस निधरक दिन राति ।।२२।।
तो लखि मो मन जो गही , सो गति कही न जात।
ठोड़ी गाड़ गड़्यो तऊ , उड़्यो रहत दिन रात ।।२३।।
जहाँ जहाँ ठाढ़्यो लख्यो , स्याम सुभग सिरमौर।
उनहूँ बिन छिन गहि रहत , दृगनि अजहुँ वहि ठौर ।।२४।।
चिरजीवो जोरी जुरै , क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ये वृषभानुजा , वे हलधर के वीर ।।२५।।
सोहत ओढ़े पीतपट , स्याम सलोने गात।
मनो नीलमनि सैल पर , आतप परयो प्रभात ।। २६।।
छुटी न सिसुता की झलक , झलक्यो जोबन अङ्ग।
दीपति देह दुहून मिलि , दिपत ताफ़ता रङ्ग ।। २७ ।।
दृगन लगत बेधत हियो , विकल करत अँग आन।
ये तेरे सब तें विषम , ईछन तीछन बान ।।२८।।
झूठे जानि न संग्रहे , मन मुँह निकसे बैन।
याही ते मानो किये , बातन को बिधि नैन ।।२९।।
जटित नील मनि जगमगति , सींक सुहाई नाँक।
मनो अली चंपक कली , वसि रस लेत निसाँक ।। ३०।।

बेसरि मोती दुति झलक , परी ओंठ पर आय।
चूनो होय न चतुर तिय , क्यों पट पोंछो जाय ।।३१।।
ललित स्याम लीला ललन , चढ़ी चिबुक छबि दून।
मधु छाक्यो मधुकर परयो , मनो गुलाब प्रसून ।।३२।।
दुरत न कुच बिच कंचुकी , चुपरी सारी सेत।
कवि अङ्कन के अर्थ लौं , प्रगट दिखाई देत ।।३३।।
अजौं तरयोनाही रह्यो , स्रुति सेवत इक अङ्ग।
नाक बास बेसर लह्यो , बसि मुकतन के सङ्ग ।।३४।।
वाहि लखे लोयन लगै , कौन जुवति की जोति।
जाके तन की छाँह ढिग , जोन्ह छाँह सी होति ।।३५।।
दृग अरुझत टूटत कुटुम , जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हिये , दई नई यह रीति ।।३६।।
क्यों बसिये क्यों निबहिये , नीति नेह पुर नाहिं।
लगा-लगी लोयन करैं , नाहक मन बँधि जाहिं ।।३७।।
नैना नेकु न मानहीं , कितो कहौं समुझाय।
तन मन हारे हू हँसैं , तिन सों कहा बसाय ।।३८।।
लटकि लटकि लटकत चलत , डटत मुकुट की छांह।
चटक भरयो नट मिलि गयो , अटक भटक बट माँह ।।३९।।
लाज लगाम न मानहीं , नैना मो बस नाहिं।
ये मुँहजोर तुरङ्ग लौं , ऐंचत हू चलि जाहिं ।।४०।।
सन सूखौ बीत्यो बनौ , ऊखौ लई उखारि।
अरी हरी अरहरि अजौं , धरु धरहरि हिय नारि ।।४१।।
कहा कहौं वाकी दसा , हरि प्रानन के ईस।
बिरह ज्वाल जरिबो लखे , मरिबो भयो असीस ।।४२।।
निस अँधियारी नीलपट , पहिरि चली पिय गेह।
कहौ दुराई क्यों दुरै , दीप सिखा सी देह ।।४३।।

ल्याई लाल बिलोकिये , जिय की जीवन-मूलि ।
रही भौन के कोन में , सोनजुही सी फूलि ।।४४।।
कोटि जतन कोऊ करौ , तन की तपनि न जाय ।
जौ लौं भीजे चीर लौं , रहै न प्यौ लपटाय ।।४५।।
भौंहनि त्रासति मुख नटति , आँखिन सों लपटाति ।
ऐंचि छुड़ावति कर इंची , आगे आवति जाति ।।४६।।
बतरस लालच लाल की , मुरली धरी लुकाय ।
सौंह करै भौंहन हँसै , देन कहै नटि जाय ।।४७।।
मिलि मिलि चलि चलि मिलि चलत, आँगन अथयो भानु ।
भयो मुहूरत भोर के , पोरिहि प्रथम मिलानु ।।४८।।
तनक झूंठ निसवादिली , कौन बात पर जाय ।
तिय मुख रति आरम्भ को , नहिं झूठियै मिठाय ।।४९।।
छतौ नेह कागद हिये , भई लखाइ न टाँक ।
बिरह तचे उघरचो सु अब , सेहुँड़ को सो आँक ।।५०।।
करके मीड़े कुसुम लौं , गई बिरह कुम्हिलाय ।
सदा समीपिन सखिन हू , नीठि पिछानी जाय ।।५१।।
ओंधाई सीसी सुलखि , बिरह बरति बिललात ।
बीचहिं सूखि गुलाब गो , छींटो छुयो न गात ।।५२।।
तच्यो आँच अति बिरह को , रह्यो प्रेमरस भीजि ।
नैनन के मग जल बहै , हियो पसीजि पसीजि ।।५३।।
बिछुरे जिये सकोच यह , बोलत बने न बैन ।
दोऊ दौरि लगे हिये , किये निचौंहें नैन ।।५४।।
अहे दहेंड़ी जिनि धरै , जिनि तू लेहि उतारि ।
नीके है छीके छुये , ऐसी ही रहि नारि ।।५५।।
तो लगि या मन सदन में , हरि आवैं केहि बाट ।
विकट जुटे जौलों निपट , खुलैं न कपट कपाट ।।५६।।

पत्राही तिथि पाइये , वा घर के चहुँ पास।
नितप्रति पून्यो ही रहत , आनन ओप उजास ।।५७।।
पाँय महावर देन को , नायन बैठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी , एँड़ी मीड़ति जाय ।।५८।।
मानहुँ विधि तनु अच्छ छवि , स्वच्छ राखिबे काज।
दृग पग पौंछन को कियो , भूषन पायनदाज ।।५९।।
बाल छबीली तियन में , बैठी आप छिपाय।
अरगटही फानूससी , परगट होति लखाय ।।६०।।
पहिर न भूषन कनक के , कहि आवत यहि हेत।
दर्पन केसे मोरचे , देह दिखाई देत ।।६१।।
कागज पर लिखत न बनत , कहत सँदेस लजात।
कहिहै सब तेरो हियो , मेरे हिय की बात ।।६२।।
जब जब वे सुधि कीजिये , तब तब सब सुधि जाहिं।
आँखिन आँखि लगी रहै , आँखें लागति नाहिं ।।६३।।
सघन कुञ्ज छाया सुखद , सीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै , वा जमुना के तीर ।।६४।।
इत आवत चलि जात उत , चली छ-सातिक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै , लगी उसासनि साथ ।।६५।।
करी विरह ऐसी तऊ , गैल न छाँड़ति नीच।
दीन्हें हूँ चसमा चखनि , चाहै लखै न मीच ।।६६।।
नासा मोरि नचाय दृग , करी कका की सौंह।
काँटे सी कसकत हिये , गड़ी कटीली भौंह ।।६७।।
रस सिंगार मञ्जन किये , कंजन भंजन दैन।
अंजन रंजन हूँ बिना , खंजन गंजन नैन ।।६८।।
भूषन भार सँभारहीं , क्यों यह तनु सुकुमार।
सूधा पाँय न परत महि , सोभा ही के भार ।।६९।।

मैं बरजी कै बार तूँ , उत कत लेत करोंट।
पँखुरी लगे गुलाब की , परिहै गात खरोंट ।।७०।।
गोरी गुदकारी परत , हँसत कपोलन गाड़।
कैसी लसत गँवारि यह , सुनकिरवा की आड़ ।।७१।।
फिर घर को नूतन पथिक , चले चकित चित भागि।
फूल्यो देखि पलास बन , समुहै समुझि दवागि ।।७२।।
कहलाने एकत रहत , अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोवन सो कियो , दीरघ दाघ निदाघ ।।७३।।
प्यासे दुपहर जेठ के , थके सबै जल सोधि।
मरुधर पाय मतीरहू , मारू कहत पयोधि ।।७४।।
बिखम बृखादित की तृखा , जियत मतीरनि सोधि।
अमित अपार अगाध जल , मारो मुंड़ पयोधि ।।७५।।
पावस घन अँधियार में , रह्यो भेद नहिं आन।
राति दिवस जान्यो परे , लखि चकई चकवान ।।७६।।
अरुन सरोरुह कर चरन , दृग खंजन मुख चंद।
समय आय सुन्दर शरद , काहि न करत अनद ।।७७।।
जेती सम्पति कृपन की , तेती तू मति जोर।
बढ़त जाय ज्यों ज्यों उरज , त्यों त्यों हियो कठोर ।।७८।।
कोटि जतन कोऊ करै , परै न प्रकृतिहि बीच।
नल बल जल ऊँचो चढ़ै , अन्त नीच को नीच ।।७९।।
तन्त्री नाद कवित्त रस , सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तरे , जे बूड़े सब अंग ।।८०।।
कैसे छोटे नरन तें , सरत बड़नि के काम।
मढ़ो दमामो जात है , कहिं चूहे के चाम ।।८१।।
अति अगाध अति ऊथरा , नदी कूप सर बाय।
सो ताको सागर जहाँ , जाकी प्यास बुझाय ।।८२।।

जगत जनायो जिहि सकल , सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यों आँखिन सब देखिये , आँखि न देखी जाहिं ।।८३।।
मीत न नीति गलीत ह्वै , जो धरिये धन जोरि।
खाये खरचे जो बचै , तौ जोरियै करोरि ।।८४।।
दुसह दुराज प्रजान में , क्यों न करै दुख द्वंद।
अधिक अँधेरो जग करत , मिलि मावस रवि चंद ।।८५।।
घर घर डोलत दीन ह्वै , जन जन जाँचत जाय।
दिये लोभ चसमा चखनि , लघु पुनि बड़ो लखाय ।।८६।।
बसै बुराई जासु मन , ताही को सन्मान।
भलो भलो कहि छाँड़िये , खोटे ग्रह जप दान ।।८७।।
कहै यहै श्रुति स्मृति हूँ , सबै सयाने लोग।
तीन दबावत निकट ही , राजा पातक रोग ।।८८।।
इक भीजे चहले परे , बूड़े बहे हजार।
कितने अवगुन जग करत , नै वै चढ़ती बार ।।८९।।
बुरो बुराई जो तजै , तौ मन खरो सकात।
ज्यों निकलंक मयंक लखि , गनै लोग उतपात ।।९०।।
सीतलताऽरु सुगंध की , महिमा घटी न मूर।
पीनसवारे जो तज्यो , सोरा जानि कपूर ।।९१।।
बढ़त बढ़त संपति सलिल , मन सरोज बढ़ि जाइ।
घटत घटत पुनि ना घटै , बरु समूल कुम्हिलाइ ।।९२।।
संगति सुमति न पावई , परे कुमति के धंध।
राखो मेलि कपूर में , हींग न होय सुगंध ।।९३।।
सबै हँसत करतार दै , नागरता के नाँव।
गयो गरब गुन को सबै , बसे गमेले गाँव ।।९४।।
को कहि सकै बड़ेन सों , लखे बड़ीयो भूल।
दीन्हें दई गुलाब की , इन डारनि ये फूल ।।९५।।

चले जाहु हर्यां को करै , हाथिन को व्योपार।
नहिं जानत यहि पुर बसैं , धोबी औंड़ कुम्हार ।।९६।।
नर की अरु नल नीर की , गति एकै करि जोय।
जेतो नीचो ह्वै चलै , तेतो ऊँचो होय ।।९७।।
गिरि तें ऊँचे रसिक मन , बूड़े जहाँ हजार।
वहै सदा पसु नरन को , प्रेम-पयोधि पगार ।।९८।।
जिन दिन देखे वे कुसुम , गई सो बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब में , अपत कटीली डार ।।९९।।
इहि आसा अटक्यो रहै , अलि गुलाब के मूल।
हुइ हैं बहुरि बसन्त ऋतु , इम डारनि वे फूल ।।१००।।
पट पाँखें भख काँकरें , सदा परेई संग।
सुखी परेवा जगत में , एकै तुही विहंग ।।१०१।।
मरत प्यास पिंजरा परयो , सुआ समय के फेर।
आदर दै दै बोलियतु , बायस बलि की बेर ।।१०२।।
नहिं पावस ऋतुराज यह , तज तरुवर मति भूल।
अपत भये बिन पाइ है , क्यों नव दल फल फूल ।।१०३।।
वे न यहाँ नागर बड़े , जिन आदर तौ आब।
फूल्यो अनफूल्यो भयो , गँवई गाँव गुलाब ।।१०४।।
कर ले सूँघि सराहि कै , रहै सबै गहि मौन।
गन्धी गन्ध गुलाब को , गँवई गाहक कौन ।।१०५।।
करि फुलेल को आचमन , मीठो कहत सराहि।
चुप करि रे गन्धी चतुर , अतर दिखावत काहि ।।१०६।।
कनक कनक तें सौगुनी , मादकता अधिकाय।
वहि खाये बौराय जग , यहि पाये बौराय ।।१०७।।
बड़े न हूजे गुनन बिन , विरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक , गहनो गढ़ो न जाय ।।१०८।।

कन देव्यो सौंप्यों ससुर , बहू थुरहथी जानि।
रूप रहिचढ़े लखि लग्यो , माँगन सब जग आनि ।।१०६।।
गुरुजन दूजे ब्याह को , नित उठि रहत रिसाय।
पति की पति राखत बधू , आपुन बाँझ कहाय ।।११०।।
परतिय दोष पुरान सुनि , हँसि मुनकी सुखदानि।
कसकरि राखी मिसिर हू , मुँह आई मुसुकानि ।।१११।।
बहुधन ले अहसान के , पारो देत सराहि।
बैदबधू हँसि भेद सों , रही नाइ मुख चाहि ।।११२।।
या अनुरागी चित्त की , गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूड़ै श्याम रँग , त्यों त्यों उज्जल होय ।।११३।।
दीरघ साँस न लेइ दुख , सुख साई मति भूल।
दई दई क्यों करत है , दई दई सु कबूल ।।११४।।
थोरेई गुन रीझते , बिसराई वह बानि।
तुमहू कान्ह मनो भये , आज कालि के दानि ।।११५।।
अरे हंस या नगर में , जैयो आप बिचारि।
कागन सों जिन प्रीति कर , कोयल दई बिड़ारि ।।११६।।
जदपि पुराने वक तऊ , सरवर निकट कुचाल।
नये भये तो का भये , ये मनहरन मराल ।।११७।।
संगति दोष लगे सबन , कहत जु साँचे बैन।
कुटिल बङ्क भ्रूसङ्ग में , कुटिल बङ्क गति नैन ।।११८।।
सतसैया के दोहरे , ज्यों नावक के तीर।
देखत के छोटे लगैं , घाव करैं गम्भीर ।।११९।।
ब्रज भाषा बरनी कविन , बहु बिधि बुद्धि बिलास।
सब की भूषन सतसई , करी बिहारीदास ।।१२०।।
संवत ग्रह ससि जलधि छिति , छठ तिथि बासर चन्द।
चैत मास पख कृष्ण में , पूरन आनँद कन्द ।।१२१।।

जन्म लियो द्विजराज कुल , प्रगट बसे ब्रज आय।
मेरो हरो कलेस सब , केसव केसवराय ।।१२२।।
मोहू दीजे मोष , ज्यों अनेक अधमनि दियो।
जो बाँधे ही तोष , तौ बाँधो अपने गुनन ।।१२३।।
मैं समुझो निरधार , यह जग काचो काँच सो।
एकै रूप अपार , प्रतिबिंबित लखिये जहाँ ।।१२४।।
सीस मुकुट कटि काछनी , कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मो मन बसो , सदा बिहारीलाल ।।१२५।।

चिन्तामणि

चिन्तामणि महाकवि भूषण के बड़े भाई थे। इनका जन्मकाल स० १६६६ के लगभग अनुमान किया जाता है। ठाकुर शिवसिंह ने इनके बनाये पाँच ग्रन्थ लिखे हैं—छन्द विचार, काव्य विवेक, कवि कुल कल्पतरु, काव्य प्रकाश, और रामायण। ये कुछ दिनों तक नागपुर के सूर्यवंशी भोंसला मकरन्दशाह के यहाँ रहे। राजा-महाराजाओं के यहाँ इनका अच्छा मान था।

इनकी कविता के कुछ नमूने देखिये :—

चोखी चरचा ज्ञान की , आछी मन की जीति।
संगति सज्जन की भली , नीकी हरि की प्रीति ।।१।।

सरद तें जल की ज्यों दिन तें कमल की ज्यों, धन तें ज्यों थल की निपट सरसाई है। घन तें सावन की ज्यों आप तें रतन की ज्यों, गुन तें सुजन की ज्यों परम सुहाई है।। चिन्तामनि कहै आछे अच्छरन छन्द की ज्यों, निसागम चन्द की ज्यों दृग सुखदाई है। नग तें ज्यों कंचन बसन्त तें ज्यों बन की, यों जोवन तें तनकी निकाई अधिकाई है।।२।।

कोटि बिलास कटाच्छ कलोल बढ़ावै हुलास न प्रीतम हीतर।
यों मनि यामे अनूपम रूप जो मैनका मैन बधू कहि ईतर।।
सुन्दरि सारी सुफेद ये सोहत यों छबि ऊँचे उरोजन की तर।
जोबन मत्त गयन्द के कुम्भ लसै जनु गङ्ग तरङ्गनि भीतर।।३।।
आँखिन मूँदिबे के मिस आनि अचानक पीठि उरोज लगावै।
केहूँ कहूँ मुसुकाइ चित्तै अँगराइ अनूपम अङ्ग दिखावै।।
नाह छुई छल सों छतियाँ हँसि भौंह चढ़ाइ अनन्द बढ़ावै।
जोबन के मद मत्त तिया हित सों पति को नित चित्त चुरावै।।४।।

भूषण

कानपुर ज़िले में यमुना नदी के बाएँ किनारे पर तिकवाँपुर एक गाँव है। उस गाँव के पास ही 'अकबरपुर बीरबल' नाम का एक अच्छा-सा मौज़ा है। जहाँ अकबर शाह के सुप्रसिद्ध मंत्री बीरबल का जन्म हुआ था। उसी तिकवाँपुर गाँव में रत्नाकर त्रिपाठी नाम के एक कान्यकुब्ज कश्यप-गोत्री ब्राह्मण रहते थे। उनके चार पुत्र हुये—चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, और नीलकंठ (उपनाम जटाशंकर)। चारों भाई कवि थे। उनमें भूषण वीररस के बड़े प्रतिभाशाली कवि हुये। इनके रचे हुये चार ग्रन्थ सुने जाते हैं :—शिवराज भूषण, भूषण हजारा, भूषण उल्लास, दूषण उल्लास। परन्तु अब केवल शिवराज भूषण और कुछ स्फुट छंद ही मिलते हैं। हिन्दी-के सुप्रसिद्ध विद्वानों ने भूषणपर कई खोज-पूर्ण पुस्तकें प्रकाशित कराई हैं, जिनसे औरंगज़ेब और शिवाजी के ज़माने में हिन्दुत्व की रक्षा के लिये भूषण की आंतरिक भावना पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

भूषण बड़े प्रतिभाशाली और वीर कवि थे। ये हिन्दुओं के जातीय कवि थे। हिन्दू-जाति की उन्नति और ऐश्वर्य के ये उत्कट अभिलाषी थे। इनके समान अपनी कविता में जातीयता का ध्यान रखनेवाला हिन्दी के

पुराने कवियों में कोई नहीं हुआ और इनके समान वीर कवि तो अबतक कोई न हुआ। यह दन्तकथा प्रसिद्ध है कि भूषण पहले बहुत निकम्मे थे। इनके भाई चिन्तामणि कमाते थे और ये घर बैठे मौज उड़ाया करते थे। एक दिन भोजन करने के समय इन्होंने अपनी भावज से नमक माँगा। भावज ने ताना मारकर कहा—क्या नमक कमाकर लाये हो, जो उठा करके दूँ? यह बात इनको ऐसी लगी कि ये उसी समय भोजन छोड़कर घर से निकल गये। चलते समय इन्होंने भावज से कहा—अच्छा, अब नमक कमाकर लावेंगे, तभी भोजन करेंगे। कहा जाता है कि, इसके पश्चात् साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने में इन्होंने बड़ा परिश्रम किया। और जब अच्छी कविता करने लगे, तब ये चित्रकूटाधिपति हृदयराम सोंलकी के पुत्र रुद्रराम के पास गये। ये प्रतिभावान् थे ही, रुद्रराम ने इनकी कविता का चमत्कार देख इन्हें कवि-भूषण की उपाधि दी। इस नाम से ये इतने प्रसिद्ध हुये कि अब इनके मुख्य नाम का पता ही नहीं चलता। वहाँ से ये औरंगज़ेब के दरबार में गये, जहाँ इनके बड़े भाई चिंतामणि रहते थे। चिंतामणि ने बादशाह से इनका परिचय कराया। औरंगज़ेब ने इनकी कविता सुनने की इच्छा प्रकट की। इस पर इन्होंने कहा—आप हाथ धोकर बैठिये, तब मैं कविता सुनाऊँगा; क्योंकि शृंगार-रस की कविता सुनकर आपका हाथ ठौर-कुठौर पड़ा होगा, इससे वह अपवित्र हो गया है। मेरी कविता सुनकर आप का हाथ मोछों पर चला जायगा। हाथ न धोने से मोछ अपवित्र हो जायगी। औरंगज़ेब ने यह सुनकर क्रोध से कहा—यदि हाथ मोछ पर न गया तो तेरा सिर कटवा लूँगा। भूषण ने निर्भयता से कहा—हाँ। निदान औरंगज़ेब हाथ धोकर बैठा और भूषण ने कविता पढनी प्रारंभ की। भूषण की वीर-रसमयी ओजस्विनी कविता सुनकर औरंगज़ेब को सचमुच जोश आया और वह मोछ पर ताव देने लगा। बस, भूषण की प्रतिज्ञा पूरी हुई। औरंगज़ेब ने भूषण को बहुत पुरस्कार दिया। उस दिन से दरबार में इनकी प्रतिष्ठा बढ़ चली। सं० १७२३ में शिवाजी दिल्ली गये। उस समय भूषण दिल्ली ही में थे। औरंगज़ेब का हिन्दू-द्वेष देखकर उनका चित्त उससे बहुत विरक्त

था। परन्तु शिवाजी को हिन्दू-जाति और धर्म की रक्षा के लिये खड़ा देखकर उनको बड़ी आशा हुई। शिवाजी के दिल्ली से चले जाने पर एक दिन औरंगजेब ने कवियों से कहा—तुम लोग मेरी झूठी बड़ाई किया करते हो, सच्ची बात कहो। अन्य कवि तो चुप रहे, परन्तु भूषण से चुप न रहा गया। इन्होंने दो कवित्त में उसकी खासी निन्दा की। इससे औरंगजेब बहुत ही बिगड़ा और वह भूषण को मारने उठा; परन्तु दरबारियों के समझाने से रुक गया। भूषण उसी समय दिल्ली छोड़कर शिवाजी के दरबार में चले गये। वहाँ इनका बड़ा सम्मान हुआ। लाखों रुपये, घोड़े हाथी और गाँव इनको मिले। ये शिवाजी के साथ कई लड़ाइयों में भी उपस्थित थे। ऐसी कहावत है कि वहाँ से इन्होंने एक लाख रुपये का नमक खरीद कर अपनी भावज के पास भेजा था।

शिवाजी के यहाँ से भूषण सं० १७३१ में घर लौटे। राह में आते समय महाराज छत्रसाल बुंदेला के यहाँ भी गये थे। छत्रसाल ने चलते समय इनकी पालकी का डंडा अपने कंधे पर रखकर इनका सम्मान बढ़ाया था। शिवाजी और छत्रसाल जैसे स्वाभाविक वीर थे, वैसे ही भूषण भी सोने में सुगंध हो गये। कविता-द्वारा जितना सम्मान भूषण को मिला, उतना हिन्दी के किसी कवि को नहीं मिला।

भूषण का जन्म अनुमान से सं० १६७० में और मरण १७७२ में हुआ। भूषण अब इस संसार में नहीं हैं। सैकड़ों वर्ष पहले ही वे विधि-विधान से विवश हो चले गये; परन्तु उनके हृदय का चित्र कविता-रूप में अब भी हमारे सम्मुख है। भूषण अजर-अमर की भाँति हमारे साथ चल रहे हैं। वे एक पुष्प की तरह विकसित होकर अनंत काल के लिये सुगंध छोड़ गये। भगवान् फिर इस देश में शिवाजी ऐसे वीर और भूषण ऐसे सुकवि उत्पन्न करें।

हिन्दी में भूषण ही वीर-रस के सर्वोत्तम कवि हैं। इससे हमने इनकी कुछ अधिक कविताएँ उद्धृत की हैं। भूषण की कुछ चुनी हुई कविताएँ आगे दी जाती हैं:—

आए दरबार बिललाने छरीदार देखि जापता करनहार नेकहूँ न मनके। भूषन भनत भौंसिला के आय आगे ठाढ़े बाजे भए उमराय तुजुक करन के। साहि रह्यो जकि सिव साहि रह्यो तकि ओर चाहि रह्यो चकि बने द्योंत अनबन के। ग्रीषम के भानु सों खुमान को प्रताप देखि तारे सम तारे गए मूँदि तुरकन के ।।१।।

इन्द्र जिमि जम्भ पर बाड़व सुअम्भ पर रावन सदम्भ पर रघुकुल राज हैं। पौन बारिवाह पर सम्भु रतिनाह पर ज्यों सहस्रबाह पर राम द्विजराज है। दावा द्रुम दंड पर चीता मृगझुंड पर भूषन बितुंड पर जैसे मृगराज है। तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर त्यों मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज है ।।२।।

ऐसे बाजिराज देत महाराज सिवराज भूषन जे बाज की समाजैं निदरत हैं। पौन पाय हीन, दृग घूँघट में लीन, मीन जल में बिलीन क्यों बराबरी करत हैं। सब ते चलाक चित्त तेऊ कुलि आलम के रहै उर अन्तर मैं धीर न धरत है। जिन चढ़ि आगे को चलाइयतु तीर तीर एक भरि तऊ तीर पीछे ही परत है ।।३।।

अफ़ज़लखान को जिन्होंने मयदान मारा बीजापुर गोलकुंडा मारा जिन आज है। भूषन भनत फरासीस त्यों फिरंगी मारि हबसी तुरुक डारे उलटि जहाज है। देखत मैं रुसतमखाँ को जिन खाक किया सालकी सुरति आजु सुनी जो अवाज है। चौंकि चौंकि चकता कहत चहुँधा ते यारो लेत रहौ खबरि कहाँ लौं सिवराज है ।।४।।

पैज प्रतिपाल भूमिभार को हमाल चहुँ चक्क को अमाल भयो दण्डक जहान को। साहिन को साल भयो ज्वाल को जवाल भयो हर को कृपाल भयो हार के बिधान को। वीर रस ख्याल शिवराज भुवपाल तुव हाथ को विसाल भयो भूषन बखान को। तेरो करवाल भयो दच्छिन को ढाल भयो हिन्दु को दिवाल भयो काल तुरकान को ।।५।।

दुरजन दार भजि भजि बेसम्हार चढ़ी उत्तर पहार डरि सिवाजी नरिन्द तें। भूषन भनत बिन भूषन बसन, साधे भूखन पियासन हैं नाहन को निन्दते। बालक अयाने बाट बीच ही बिलाने कुम्हिलाने मुख कोमल अमल अरबिन्द ते। दृगजल कज्जल कलित बढ़यो कढ़यो मानो दूजा सोत तरनि-तनूजा को कलिन्द तें ।।६।।

छूटयो है हुलास आम खास एक संग छूटयो हरम सरम एक संग बिनु ढंग ही। नैनन ते नीर धीर छूटयो एक संग छूटयो मुख रुचि मुख रुचि त्योंही बिन रंग ही। भूषन बखानै सिवराज मरदाने तेरी धाक बिललाने न गहत बल अङ्गही। दक्खिन के सूबा पाय दिल्ली के अमीर तजै उत्तर की आस जीव आस एक सङ्गही ।।७।।

बचैगा न समुहाने बहलोल खाँ अयाने भूषन बखाने दिल आनि मेरा बरजा। तुझ ते सवाई तेरा भाई सलहेरि पास क़ैद किया साथ का न कोई बीर गरजा। साहिन के साहि उसी औरँग के लीन्हे गढ़ जिसका तू चाकर औ जिसकी तू परजा। साहि का ललन दिली दल का दलन अफ़ज़ल का मलन सिवराज आया सरजा ।।८।।

पूरब के उत्तर के प्रबल पछाह हूँ के सब बादशाहन के गढ़ कोट हरते। भूषन कहैं यों अवरंग सो वजीर, जीति लीबे को पुरतगाल सागर उतरते ।। सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज हजरत हम मरिबे को नाहिं डरते। चाकर है उजुर कियो न जाय नेक पै कछू दिन उबरते तो घने काज करते ।।९।।

बैर कियो सिव चाहत हो तबलों अरि बाह्यो कटार कठैठो।
योंही मलिच्छहिं छाँड़ै नहीं सरजा मन तापर रोस में पैठो ।।
भूषन क्यों अफजल्ल बचै अठपाव कै सिंह को पाँव उमेठो।
बीछू के धाय धुक्योई धरक्क ह्वै तौ लगि धाय धरा धर बैठो ।।१०।।

बिना चतुरङ्ग सङ्ग वानरन लै कै बाँधि वारिधि को लङ्क रघुनन्दन जराई है। पारथ अकेले द्रोन भीषम सों लाख भट जीति लीन्हीं नगरी विराट में बड़ाई है। भूषन भनत ह्वै गुसलखाने में खुमान अवरंग साहिबी हथ्याय हरि लाई है। तौ कहा अचंभो महाराज सिवराज सदा वीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है।।११।।

लोमस की ऐसी आयु होय कौन हू उपाय तापर कवच जो करनवारो धरिये। ताहू पर हूजिये सहसबाहु, तापर सहसगुनो साहस जो भीमहु ते करिये। भूषन कहैं यों अवरंगजू सों उमराव नाहक कहौ तौ जाय दच्छिन में मरिये। चलै न कछू इलाज भेजियत बे ही काज ऐसो होय साज तौ सिवासों जाय लरिये।।१२।।

ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यन्त पुनीत तिहूं पुर मानी।
राम युधिष्ठिर के बरने बलमीकहु व्यास के अङ्ग सोहानी।
भूषन यों कलि के कविराजन राजन के गुन गाय नसानी।
पुन्य चरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी।।१३।।

दान समै द्विज देखि मेरुहू कुबेरहू की सम्पति लुटाइबे को हियो ललकत है। साहि के सपूत सिव साहि के बदन पर सिव की कथान में सनेह झलकत है। भूषन जहान हिन्दुवान के उबारिबे को तुरकान मारिबे को बीर बलकत है। साहिन सों लरिबे की चरचा चलत आनि सरजा के दृगन उछाह छलकत है।।१४।।

काहू के कहे सुने तें जाही ओर चाहैं ताही ओर इकटक घरी चारिक चहत हैं। कहे ते कहत बात कहे ते पियत खात भूषन भनत ऊँची साँसन जहत हैं। पौढ़े हैं तो पौढ़े, बैठे बैठे, खरे खरे, हमको हैं, कहा करत, यों ज्ञान न गहत हैं। साहि के सपूत सिव साहि तव बैर इमि साहि सब रात दिन सोचत रहत हैं।।१५।।

आजु यहि समैं महाराज सिवराज तुही जगदेव जनक जजाति अम्बरीक सों। भूपन भनत तेरे दानजल-जलधि मैं गुनिन को दारिद गयो बहि खरीक सों। चंद कर कंजलक, चाँदनी पराग, उड़ बृन्द मकरन्द बुन्द पुंज के सरीक सों। कन्द सम कयलास, नाक गंग नाल, तेरे जस पुंडरीक को अकास चंचरीक सो।।१६।।

चित अनचैन आँसू उमगत नैन देखि बीबी कहै बैन मियाँ कहियत काहिनै। भूपन भनत बूझे आये दरबार तें कँपत बार बार क्यों सम्हार तन नाहिनै। सीनो धकधकत पसीनो आयो देह सब हीनो भयो रूप न चितौत वाएँ दाहिनै। सिवाजी की सङ्क मानि गयेहौ सुखाय तुम्हैं जानियत दक्खिन को सूबा करो साहिनै।।१७।।

मार करि पातसाही खाकसाही कीन्ही जिन जेर कीन्हीं जोर सों लै हद्द सब मारे की। खिसि गई सेखी फिसि गई सूरताई सब हिसि गई हिम्मति हजारों लोग सारे की। बाजत दमामे लाखों धौंसा आगे घहरात गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़े भारे की। दूलहो सिवाजी भयो दच्छिनी दमामे वारे दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की।।१८।।

चकित चकत्ता चौकि चौकि उठै बार बार दिल्ली दहसति चितै चाह करषति है। बिलखि बदन बिलखात बिजैपुर पति फिरत फिरंगिन की नारी फरकति है। थर थर काँपत कुतुबशाह गोलकुंडा हहरि हबस भूप भीर भरकति है। राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि केते बादसाहन की छाती दरकति है।।१९।।

मालवा उज्जैन भनि भूपन भेलास धेन सहर सिरोज लौ परावने परत हैं। गोंड़वानो तिलँगानो फिरँगानो करनाट रुहिलानो रुहिलन हिये हहरत हैं। साहि के सपूत सिवराज तेरी धाक सुनि गढ़पति वीर तेऊ धीर न धरत हैं। बीजापूर गोलकुंडा आगरा दिली के कोट बाजे बाजे रोज दरवाजे उघरत हैं।।२०।।

राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी मैं ।। राखी रजपूति राजधानी राखी राजन की धरा मैं धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं। भूषन सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की देस देस कीरति बखानी तव मुनी मैं। साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी दिल्ली दल दाबि के दिवाल राखी दुनी मैं ।।२१।।

सारस से सुवा करवानक से साहजादे मोर से मुगल मीर धीर ही धचैं नही। बगुला से बंगस बलूचियो बतक ऐसे काबुली कुलंग याते रन में रचै नही। भूषन जू खेलत सितारे में सिकार सिवा साहि को सुवन जाते दुवन सँचै नहीं। बाजी सब बाज से चपेटै चंगु चहूं ओर तीतर तुरुक दिल्ली भीतर बचै नही ।।२२।।

'सिवा की बड़ाई औ हमारी लघुताई क्यों कहत बार बार' कहि पातसाह गरजा। सुनिये 'खुमान हरि तुरुक गुमान महिदेवन जेंवायो' कवि भूषन यों अरजा। तुम वाको पाय के जरूर रन छोरो वह रावरे वजीर छोरि देत करि परजा। मालुम तिहारो होत याहि में निबेरो रन कायर सो कायर औ सरजा सो सरजा ।।२३।।

फिरगाने फिकिरि औ हद्द सुनि हबसाने भूषन भनत कोऊ सोवत न धरी है। बीजापुर विपति विडारि सुनि भाज्यो सब दिल्ली दरगाह बीच परी खरभरी है। राजन के राज सब साहिन के सिरताज आज सिवराज पातसाही चित धरी है। बलख बुखारे कसमीर लौं परी पुकार धाम धाम धम धाम रूम साम परी है।।२४।।

दारा की न दौर यह रार नहीं खजुवे की बाँधिबो नही है कैधों मीर सहवाल को। मठ विस्वनाथ को न बास ग्राम गोकुल को देबी को न देहरा न मन्दिर गोपाल को ।। गाढ़े गढ लीन्हें अरु बैरी कतलान कीन्हें ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को। बूड़ति है दिल्ली सो सम्हारै क्यों न दिल्ली पति धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को ।।२५।।

कत्ता की कराकनि चकत्ता को कटक काटि कीन्हीं सिवराज वीर अकह कहानियाँ। भूषन भनत तिहुँ लोक में तिहारी धाक दिल्ली औ बिलाइत सकल बिललानियाँ। आगरे अगारन ह्वै फाँदती कगारन ह्वै बाँधती न बारन मुखन कुहिलानियाँ। कीबी कहै कहा औ गरीबी गहे भागी जाहि बीबी गहे सूथनी सु नीबी गहे रानियां ।।२६।।

छूटत कमान और तीर गोली बानन के मुसकिल होत मुरचान हू की ओट मैं। ताही समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो दावा बाँधि पर हला बीर भट जोट मैं। भूषन भनत तेरी किम्मत कहां लौं कहौं हिम्मत यहाँ लगि है जाकी भट झोट मैं। ताव दै दै मूछन कँगूरन पै पाँव दै दै अरि मुख घाव दै दै कूद परें कोट मैं ।।२७।।

जीत्यो सिवराज सलहेरि को समर सुनि सुनि असुरन के सु सीने धरकत हैं। देव लोक नाग लोक नर लोक गावें जस अजहूँ लौं परे खग्ग दाँत खरकत हैं। कटक कटक काटि कीट से उड़ाय केते भूषन भनत मुख मोरे सरकत हैं। रनभूमि लेटे अध कटे कर लेटे परे रुधिर लपेटे पठनेटे फरकत है ।।२८।।

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग ताहि खरो कियो जाय जारन के नियरे। जानि गैरमिसिल गुसीले गुसा धारि उर कीन्हों ना सलाम न बचन बोले सियरे। भूषन भनत महाबीर बलकन लाग्यो सारी पात-साही के उड़ाय गये जियरे। तमकते लाल मुख सिवा को निरखि भये स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे ।।२९।।

देवल गिरावते फिरावते निसान अलि ऐसे डूबे राव राने सबे गए लब की। गौरा गनपति आप औरन को देत ताप आपके मकान सब मार गये दबकी।। पीरा पयगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत सिद्ध की सिधाई गई रही बात रबकी। कासिहु ते कला जाती मथुरा मसीद होती सिवा जी न हो तो तौ सुनति होति सब की ।।३०।।

ऊँचे घोर मन्दिर के अन्दर रहनवारी ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं। कन्द मूल भोग करैं कन्द मूल भोग करैं तीन बेर खाती सो तो तीन बेर खाती हैं। भूषन सिथिल अंग भूखन सिथिल अंग बिजन डुलाती ते वे बिजन डुलाती हैं। भूषन भनत सिवराज वीर तेरे त्रास नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती हैं।।३१।।

सोधे को अधार किसमिस जिनको अहार चारि को सो अंक लंक चन्द सरमाती हैं। ऐसी अरि नारी सिवराज बीर तेरे त्रास पायन में छाले परे कन्द मूल खाती हैं। ग्रीषम तपति एती तपती न सुनी कान कंज कैसी कली बिनु पानी मुरझाती हैं। तोरि तोरि आछे से पिछौरा सों निचोरि मुख कहैं 'अब कहाँ पानी मुकतौ मैं पाती है' ।।३२।।

डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी सी रहित छाती बाढ़ी मरजाद जस हद्द हिन्दुवाने की। कढ़ि गई रैयत के मन की कसक सब मिट गई ठसक तमाम तुरकाने की। भूषन भनत दिल्लीपति दिल धकधका सुनि सुनि धाक सिवराज मरदाने की। मोटी भई चंडी बिनु चोटी के चबाय मुंड खोटी भई सम्पति चकत्ता के घराने की।।३३।।

बेद राखे बिदित पुरान राखे सारयुत राम नाम राख्यो अति रसना सुघर में। हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की काँधे में जनेऊ राख्यौ माला राखी गर में। मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर में। राजन की हद्द राखी तेग बल सिवराज, देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में।।३४।।

मतिराम

मतिराम भूषण के सगे भाई थे। इनका जन्म सं० १६७४ के लगभग और मरण सं० १७७३ के लगभग हुआ। ये बूँदी के महाराज राव भाऊसिंह के यहाँ रहा करते थे। ये शृंगार-रस के अच्छे कवि थे। इनके रचे ललित ललाम, रसराज, छन्दसार पिंगल और साहित्य-सार आदि ग्रन्थ हैं।

इनके कुछ छन्द नीचे लिखे जाते हैं :—

जगत विदित बूँदी नगर , सुख सम्पति को धाम।
कलिजुगहू मैं सत्यजुग , तहाँ करत विश्राम ।।१।।
पढ़त सुनत मन दै निगम , आगम समृति पुरान।
गीत कवित्त कलान के , जहँ सब लोग सुजान ।।२।।
सरद वारिधर से लसत , अमल धौरहर धौल।
चित्रति चित्रित सिखर जहँ , इन्द्रधनुप से नौल ।।३।।
महलनि ऊपर जहँ बने , कंचन कलस अनूप।
निज प्रभानि सौं करत हैं , गगन पीत अनुरूप ।।४।।
जहँ बिमान-बनितान के , श्रमजल हरत अनूप।
सौंध पताकनि के वसन , होइ बिजन अनुरूप ।।५।।
बीना बेनु निनाद मृग , मोहि अचल करि चन्द।
सौध सिखर ऊपर जहाँ , दम्पति करत अनन्द ।।६।।
जहाँ छहौं ऋतु मैं मधुर , सुनि मृदङ्ग मृदु सोर।
सङ्ग ललित ललनानि के , नृत्य करत गृह मोर ।।७।।
मरकत लाल प्रवाल मनि , मुकुत हीर अवदात।
ललित राजपथ मैं जहाँ , जरकस वसन बिकात ।।८।।
मद जल वरषत भूमि के , जलधर सम मातङ्ग।
बिना परनि के खग जहाँ , सुन्दर तरल तुरङ्ग ।।९।।

सदा प्रफुल्लित फलित जहँ , द्रुम बेलिन के बाग।
अलि कोकिल कल धुनि सुनत, लहत स्रवन अनुराग ।।१०।।
कमल कुमुद कुवलयन के , परिमल मधुर पराग।
सुरभि सलिल पूरे जहाँ , वापी कूप तड़ाग ।।११।।
सुक चकोर चातक चुहिल , कोक मत्त कलहंस।
जहँ तरवर सरवरन के , लसत ललित अवतंस ।।१२।।
अच्छैवट बालक उदर , ज्यौं संसार समाय।
सकल जगत पानिप रह्यो , बूँदी मैं ठहराय ।।१३।।
तामैं प्रतिबिम्बित मनौं , सम्पति जुत सुरलोक।
घर घर नर नारी लसैं , दिव्य रूप के ओक ।।१४।।
चन्द्रमुखिन के भौंह जुग , कुटिल कठोर उरोज।
बाननि सौं मन कौं जहाँ , मारत एक मनोज ।।१५।।
जहाँ चित्त चोरी करै , मधुर बदन मुसकानि।
रूप ठगत है दृगन कौं , और न दूजो जानि ।।१६।।
ता नगरी को प्रभु बड़ो , हाड़ा सुरजनराव।
रच्यो एक सब गुननि को , बर विरंचि समुदाव ।।१७।।

बाजत नगारे जहाँ गाजत गयन्द, तहाँ सिंह सम कीनो बीर संगर बिहार है। कहै मतिराम कवि लोगनि कौं रोझि करि, दीने ते दुरद जे चुवत मदधार हैं। शत्रुसाल नन्द राव भावसिंह तेग त्याग, तोसे और औनि-तल आजु न उदार हैं। हाथिन बिदारिबे कों हाथ हैं हथ्यार तेरे, दारिद विदारिबे को हाथियै हथ्यार है ।।१८।।

चरन धरैं न भूमि बिहरैं तहाई जहाँ, फूले फूले फूलन बिछायो पर-जंक है। भार के डरनि सुकुमारि चारु अंगनि मैं, करत न अंगराग कुंकुम को पंक है। कहै मतिराम देखि बातायन बीच आयो, आतप मलीन होत बदन मयंक है। कैसे वह बाल लाल बाहर बिजन आवै, बिजन बयार लागे लचकत लंक है ।।१९।।

जूथपति बैठचौ पानी पोषत प्रबल मद कलभ करेनु करि लीनै संग सुखतें। ग्रह गह्यौ गाढ़े बैर पीछले के बाढ़े भयो बलहीन विकल करन दीह दुखतें। कहै मतिराम सुमिरत ही समीप लखे ऐसी करतूति भई साहिब सुरुख ते। दोऊ बातें छूटी गजराज की बराबर ही पाँव ग्राह मुख ते पुकार निज मुखते ।।२०।।

सोने कैसी बेली अति सुन्दर नबेली बाल, ठाढ़ी ही अकेली अल-बेली द्वार महियाँ। मतिराम अँखियाँ सुधा की बरषा सी भई, गई जब दीठि वाके मुखचन्द्र पहियाँ। नेक नीरे जाइ करि बातनि लगाइ करि, कछू मन पाइ हरि वाकी गही बहियाँ। सैननि चरचि लई गौननि थकित भई, नैननि मे चाह करै बैननि मे नहियाँ ।।२१।।

गुच्छनि के अवतंस लसै सिखि पुच्छनि अच्छ किरीट बनायो।
पल्लव लाल समेत छरी कर-पल्लव में मतिराम सुहायो।
गुजनि के उर मंजुल हार निकुंजनि ते कढ़ि बाहिर आयो।
आज को रूप लखे ब्रजराज को आजही आँखिनको फल पायो ।।२२।।
कुन्दन को रंग फीको लगै झलकै असि अंगनि चारु गोराई।
आँखिन में अलसानि चितौनि मे मंजु विलासन की सरसाई।
कोटिन मोल बिकात नहीं मतिराम लहै मुसुकान मिठाई।
ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निखरै सुनिकाई ।।२३।।
खेलन चोर मिहींचनी आजु गई हुती पाछिले द्योस की नाई।
आली कहा कहौं एक भई मतिराम नई यह बात तहाँई।
एकहि भौन दुरे इक संगही अंगसों अंग छुवायो कन्हाई।
कम्प छुट्यो तन स्वेद बढ्यो तनु रोम उठ्यो अँखियाँ भरि आई।।२४।।
केलि की राति अघाने नही दिन ही में लला पुनि घात लगाई।
प्यास लगी कोउ पानी दे जाइयो भीतर बैठि के बात सुनाई।
जेठि पठाई गई दुलही हँसि हेरे हरै मतिराम बुलाई।
कान्ह के बोल पै कान न दीन्हीं सु गेह की देहरि पै धरि आई ।।२५।।

आपने हाथ सों देत महावर आपहि बार सिँगारत नीके।
आपनहीं पहिरावत आनि कं हार सँवारि कै मोलसिरी के।
हौं सखि लाजन जात गड़ी मतिराम स्वभाव कहा कहौं पीके।
लोग मिलें घर घेरे कह अबहीं ते ये चेरे भये दुलहीके ॥२६॥
प्यार पगी पगरी पियकी बसि भीतर आपने सीस सँवारी।
एते में आँगन ते उठिकै तहँ आइ गये मतिराम बिहारी।
देखि उतारनि लागि तिया पिय सौंहनि सों बहुरो न उतारी।
नैन नचाइ लजाइ रही मुसुकाइ लला उर लाइ पियारी ॥२७॥
पियत रहै अधरानि को, रस अति मधुर अमोल।
तातें मीठो कहत है, बाल बदन तें बोल ॥२८॥
नैन जोरि मुख मोरि हँसि, नैसुक नेह जनाय।
आग लेन आई हिये, मेरे गई लगाय ॥२९॥
प्रीतम को मन भावती, मिलत प्रेम उत्कण्ठ।
बाँहि न छूटै कंठ ते, नाहिँ न छूटे कण्ठ ॥३०॥

कुलपति मिश्र

कुलपति मिश्र आगरे के रहनेवाले चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। चतुर्वेदी ब्राह्मणों में मिश्र शुक्ल आदि सभी आस्पद होते हैं। इनके पिता का नाम परशुराम मिश्र था। इनका जन्म अनुमान से संवत् १६७७ विक्रम में हुआ। इनका रचा हुआ एक ग्रन्थ 'रस-रहस्य' मिलता है, वह सं० १७२७ में समाप्त हुआ था। इनके मरण-काल का कुछ पता नहीं चलता।

कुलपति मिश्र संस्कृत के बड़े विद्वान् थे। मम्मट के आधार पर रस-रहस्य में इन्होंने काव्य के कई अंगों की विद्वत्ता-पूर्ण आलोचना की है। काव्य के दोष, गुण, अलंकार, रस आदि का वर्णन रस-रहस्य में अच्छा है। यह ग्रंथ

इंडियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है, परन्तु बहुत अशुद्ध छपा है। इसके सिवाय द्रोण-पर्व, गुण-रस-रहस्य, संग्रह-सार, युक्ति-तरंगिणी, और नखशिख नामक ग्रंथ भी इनके रचे हुए बतलाये जाते हैं; परन्तु अभी तक कहीं से वे प्रकाशित नहीं हुए।

ये जयपुर के महाराजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह के यहाँ रहते थे। रस-रहस्य में अलंकारों के उदाहरण में रामसिंह की प्रशंसा ही के छंद अधिक हैं। कुलपति ने अपनी कविता में प्राकृत मिश्रित और उर्दू मिश्रित हिन्दी-भाषा का प्रयोग किया है।

इनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

१

उर बेधत पानिप हरत, मुक्ता जनि बिलखाय।
नाक वास लहिहै गुनी, दे अधरन सिर पाय॥

२

दान बिन धनी सनमान बिन गुनी ऐसे बिष बिन फनी अनी सूर न सहत हैं। मंत्र बिन भूप ऐसे जल बिन कूप जैसे लाज बिन कामिनि के गुननि कहत हैं। वेद बिन यज्ञ जप जोग मन बस बिन ज्ञान बिन योगी मन ऐसे निबहत हैं। चंद बिन निसा प्राणप्यारी अनुराग बिन सील बिन लोचन ज्यों सोभा को लहत हैं॥

३

दिसि पूरि प्रभा करिकै दसहू गुन कोकन के अति मोद लहै।
रँगि राखी रसा रँग कुंकुम के अलि गुंजत ते जस पुंज कहै।
निसि एक ह्वै पंकज की पतनीन के वाके हिये अनुराग रहै।
मनो याही ते सूरज प्रात समै नित आवत है अरुनाई लहै॥

४

नीति बिना न बिराजत राज न राजत नीति जु धर्म बिना है।
फीको लगै बिन साहस रूप रु लाज विना कुल की अबला है॥

सूर के हाथ बिना हथियार गयंद बिना दरबार न भा है।
मान बिना कविता की न ओप है दान बिना जस पावै कहा है।।

जसवन्तसिंह

जसवन्तसिंह जोधपुर के महाराज, महाराज गजसिंह के द्वितीय पुत्र और अमरसिंह के छोटे भाई थे। इनका जन्म सं० १६८२ में हुआ। ये सं० १६९५ में अपने पिता के स्वर्गवासी होने पर सिंहासनासीन हुए। औरंगज़ेब के इतिहास से जसवन्तसिंह के जीवन का बहुत सम्बन्ध है, जो इतिहास पढ़ने वालों से छिपा नहीं है। इनका देहान्त सं० १७३८ में, काबुल में हुआ। कहते हैं, औरंगज़ेब ने इन्हें विष दिलाकर मरवा डाला था।

जसवन्तसिंह भाषा के बड़े मर्मज्ञ कवि थे। इन्होंने इन ग्रन्थों की रचना की है—भाषा-भूषण, अपरोक्ष सिद्धान्त, अनुभव-प्रकाश, आनन्द-विलास, सिद्धान्त-बोध, सिद्धान्त-सार, प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक। भाषा-भूषण के सिवाय इनके शेष ग्रन्थ वेदान्त सम्बन्धी हैं। भाषा-भूषण २६१ दोहों का अलंकार का ग्रन्थ है।

जसवन्तसिंह की कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

मुख ससि वा ससि सों अधिक, उदित जोति दिन राति।
सागर तें उपजी न यह, कमला अपर सोहाति।।१।।
नैन कमल ये ऐन हैं, और कमल केहि काम।
गमन गरत नीकी लगै, कनक-लता यह बाम।।२।।
धरक दुरै आरोप तें, सुद्धापन्हुति होय।
उर पर नाहिं उरोज ये, कनक-लता फल दोय।।३।।
परजस्ता गुन और को, और विषे आरोप।
होय सुधाधर नाहिं ये, बदन सुधाधर ओप।।४।।

बनवारी

बनवारी सं० १६९० के लगभग हुए। ये शाहजहाँ के समय में थे। शाहजहाँ के दरबार में सलाबत खाँ ने अमरसिंह को 'गँवार' कह दिया था; इसी पर क्रुद्ध होकर अमरसिंह ने उसे दरबार में ही मार डाला। अमरसिंह जोधपुर के महाराज गजसिंह के बड़े पुत्र और औरङ्गज़ेब के सुप्रसिद्ध सहायक जसवन्तसिंह के बड़े भाई थे। उद्धत स्वभाव होने के कारण सं० १६९१ में अमरसिंह को गजसिंह ने राज पाने के अधिकार से च्युत करके राज्य से निकाल दिया था। इसीसे गजसिंह के बाद जसवन्तसिंह को जोधपुर की गद्दी मिली। अमरसिंह शाहजहाँ के पास चले आये। शाहजहाँ ने उन्हें अपने दरबार में अच्छा पद दिया था। एक बार अमरसिंह ने शाहजहाँ से कुछ दिनों की छुट्टी ली; पर रानी के प्रेम ने उन्हें ऐसा विवश किया कि वे ठीक समय पर छुट्टी समाप्त करके दरबार में हाज़िर न हो सके। शाहजहाँ का एक मुख्य दरबारी अमरसिंह से कुछ द्वेष रखता था। उसने अमरसिंह के विरुद्ध बहुत-सी बे-सिर-पैर की शिकायतें सुनाकर बादशाह के कान खूब भरे। जब अमरसिंह दरबार में हाज़िर हुए, तब उसकी सलाह से ग़ैरहाज़िरी के लिए उन पर एक बड़ा जुरमाना किया गया। अमरसिंह इस अपमान को न सह सके और उन्होंने भरे दरबार में क्षत्रियोचित निर्भयता के साथ बादशाह की आज्ञा का प्रतिवाद किया। बादशाह तो चुपचाप सुनता रहा, पर सलाबतखाँ ने जोश में आकर अमरसिंह को 'गँवार' कह दिया। अमरसिंह ने तलवार निकालकर भरे दरबार में सलाबत खाँ का सिर काट लिया। शाहजहाँ सिंहासन छोड़ भागा। दरबारी भी रफ़ू-चक्कर हुए। जिन्होंने कुछ रोक थाम की, अमरसिंह ने उन्हें तलवार के घाट उतारा। वहाँ से निकलकर अमरसिंह अपने महल में आये और कुछ दिनों तक फिर दरबार में न गये।

शाहजहाँ तो क्रुद्ध था ही, दरबारियों ने उसके कान और भरे। सब ने मिलकर अमरसिंह के एक निकट सम्बन्धी को इसलिये तैयार किया कि

वह किसी तरह अमरसिंह को दरबार में लावे। दरबार में उन पर यथा-विधि अपराध लगाकर, उन्हें दंड दिया जायगा। उसने अमरसिंह से मिल कर, बहुत ऊँचा-नीचा समझाकर, उन्हें दरबार में आकर शाहजहाँ से मिलने के लिये राज़ी किया। उसने झूठ-मूठ यह भी कहा कि शाहजहाँने तुम्हारा अपराध क्षमा कर दिया है।

अमरसिंह उसकी बातों में आ गये। वे उसके साथ दरबार की ओर चले। शाहजहाँ के सामने पहुँचने के लिये एक ऐसा द्वार था, जो इतना नीचा था कि बिना सिर झुकाये कोई उसके अंदर प्रवेश नहीं कर सकता था। शाहजहाँ को यह भय था कि शायद अमरसिंह उसे सलाम न करेंगे। इसलिये यह युक्ति की गई थी कि जब अमरसिंह द्वार में प्रवेश करने के लिये सिर झुकावेंगे, तब उसे सलाम समझकर शाहजहाँ की ओर से उसकी स्वीकृति ज़ाहिर कर दी जायगी।

अमरसिंह ताड़ गये। उन्होंने पहले द्वार के अंदर सिर न डालकर पैर डाला। इतने में पीछे से उनके सम्बन्धी (शायद अर्जुन सिंह) ने तलवार मारकर उनका सिर धड़ से जुदा कर दिया। वह अमरसिंह का सिर लेकर खुशी खुशी शाहजहाँ के सामने हाज़िर हुआ और कोई बड़ा पुरस्कार पाने की आशा से शाहजहाँ और उसके दरबारियों की ओर सतृष्ण नेत्रों से देखने लगा। शाहजहाँ को उस पर बड़ा क्रोध आया; क्योंकि यद्यपि वह अमरसिंह से रुष्ट हो गया था, पर उनकी बीरता पर वह हृदय में मुग्ध भी था। उसने अमरसिंह की हत्या करनेवाले को घोर तिरस्कार और यन्त्रणा-युक्त मृत्यु-दंड दिया।

अमरसिंह की विधवा रानी ने सती होने की इच्छा प्रकट की। लाश माँगने पर शाहजहाँ ने कहला भेजा कि अमरसिंह के पुत्र में कुछ शक्ति हो तो वह आकर लाश ले जाय।

अमरसिंह के एक ही पुत्र था। उसका नाम रामसिंह था। रामसिंह की अवस्था उस समय १५ वर्ष से अधिक नहीं थी। शाहजहाँ का व्यंग सुन कर रानी चुप हो रही; पर रामसिंह ने माता के चरणों पर सिर रखकर

कहा—'मा, अब तो मुझे यह प्रमाणित करना ही होगा कि मैं वीर पिता का वीर पुत्र हूँ।' यह कहकर रामसिंह कुछ विश्वस्त और वीर राजपूतों को साथ लेकर राजमहल की ओर चला, जहाँ शाहजहाँ ने लाश को कड़े पहरे में रखवा दिया था। वीर बालक रामसिंह ने पहरे वालों को एक कड़ी लड़ाई में परास्त करके लाश को घोड़े पर रक्खा और माँ के सामने लाकर रख दिया। शाहजहाँ अपने महल की खिड़की से यह सब हाल देख रहा था। रामसिंह की वीरता पर वह हृदय से मोहित हो गया। उसने उसी वक्त रानी के पास सवार भेजकर कहलाया कि बादशाह खुद अमरसिंह की रथी के साथ श्मशान तक आ रहे हैं। शाहजहाँ अपने सब दरबारियों को साथ लेकर धूमधाम से शरीक हुआ। उसने रामसिंह को गोद में लेकर कहा—'तुम्हारा तेज देखने के लिये ही मैंने लाश को रोकवा रक्खा था। तुम वीर पिता के वीर पुत्र हो, तुम को दरबार में अमरसिंह का स्थान दिया जायगा।' शाहजहाँ अमरसिंह को याद करके कुछ समय तक आँसू गिराता रहा। रानी उसके सामने ही अमरसिंह की लाश के साथ सती हो गई।

अमरसिंह के सम्बन्ध की यह कथा लोक में ऐसी ही प्रसिद्ध है। इस घटना को लेकर दो-एक काव्य भी रचे गये हैं। बनवारी ने अपने छन्दों में सलाबत खाँ के मारे जाने भर का ज़िक्र किया है।

बनवारी ने शृङ्गार-रस की कविता भी की है, और लोग उसे भी पसंद करते हैं। इनका लिखा कोई ग्रन्थ हमारे देखने में नहीं आया। यहाँ इनके कुछ छन्द दिये जाते हैं—

१

धन्य अमर छिति छत्रपति, अमर तिहारो नाम।
शाहजहाँ की गोद में, हत्यो सलाबत खान॥

२

उत गँवार मुख ते कढ़ी, इत निकसी जमधार।
'वार' कहन पायो नहीं, कीन्हो जमधर पार॥

३

आनि कै सलावत खाँ जोरि कै जनाई बात तोरि धर पंजर करेजे जाय करकी। दिल्लीपति साह को चलन चलिबे को भयो गाज्यो गजसिंह को सुनी है बात बरकी।। कहै बनवारी बादसाहि के तखत पास फरकि फरकि लोथ लोथिन सों अरकी। करकी बड़ाई कै बड़ाई बाहिबे की करौं बाढ़ि की बड़ाई कै बड़ाई जमधर की।।

४

नेह बरसाने तेरे नेह बरसाने देखि यह बरसाने वर मुरली बजावेंगे। साजु लाल सारी लाल करै लालसारी देखिबे की लालसारी लाल देखे सुख पावेंगे। तू ही उर बसी उर बसी नहिं और तिय कोटि उर बसी तजि तोसों चित लावेंगे। सेज बनवारी बनवारी तन आभरन गोरे तनवारी बनवारी आज आवेंगे।।

गोपालचन्द्र मिश्र

गोपालचन्द्र मिश्र का जन्म छत्तीसगढ़ में सं० १६९० के लगभग माना जाता है। इनके पिता का नाम गंगाराम और पुत्र का माखनचंद्र था। माखनचंद्र भी अच्छे कवि थे। रामप्रताप-काव्य का आधा गोपालचन्द्र ने लिखा था, और शेष उनकी आज्ञा से माखनचन्द्र ने लिखकर ग्रन्थ को पूर्ण किया।

छत्तीसगढ़ की प्राचीन राजधानी रतनपुर के हैहयवंशी राजा राजसिंह के दरबार में गोपालचन्द्र का बड़ा मान था। कहा जाता है कि इनको राजा राजसिंह ने अपना दीवान बना लिया था। राजा की इच्छानुसार इन्होंने सं० १७४६ में 'खूब तमाशा' नामक काव्य की रचना की।

इनके रचे हुए ग्रन्थों के नाम ये हैं--

खूब तमाशा (१७४६), जैमिनी अश्वमेध (१७५२), सुदामाचरित्र (१७५५), भक्ति चिन्तामणि (१७५९), रामप्रताप, छन्दविलास (पिंगल)।

यहाँ इनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते हैं।

१

सोई नैन नैन जो बिलोके हरि मूरति को, सोई बैन बैन जे सुजस हरि गाइये। सोई कान कान जामें सुनिये गुनानुवाद, सोई नेह नेह हरि जू सों नेह लाइये। सोई देह देह जामें पुलकित रोम होत, सोई पाँव पाँव जामें तीरथनि जाइये। सोई नेम नेम जे चरन हरि प्रीति बाढ़े, सोई भाव भाव जो गोपाल मन भाइये।।

२

दान सुधा जल तें जिन सींच सतोगुन बीच बिचार जमायो।
बाढ़ि गयो नभमंडल लौं महिमंडल घेर दसौं दिसि छायो।।
फूल घने परमारथ फूलनि पुण्य बड़े फल तें सरसायो।
कीरति बृक्ष बिसाल गुपाल सु कोविद बृन्द बिहंग बसायो।।

चारों दिशाओं के सुख दुःख

दोहा

रूप विशेष विशेष धन, भूमि सुहावन देस।
जायँ करौं यातें अबै, पूरब कौ परदेस।।

कवित्त

ताफ़ताऽरु बाफ़ता मुसज्जर श्री साफ़ मखमलऽरु मकेसी पट नाना सुखदाइये। सरस कृपान तरकसऽरु कमान बान जरकसी चीरा हीरा जहाँ जाइ लाइये। सुकवि 'गोपाल' फुलवारी धाम धाम अम्ब श्रीफल कदम्ब पौंड़ा पानन को खाइये। बड़े होत केस, मिले तन्दुल असेस, प्यारी पूरब के देस में विशेष सुख पाइये।।

सोरठा

लगैं चोर ठगवाइ, पेट चलै पानी लगै।
कीजै कबहुँ न जाइ, पूरब के परदेस को।।

कवित्त

पानी लगि जात बहु फूलि जात गात पुनि पेट चलि जात कछु खाइ जात जबहूँ। जादू करि करिकै सँभोग सुख काज पसु पच्छी करि राखै नारि नरन को अबहूँ। ब्राह्मन बनिक मीन मांस मधु खात तेल हरद लगाय न्हात नारी नर सबहूँ। फाँसी देकै हाल मारि डारै ठगजाल यातें जैये न 'गुपाल' दिसि पूरब की कबहूँ।।

दोहा

दयावान धनवान पुनि, लोग बड़े गुनवान।
यातें दच्छिन देस को, करिये सदा पयान।।

चीरा चीर सालू सेला समला बहारदार जरकसी काम जहाँ होत नाना भाँति है। सुकवि 'गोपाल' लाल रतन प्रवाल मनि मानिक बिसाल मोती महँगी सुजाति है। मेवा औ मिठाई फल फूल मूल मुक्त गज तरुनी अनूप रूप झलकत गात है। देखे बनै बात सदा सोभा सरसात प्यारी दच्छिन दिसा के गुन कहे नहिं जात है।।

दोहा

दक्षिण पिय सुनि कान दे, दक्षिण दक्षिण जात।
लक्षण लक्षण गक्षि के, लक्षणही लगि जात।।

कवित्त

घोंटूँ लौं उघारी निरलज्ज रहें नारी माँस मदिरा अहारी द्विज होइँ अनाचारी हैं। सुकवि 'गुपाल' प्याज लहसुन खात बहु लूटैं ठग चोर प्रजा रहै न सुखारी है। लोग निरहेत भानिजे को ब्याहि बेटी देत रीति बिपरीति सब देखत में न्यारी है। बढ़त अगारी होति बड़ी बड़ी ख्वारी दिसि दक्षिण मझारी जात होत दुख भारी है।।

दोहा

राखे दक्षिण तें अबै, जो दिसि पश्चिम जात।
ताके अब सन लीजिये, प्यारी! सुख अवदात।।

कवित्त

लोग दयावन तिय सुन्दर सुजान मीठी बोलनि निदान नीर लगै न तहाँ कहूँ। बृषभ बिसाल ऊँचे पुलकार वस्त्र विधि विविध प्रकारन हैं सूत के जहाँ कहूँ। सुकवि 'गुपाल' ताते तरल तुरंग मिलैं, मधुर मतीर भूख लगत जहाँ कहूँ। पार नहीं लहूँ जिय सोचत ही रहूँ प्यारी पच्छिम दिसा के सुख बरनि कहा कहूँ।।

दोहा

मरत रैन दिन बारि बिन, भटकि भटकि नर नारि।
करिये नहीं पयान पिय, पश्चिम ओर निहारि।।

कवित्त

धूरिन के थल सावै ढोल के ढमक्के जल तरु बिन थल तहां सोभा नहीं यामे हैं। चावरऊ गेहूँरस गोरस न फूल फल मोठ बाजरी को खाय दिवस बितामे हैं। रहत मलीन धर्म कर्म करि हीन लोग पहरत पीन पट ऊनन के जामे हैं। सुकवि 'गुपाल' कछु कहत न आवे जात जेते दुख होत सदा पश्चिम दिसा में हैं।।

दोहा

हरिद्वार ते कै परसि, बद्रिनाथ केदार।
होत कृतारथ जीव यह, उत्तर खंड मँझार।।

कवित्त

लाइची लवंग दाख दाड़िम बदाम मेव सालम अँगूर पिस्ता खैये उठि भोर को। कस्तूरी केसरि जावित्री जायफल दालचीनी देवदारु की सुगंधि चहुँ ओर को। साल औ दुसाले धुस्सा नाना पसमीना ओढ़ि देखत रहत आछि तियनकी मोर को। कहत 'गुपाल' प्यारी सुनिये निहोर मोपै कह्यो नहिं जात सुख उत्तर की ओर को।।

दोहा

सदा सीत भयभीत नर, व्याघ्र सिंह वृष घोर।
कीजै नहीं पयान पिय, उत्तर दिसि की ओर।।

कबित्त

बिकट पहार भार घने सिंह स्यार निरबाह नही होत रथ बहल को जामे हैं। गिलटी रुगिल्लर अनेक रोग होत जहाँ चारिहुँ बरन जीव हिंसक हरामे हैं। सुकवि 'गुपाल' सदा सीत भयभीत लोग बरफ़ के मारे दुरे रहत गुफ़ा में हैं। राह में न गामें चल्यो जात न निसामें याते बहु दुख यामें जात उत्तर दिसा में हैं।।

दोहा

गाम इजारो छाड़ि के, खेती करिहौं बाम।
सब जग जाके करे ते, खात पियत निज धाम।।

कबित्त

साँझहू सबेरे दही दूध के रहत सुख लीयो करै स्वाद ये रसाल नई नई को। नित प्रति रहै सातो पौनि पै हुकुम सरकार में रहत भलो बस्सा ठकुरई को। जीवै जग जाते जग जीव को कनूका मिलै मिलै भली बात यह काम मरदई को। कहत 'गुपाल' बीस नह की कमाई यातें सबही तें भला यह पेसा किसनई को।।

दोहा

खेती करत किसान के, मोते दुख सुनि लेउ।
हर लै कै पिय खेत में, भूलि पाँव मति देउ।।

कबित्त

कारी होत देह सहे सीत घाम मेह नित रहै लेह देह सुख नहीं खान पान को। बरहे में बास राखे व्यौहरे की आस ईतिभीति तें उदास गिरि मान नय मान को।। राजै देत पोता हर जोता सुख सोता नाहिं खोता दिन योंही रहै लेसन सयान को। देह में न चाम रहै हाथ में न दाम याते कहत 'गुपाल' काम कठिन किसान को।।

बेनी

बेनी नाम के दो तीन कवि हो गये हैं। एक बेनी असनी के बन्दीजन थे। उनका समय सं० १६९० कहा जाता है। वे दिल्लगी की कविताएँ बनाने में बड़े निपुण थे। दूसरे बेनी जिला रायबरेली में बेंती गाँव के बन्दीजन थे। शिवसिंह सरोज में उनका समय सं० १८४४ लिखा है। और तीसरे बेनी लखनऊ के बाजपेयी थे। उनका समय शिवसिंह सरोज में सं० १८७६ लिखा है। तीसरे बेनी कविता में अपना नाम 'बेनी प्रबीन' रखते थे। दिल्लगी की कविताएँ प्रायः सब असनी वाले बेनी की बनाई हुई हैं। पहले और दूसरे बेनी की बहुत सी कविताओं में यह निर्णय करना कठिन है कि कौन किसकी बनाई हुई हैं। तीसरे बेनी की कविता 'बेनी प्रबीन' के नाम से सहज में ही पहचानी जा सकती है। यहाँ हम पहले और दूसरे बेनी की कुछ कविताएँ और नमूने के लिये एक कवित्त 'बेनी प्रबीन' का भी उद्धृत करते हैं--

कारीगर कोऊ करामात कै बनाय लायो लीनी दाम थोरो जानि नई सुघरई है। रायजू को रायजू रजाई दीनी राजी ह्वै के सहर में ठौर ठौर सोहरत भई है। बेनी कवि पाय के अघाय रहे घरी द्वैक कहत न बने कछु ऐसी मति ठई है। साँस लेत उड़िगो उपल्ला और भितल्ला सबै दिन द्वै के बाती हेत रूई रह गई है।।१।।

आध पाव तेल में तयारी भई रोशनी की आध पाव रूई में पोशाक भई बर की। आध पाव छाले को गिनौराँ दियो भाइन को माँगि माँगि लायो है पराई चीज घर की। आधी आधी जोरि बेनी कवि की बिदाई कीनी व्याहि आयो जब तें न बोले बात थिरकी। देखि देखि कागद तबीअत सुमादी भई सादी काह भई बरबादी भई घर की।।२।।

सेर चार चाउर पसेरिक पिसान माँड्यो तापै खरे डाटें कोऊ साने बड़ी घानी ना। बहू को बुलाय मसलहत सिखाय कान पैठ जा रसोई कोऊ परसे बेगानी ना। बेनी कवि कहै कहा आये आज याके यहाँ देखि सुनि परं कहूँ अन्न की निसानी ना। कीनी मेहमानी जुरयो पान औ न पानी बकै आपै बड़ो दानी कोऊ जानी कोऊ जानी ना ।।३।।

हावभाव विविध दिखावे भली भाँतिन सों मिलत न रतिदान जागे संग जामिनी। सुबरन भूषन सँवारे ते बिफल होत जाहिर किये ते हँसे नर गजगामिनी। रहे मन मारे लाज लागत उघारे बात मन पछतात न कहत कहूँ भामिनी। बेनी कवि कहै बड़े पापन ते होत दोऊ सूमको सुकवि औ नपुंसक को कामिनी ।।४।।

संभु नैन जाल औ फनी को फूतकार कहा जाके आगे महाकाल दौरत हरौलीतें। सातो चिरजीवी पुनि मारकंडे लोमस लों देख कम्पमान होत खोलें जब झोलीतें। गरल अनल औ प्रलै को दावानल भल बेनी कवि छेदि लेत गिरत हथोलीतें। वचन न पावें धनवन्तरि जो आवें हरगोविँद बचावै हरगोविँद की गोली तें ।।५।।

बार बार लीखें लगी लाखन जुआ के जोट आँखिन बरौनिन में कीचर छपानो है। कानन कनोई नाक चपटी चुवत रेंट कारे कारे दंतन में कीट लपटानो है।। मूड़ पै मकर जारो दौलत अँधारो लगै ओढ़े मैलवारो फटो बसन पुरानो है। बोलत ही थूक के फुहारे चलें फूहरि के पाद पाद पीसत पिसान हू उड़ानो है ।।६।।

गड़ि जात बाजी औ गयन्द गन अड़ि जात सुतुर अकड़ि जात मुसकिल गऊ की। दावन उठाय पाय धोखे जो धरत होत आप गरकाप रहिजात पाग मऊ की। बेनी कवि कहै देखि थर थर काँपे गात रथन के पथ ना विपद बरदऊ की। बार बार कहत पुकार करतार तोसों मीच है कबूल पै न कीच लखनऊ की ।।७।।

चूक सो लागत चाखे लूक सो लगावै कंठ ताप सरसावै है अपूरब अराम के। रस को न लेस चोपी रेसा है बिसेस छाँड़ि दीन्हे सब देस पकसाने परे घाम के। बुरे बदसूरत बिलाने बदबोयदार बेनी कहै बकला बनाये मानो चाम के। कौड़ी के न काम के सु आये बिन दाम के है निपट निकाम हैं ये आम दयाराम के ।।८।।

चींटी की चलावै को मसा के मुख आय जायँ साँस की पवन लागे कोसन भगत है। ऐनक लगाय मरू मरू कै निहारे परै अनु परमानु की समानता खगत हैं। बेनी कवि कहै हाल कहाँ लौ बखान करौं मेरी जान ब्रह्म को बिचारिबो सुगत है। ऐसे आम दीन्हे दयाराम मन मोद करि जाके आगे सरसौ सुमेरु सी लगत है ।।९।।

बियत बिलोकत ही मुनि मन डोलि उठे बोलि उठे बरही बिनोद भरे बन बन। अकल बिकल ह्वै बिकाने रे पथिक जन ऊर्द्ध मुख चातक अधोमुख मराल गन ।। बेनी कवि कहत मही के महाभाग भये सुखद सँयोगिन बियोगिन के ताप तन। कंज पुंज गंजन कृपीदल के रंजन सो आये मान भंजन ये अंजन बरन घन ।।१०।।

करि की चुराई चाल सिंह को चुरायो लंक ससि को चुरायो मुख नासा चोरी कीर की। पिक को चुरायो बैन मृग को चुरायो नैन दसन अनार हाँसी बीजरी गम्भीर की। कहै कवि बेनी बेनी ब्याल की चुराइ लीनी रती रती शोभा सब रति के शरीर की। अब तौ कन्हैया जू को चितहू चुराइ लीन्ही छोरटी है गोरटी या चोरटी अहीर की ।।११।।

ऊँची चोली चिक्क मिसी दाँतन में बातन में बार बार हेरि हेरि मन मुसुकाने हैं। मुख के न दरस परस मरदूमिन के लै रहै मुकुर औ अतर अङ्ग साने हैं। बेनी कवि कहै आहि ऊहि में प्रवीन बड़े निपट निकाम कहूँ काहू के न माने हैं। अजस के खाने जिन्हें कवि न बखाने जिन ऐसे धरे बाने ते जनाने सम जाने हैं ।।१२।।

पृथु नल जनक जजाति मानधाता ऐसे केते भये भूप जस छिति पर छाइगे। काल चक्र परे सत्रु सैकरन होत जात कहाँ लौं गनावों विधि बासर बिताइगे। बेनी साज सम्पति समाज साज सेना कहाँ पायन पसारि हाथ खोले मुख बाइगे। छुद्र छितिपालन की गिनती गिनावै कौन रावन से बली तेऊ बुल्ला से बिलाइगे ।।१३।।

बेद मत सोधि सोधि देखि कै पुरान सबै सन्तन असन्तन को भेद को बतावतो। कपटी कपूत क्रूर कलि के कुचाली लोग कौन रामनाम हू की चरचा चलावतो। बेनी कवि कहै मानो मानो रे प्रमान यही पाहन से हिये कौन प्रेम उमगावतो। भारी भवसागर में कैसे जीव होते पार जो पै रामायण ना तुलसी बनावतो ।।१४।।

बदन सुधाकरै उघारत सुधाकरै प्रकास बसुधा करै सुधाकरै सुधा करै। चरन धरा धरै मृणालऊ धराधरै सु ऐसे अधराधरै ये बिम्ब अधराधरै ।। बेनी दृग हा करै निहारत कहा करै सु बेनी कविता करै त्रिबेनी समता करै। सुरत में सी करै सु मोहनै बसी करै बिरंचिहूँ जसी करै सु सौतिन मसी करै ।।१५।।

मानव बनाये देव दानव बनाये जच्छ किन्नर बनाये पसु पच्छी नाग कारे हैं। दुरद बनाये लघु दीरघ बनाये केते सागर उजागर बनाये नदी नारे हैं। रचना सकल लोक लोकन बनाये ऐसी जुगुति में बेनी परवीनन के प्यारे हैं। राधे को बनाय विधि धोयो हाथ जाम्यो रंग ताको भयो चन्द्र कर झारे भये तारे हैं ।।१६।।

बाजी के सुपीठ पै चढ़ायो पीठि आपनी दै कवि हरिनाथ को कछोहा मान सादरै। चक्कवै दिली के जे अथक्क अकबर सोऊ नरहरि पालकी को आपने कँधा धरै। बेनी कवि देनी की (औ) न देनी की न मोको सोच नावै नैन नीचे लखि बीरन को कादरै। राजन को दीबो कविराजन को काज अब राजन को लाज कविराजन को आदरै ।।१७।।

सुखदेव

सुखदेव मिश्र कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १६९० के लगभग माना जाता है। ये कम्पिला के रहनेवाले थे, और उसी नगर में इनका विवाह भी हुआ था। इनके वंशधर अब भी दौलतपुर, जिला रायबरेली में वर्तमान हैं। स्वरचित वृत्त-विचार नामक ग्रंथ में इन्होंने अपने जन्म-स्थान कम्पिला का और अपने पूर्वजों का विस्तृत वर्णन लिखा है।

कुछ दिन तक कम्पिला में विद्याध्ययन करने के बाद ये काशी चले गये और वहाँ एक सन्यासी से साहित्य पढ़ने लगे। वहाँ से संस्कृत और भाषा-साहित्य के पूर्ण विद्वान् होकर ये असोथर जिला फतेपुर के राजा भगवंतराय खीची के यहाँ चले गये। वहाँ इनका बड़ा सम्मान हुआ। वहाँ कुछ दिन रहने के बाद ये क्रमशः औरंगज़ेब के मंत्री फ़ाज़िल अली, अमेठी के राजा हिम्मतसिंह, मुरारिमऊ के राजा देवीसिंह के यहाँ गये और सर्वत्र इन्होंने पूरा सम्मान पाया। राजा देवीसिंह के कहने ही से ये कम्पिला छोड़कर सकुटुम्ब दौलतपुर में आ गये।

इन्होंने निम्नलिखित ग्रंथों की रचना की है—

वृत्त-विचार, छन्द-विचार, फ़ाज़िलअली-प्रकाश, रसार्णव, शृंगारलता, अध्यात्म-प्रकाश, दशरथराय और नखशिख। वृत्त-विचार और छन्द-विचार पिङ्गल के ग्रन्थ हैं। मिश्र जी ने संस्कृत और प्राकृत में भी कविताएँ रची थीं, परंतु अब उनका कहीं पता नहीं चलता।

इनकी कुछ कविताएँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

ननँद निनारी सासु मायके सिधारी अहै रैनि अँधियारी भरी सूझत न करु है। पीतम को गौन सुखदेव न सुहात भौन दारुन बहत पौन लाग्यो मेघ झरु है। संग ना सहेली, बैस नवल अकेली, तन परी तलबेली महा लायो मैन सरु है। भई अधरात, मेरो जियरा डेरात, जागु जागु रे बटोही इहाँ चोरन को डरु है॥१॥

जोहैं जहाँ मगु नन्दकुमार तहाँ चली चंदमुखी सुकुमार है।
मोतिन ही को कियो गहनो सब फूलि रही जनु कुंद की डार है।।
भीतर ही जु लखी सु लखी अब बाहर जाहिर होत न दार है।
जोन्हसीजोन्है गई मिलि यों मिलि जात ज्यों दूध में दूध की धार है।।२।।
यों कछु कीन्हीं अचनाक चोट जु ओट सखीन सकी कै दुकूल हैं।
देह कँपै मुँह पीरी परी सो कह्यो नहिं जो ह्वै गयो हिय सूल है।।
माँझ उरोज में आनि लग्यो अँगिरात जहीं उचक्यो भुजमूल है।
कौन है ख्याल? खेलार अनोखे! निसंक ह्वै ऐसे चलैयत फूल है।।३।।

मीन की बिछुरता कठोरताई कच्छप की हिये घाय करिबे को कोल ते उदार हैं। बिरह बिदारिबे को बली नरसिंह जू सों बामन सों छली बलिदाऊ अनुहार हैं। द्विज सों अजीत बलबीर बलदेव ही सों राम सों दयाल सुखदेव या विचार हैं। मौनता में बौध कामकला में कलंकी चाल प्यारी के उरोज ओज दसौ अवतार हैं।।४।।

मंदर महिन्द गंधमादन हिमालय में जिन्हें चल जानिये अचल अनुमाने ते। भारे कजरारे तैसे दीरघ दँतारे मेघ मंडल बिहंडैं जे वै शुंडा दंड ताने ते। कीरति विसाल छितिपाल श्री अनूप तेरे दान जो अमान का पै बनत बखाने ते। इतै कवि मुख जस आखर खुलत उतै पाखर समेत पील खुलै पीलखाने ते।।५।।

सबलसिंह चौहान

सबलसिंह चौहान का जन्म संवत् १७०० के लगभग और मरण संवत् १७९२ के लगभग अनुमान किया जाता है। शिवसिंह ने इनको 'इटावा के किसी गाँव का जमींदार' लिखा है। इन्होंने महाभारत के अठारहों पर्वों की कथा दोहे-चौपाई में लिखी है। कई पर्वों में इन्होंने उनके रचे जाने का संवत् भी दिया है। भीष्म पर्व सं० १७१८ में, स्वर्गारोहण १७८१ में रचा गया। इससे मालूम होता है कि सारा महाभारत इन्होंने ६५ वर्षों में समाप्त किया होगा। इन्होंने लगातार परिश्रम नहीं किया होगा, जब जी में कुछ उमङ्ग उठी, तब कुछ लिख डाला। भाषा महाभारत के सिवाय इनका लिखा हुआ रूपविलास पिङ्गल, षट्ऋतु बरवै और भाषा ऋतुपसंहार भी कहे जाते हैं। महाभारत में इन्होंने युद्धों का वर्णन बड़ा रोचक किया है। महाभारत में चक्रव्यूह युद्ध में अभिमन्यु के अन्तिम प्रयास की कथा का वर्णन सुनिये, ये कैसा करते हैं :—

अभिमनु घेरे आय सब , मारत अस्त्र अनेक।
जिमि मृगगण के यूथ महँ , डरत न केहरि एक ।।
लैके शूल कियो परिहारा । वीर अनेक खेत महँ मारा ।।
जूझी अनी भमरि कै भागे । हँसिके द्रोण कहन अस लागे ।।
धन्य धन्य अभिमनु गुनआगर । सब छत्रिन महँ बड़ो उजागर ।।
धन्य सहोद्रा जग में जाई । ऐसे वीर जठर जनमाई ।।
धन्य धन्य जग में पितु पारथ । अभिमनु धन्य धन्य पुरुषारथ ।।
एक वीर लाखन दल मारे । अरु अनेक राजा संहारे ।।
धनु काटे शङ्का नहिं मन में । रुधिर प्रबाह चलत सब तन में ।।
यहि अन्तर बोले कुरुराजा । धनुष नाहिं भाजत केहि काजा ।।
एक वीर को सबै डरत हैं । घेरि क्यों न रथ धाय धरत हैं ।।
बालक देखु करी यह करणी । सेना जूझि परी सब धरणी ।।

दुर्योधन या विधि कह्यो , कर्ण द्रोण सो बैन।
बालक सब सेना बधी , तुम सब देखत नैन।।

यह कहि कै दुर्योधन आये । शब्द वीर आगे ह्वै धाये ।।
छत्री घेरो अभिमनु रन में । मानहुँ रवि आच्छादित घन में ।।
लै के खड्ग फरी गहि हाथा । काट्यो बहु छत्रिन को माथा ।।
अभिमनु धाइ खड्ग परिहारे । सम्मुख ज्यहि पावै त्यहि मारे ।।
भूरिश्रवा बाण दश छाँटे । कुँवर हाथ को खड़गहि काटे ।।
तीन वाण सारथि उर मारे । आठ वाण तें अश्व सँहारे ।।
सारथि जूझि गिरे मैदाना । अभिमनु वीर चित्त अनुमाना ।।
यहि अन्तर सेना सब धाये । मारु मारु कै मारन आये ।।
रथ को खैंचि कुँवर कर लीन्हें । ताते मारु भयानक कीन्हें ।।
अभिमनु कोपि खम्भ परिहारे । यक यक घाव वीर सब मारे ।।

अर्जुनसुत इमि मारुकिय , महावीर परचंड।
रूप भयानक देखियतु , जिमि जम लीन्हें दंड ।।

क्रोधित होइ चहूँ दिशि धाये । मारि सबै सेना बिचलाये ।।
यहि विधि किये भयानक भारत । साहस धन्य धन्य पुरुषारथ ।।
ऐसी मारु खम्भ सों कीन्हें । दश सहस्र राजा बध लीन्हे ।।
मारि सबै राजा बिचलाये । कर लै गदा कुरूपति धाये ।।
शत बान्धव नृप संगहि आये । अरु अनेक राजा मिलि धाये ।।
चहुँ दिशि महारथी सब घेरे । छत्री सबै वीर बहुतेरे ।।
नाना अस्त्र सबहिं परिहारे । निकट न जाहिं दूरि ते मारे ।।
दुर्योधन कहँ देखन पाये । गहे खम्भ अभिमनु तब धाये ।।
जुरे वीर छत्री बहुतेरे । खम्भ घाव ते बधेउ घनेरे ।।
जब नरेस के निकटहिं आये । द्रोण गुरू दश वाण चलाये ।।

गुरु द्रोण अति क्रोध कै , मारे वाण अचूक ।
कुँवर हाथ को खम्भ तब , काटि कियो दो टूक ।।

खम्भ कटे अभिमनु भे कैसे । मणि विनु फणिक विकल जग जैसे ।।
क्रोधित भये सहोद्रानन्दन । चरण घात कै तोरेउ स्यन्दन ।।
रथते कूदि कुँअर कर लीन्हे । चका उठाय रणहिं शुभ कीन्हे ।।
चका कुँवर कर शोभित कैसे । हरि कर चक्र सुदर्शन जैसे ।।
रुधिर प्रवाह चलत सब अङ्गा । महा शूर मन नेकु न भङ्गा ।।
गहि कै चका चहूँ दिशि धावै । जेहि पावै तेहि मारि गिरावै ।।
दुर्योधन पर चका चलाये । गदा रोपि कुरुनाथ बचाये ।।
छत्री घेरि लगे शर मारन । जुरे आइ केते हथियारन ।।
दुस्सासन-सुत गदा प्रहारे । अभिमनु के शिर ऊपर मारे ।।
जूझे कुँवर परे तब धरनी । जग महँ रही सदा यह करनी ।।

धन्य धन्य सब कोउ कहै , कुँवर रहौ मैदान ।
पै गुरु द्रोण मलीन मुख , कहें बचन परिमान ।।

कालिदास त्रिवेदी

कालिदास त्रिवेदी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म अनुमान से सं० १७१० के लगभग बनपुरा गाँव (ज़िला कानपुर) में हुआ। इनकी पुस्तकों से इनके जन्म का कुछ पता नहीं चलता। इनके पुत्र कवीन्द्र और पौत्र दूलह भी बड़े प्रसिद्ध कवि हुये। कालिदास औरङ्गज़ेब के दल में किसी राजा के साथ सं० १७४५ की बीजापुर-गोलकुंडा वाली लड़ाई में गये थे। इनके लिखे हुये केवल तीन ग्रन्थों का अभी तक पता चला है—वधू-विनोद, कालिदास-हजारा, जंजीरा। वधू-विनोद नायिकाभेद का ग्रन्थ है। हजारा में हिन्दी के पुराने २१२ कवियों के एक हज़ार छंद संग्रह किये गये हैं। जंजीरा में ३२ घनाक्षरी छंद बड़े अद्भुत हैं। इनके रचे हुये राधा माधव बुध-मिलन विनोद नामक एक और ग्रन्थ का भी नाम सुना जाता है।

इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे लिखे जाते हैं—

१

गढ़न गढ़ी से गढ़ि महल मढ़ी से मढ़ि बीजापुर ओप्यो दलि मलि सुघराई में। 'कालिदास' कोप्यो वीर औलिया अलमगीर तीर तरवारि गह्यो पुहुमी पराई में। बूँद तें निकसि महिमंडल घमंड मची लोहू की लहरि हिमगिरि की तराई में। गाड़ि कै सु झंडा आड़ कीन्हीं बादशाह तातें डकरी चमुंडा गोलकुण्डा की लड़ाई में।।

२

चूमों कर कंज मंजु अमल अनूप तेरो रूप के निधान कान्ह मो तन निहारि दे। कालिदास कहै मेरे पास हरिहेरि माथे धरि मुकुट लकुट कर डारि दे। कुँवर कन्हैया मुख चंद की जुन्हैया चारु लोचन चकोरन की प्यासन निवारि दे। मेरे कर मेहँदी लगी हैं नंदलाल प्यारे लट उरझी है नकबेसर सँभारि दे।।

३

प्रथम समागम के औसर नबेली बाल सकल कलानि पिय प्यारे को रिझायो है। देखि चतुराई मन सोच भयो प्रीतम के लखि परनारि मन संभ्रम भुलायो है।। कालिदास ताही समै निपट प्रवीन तिया काजर ले भीतिहूँ में चित्रक बनायो है। व्यात लिखी सिंहिनी निकट गजराज लिख्यो योनि ते निकसि छौना मस्तक पै आयो है।।

आलम और शेख

ठाकुर शिवसिंह ने आलम को सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है, और इनका जन्म संवत् १७१२ बतलाया है। ये औरङ्गजेब के समय में थे, और औरङ्गजेब के पुत्र शाहज़ादा मुअज्जम के पास रहा करते थे।

एक बार आलम ने शेख नामक रँगरेजिन को अपनी पगड़ी रँगने को दी। भूल से काग़ज़ का एक टुकड़ा, जिसमें आलम ने आधा दोहा लिखकर फिर किसी समय उसे पूरा करने के लिये बाँध दिया था, बँधा ही रह गया। पगड़ी धोते समय शेख ने उस काग़ज़ के टुकड़े को खोलकर पढ़ा। उसमें यह लिखा था--

कनक छरी सी कामिनी , काहे को कटि छीन।

शेख ने उसके नीचे 'कटि को कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन' लिखकर, पगड़ी धोकर उसी में बाँध दिया। जब आलम को वह पगड़ी मिली और उन्होंने दोहे की पूर्ति हुई देखी, तब उसी समय वे शेख के घर गये, और उन्होंने उसे एक आना पगड़ी की रँगाई और एक हज़ार रुपये दोहे की पूर्ति कराई दी। उसी दिन से दोनों में प्रेम हो गया। यहाँ तक कि आलम ने मुसलमानी मत ग्रहण करके शेख से विवाह कर लिया। आलम और शेख दोनों की कविताएँ प्रेम के चमत्कारों से पूर्ण हैं। शेख के गर्भ से आलम के एक पुत्र भी था, जिसका नाम जहान था। एक दिन मुअज्ज़म ने हँसी में शेख से पूछा--क्या आलम की औरत आपही हैं ? शेख ने तुरन्त ही उत्तर दिया--हाँ, जहाँपनाह जहान् की मा मैं ही हूँ। मुअज्ज़म इससे बहुत लज्जित हुआ।

कोई-कोई ऊपर के दोहे के स्थान पर शेख द्वारा नीचे लिखे कवित्त के चतुर्थ चरण की पूर्ति होनी बतलाते हैं। तीन चरण आलम ने बनाये थे, चौथे चरण की पूर्ति शेख ने की :--

प्रेम रँग पगे जगमगे जगे जामिनि के जोबन की जोति जगि जोर उमगत हैं। मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत है झूमत हैं झुकि झुकि झँपि उघरत हैं। आलम सो नवल निकाई इन नैननि की पाँखुरी पदुम पै भँवर थिरकत है। चाहत हैं उड़िबे को देखत मयंकमुख जानत हैं रैनि ताते ताहि में रहत है।।

पंडित नकछेदी तिवारी ने इसी घटना-संबंधी एक और ही कवित्त लिखा है। वह यह है :—

घूँघट जमानिका है कारे कारे केश निशि खुटिला जराय जरे दीपक उजारी है। बाजत मधुर मृदुबानी सो मृदङ्ग धुनि नैना नटनागर लकुट लट धारी हैं। आलम सुकवि कहै रति विपरीत समै श्रम विन्दु अंजुलि पुहुप भरि डारी है। अधर सु रङ्गभूमि नृपति अनंग आगे नृत्य करै बेसर की मोती नृत्य कारी है।।

इनमें से चाहे जिस छन्द की पूर्ति पर आलम रीझें हों, परन्तु इसमें संदेह नहीं, कि दोनों बड़े प्रेमी जीव थे। इन दोनों प्रेमियों की जितनी कविताएँ मिलती हैं, सब में बड़ा चमत्कार है। शेख के कवित्तों में श्रीकृष्णचंद्र के प्रति उसकी बड़ी भक्ति झलकती है। आलम और शेख की कविताओं का एक संग्रह 'आलमकेलि' नाम से प्रकाशित हुआ है। इसके सिवाय माधवानल-कामकंदला नामक ग्रंथ भी इन्हीं का रचा हुआ कहा जाता है। इधर-उधर पुस्तकों में कुछ फुटकर छन्द भी मिलते हैं। पाठकों के विनोदार्थ कुछ छंद हम नीचे प्रकाशित करते हैं :—

१

रति रन विषे जे रहे हैं पति सनमुख तिन्हैं बकसीस बकसी है मैं विहँसि कै। करन को कंकन उरोजन को चन्द्रहार कटि माँहि किंकिनी रही है अति लसि कै।। 'शेख' कहै आदर सों आनन को दीन्हों पान नैनन में काजर बिराजं मन बसि कै। एरे बैरी बार ये रहे हैं पीठि पाछे तातें बार बार बाँधति हौं बार बार कसि कै।।

२

कैधों मोर सोर तजि गये री अनत भाजि कैधों उत दादुर न बोलत हैं ये दई। कैधों पिक चातक बधिक काहू मारि डारे कैधों बक पाँति उत अंतगति ह्वै गई। आलम कहत आली अजहूँ न आये कंत कैधों उत रीति विपरीति विधि नें ठई। मदन महीप की दोहाई फिरिबे ते रही जूझि गये मेघ कैधों बीजुरी सती भई।।

३

जा थल कीन्हें बिहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं।।
आलम जौन से कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करैं।
नैनन में जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं।।

४

चंद को चकोर देखै निसि दिन को न लेखै, चंद बिन दिन छवि लागत अँध्यारी है। आलम कहत आली अलि फूल हेत चलै, काँटे सी कटीली बेलि ऐसी प्रीति प्यारी है। कारो कान्ह कहत गँवारी ऐसी लागति है, मोहि वाकी स्यामताई लागति उज्यारी है। मन की अटक तहाँ रूप को बिचार कहाँ, रीझिबे को पैंडो तहाँ बूझ कछु न्यारी है।।

५

पैंड़ो सम सूधो बैंडो कठिन किवार द्वार द्वारपाल नहीं तहाँ सबल भगति हैं। शेख भनि तहाँ मेरे त्रिभुवन राय हैं जु दीनबंधु स्वामी सुर-पतिन को पति है। बैरी को न बैर बरियाई को न परबेस हीने को हटक नाहीं छीने को सकति है। हाथी की हँकार पल पाछे पहुँचन पावै चींटी की चिघार पहले ही पहुँचति है।।

लाल

लाल का पूरा नाम गोरेलाल पुरोहित था। भूषण की तरह ये भी बड़े वीर कवि थे। इनका जन्म सं० १७१४ के लगभग माना जाता है। ये महाराजा छत्रसाल के दरबार में रहा करते थे। बुन्देलखंड में प्रसिद्ध है कि ये महाराज छत्रसाल के साथ किसी लड़ाई में गये थे, और वहीं लड़कर मारे गये। इन्होंने छत्र-प्रकाश, विष्णु-विलास और राज-विनोद नामक तीन ग्रंथ रचे। 'छत्र-प्रकाश' में, दोहा-चौपाइयों में, महाराज छत्रसाल की जीवनी बड़ी ही उत्तमता से लिखी गई है। यह पुस्तक काशी ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित हुई है। महाराज छत्रसाल शिवाजी महाराज के समय में बुन्देलखंद में हुये थे। ये एक साधारण स्थिति से बढ़ते-बढ़ते बुन्देलखंड के राजा हो गये। इन्होंने पाँच सवार और २५ पयादों को लेकर औरङ्गजेब ऐसे कट्टर बादशाह का सामना किया और अपने साहस के बलपर यवनों का बुन्देलखंड से पैर उखाड़ दिया। लाल की कविता के कुछ नमूने देखिये –

दान दया घमसान में, जाके हिये उछाह।
सोई वीर बखानिये, ज्यों छत्ता छितिनाह॥

जिन में छिति छत्री छवि जाये। चारिहु युगन होत जे आये॥
भूमि भार भुज दंडनि थम्भे। पूरन करें जु काज अरम्भे॥
गाय वेद द्विज के रखवारे। जुद्ध जीति जे देत नगारे॥
छत्रिन की यह बृत्ति बनाई। सदा जङ्ग की खांयँ कमाई॥
गाय वेद विप्रन प्रतिपालैं। घाउ ऐंड़धारिन पर घालैं॥
उद्यम तें संपति घर आवै। उद्यम करै सपूत कहावै॥
उद्यम करै संग सब लागै। उद्यम तें जग में जस जागै॥
समुद उतरि उद्यम तें जैयें। उद्यम तें परमेश्वर पैये॥
जब यह सृष्टि प्रथम उपजाई। जंग वृत्ति छत्रिन तब पाई॥
यह संसार कठिन रे भाई। सबल उमड़ि निर्बल को खाई॥
छनिक राज संपति के काजै। बंधुन मारत बंधु न लाजै॥

कछू कालगति जानि न जाई । सब में कठिन कालगति भाई ।।
सदा प्रबुद्धि बुद्धि है जाकी । तासों कैसे चले कजाकी ।।
साहस तजि उर आलस माँड़ै । भाग भरोसे उद्यम छांड़ै ।।
ताहि तजै जग संपति ऐसे । तरुनी तजै बृद्धपति जैसे ।।
बिपत माँहि हिम्मति ठिक ठाने । बढ़ती भये छिमा उर आने ।।
बचन सुदेस सभनि में भाखै । सुजस जोरिबे में रुचि राखै ।।
जुद्धनि जुरे अकेले जैसे । सहज सुभाय बड़ेन के ऐसे ।।
जाकी धरम रीति जग गावे । जो प्रसिद्ध बलवन्त कहावै ।।
जाहि जोट भैयन की भावै । करत अनारबीन बनि आवै ।।
लै अवतार बड़े कुल आवै । जुद्धन जुरै जगत जस गावै ।।
सत्य बचन जाके ठिक ठाये । प्रीति जोग ये सात गनाये ।।

गुरु गोविन्दसिंह

गुरु गोविन्दसिंह सिक्खों के दसवें गुरु थे। इनका जन्म सं० १७२३, ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी, शनिवार को अर्द्ध-रात्रि के समय पटना नगर में हुआ। इनके पिता का नाम गुरु तेगबहादुर और माता का गूजरीजी था। इनका विवाह सात ही वर्ष की अवस्था में लाहौर-निवासी हरियश खत्री की कन्या से हुआ था।

गुरु गोविन्दसिंह बड़े तेजस्वी, देशभक्त और वीर पुरुष थे। किसी समय ये हिन्दू-जाति की ढाल हुये थे। इन्होंने पंजाब में हिन्दूजाति और धर्म की रक्षा के लिये एक बीर जाति ही उत्पन्न कर दी। विद्वानों का ये बड़ा आदर करते थे। स्वयं भी बड़े मेधावी, देश-कालज्ञ और रण-निपुण थे। भादों बदी ४ सं० १७६४ की आधी रात में सोते समय अताउल्ला और गूल खां नामक दो सगे भाई पठानों ने गोदावरी नदी के किनारे अवि-

चल नामक नगर में इनके पेट में कटार भोंक दी; क्योंकि उन पठानों के पिता को गुरु ने युद्ध में मार डाला था। गुरु साहब चीखकर जाग उठे, और उन्होंने उसी समय तलवार उठाकर, लपककर ऐसा हाथ मारा कि खां के दो टुकड़े हो गये। घाव से अधिक रक्त निकलने के कारण वहीं इनके भी प्राण गये।

गुरु गोविन्दसिंह संस्कृत और फ़ारसी के विद्वान् और हिन्दी के कवि थे। यद्यपि सब गुरुओं ने थोड़े-बहुत पद और भजन आदि बनाये हैं, पर भाषा की प्रौढ़ता इनमें विशेष थी। इन्होंने ब्रजभाषा में कविता की है। इन्होंने 'दुर्गा-सप्तशती' का अनुवाद 'चण्डी-चरित्र' नाम से किया था। इनका रचा हुआ विचित्र नाटक सचमुच ही विचित्र है। इनके सिवा इन्होंने जाप, सुनीति-प्रकाश, ज्ञान-प्रबोध, प्रेम सुमार्ग, बुद्धि सागर और ग्रन्थ साहब के कुछ अंश की भी रचना की।

'विचित्र नाटक' में गुरुजी ने अपने पूर्वजन्म का उल्लेख करके अपने जीवन का उद्देश्य इस प्रकार बताया है :—

हम इह काज जगत में आये। धर्म हेतु गुरुदेव पठाये।
जहाँ तहाँ तुम धरम उबारो। दुष्ट दोखियन पकरि पछारो।
याही काज धरा हम जन्में। समुझि लेहु साधू सब मनमें।
धरम चलावन संत उबारन। दुष्ट सबन को मूल उपारन।

उनके पहले और उनके समय में भी अनेक संत-महात्मा हो चुके थे; पर किसी ने अपने जीवन का उद्देश्य सांसारिक नेता की भांति मातृभूमि की सेवा के लिये अनेक विघ्नों और कठिनाइयों का मुकाबला करने की शक्ति और दुष्टों को दमन की प्रवृत्ति नहीं दिखाई।

गुरु गोविन्दसिंह ने समाज में ऊँच-नीच और छूत-अछूत की भावना को नष्ट करने के लिये व्यापक आन्दोलन और जन-संगठन किया, और आशातीत सफलता भी प्राप्ति की। उच्च श्रेणी के लोगों ने उनका विरोध किया, तब उन्होंने कहा—

१

जुद्ध जिते इनही के प्रसाद इन्ही के प्रसाद सुदान करे।
अघ ओघ टरे इनही के प्रसाद इन्हीं की कृपा नित धाम भरे।
इनही के प्रसाद सुविद्या लई इनही की कृपा सब सत्रु मरे।
इनहीं की कृपा से सजे हम हैं नहीं मोसों गरीब करोर परे।।

२

सेवा करो इनही की है भावत और की सेवा सुहात न जी को।
दान दियो इनही को भलो अरु और को दाव न लाभ न नीको।
आगे फले इनही को दियो जग में जस और लियो सब फीको।
मो धर मो तन ते मन ते सिर लौं सगरो धन है इनहीं को।।

किसी भी धर्म-गुरु और नेता ने समाज को संगठित करने में ऐसी निरभिमानिता और विनम्रता नहीं दिखाई थी। और यही कारण था कि भारतवर्ष की रक्षा के लिये गुरु गोविन्दसिंह ने सिक्खों की एक लोहे की दीवार खड़ी कर दी।

यहाँ इनके कुछ अन्य छंद दिये जाते हैं :—

निरजुर निरूप हो कि सुन्दर सरूप हो कि भूपन के भूप हो कि दाता महादान हो। प्रान के बचैया दूध पूत के दिवैया रोग सोग के मिटैया किधौं मानी महामान हो। विद्या के विचार हो कि अद्वै अवतार हो कि सिद्धता की सूर्त हो कि सिद्धता की सान हो। जोबन के जाल हो कि कालहू के काल हो कि सत्रुन के सूल हो कि मित्रन के प्रान हो।।१।।

खूक मलहारी गज गदह विभूति धारी गिदुआ मसान बास करथोई करत हैं। घूघू मठ बासी लगे डोलत उदासी मृग सरवर सदीव मोन साधेई मरत हैं। बिन्दु के सिधैया ताहि तीज की बड़ैया देत बन्दरा सदीव पाय नागे ही फिरत हैं। अंगना अधीन काम क्रोध में प्रवीन एक ज्ञान के विहीन छीन कैसे के तरत हैं।।२।।

धन्न जियो तिहँ को जग में मुख तें हरि चित में युद्ध बिचारैं।
देह अनित्त न नित्त रहै जसु नाव चढ़े भवसागर तारैं।।
धीरज धाम बनाइ रहै तन बुद्धि सु दीपक ज्यों उजियारैं।
ज्ञानहिं की बढ़नी मनो हाथ लै कायरता कतवार बुहारैं।।३।।
का भयो जो सबही जग जीत सु लोगन को बहु त्रास दिखायो।
और कहा जु पै देस बिदेसन माँहि भले गज गाहि बँधायो।।
जो मन जीतत हे सब देस वहैं तुमरे नृप हाथ न आयो।
लाज गई कछु काज सरयो नहिं लोक गयो परलोक गमायो।।४।।

घनआनन्द

घनआनन्द जाति के कायस्थ और निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव थे। दिल्ली में रहते थे, और मुहम्मदशाह के मुंशी थे। गान-विद्या और काव्य-रचना में बड़े प्रवीण थे। सं० १७९६ में जब नादिरशाह ने मथुरा को लूटा, ये उसी समय मारे गये। इनका जन्म सं० १७४६ के लगभग माना जाता है। ये नागरीदासजी के समकालीन थे। वृन्दावन में दोनों का सत्संग हुआ करता था।

श्रीकृष्णचन्द्र में इनका सच्चा प्रेम था।

मीर-मुंशी की हालत में घनानन्द जी सुजान नाम की एक वेश्या पर आसक्त थे। एक दिन बादशाह ने इन्हें ध्रुपद गाने को कहा। इन्होंने इन्कार कर दिया; पर सुजान के कहने से भरे दरबार में गा दिया। गाते समय पीठ बादशाह की तरफ़ और मुँह सुजान की तरफ़ कर लिया था। गाने से बादशाह खुश तो बहुत हुआ, पर बेअदबी माफ़ न कर सका। उसने घनानन्द को दिल्ली से निकाल दिया। चलते समय इन्होंने सुजान के साथ चलने को कहा। उसने अस्वीकार किया। ये उसके विरह में व्याकुल वृन्दाबन

पहुँचे, वहाँ राधाकृष्ण के रंग में रँग गये। इनके प्रायः सभी छन्दों में सुजान शब्द आया है। इनके सवैये छन्द बड़े ही मनोहर हैं।

इनके रचे हुये ग्रन्थों के नाम ये हैं :—सुजानसागर, घनानन्द कवित्त, रसकेलिबल्ली, कृपाकाण्ड निबन्ध, कोकसार, विरहलीला। इनकी कविता में प्रेम और विरह का वर्णन बड़ा मनोहर हुआ है। भक्ति-रस की कविता भी इन्होंने अच्छी की है। इनकी कुछ कविताओं का संग्रह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'सुजान-शतक' नाम से किया था। उसमें सौ से अधिक सवैया, कवित्त, छप्पय और दोहे हैं।

यहाँ इनकी कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

१

पहिले अपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिरि नेह को तोरियै जू।
निरधार अधार दै धार मझार दई गहि बाँह न बोरियै जू।
घनआनँद आपने चातक को गुन बाँधि कै मोह न छोरियै जू।
रस प्याय कै ज्याय बढ़ाय कै आस बिसास मैं क्यों बिष घोरियै जू।।

२

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकौ सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ झिझकैं कपटी जो निसाँक नहीं।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तैं दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।

३

पर कारज देह को धारे फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ सब ही विधि सज्जनता सरसौ।
घनआनँद जीवन दायक हौ कछू मोरियौ पीर हिये परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवान को लै बरसौ।।

४

तब तो दुरि दूरहि ते मुसुकाय बचाय कै और की दीठि हँसे।
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी रचाय कै नैनन में सरसे।
अब तो उर माँहि बसाय कै मारत ए जू बिसासी कहाँ धौं बसे।
कछु नेह निबाहन जानत है तौ सनेह की धार में काहे धँसे।।

५

हमसौं हित कै कित कौ नित ही चित बीच बियोगहि पोइ चले।
सु अखैबट बीज लौं फैलि परयो बनमाली कहाँ धौ समोइ चले।।
घनआनँद छाँह बितान तन्यो हमैं ताप के आतप खोइ चले।
कबहूँ तेहि मूल तौ बैठिये आइ सुजान जो बीजहि बोइ चले।।

६

गुरनि बतायो राधामोहन हू गायो सदा सुखद सुहायो बृन्दावन गाढ़े गहुरे। अद्‌भुत अभूत महि मंडन परे ते परे जीवन को लाहु हाहा क्यों न ताहि लहुरे। आनँद को घन छायो रहत निरंतर ही सरस सुदेय सों पपीहा पन बहुरे। जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी पावन पुलिन पै पतित परि रहुरे।।

देव

देव बड़े प्रेमी कवि थे। इनका जन्म सं० १७३० वि० (१६७३ ई०) में कुसमरा (जि० मैनपुरी) में हुआ। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। ये ७२ ग्रंथों के रचयिता कहे जाते हैं। हिन्दी के पुराने कवियों में इतनी अधिक संख्या में ग्रंथ किसी ने नहीं रचे।

अबतक इनके रचे हुये निम्नलिखित ग्रंथों का पता लगा है :—

(१) भाव विलास, (२) अष्टयाम, (३) भवानी विलास, (४) सुंदरी सिंदूर, (५) सुजान विनोद, (६) प्रेम तरंग, (७) राग रत्नाकर, (८) कुशल विलास, (९) देव चरित्र, (१०) प्रेम चन्द्रिका, (११) जाति विलास, (१२) रस विलास, (१३) काव्य रसायन, (१४) सुख सागर तरंग, (१५) देव माया प्रपंच (नाटक), (१६) वृक्ष विलास, (१७) पावस विलास, (१८) ब्रह्म दर्शन पचीसी, (१९) तत्व दर्शन पचीसी, (२०) आत्म दर्शन पचीसी, (२१) जगदर्शन पचीसी, (२२) रसानन्द लहरी, (२३) प्रेम दीपिका, (२४) सुमिल विनोद, (२५) राधिका विलास, (२६) नीति शतक, (२७) नखशिख।

इनके ग्रन्थ प्रायः सब शृङ्गार-रस पर हैं। इनकी भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा है। इनकी रचना में प्रसाद, माधुर्य, अर्थव्यक्तता और ओज आदि गुणों का अच्छा चमत्कार देखने में आता है। इनकी कविता में कहीं-कहीं बहुत गूढ़—बारीक भाव ऐसे मिलते हैं, जो पढ़ते ही समझ में न आने से कुछ रूखे से जान पड़ते हैं। परन्तु कुछ विचार करने से उनमें मनोहर रहस्य भरा हुआ मिलता है। उर्दू कवियों में गालिब की कविता में भी ऐसी ही विलक्षणता पाई जाती है। देव का अपनी भाषा पर पूरा अधिकार दिखाई पड़ता है।

देव की कविता से ऐसा बोध होता है कि इन्होंने सारे भारतवर्ष की यात्रा की थी; क्योंकि इनकी कविता में भारत की प्रत्येक जाति की, प्रत्येक प्रांत की स्त्रियों का विलास वर्णित है, जो प्रत्यक्ष देखे बिना नहीं हो सकता।

इन्होंने सं० १७४६ के लगभग औरंगज़ेब के बड़े पुत्र आज़मशाह को

भाव विलास और अष्टयाम सुनाया था। आज़मशाह ने इन ग्रन्थों की प्रशंसा भी की थी। फिर ये क्रमशः भवानीदत्त वैश्य, कुशलसिंह (फफूंद-इटावा-निवासी) राजा उद्योतसिंह, राजा भोगी लाल, पिहानी के अकबर अली खाँ आदि के आश्रय में रहे। परन्तु किसी आश्रय-दाता ने इनका यथोचित सम्मान नहीं किया। मेरी राय में आश्रयदाताओं से सम्मान न पाने का कारण इनकी कविता का जटिल होना ही है।

देव बड़े विलासी और रसिक थे। शोभा और शृंगार के बड़े चाहक थे। इसमें संदेह नहीं कि इनकी प्रतिभा ऊँचे दरजे की थी, परन्तु खेद है कि सिवाय प्यारी और प्यारे के हाव-भाव, कटाक्ष, संयोग-वियोग, हास-परिहास वर्णन के लोक-हित-साधन की चर्चा ये बहुत कम कर सके। इसी कारण से इनकी पुस्तकों का आदर और प्रचार भी हिन्दू-समाज में कम हुआ। जीवन के अंत समय में इन्होंने वैराग्य पर भी कुछ कविताएँ लिखी। परन्तु वे इन्द्रिय-शैथिल्य के कारण लिखी गई जान पड़ती हैं, समाज-हित की स्वाभाविक कामना से नहीं। देव की जीवनी का निचोड़ हमें यही जान पड़ता है कि ये विषयी और शृंगारी कवि थे, परन्तु थे सूक्ष्मदर्शी। इनको गाने बजाने का भी बड़ा शौक था। इनका सं० १८२४ (१७६७ई०) में देहावसान हुआ। नमूने के तौर पर इनके कुछ छंद यहाँ लिखे जाते हैं :—

कुल की सी करनी कुलीन की सी कोमलता सील की सी संपति सुशील कुल कामिनी। दान को सो आदर उदारताई सूर की सी, गुन की लुनाई गज गति गजगामिनी। ग्रीषम को सलिल सिसिर कैसो घाम देव हेमंत हँसत जलदागम की दामिनी। पूनो को सो चन्द्रमा प्रभात को सो सूरज सरद को सो बासुर बसंत की सी जामिनी ॥१॥

सूरजमुखी सो चंद्रमुखी को बिराजै मुख कंदकली दंत नासा किंशुक सुधारी सी। मधुप से लोयन मधूक दल ऐसे ओंठ श्रीफल से कुच कच बेलि तिमिरारी सी। मोती बेल कैसे फूली मोतिन में भूषन सुचीर गुलचाँदनी सों चंपक की डारी सी। केलि के महल फूलि रही फुलवारी 'देव' ताही में उज्यारी प्यारी फूली फुलवारी सी ॥२॥

डार द्रुम पालन बिछौना नव पल्लव के सुमन झँगूला सोहै तन छवि भारी दै। पवन झुलावैं केकी कीर बतरावैं 'देव' कोकिल हलावैं हुलसावैं करतारी दै। पूरित पराग सों उतारा करै राई नोन कंज कली नायिका लतानि सिर सारी दै। मदन महीप जू को बालक बसंत ताहि प्रात हिये गुलाब चटकारी दै।।३।।

नीलपट तन पर घन से घुमाय राखौं दन्तन की चमक छटा सी बिचरति हौं। हीरन की किरन लगाइ राखौं जुगनू सी कोकिला पपीहा पिक बानी सों भरति हौं। कीच अँसुवान के मचाय कवि 'देव' कहै बालम बिदेस को पधारिबो हरति हौं। इन्द्र कैसो धनु साज बेसर कसत आज रहु रे बसंत लावत तोहिं पावस करति हौं।।४।।

आवन सुनो है मनभावन को भावती ने आँखिन अनंद आँसू ढरकि ढरकि उठैं। 'देव' दृग दोऊ दौरि जात द्वार देहरी लों केहरी सी साँसैं खरी खरकि खरकि उठैं। टहलैं करति टहलै न हाथ पाँय रंगमहलै निहारि तनी तरकि तरकि उठैं। सरकि सरकि सारी दरकि दरकि आँगी औचक उचैहैं कुच फरकि फरकि उठैं।।५।।

प्रेम चरचा है अरचा है कुल नेमन रचा है चित और अरचा है चित चारी को। छोड़्यो परलोक नरलोक वरलोक कहा हरख न सोक ना अलोक नरनारी को। धाम सित मेंह न बिचारै सुख देहहु को प्रीति ना सनेह उरु बन ना अँध्यारी को। भूतेहु न भोग बड़ी विपति वियोग व्यथा जोग हू ते कठिन सँजोग परनारी को।।६।।

दुहूँमुख चंद ओर चितवैं चकोर दोऊ चितै चितै चौगुनो चितेबो ललचात हैं। हाँसनि हँसत बिन हाँसी बिहँसत मिले गातनि सों गात बात बातनि में बात है। प्यारे तन प्यारो पेखि पेखि प्यारी पिय तन पियत न खात नेकहूँ न अनखात हैं। देखि ना थकत देखि देखि ना सकत 'देव' देखिबें की घात देखि देखि न अघात हैं।।७।।

बरुनी बघम्बर में गूदरी पलक दोऊ कोये राते बसन भगोहैं भेख रखियाँ। बूड़ी जलही में दिन जामिनि रहति भौंहैं धूम सिर छायो बिरहानल बिलखियाँ। आँसू ज्यों फटिक माल लाल डोरे सेल्ही सजि भई हैं अकेली तजि चेली संग सखियाँ। दीजिये दरस 'देव' लीजिये सँजोगिन कै जोगिन ह्वै बैठी वा बियोगिन को अँखियाँ ॥८॥

सखी के सकोच गुरु सोच मृगलोचनि रिसानी पिय सों जु उन नेकु हँसि छुयो गात। देव वै सुभाय मुसुकाय उठि गये यहि सिसकि सिसकि निसि खोई रोय पायो प्रात। को जानै री बीर बिनु बिरही बिरह बिथा हाय हाय करि पछिताय न कछू सोहात। बड़े बड़े नैनन सों आँसू भरि भरि ढरि गोरो गोरो मुख आजु ओरो सो बिलानो जात ॥९॥

कोई कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ कोई कहौ रंकिनी कलंकिनी कुनारी हौं। कैसो नर लोक परलोक बर लोकनि मैं लीन्हीं मैं अलोक लोक लोकनि तें न्यारी हौं। तन जाउ, मन जाउ, 'देव' गुरुजन जाउ, प्रान किन जाउ, टेक टरति न टारी हौं। वृन्दावन वारी बनवारी की मुकुट वारी पीतपट वारी वहि मूरति पै वारी हौं ॥१०॥

जब ते कुँवर कान्ह रावरी कला-निधान कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी सी। तब ही ते देव देखी देवता सी हँसति सी रीझति सी खीझति सी रूठति रिसानी सी। छोही सी छली सी छीन लीनी सी छकी छिन सी जकी सी टकी सी लगी थकी थहरानी सी। बींधी सी बँधी सी बिष बूड़ति बिमोहित सी बैठी बाल बकति बिलोकति बिकानी सी ॥११॥

बालम बिरह जिन जान्यो ना जनम भरि बरि बरि उठे ज्यों ज्यों बरसै बरफ राति। बीजनौ डुरावती सखी जन त्यों सीतहूँ मैं सौति के सराप तन तायनि तरफराति। देव कहैं स्वासन ही अँसुवा सुखात मुख निकसे न बात ऐसी सिसकी सरफराति। लोटि लोटि परत करोट पट पाटी लै लै सूखे जल सफरी ज्यों सेज पै फरफराति ॥१२॥

देव जू जो चित चाहिये नाह तो नेह निबाहिये देह हरचो परै।
जो समझाइ सुझाइये राह अमारग मैं पग धाखे धरचो परै।

नीके मैं फीके ह्वै आँसू भरो कत ऊँचे उसाँस गरो क्यों भरचो परै।
रावरो रूप पियो अँखियान भरचो सो भरचो उवरचो सो ढरचो परै ।।१३।।

चोट लगी इन नैनन की दिनहूँ इन खोरिन सों कढ़ती हौ।
देखन में मन मोहि लियो छिपि ओट झरोखन के झँकती हौ ।।
'देव' कहै तुम हौ कपटी तिरछी अँखियाँ करि कै तकती हौ।
जानि परै न कछू मन की मिलिहौ कबहूँ कि हमैं ठगती हो ।।१४।।

भेस भये विष भावते भूखन भूख न भोजन की कछु ईछी।
मीचु की साध न सोंधे की साध न दूध सुधा दधि माखन छीछी ।।
चंदन तौ चितयो नहिं जात चुभी चित माहिं चितौनि तिरीछी।
फूल ज्यों सूल सिला सम सेज बिछौननि बीच बिछी जनु बीछी ।।१५।।

जाके न काम न क्रोध विरोध न लोभ छुवै नहि छोभ को छाहौं।
मोह न जाहि रहै जग वाहिर मोल जवाहिर ता अति चाहौं ।।
बानी पुनीत त्यों देवधुनी रस आरद सारद के गुन गाहौं।
सील ससी सविता छविता कविता हि रचै कवि ताहि सराहौं ।।१६।।

कंचन बेलि सी नौल बधू जमुनाजल केलि सहेलिनि आनी।
रोमवली नवली कहि देव सु गोरे से गात नहात सुहानी ।।
कान्ह अचानक बोलि उठे उर बाल के ब्यालबधू लपटानी।
धाइ कै धाइ गही ससवाइ दुहूँ कर झारति अंग अयानी ।।१७।।

बारे बड़े उमड़े सब जैबे को हौं न तुम्हें पठवौं बलिहारी।
मेरे तो जीवन देव यही धनु या ब्रज पाई मैं भीख तिहारी ।।
जानै न रीति अथाइन की नित गाइन मैं बन भूमि निहारी।
याहि कोऊ पहिचानै कहा कछु जानै कहा मेरो कुंजविहारी ।।१८।।

प्रेम पयोधि परो गहिरे अभिमान को फेन रह्यो गहि रे मन।
कोप तरङ्गनि सों बहि रे पछिताय पुकारत क्यों बहिरे मन ।।
देव जू लाज जहाज तें कूदि रह्यो मुख मूँदि अजौं रहि रे मन।
जोरत तोरत प्रीति तुही अब तेरी अनीति तुही सहि रे मन ।।१९।।

आई हुती अन्हवावन नाइनि सोंधे लिये वह सूधे सुभायनि।
कंचुकी छोरी उतै उपटैबे को ईगुर से अँग की सुखदायनि॥
'देव' सरूप की रासि निहारति पाँय ते सीस लौं सीस ते पायनि।
ह्वै रही ठौर ही ठाढ़ी ठगी सी, हँसे कर ठोड़ी धरे ठकुरायनि॥२०॥

ऐसो जो हौं जानतो कि जैहै तू विषै के संग ए रे मन मेरे, हाथ पाँव तेरे तोरतो। आजु लौं हौं कत नरनाहन की नाहीं सुनि, नेह सों निहारि हारि बदन निहारतो। चलन न देतो 'देव' चंचल अचल करि, चाबुक चितावनीन मारि मुँह मोरतो। भारी प्रेम पाथर नगारो दै गरे सों बाँधि राधावर विरुद के बारिधि में बोरतो॥२१॥

श्रीपति

श्रीपति कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका निवास-स्थान काल्पी था। इन्होंने सं० १७७७ में काव्य-सरोज नामक ग्रन्थ बनाया। इसके सिवा विक्रम-विलास, कवि-कल्पद्रुम, सरोज-कलिका, अलंकार-गंगा आदि ग्रन्थ भी इनके रचे हुये कहे जाते हैं। ये अच्छे कवि थे। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं :—

उर्द के पचाइबे को हींग अरु सोंठ जैसे केरा के पचाइबे को घिव निरधार है। गोरस पचाइबे को सरसों प्रबल दण्ड आम के पचाइबे को नीबू को अचार है। श्रीपति कहत परधन के पचाइबे को कानन छुआय हाथ कहिबो नकार है। आज के जमाने बीच राजा राव जाने सबै रीझि के पचाइबे को वाह वा डकार है॥१॥

सारस के नादन को बाद ना सुनात कहूँ नाहक ही बकबाद दादुर महा करै। श्रीपति सुकवि जहाँ ओज ना सरोजन की फूल ना फुलत जाहि चित दै चहा करै। बकन की बानी की बिराजत है राजधानी काई सो कलित पानी फेरत हहा करै। घोंघन के जाल जामें नरई सेवाल व्याल ऐसे पापी ताल को मराल लै कहा करै॥२॥

ताल फीको अजल कमल बिन जल फीको कहत सकल कवि हवि फीको रूम को। बिन गुन रूप फीको ऊसर को कूप फीको परम अनूप भूप फीको बिन भूम को। श्रीपति सुकवि महा वेग बिन तुरी फीको जानत जहान सदा जोह फीको धूम को। मेह फीको फागुन अवालक को गेह फीको नेह फीको तिय को सनेह फीको सूम को ।।३।।

तेल नीको तिलको फुलेल अजमेर ही को साहब दलेल नीको सैल नीको चंद को। विद्या को बिवाद नीको रामगुन नाद नीको कोमल मधुर सदा स्वाद नीको कंद को। गऊ नवनीत नीको ग्रीषम को शीत नीको श्रीपति जू मीत नीको बिना फरफंद को। जातरूप घट नीको रेशम को पट नीको बंसीवट तट नीको नट नीको नन्दको ।।४।।

चोरी नीकी चोर की सुकवि की लवारी नीकी गारी नीकी लागती ससुरपुर धाम की। नाही नीकी मानकी सयान की जबान नीकी तान नीकी तिरछी कमान मुलतान की। तातहू की जीति नीकी निगम प्रतीति नीकी श्रीपति जू प्रीति नीकी लागे हरिनाम की। रेवा नीकी बानखेत मुँदरी सुवा की नीकी मेवा नीकी काबुल की सेवा नीकी राम की ।।५।।

कीरति किसोरी गोरी तेरे गात की गुराई बीज सी सुहाई तेरे विधु-कर जाल सी। सहज सुवास सखी केसर सी केतकी सी कौल सी सुखद अति अमल मराल सी। 'श्रीपति' निदाघ नवनीत मखमल सम सर्द ऋतु गरम परम मिही साल सी। कनक प्रवाल सी नवीन दिनपाल सी कपूर की मसाल सी सलोनी लाल माल सी ।।६।।

रोहिनी रमन की मरीची सी सुखद सींवी सोहनी सरस महा मोहनी के थल सी। 'श्रीपति' सुकवि छवि रवि वाल कर सो है मैन के मुकुर सी अमल गंग जल सी। गोरी गरबीली तेरे गात की गुराई आगे चपला निकाई अति लागत सहल सी। माखन महल सी पराग के चहल सी गुलाबके पहल सी नरम मखमल सी ।।७।।

हारि जात बारिजात मालती बिदारि जात बारि जात पारिजात सोधन मैं करी सी। माखनसी मैन सी मुरारी मखमल सम कोमल सरस तन फूलन की छरी सी। गहगही गरुवी गुराई गोरी गोरे गात श्रीपति बिलौर सीसी ईगुर सौं भरी सी। बिज्जु थिर धरी सी कनक रेख करी सी प्रवाल छवि हरी सी लसत लाल लरी सी ॥८॥

कैसे रतिरानी के सिंधोरे कवि श्रीपति जू जैसे कलधौत के सरोरुह सँवारे हैं। कैसे कलधौत के सरोरुह सँवारे कहि जैसे रूप नट के बटा से छवि ढारे हैं। कैसे रूप नट के बटा से छवि ढारे कहु जैसे काम भूपति कै उलटे नगारे हैं। कैसे काम भूपति के उलटे नगारे कहु जैसे प्राणप्यारी ऊँचे उरज तिहारे हैं ॥९॥

वृन्द

वृन्द औरंगज़ेब के दरबारी कवि थे। औरेगज़ेब का पोता अज़ीमुश्शान ब्रजभाषा और उर्दू का अच्छा कवि और कवियों का आश्रय-दाता था। उसने वृन्द को औरेगज़ेब से माँग लिया था। वह बंगाल, बिहार और उड़ीसे का सूबेदार था, और ढाके में रहा करता था। वृन्द को भी वह अपने साथ ढाके ही में रखता था।

वृन्द ने सात सौ दोहों की दृष्टान्त-सतसई या वृन्दविनोद-सतसई नाम की पुस्तक लिखी है। उसके अन्त में कवि ने स्वयं लिखा है :—

समय सार दोहानि कौ, सुनत होय मन मोद।
प्रगट भई यह सतसई, भाषा बृन्दविनोद ॥
अति उदार, रिझवार जग, शाह अज़ीमुश्शान।
सतसैया सुनि बृन्द को, कीनी अति सनमान ॥

संवत ससि रस बार ससि , कातिक सुदि ससि बार।
सातैं ढाका सहर में , उपज्यो यहै विचार।।

अन्तिम दोहे से सतसई का निर्माण-काल सं० १७६१, कार्तिक शुक्ला सप्तमी, सोमवार निकलता है। और यह भी पता चलता है कि सतसई ढाका शहर में लिखी गई।

वृन्दावन-निवासी स्व० गोस्वामी किशोरीलालजी ने वृन्द कवि के विषय में काँकरौली-नरेश स्व० श्री गोस्वामी बालकृष्णलालजी से सुनी हुई कुछ बातें प्रकाशित की हैं। उनमें से कुछ ये हैं :—

"यह कवि गौड़ ब्राह्मण कुल में मथुरा प्रांत के किसी गाँव में पैदा हुआ था। इसने कहाँ और कितनी शिक्षा पाई, इसका कुछ पता नहीं। किसी तरह यह औरंगज़ेब के दरबार में पहुँच गया, और दरबारी कवि बना लिया गया। एक दिन यह मथुरा के उस पार श्रीगोकुलजी के ठाकुर श्री गोकुलनाथजी के दर्शनों को गया। और वहाँ के तत्कालीन गोस्वामी जी का शिष्य हो गया। इसीसे इसने अपनी सतसई के मङ्गलाचरण में 'श्री गुरुनाथ प्रभाव तें' इत्यादि कहकर वस्तु-निर्देशात्मक मङ्गलाचरण किया है। श्री गोकुलनाथजी की गद्दी के आरंभ से लेकर आजतक जितने शिष्य हुये हैं, उन सब का संक्षिप्त इतिवृत्त वहाँ के बही-खातों में लिखा हुआ है। सिहोर के श्रीयुत गोविन्द गिल्लाभाई कहते हैं कि 'वृन्द का जन्म मारवाड़ में जोधपुर तावा के मेड़ता गाँव में हुआ है। उनके वंशज आजकल मेड़ता में, जयपुर में और किसनगढ़ में रहते हैं।' उन्होंने वृन्द कवि के बनाये सब ग्रन्थों के नाम और चित्र देकर उनका जीवन चरित्र छपाया है।"

"वृन्द कवि ने दृष्टान्त-सतसई के अतिरिक्त और भी कोई काव्य-ग्रन्थ बनाया होगा। कारण, उसकी छाप के कवित्त, सवैये और पद आदि भी सुनने में आते हैं।"

सतसई के सिवा वृन्द-रचित 'भाव पंचासिका' नाम की एक और पुस्तक सुनी जाती है। इसका नाम हमें भारतीजीवन प्रेस की पुस्तकों के सूचीपत्र में मिला था ; पर पुस्तक हमारे देखने में नहीं आई। याद पड़ता

है कि भारतजीवन के सूचीपत्र में यह भी ज़िक्र था कि पुस्तक सवैया छन्दों में है। मिश्रबन्धुओं ने अपने विनोद में वृन्द-रचित 'शृङ्गार शिक्षा' नाम की एक और पुस्तक का उल्लेख किया है।

वृन्द का जन्म-संवत् १७४२ के लगभग माना जाता है; क्यों कि वृन्द ने १७६१ में सतसई लिखी। १७४२ को जन्म-संवत् मानने से उस समय उनकी आयु १९ वर्ष की हुई। सतसई लिखने के पहले वे शिक्षा पाकर औरंगज़ेब के दरबार में पहुँचे। वहाँ कुछ दिन रहकर अपनी कवित्व-शक्ति का परिचय देकर ही वे अज़ीमुश्शान के कृपापात्र हुये होंगे। इतना सब १९ वर्ष की आयु में किसी दैवी शक्ति ही से संभव है। दृष्टान्त-सतसई जैसा अनुभव-पूर्ण ग्रन्थ लिखने के समय वृन्द की आयु ३० वर्ष से कम न रही होगी। अतएव वृन्द का जन्म संवत् १७३० के लगभग मानना चाहिये।

वृन्द की कविता नीति-विषयक है। हिन्दी में वृन्द के समान किसी कवि ने नीति पर सुन्दर दोहे नहीं लिखे। दोहों की भाषा बड़ी सरल है, और बोलचाल में दृष्टान्त के ढंग पर शहरों से लेकर गाँवों तक उनका प्रचार भी बहुत है। दोहों के सिवा वृन्द की अन्य कविता भी बहुत सरस है। उनका एक प्रसिद्ध सवैया यहाँ लिखा जाता है—

जो कछु वेद पुरान कही सुनि लीनी सबै जुग कान पसारे।
लोकहु में यह ख्यात प्रथा छिन में खल कोटि अनेकन तारे।
'वृन्द' कहै गहि मौन रहै किमि हौं हठ कै बहु बार पुकारे।
बाहर ही के नहीं सुनौ हे हरि! भीतर हू ते अहौ तुम कारे॥

यह सवैया भाव-पंचासिका का जान पड़ता है। आगे दृष्टान्त-सतसई से कुछ दोहे चुनकर लिखे जाते हैं:—

नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में, रस शृँगार न सुहात॥१॥
फीकी पै नीकी लगै, कहिये समय बिचारि।
सब को मन हर्षित करै, ज्यौं विवाह में गारि॥२॥

जो जाको गुन जानही , सो तिहिं आदर देत।
कोकिल अंबहि लेत है , काग निबौरी हेत ।।३।।
जाही ते कछ पाइये , करिये ताकी आस।
रीते सरवर पै गये , कैसे बुझत पियास ।।४।।
गुन हो तऊ मँगाइये , जो जीवन सुख भौन।
आग जरावत नगर तऊ , आग न आनत कौन ।।५।।
रस अनरस समझे न कछु , पढ़ै प्रेम को गाथ।
बीछू मन्त्र न जानहीं , साँप पिटारे हाथ ।।६।।
कैसे निबहै निबल जन , कर सबलन सों गैर।
जैसे बस सागर विषे , करत मगर सों बैर ।।७।।
दीबो अवसर को भलो , जासों सुधरै काम।
खेती सूखे बरसिबो , घन को कौने काम ।।८।।
अपनी पहुँच विचारि कै , करतब करिये दौर।
तेते पाँव पसारिये , जेती लाँबी सौर ।।९।।
पिसुन छल्यो नर सुजनसों , करत बिसास न चूकि।
जैसे दाध्यो दूध को , पीवत छाँछहि फूँकि ।।१०।।
विद्याधन उद्यम बिना , कहौ जु पावै कौन।
बिना डुलाये न मिले , ज्यों पंखा की पौन ।।११।।
ओछे नर की प्रीति की , दीनी रीति बताय।
जैसे छीलर ताल जल , घटत घटत घटि जाय ।।१२।।
बुरे लगत सिख के बचन , हिये विचारो आप।
करुवी भेषज बिन पिये , मिटै न तन की ताप ।।१३।।
गुरुता लघुता पुरुष की , आश्रय वश तें होय।
करी वृंद में विंध्य सों , दर्पन में लघु सोय ।।१४।।
रहे समीप बड़ेन के , होत बड़ो हित मेल।
सबही जानत बढ़त है , बृक्ष बराबर बेल ।।१५।।

होय बड़ेरु न हूजिये , कठिन मलिन मुख रङ्ग ।
मर्दन बंधन छत सहत , कुच इन गुननि प्रसंग ।।१६।।
कहूँ जाहु नाहिंन मिटत , जो विधि लिख्यो लिलार ।
अंकुस भय करि कुंभ कुच , भये तहाँ नख मार ।।१७।।
फेर न ह्वै है कपट सों , जो कीजै ब्यौपार ।
जैसे हाँडी काठ की , चढ़ै न दूजी वार ।।१८।।
करिये सुख को होत दुख , यह कहो कौन सयान ।
वा सोने को जरिये , जासों टूटे कान ।।१९।।
नयना देत बताय सब , हिय कौ हेत अहेत ।
जैसे निर्मल आरसी , भली बुरी कहि देत ।।२०।।
अति परचै ते होत है , अरुचि अनादर भाय ।
मलयागिरि की भीलनी , चंदन देति जराय ।।२१।।
भले बुरे सब एक सों , जौं लौं बोलत नाहिं ।
जानि परतु हैं काक पिक , ऋतु बसंत के माहिं ।।२२।।
निष्फल श्रोता मूढ़ पै , कविता बचन विलास ।
हाव भाव ज्यों तीयके , पति अंधे के पास ।।२३।।
हितहू की कहियै न तिहि , जो नर होय अबोध ।
ज्यों नकटे को आरसी , होत दिखाये क्रोध ।।२४।।
सबै सहायक सबल के , कोउ न निबल सहाय ।
पवन जगावत आग को , दीपहिं देत बुझाय ।।२५।।
कछु बसाय नहिं सबल सों , करै निबल पर जोर ।
चले न अचल उखार तरु , डारत पवन झकोर ।।२६।।
रोष मिटै कैसे कहत , रिस उपजावन बात ।
ईंधन डारे आग मों , कैसे आग बुझात ।।२७।।
जो जेहि भावे सो भलौ , गुन को कछू न विचार ।
तज गजमुकता भीलनी , पहिरति गुंजा हार ।।२८।।

दुष्ट न छाँड़े दुष्टता , कैसे हूँ सुख देत।
धोये हूँ सौ बेरके , काजर होत न सेत ।।२९।।
कहुँ अवगुन सोइ होत गुन , कहुँ गुन अवगुन होत।
कुच कठोर त्यों हैं भले , कोमल बुरे उदोत ।।३०।।
जाको जैसो उचित तिहिं , करिये सोइ बिचारि।
गोदर कैसे ल्याइ है , गजमुक्ता गज मारि ।।३१।।
जैसे बंधन प्रेम को , तैसो बंध न और।
काठहि भेदै कमल को , छेद न निकरै भौंर ।।३२।।
जे चेतन ते क्यों तजैं , जाको जासों मोह।
चुंबक के पीछे लग्यो , फिरत अचेतन लोह ।।३३।।
जो पावै अति उच्च पद , ताको पतन निदान।
ज्यों तपि तपि मध्याह्न लौ , अस्त होतु है भान ।।३४।।
जिहिं प्रसंग दूषन लगे , तजिये ताको साथ।
मदिरा मानत है जगत , दूध कलाली हाथ ।।३५।।
जाके सँग दूषण दुरै , करिये तिहि पहिचानि।
जैसे समझै दूध सब , सुरा अहीरी पानि ।।३६।।
मूरख गुन समझै नहीं , तौ न गुनी में चूक।
कहा घटयो दिन को बिभौ , देखै जौ न उलूक ।।३७।।
करै बुराई सुख चहै , कैसे पावै कोइ।
रोपै बिरवा आक को , आम कहाँ ते होइ ।।३८।।
बहुत निबल मिल बल करैं , करैं जु चाहैं सोय।
तिनकन की रसरी करी , करी निबन्धन होय ।।३९।।
साँच झूँठ निर्णय करै , नीति निपुन जो होय।
राजहंस बिन को करै , छीर नीर को दोय ।।४०।।
दोषहिं को उमहै गहै , गुन न गहै खल लोक।
पियै रुधिर पय ना पियै , लागि पयोधर जोंक ।।४१।।

कारज धीरे होतु है, काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फरै, केतिक सींचो नीर ॥४२॥
क्यों कीजै ऐसो जतन, जातें काज न होय।
परबत पर खोदै कुँआ, कैसे निकसै तोय ॥४३॥
वीर पराक्रम ना करे, तासों डरत न कोइ।
बालकहू को चित्र को, बाघ खिलौना होइ ॥४४॥
उत्तम जन सों मिलत ही, अवगुन सो गुन होय।
घन सँग खारो उदधि मिलि, बरसै मीठो तोय ॥४५॥
करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें, सिल पर परत निसान ॥४६॥
भली करत लागत बिलम, बिलम न बुरे बिचार।
भवन बनावत दिन लगै, ढाहत लगत न बार ॥४७॥
कुल सपूत जान्यौ परै, लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात ॥४८॥
छोटे मन में आय है, कैसे मोटी बात।
छेरी के मुँह में दियौ, ज्यों पेठा न समात ॥४९॥
होत निबाह न आपनो, लीने फिरै समाज।
चूहा बिल न समात है, पूँछ बाँधिये छाज ॥५०॥
अपनी प्रभुता को सबै, बोलत झूँठ बनाय।
वेश्या बरस घटावहीं, योगी बरस बढ़ाय ॥५१॥
कछु कहि नीच न छेड़ियै, भलो न वाको संग।
पाथर डारे कीच में, उछरि बिगारै अंग ॥५२॥
ऊपर दरसै सुमिल सी, अन्तर अनमिल आँक।
कपटी जन की प्रीति है, खीरा की सी फाँक ॥५३॥
सब सों आगे होय कै, कबहुँ न करिये बात।
सुधरे काज समाज फल, बिगरे गारी खात ॥५४॥

बुरौ तऊ लागत भलौ, भली ठौर पर लीन।
तिय नैननि नीकौ लगे, काजर जदपि मलीन ।।५५।।
गुरुमुख पढ़्यो न कहतु है, पोथी अर्थ विचारि।
सो सोभा पावै नहीं, जार-गर्भ-युत नारि ।।५६।।
छमा खड्ग लीने रहै, खल को कहा बसाय।
अगिन परी तृन रहित थल, आपहि ते बुझि जाय ।।५७।।
ओछे नर के पेट में, रहै न मोटी बात।
आध सेर के पात्र में, कैसे सेर समात ।।५८।।
बचन रचन कापुरुष के, काहे न छिन ठहराय।
ज्यों कर पद मुख कछप के, निकसि निकसि दुरि जाय ।।५९।।
जूवा खेले होतु है, सुख सम्पति को नास।
राजकाज नल ते छुट्यो, पाँडव किय बनवास ।।६०।।
सरस्वति के भंडार की, बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खरचै त्यौं त्यौं बढ़ै, बिन खरचे घटि जात ।।६१।।
बिरह पीर व्याकुल भए, आयो पीतम गेह।
जैसे आवत भाग ते, आग लगे पर मेह ।।६२।।
भले बंस को पुरुष सो, निहुरै बहु धन पाय।
नवै धनुष सद बंस को, जिहि द्वै कोटि दिखाय ।।६३।।
लोकन के अपवाद को, डर करिये दिन रैन।
रघुपति सीता परिहरी, सुनत रजक के बैन ।।६४।।
कहा कहौं विधि को अविधि, भूले परे प्रबीन।
मूरख को संपति दई, पंडित संपति हीन ।।६५।।
वह संपति केहि काम की, जिन काहू पै होउ।
नित्य कमावै कष्ट करि, बिलसै औरहि कोउ ।।६६।।
तृनहूँ ते अरु तूल ते, हरुवो याचक आहि।
जानतु है कछु माँगि है, पवन उड़ावत नाहि ।।६७।।

सेइय नृप गुरु तिय अनिल, मध्य भाग जग माहिं।
है बिनास अति निकट तें, दूर रहे फल नाहिं॥६८॥

बैताल

बैताल कवि का जन्म सं० १७३४ में हुआ। ये विक्रमशाह के दरबार में रहते थे। इन्होंने अपने छन्द प्रायः विक्रम को सम्बोधन करके बनाये हैं। ये नीति-विषयक बड़ी अच्छी कविता करते थे। इनका रचा हुआ कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। केवल थोड़े से स्फुट छन्द मिलते हैं। उनमें से कुछ छन्दों को हम नीचे प्रकाशित करते हैं :—

जीभि जोग अरु भोग जीभि बहु रोग बढ़ावै।
जीभि करै उद्योग जीभि लै कैद करावै॥
जीभि स्वर्ग लै जाय जीभि सब नरक दिखावै।
जीभि मिलावै राम जीभि सब देह धरावै॥
निज जीभि ओठ एकग्र करि बाँट सहारे तोलिये।
बैताल कहै विक्रम सुनो जीभि सँभारे बोलिये॥१॥

टका करै कुलहूल टका मिरदङ्ग बजावै।
टका चढ़े सुखपाल टका सिर छत्र धरावै॥
टका माय अरु बाप टका भैयन को भैया।
टका सास अरु ससुर टका सिर लाड़ लड़ैया॥
अब एक टके बिनु टकटका रहत लगाये रातदिन।
बैताल कहै विक्रम सुनो धिक जीवन एक टके बिन॥२॥

मरै बैल गरियार मरै वह अड़ियल टट्टू।
मरै करकसा नारि मरै वह खसम निखट्टू॥

बाँभन सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै।
पूत वही मरि जाय जु कुल में दाग लगावै॥
अरु बे नियाव राजा मरै तबै नींद भरि सोइये।
बैताल कहै विक्रम सुनो एते मरे न रोइये॥३॥

राजा चंचल होय मुलुक को सर करि लावै।
पंडित चंचल होय सभा उत्तर दै आवै॥
हाथी चंचल होय समर में सूँड़ि उठावै।
घोड़ा चंचल होय झपटि मैदान देखावै॥
हैं ये चारों चंचल भले राजा पंडित गज तुरी।
बैताल कहै विक्रम सुनो तिरिया चंचल अति बुरी॥४॥

दया चट्ट ह्वै गई धरम धँसि गयो धरन में।
पुन्य गयो पाताल पाप भो बरन बरन में॥
राजा करै न न्याय प्रजा की होत खुवारी।
घर घर में बेपीर दुखित भे सब नर नारी॥
अब उलटि दान गजपति मँगै सील सँतोष कितै गयो।
बैताल कहै विक्रम सुनो यह कलजुग परगट भयो॥५॥

मर्द सीस पर नवै मर्द बोली पहिचानै।
मर्द खिलावै खाय मर्द चिन्ता नहिं मानै॥
मर्द देय औ लेय मर्द को मर्द बचावै।
गाढ़े सँकरे काम मर्द के मर्द आवै॥
पुनि मर्द उनहिं को जानिये दुख सुख साथी दर्द के।
बैताल कहै विक्रम सुनो लच्छन हैं ये मर्द के॥६॥

चोर चुप्प ह्वै रहै रैन अँधियारी पाये।
संत चुप्प ह्वै रहै मढ़ी में ध्यान लगाये॥
बधिक चुप्प ह्वै रहै फाँसि पंछी लै आवै।
छैल चुप्प ह्वै रहै सेज पर तिरिया पावै॥

बर पिपर पात हस्ती स्रवन कोइ कोइ कवि कुछ कुछ कहैं।
बैताल कहै विक्रम सुनो चतुर चुप्प कैसे रहैं ॥७॥

ससि बिन सूनी रैन ज्ञान बिन हिरदै सूनो।
कुल सूनो बिनु पुत्र पत्र बिन तरुवर सूनो॥
गज सूनो इक दंत ललित बिन सायर सूनो।
बिप्र सून बिन वेद और बिन पुहुप बिहूनो॥

हरि नाम भजन बिन संत अरु घटा सून बिन दामिनी।
बैताल कहै विक्रम सुनो पति बिन सूनी कामिनी ॥८॥

बुधि बिन करे बेपार दृष्टि बिन नाव चलावे।
सुर बिन गावे गीत अर्थ बिन नाच नचावे॥
गुन बिन जाय बिदेस अकल बिन चतुर कहावे।
बल बिन बाँधे युद्ध हौंस बिन हेत जनावे॥

अनइच्छा इच्छा करे, अनदीठी बातां कहे।
बैताल कहै विक्रम सुनो, यह मूरख की जात है ॥९॥

पग बिन कटे न पंथ बाहु बिन हटे न दुर्जन।
तप बिन मिले न राज भाग्य बिन मिले न सज्जन॥
गुरु बिन मिले न ज्ञान द्रव्य बिन मिले न आदर।
बिना पुरुष सिंगार मेघ बिन कैसे दादुर॥

बैताल कहै विक्रम सुनो, बोल बोल बोली हटे।
धिक्क धिक्क ये पुरुष को, मन मिलाइ अंतर कटे ॥१०॥

उदयनाथ (कवीन्द्र)

कवीन्द्र उदयनाथ कालिदास त्रिवेदी के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १७३६ के लगभग हुआ। ये अमेठी (सुलतानपुर) के राजा हिम्मत सिंह और उनके पुत्र गुरुदत्त सिंह के पास रहा करते थे। ये भगवन्त राय खीची और बूंदी के राव बुद्ध सिंह के यहाँ भी गये थे, और वहाँ इन्हें बड़ा सम्मान भी मिला था। इनका रस-चन्द्रोदय नामक ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। इनकी कविता ब्रजभाषा में शृंगार-विषयक अच्छी है।

इनके कुछ छन्द यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

कुंजन तें मग आवत गावत राग बनावत देवगिरी को।
सो सुनि कै वृषभानुसुता तलफै जिमि पंजर जीव चिरी को।
तार थकै नहिं नैनन तें सजनी अँसुवान की धार झिरी को।
मार मनोहर नंदकुमार के हार हिये लखि मौलसिरी को।।१।।

छिति छमता की परमिति मृदुता की कैधौं ताकी है अनीति सौंति जनताकी देह की। सत्य की सता है, सील तरु की लता है रसता है कै विनीत परतीत निज नेह की। भनत कविन्द सुर नर नाग नारिन की सिच्छा है कि इच्छा रूप रच्छन अछेह की। पतिव्रत पारावार वारी कमला है साधुता की कै सिला है कै कला है कुल गेह की।।२।।

कैसी ही लगन जामे लगन लगाई तुम प्रेम की पगनि के परेखे हिये कसकै। केतिको छपाय के उपाय उपजाय प्यारे तुम तें मिलाप के बढ़ाये चोप चसकै। भनत कविन्द हमें कुंज में बुलाय कर बसे कित जाय दुख देकर अवस के। पगनि में छाले परे नाँघिबे को नाले परे तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के।।३।।

ऐसे मैं न मैन के न देखे ऐन सैन के जगैया दिन रैन के जितैया सौंति सीन के। कमल कलीन मुकुलित जु करनहार कानन की कोरन लौं कोरन रँगीन के। भनत कविन्द भावती के नैन चायक से देखे मैं न पायक से नायक नवीन के। साँचे हैं अमीन के अमीन मानो मीन के बखानै को मृगीन के खगीन पन्नगीन के।।४।।

राजै रस मैं री तैसी बरसा समै री चढ़ी चंचला नचैरी चकचौंधा कौंधा वारैं री। व्रती व्रत हारैं हिये परत फुहारैं कछू छोरैं कछू धारैं जलधर जलधारैं री। भनत कविन्द कुञ्ज भौन पौन सौरभ सों काके न कँपाय प्रान परहथ पारैं री। काम केतुका से फूल डोलि डोलि डारें मन औरे किये डारैं ये कदम्बन की डारैं री ।।५।।

सहर मझारत पहर एक लागि जैहैं छोर में नगर के सराय है उतारे की। कहत कविन्द मग माँझही परैगी साँझ खबर उड़ानी है बटोही द्वैक मारे की। घर के हमारे परदेश को सिधारे याते दया के बिचारे हम रीति राह वारे की। उतरो नदी के तीर बर के तरेही तुम चौंको जिन चौकी तहाँ पाहरू हमारे की ।।६।।

नेवाज

नेवाज नाम के दो-तीन कवि पाये जाते हैं। एक नेवाज महाराज छत्रसाल बुंदेला के यहाँ थे। ये जाति के ब्राह्मण थे। दूसरे नेवाज बिलग्राम के जुलाहे थे। तीसरे नेवाज शिवसिंह के कथनानुसार गाजीपुर के भगवंतराय खीची के यहाँ थे। दूसरे और तीसरे नेवाज साधारण कवि थे। अतएव हम यहाँ प्रथम नेवाज ही की चर्चा करते हैं।

ठाकुर शिवसिंह ने इनका जन्म सं० १७३९ माना है, और जन्म-स्थान अंतर्वेद बतलाया है। ये छत्रसाल के समय में थे, इसके प्रमाण में ठाकुर साहब ने एक दोहा लिखा है—

तुम्है न ऐसी चाहिये, छत्रसाल महराज।
जहँ भगवत गीता पढ़ी, तहँ कवि पढ़त नेवाज।।

यह दोहा, मालूम होता है, भगवत के स्थान पर नेवाज के नियुक्त किये जाने पर बना था।

नेवाज ब्राह्मण थे। शकुन्तला नाटक के सिवा इनका रचा हुआ कोई ग्रंथ नहीं मिलता। कहीं-कहीं पुस्तकों में इनके फुटकर छंद मिलते हैं। नेवाज बड़े रसिक कवि थे। कही-कहीं भावों में इन्होंने बड़ी अश्लीलता भी भर दी है। इनके कुछ छंद नीचे लिखे जाते हैं—

देखि हमैं सब आपुस में जो कछु मन भावै सोई कहती हैं।
ए घरहाई लोगाई सबै निसि द्योस नेवाज हमैं दहती हैं।।
बातैं चबाव भरी सुनि कै रिसि आवत पै चुप ह्वै रहती हैं।
कान्ह पियारे तिहारे लिये सिगरे ब्रज को हँसिबो सहती हैं।।१।।
पीठि दै पौढ़ि दुराय कपोल को मानै न कोटि पिया उत पोढ़त।
बाँहन बीच हिए कुच दोऊ गहे रसना मनहीं मन सोचत।।
सोवत जानि निवाज पिया कर सों कर दै निज ओर करोटत।
नीबी बिमोचत चौंकि परी मृग छौना सी बाल बिछौना पै लोटत।।२।।

पारथ समान कीन्हों भारथ मही मैं आनि बाँधि सिर बाना ठायो सरम सपूती को। कोर कोर कटि गयो हटि कै न पग दयो लयो रन जीति किरवान करतूती को। भनत नेवाज दिल्लीपति सों सहादत खाँ करत बखान एती मान मजबूती को। कतल मरद्द नद्द सोनित सों भरि गयो करि गयो हद्द भगवन्त रजपूती को।।३।।

आगे तौ कीन्हीं लगालगी लोयन कैसे छिपै अजहूँ जौ छिपावति।
तू अनुराग कौ सोध कियो ब्रज की बनिता सब यों ठहरावति।।
कौन सकोच रह्यो है नेवाज जौ तू तरसै उनहूँ तरसावति।
बावरी जो पै कलंक लग्यो तौ निसंक ह्वै क्यों नहिं अंक लगावति।।४।।

रसलीन

सैयद गुलाम नबी बिलग्रामी का उपनाम रसलीन था। बिलग्राम ज़िला हरदोई में एक मशहूर कस्बा है। वहाँ बहुत दिनों से बड़े-बड़े विद्वान् मुसलमान होते आये हैं, और अब भी वर्त्तमान हैं। रसलीन वहीं के रहने वाले थे। इनका जन्म अनुमान से सं० १७४६ के लगभग हुआ। इनके रचे हुए दो ग्रन्थ मिलते हैं—अंग-दर्पण और रस-प्रबोध। अंग-दर्पण में नखशिख का वर्णन है और रस-प्रबोध में रसों का। मुसलमान होकर ब्रजभाषा में ऐसी सुन्दर रचना करने के लिये रसलीन धन्यवाद के पात्र हैं। शिवसिंह ने इनको अरबी फ़ारसी का आलिम फ़ाज़िल और भाषा-कविता में बड़ा निपुण बताया है। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

मुख ससि निरखि चकोर अरु, तन पानिप लखि मीन।
पद पंकज देखत भँवर, होत नयन रसलीन॥१॥
धरति न चौकी नग जरा, यातें उर में लाइ।
छाँह परे पर पुरुष की, जिन तिय धरम नसाइ॥२॥
चख चलि स्रवन मिल्यो चहत, कच बढ़ि छवन छवानि।
कटि निज दरब धरचो चहत, वक्षस्थल में आनि॥३॥
सौतिन मुख निसि कमल भो, पिय चख भये चकोर।
गुरु जन मन सागर भये, लखि दुलहिनि मुख ओर॥४॥
रमनी मन पावत नहीं, लाज प्रीति को अंत।
दुहूँ ओर ऐंचो रहै, ज्यों बिबि तिय को कंत॥५॥
लिखि बिरंचि राख्यो हुतौ, यह सँयोग इक संग।
कुच उतंग तिय उर चढ़ै, पिय उर चढ़ै अनंग॥६॥
यों तिय नैननि लाज ज्यों, लसत काम के भाय।
मिल्यो सलिल में नेह ज्यों, ऊपर ही दरसाय॥७॥
मुकुत भये घर खोय कै, कानन बैठे जाय।
घर खोवत हैं और को, कीजै कौन उपाय॥८॥

घाघ और लाल बुझक्कड़

घाघ कन्नौज-निवासी थे। कन्नौज में घाघ के वंशधर मौजूद हैं। ये दुबे ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १७५३ में कहा जाता है। ये कबतक जीवित रहे, इसका ठीक पता नहीं चलता। ये अकबर बादशाह के समय में थे। अकबर के नाम पर इन्होंने अकबराबाद सराय घाघ नाम का गाँव बसाया था, जो सराय घाघ या चौधरी सराय कहा जाता है।

इन्होंने कविता का कोई ग्रन्थ लिखा या नहीं, यह भी अभी तक अज्ञात है। पर इनके सामयिक नीति-संबन्धी छंद इतने लोक-प्रिय हैं कि गाँवों में बातचीत करते समय लोग उन्हें कहावतों की तरह प्रयोग करते हैं। किसानों में खेती-बारी के बहुत से काम इनके छन्दों के आधार पर ही होते है। इससे यह जान पड़ता है कि ये बड़े अनुभवी और प्रतिभावान कवि थे।

घाघ की मृत्यु के बारे मे कहा जाता है कि उन्होंने ज्योतिष से पता लगा लिया था कि उनकी मृत्यु तालाब में नहाते समय तालाब के बीच में गड़े हुए लकड़ी के खंभे से चोटी चिपक जाने से होगी। इससे घाघ कभी तालाब में नहाते नहीं थे और न मोटी चोटी ही रखते थे। एक दिन उनके कुछ मित्रों ने नहाते समय उन्हें भी तालाब में घसीट लिया। उस दिन सचमुच उनकी चोटी खंभे से चिपक गई; वे छुड़ा न सके और मर गये। मरते समय उन्होंने कहा था—

जानत रहा घाघ निर्बुद्धि।
आवै काल बिनासै बुद्धि॥

कहते हैं कि घाघ का गाँव गंगाजी के जिस किनारे पर था, ठीक उसके सामने दूसरे किनारे पर लालबुझक्कड़ का गाँव था।

घाघ बुद्धिमान, अनुभवी और प्रत्युत्पन्नमति थे। उनके गाँव वाले उनका आदर भी बहुत करते थे। घाघ ने भी लोगों की साधारण बोल चाल में छन्द रचकर उनमें ज्ञान का विकास किया था।

घाघ की प्रतिष्ठा और यश देखकर लालबुझक्कड़ से रहा न गया। वे भी उनके समान अपने ज्ञान की धाक जमाने के लिये उद्योग करने लगे। पर उनमें घाघ की सी प्रतिभा नहीं थी। संयोग से उनके गाँववाले भी वैसी ही समझ-बूझ के थे। उन्हें कोई भी नई बात देखकर आश्चर्य होता था और वे लालबुझक्कड़ के पास यह बूझने के लिये दौड़े जाते थे कि 'यह क्या है?' लालबुझक्कड़ को अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये कुछ न कुछ बूझना ही पड़ता था, इसलिये उनके नाम के साथ बुझक्कड़ उपाधि जुड़ गई। लाल उनका असली नाम था।

एक बार लालबुझक्कड़ के एक गाँववाले को राह में हाथी के पैर के चिह्न मिले। वह चकराया कि 'यह क्या है, जो लगातार दूर तक चला गया है?' इतनी बड़ी शंका का समाधान लालबुझक्कड़ के सिवा और कौन कर सकता था? वह अपना कामकाज छोड़कर इस शंका की निवृत्ति के लिये लालबुझक्कड़ के पास पहुँचा। लालबुझक्कड़ ने शंका सुनते ही हँसते हुए तत्काल उत्तर दिया—

लालबुझक्कड़ बूझते, और न बूझै कोय।
पैर में चक्की बाँध के, हरिना कूदा होय॥

इस तरह उन्होंने अपनी प्रखर बुद्धि से गाँववाले का समाधान कर दिया।

एक दिन एक गाँववाले को कहीं राह में लकड़ी का एक कोल्हू पड़ा हुआ मिला। कोल्हू पुराना होकर काम का न रहा होगा और किसी ने उसे लापरवाही से फेंक दिया होगा। गाँव वाले की समझ में यह बात न आई कि यह क्या पदार्थ है। वह लालबुझक्कड़ के घर पहुँचा। लालबुझक्कड़ ने सर्वज्ञ की तरह मुसकुराते हुए उत्तर दिया—

लालबुझक्कड़ बूझते, वे तो हैं गुरु ज्ञानी।
पुरानी होकर गिर पड़ी, खुदा की सुर्मादानी॥

इसी तरह लालबुझक्कड़ ने अपनी आशु कविता का चमत्कार दिखा कर घाघ को परास्त करने का प्रयत्न किया। पर आज हम घाघ को जहाँ किसानों में एक मित्र की भाँति सम्मति देते हुए पाते हैं, वहाँ लालबुझक्कड़ को विदूषक की तरह अपनी बे-सिर-पैर की बातों से हँसा-हँसाकर उनकी थकावट मिटाते और जी बहलाते हुये देखते हैं।

पर कविता की भाषा से घाघ कन्नौज के निवासी नहीं जान पड़ते। कुछ लोग इन्हें फ़तहपुर ज़िले के किसी गाँव का निवासी बतलाते हैं, और कुछ लोग छपरे का। जो लोग इन्हें छपरा-निवासी बतलाते हैं, उनका यह भी कहना है कि घाघ की पुत्र-वधू क़न्नौज की थी। उसने भी कुछ रचनायें की हैं, और घाघ की बातों का मज़ाक उड़ाते हुये खंडन किया है। कहा जाता है कि उसीसे झेंपकर घाघ घर छोड़कर कन्नौज जा बसे। यहाँ घाघ के कुछ छन्द लिखे जाते हैं:—

१

बनियक सखरज ठकुरक हीन। बयदक पूत व्याधि नहिं चीन॥
पंडित चुपचुप बेसवा मइल। कहैं घाघ पाँचो घर गइल॥

२

नसकट खटिया दुलकन घोर। कहें घाघ यह विपति क ओर॥

३

बाछा बैल बहुरिया जोय। ना घर रहे न खेती होय॥

४

भुइयाँ खेड़े हर ह्वै चार। घर ह्वै गिहिथिन गऊ दुधार॥
अरहर की दाल जड़हनका भात। गागल निबुआ औ घिउ तात॥
सह रस खंड दही जो होय। बाँके नैन परोसै जोय॥
कहे घाघ तब सब ही झूँठा। उहाँ छाँड़ि इहवें बैकुँठा॥

५

कुच कट पनहीं बतकट जोय । जो पहलौठी बिटिया होय ।।
पातरि कृषी बौरहा भाय । घाघ कहैं दुख कहाँ समाय ।।

६

मुये चाम से चाम कटावै , भुइँ सेंकरी मां सोवैं ।
घाघ कहैं ये तीनों भकुवा , उढ़रि गये पर रोवैं ।।

७

सुथना पहिरे हर जोतै , औ पौला पहिरि निरावै ।
घाघ कहैं ये तीनों भकुआ , सिर बोझा औ गावैं ।।

८

उधार काढ़ि ब्यौहार चलावै , छप्पर डारै तारो ।
सारे के सँग बहिनी पठवै , तीनिउ का मुँह कारो ।।

९

आलस नीद किसानै नासै , चोरै नासै खांसी ।
अँखिया लीवर बेसवै नासै , बावै नासै दासी ।।

१०

ना अति बरखा ना अति धूप । ना अति बकता ना अति चूप ।।
नरिका ठाकुर बूढ़ दिवान । ममिला बिगरै साँझ बिहान ।।

११

माघ क ऊखम जेठ क जाड़ । पहिले बरिखे भरिगै गाड़ ।।
कहैं घाघ हम होब बियोगी । कुँआ खोदि कै धोइहै धोबी ।।

१२

सावन सुकला सत्तमी , जो गरजे अधरात ।
तू पिय जइयो मालवा , हौं जैहौं गुजरात ।।

१३

सावन सुकला सत्तमी , चन्दा उगे तुरन्त ।।
की जल मिले समुद्र में , की नागरि कूप भरन्त ।।

१४

सावन सुकला सत्तमी , छिपि के ऊगे भानु।
तब लगि देव बरीसिहैं , जब लगि देव उठान।।

१५

सावन कृष्ण एकादसी , जेतो रोहिन होय।
तेतो समया जानियो , खरी घसै जिनि कोय।।

१६

बहु बाजार बनिहार बनि , बारी बेटा बैल।
व्योहर बढ़ई बन बबुर , बात सुनो यह छैल।।
जो बकार बारह बसै , सो पूरन गिरहस्त।
औरन को सुख दे सदा , आप रहै अलमस्त।।

१७

सावन पछिवाँ भादों पुरवा , आसिन बहै इसान।
कातिक कन्ता सीक न डोलै , गाजें सबै किसान।।

१८

गया पेड़ जब बकुला बैठा । गया गेह जब मुड़िया पैठा।।
गया राज जहँ राजा लोभी । गया खेत जहँ जामी गोभी।।

१९

घर घोड़ा पैदल चलै , तीर चलावे बीन।
थाती धरै दमाद घर , जग में भकुआ तीन।।

२०

सदाँ न बागाँ बुलबुल बोलै , सदाँ न बाग बहाराँ।
सदाँ न ज्वानी रहतो यारो , सदाँ न सोहबत याराँ।।

२१

नीचे ओद ऊपर बदराई । कहै घाघ अब गेरुई खाई।।

२२

पछिवाँ हवा ओसावै जोई । घाघ कहैं घुन कबहुँ न होई।।

२३

सावन केरे प्रथम दिन , उगत न दीखै भान।
चार महीना बरसै पानी , याको है परमान।।

२४

जेठ मास जो तपै निरासा । तो जानो बरसा की आसा।।
दिवस बादरा रात को तारे । चलो कन्त जहँ जीवें बारे।।

२५

ताका भैंसा गादर बैल । नारि कुलच्छनि बालक छैल।।
इनमे बाँचें चातुर लोग । राज छोड़ि के साधै जोग।।

२६

सावन घोड़ी भादौं गाय । माघ मास जो भैंस बिआय।।
कहैं घाघ यह साँची बात । आपै मरै कि मलिकै खात।।

२७

बिन बैलन खेती करै , बिन भैयन के रार।
बिन मेहरारू घर करै , चोदह साख लबार।।

२८

बूढ़ा बैल बिसाहे , झीना कपड़ा लेय।
आपुन करै नसौनी , दैवै दूषन देय।।

२९

बैल चौंकना जोत में , औ चमकीली नार।
ये बैरी हैं जान के , कुसल करैं करतार।।

३०

एक तो बसो सड़क पर गाँव । दूजे बड़े बड़न माँ नाँव।
तीजे परे दरबि से हीन । घाघा हमको बिपता तीन।।

३१

कुतवा-मूतनि मरकनी , सरबलील कुचकाट।
घग्घा चारो परिहरो , तब तुम बैठो खाट।।

३२

चाकर चोर राज बेपीर । कहैं घाघ का धारी धीर।।

३३

अगसर खेती अगसर मार । कहैं घाघ ये कबहुँ न हार।।

३४

ऊँच अटारी मधुर बतास । कहै घाघ घरही कैलास।।

३५

कोपे दई मेघ ना होई । खेती सूखति नैहर जोइ।
पूत बिदेस खाट पर कंत । कहैं घाघ ई बिपति क अंत।।

३६

ओती मेम पिछौती पोय । माथा खोले तिरिया होय।
अँगने रेंड़ आलसी सुभाव । घाघ करै का भूरि बिलाव।।

३७

घर की खुनुस औ जर कै भूख । छोट दमाद बराहे ऊख।
पातर क़ृषी बौरहा भाइ । घाघ कहै दुख कहाँ समाइ।।

दास

दास का पूरा नाम भिखारीदास था। ज़ि० प्रतापगढ़ के टयोंगा गाँव में सं० १७५५ के लगभग इनका जन्म हुआ था। ये जाति के कायस्थ थे। इनके पिता का नाम कृपालदास और पितामह का वीरभान था। इनके रचे हुये काव्यनिर्णय, रससारांश, विष्णुपुराण, नामप्रकाश, छंदोर्णव और शृङ्गारनिर्णय काव्य के उत्तम ग्रन्थ हैं। इनकी कविता के कुछ नमूने हम नीचे उद्धृत करते हैं :—

१

सुजस जनावै भगतनही मे प्रेम करै चित्त अति ऊजरे भजत हरि नाम हैं। दीन के दुखन देखै आपनो सुखन लेखै विप्र पापरत तन मैन मोहै धाम हैं। जग पर जाहिर है धरम निबाहि रहै देव दरसन ते लहत बिसराम है। दास जू गनाये जे असज्जन के काम हैं समुझि देखो एई सब सज्जन के काम हैं॥

२

धूरि चढ़ै नभ पौन प्रसंग तें कीच भई जल संगति पाई।
फूल मिलै नृप पै पहुँचै कृमि कीटनि संग अनेक बिथाई॥
चन्दन संग कुदारु सुगन्ध ह्वै नीच प्रसंग लहै करुआई।
दास जू देख्यो सही सब ठौरनि संगति को गुन दोष न जाई॥

३

पंडित पंडित सों सुख मंडित सायर सायर के मन मानै।
संतहि संत भनंत भलौ गुनवंतनि को गुनवंत बखानै॥
जा पहँ जा सह हेतु नहीं कहिये सु कहा तिहि की गति जानै।
सूर को सूर सती को सती अरु दास जती को जती पहिचानै॥

४

प्रान बिहीन के पाइ पलोटि अकेले ह्वै जाइ घने बन रोयो।
आरसी अंध के आगे धरचो बहिरे को मतौ करि उत्तर जोयो॥

ऊसर में बरस्यो बहु वारि पखान के ऊपर पङ्कज बोयो।
दास वृथा जिन साहिब सूम की सेवनि मैं अपनो दिन खोयो।।

५

दृग नासा न तौ तप जाल खगी, न सुगंध सनेह के ख्याल खगी।
स्रुति जीहा बिरागै न रागै पगी मति रामै रँगी औ न कामै रँगी।
तप में व्रत नेम न पूरन प्रेम न भूति जगी न विभूति जगी।
जग जन्म वृथा तिनको जिनके गरे मेली लगी न नवेली लगी।।

६

कंज सकोच गड़े रहे कीच में मीनन बोरि दियो दह नीरन।
दास कहै मृगहू को उदास कै बास दियो है अरन्य गँभीरन।।
आपुस में उपमा उपमेय ह्वै नैन ये निन्दित हैं कवि धीरन।
खंजनहूँ को उड़ाय दियो हलुके करि डारे अनङ्ग के तीरन।।

७

नैनन को तरसैये कहाँ लौं कहाँ लौं हिये बिरहागि मे तैये।
एक घरी न कहूँ कल पैये कहाँ लगि प्रानन को कलपैये।।
आवै यही अब जी में विचार सखी चलु सौतिहु के घर जैये।
मान घटे ते कहा घटिहै जु पै प्रानपियारे को देखन पैये।।

रसनिधि

रसनिधि का असली नाम पृथ्वीसिंह था। ये दतिया राज्य के अन्तर्गत जागीरदार थे। इनके जन्म-मरण का ठीक समय निश्चित नहीं है; परन्तु सं० १७६० में इनका होना माना जाता है।

इनका रचा हुआ रतन-हजारा अद्भुत ग्रन्थ है। हजारा में कुल दोहे ही दोहे हैं। भावों को झलकाने में इन्होंने बड़ी बारीक बुद्धि से काम लिया है। इनके दोहे बिहारी के दोहों से टक्कर लेते हैं। नीचे इनके कुछ दोहे दिये जाते हैं। देखिये, कैसे लुभावने हैं :—

रसनिध वाको कहत हैं, याही तें करतार।
रहत निरन्तर जगत कौ, वाही के कर तार॥१॥
आये इसक लपेट में, लागी चसम चपेट।
सोई आया जगत में, और भरें सब पेट॥२॥
सज्जन पास न कहु अरे, ये अनसमझी बात।
मोम रदन कहुँ लोह के, चना चबाये जात॥३॥
हित करियत यहि भाँति सों, मिलियत है वहि भाँति।
छीर नीर तैं पूँछ लै, हित करिबे की बात॥४॥
पसु पच्छीहू जानहीं, अपनी अपनी पीर।
तब सुजान जानौ तुम्हें, जब जानौ पर पीर॥५॥
रूप नगर बस मदन नृप; दृग जासूस लगाइ।
नेहनि मन कौ भेद उन, लीनौ तुरत मँगाइ॥६॥
सुन्दर जोबन रूप जो, बसुधा में न समाई।
दृग तारन तिल बिच तिन्हैं, नेही धरत लुकाइ॥७॥
सरस रूप कौ भार पल, सहि न सकै सुकुमार।
याही तैं ये पलक जनु, झुकि आवैं हर बार॥८॥
सुनियत मीननि मख लगै, बंसी अबै सुजान।
तेरी ये बंसी लगै, मीनकेत कौ बान॥९॥

जिहि मग दौरत निरदई , तेरे नैन कजाक।
तिहि मग फिरत सनेहिया , किये गरेबाँ चाक ।।१०।।
चतुर चितेरे तुव सबी , लिखत न हिय ठहराइ।
कलम छुवत कर आँगुरी , कटी कटाछन जाइ ।।११।।
मन गयंद छवि मद छके , तोर जँजीरन जात।
हित के झीने तार सों , सहजै ही बँधि जात ।।१२।।
उड़ौ फिरत जो तूल सम , जहां तहां बेकाम।
ऐसे हरुये कौ धरचो , कहा जानि मन नाम ।।१३।।
लेउ न मजनू गोर ढिग , कोऊ लैलै नाम।
दरदवन्त कौ नेक तौ , लैन देउ बिसराम ।।१४।।
चसमन चसमा प्रेम कौ , पहिले लेहु लगाइ।
सुन्दर मुख वह मीतकौं , तब अवलोकौ जाइ ।।१५।।
अद्‌भुत गति यह प्रेमकी , बैनन कही न जाइ।
दरस भूख लागे दृगन , भूखहि देत भगाइ ।।१६।।
प्रेम नगर में दृग बया , नोखे प्रगटै आइ।
दो मन को करि एक मन , भाव देत ठहराइ ।।१७।।
न्यारौ पैंड़ौ प्रेम कौ , सहसा धरौ न पाव।
सिर के पैंड़े भावते , चलौ जाय तौ जाव ।।१८।।
अद्‌भुत गति यह प्रेम की , लखो सनेही आइ।
जुरै कहूँ टूटै कहूँ , कहूँ गाँठ परि जाइ ।।१९।।
अद्‌भुत बात सनेह की , सुनौ सनेही आइ।
जाकी सुध आवै हिये , सबही सुध बुध जाइ ।।२०।।
कहनावत मैं यह सुनी , पोषत तनु को नेह।
नेह लगाये अब लगी , सूखन सिगरी देह ।।२१।।
बोलन चितवत चलन में , सहज जनाई देत।
छिपत चतुरई कर कहूँ , अरे हिये को हेत ।।२२।।

यह झूझन को नैन ये, लग लग कानन जात।
काहू के मुख तुम सुनी, पिय आवन की बात॥२३॥
कञ्चन से तन में यहाँ, भरो सुहाग बनाइ।
विरह आँच वापै कहो, सहो कौन विधि जाइ॥२४॥

नागरीदास और बनीठनीजी

नागरीदास नाम के ब्रजभाषा के चार कवि हुये हैं। पहले नागरीदास श्री बल्लभाचार्य महाप्रभु के शिष्य थे। दूसरे नागरीदास स्वामी हरिदास का शिष्य-परम्परा में थे। तीसरे नागरीदास गोस्वामी हितहरिवंश वा श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की सम्प्रदाय में हुये। और चौथे नागरीदास कृष्णगढ़ (राजपूताना) के राजा थे। इनके पिता का नाम राजसिंह था। इनका असली नाम सावंत सिंह था। ये कविता में अपना उपनाम नागर, नागरिया अथवा नागरीदास रखते थे। इनकी रचना कृष्णगढ़ में अभी सुरक्षित है। ये राठौर क्षत्रिय थे। इनका जन्म पौष कृष्ण १२ सं० १७५६ को हुआ। कवि होने के सिवाय ये वीर भी थे। इन्होंने दश ही वर्ष की अवस्था में एक उन्मत्त हाथी को विचलित कर दिया था, और तेरह वर्ष की अवस्था में बूँदी के राव जैतसिंह का समर में बध किया था। बीस वर्ष की अवस्था में अकेले ही एक सिंह को मारा था। कई घराऊ झगड़ों के कारण सं० १८१४ में ये राजपाट छोड़कर वृन्दावन चले गये और वहीं रहने लगे। ये महाप्रभु बल्लभाचार्य-संप्रदाय के शिष्य थे। सं० १८२१ में भादों सुदी ३ को वृन्दावन में इन्होंने शरीर छोड़ा। वहाँ इनकी छतरी है, जिस में लेख भी हैं।

वृन्दावन इन्हें बहुत प्रिय था। वहाँ इनका सम्मान भी बहुत था। वहाँ के भक्तों में इनकी कविता का आदर इनके जीवन-काल ही में बहुत

हो गया था। इन्होंने ७५ ग्रन्थों की रचना की। इनमें से अन्त के दो अब नहीं मिलते। ग्रन्थों के नाम ये हैं:—

(१) सिंगारसार, (२) गोपी प्रेमप्रकाश, (३) पद प्रसंगमाला, (४) ब्रजबैकुंठ तुला, (५) ब्रजसार, (६) भोरलीला, (७) प्रातरस-मञ्जरी, (८) विहारचंद्रिका, (९) भोजनानन्दाष्टक, (१०) जुगलरस मञ्जरी, (११) फूलविलास, (१२) गोधन आगमन, (१३) दोहनआनंद, (१४) लग्नाष्टक, (१५) फागविलास, (१६) ग्रीष्मविहार, (१७) पावस पचीसी, (१८) गोपी बैनविलास, (१९) रासरसलता, (२०) रैनरूपरस, (२१) शीतसार, (२२) इश्कचमन, (२३) मजलिस मंडन, (२४) अरिलाष्टक, (२५) सदा की साँझ, (२६) वर्षाऋतु की साँझ, (२७) होरी की साँझ, (२८) कृष्ण जन्मोत्सव कवित्त, (२९) प्रिया जन्मोत्सव कवित्त, (३०) साँझी के कवित्त, (३१) रास के कवित्त, (३२) चांदनी के कवित्त, (३३) दिवारी के कवित्त, (३४) गोवर्द्धन धारन के कवित्त, (३५) होरी के कवित्त, (३६) फाग गोकुलाष्टक, (३७) हिंडोरा के कवित्त, (३८) वर्षा के कवित्त, (३९) मार्ग मगदीपिका, (४०) तीर्थानन्द, (४१) फागविहार, (४२) बालविनोद, (४३) सुजनानन्द, (४४) बनविनोद, (४५) भक्तिसार, (४६) देहदसा, (४७) वैरागबल्ली, (४८) रसिक रत्नावली, (४९) कलि वैराग बल्लरी, (५०) अरिल्ल पचीसी, (५१) छूटक विधि, (५२) पारायण विधि प्रकाश, (५३) सिखनख, (५४) नखसिख, (५५) छूटक कवित्त, (५६) चरचरियाँ, (५७) रेखता, (५८) मनोरथ मंजरी, (५९) रामचरित्र माला, (६०) पद प्रबोध माला, (६१) जुगल भक्ति विनोद, (६२) रसानुक्रम के दोहे, (६३) शरद की साँझ, (६४) साँझी फूल बीनन समेत सम्वाद, (६५) बसन्त वर्णन, (६६) फाग खेलन समेतानुक्रम कवित्त, (६७) रासानुक्रम कवित्त, (६८) निकुंज विलास, (६९) गोविन्द परचई, (७०) बनजन प्रशंसा, (७१) छूटक दोहा, (७२) उत्सव माला, (७३) पद मुक्तावली, (७४) बैन विलास, (७५) गुप्तरस प्रकाश।

अन्त की दो पुस्तकें अब नहीं मिलतीं। इनकी पुस्तकों का एक संग्रह नागर-समुच्चय नाम से ज्ञानसागर छापाखाना बम्बई ने प्रकाशित किया है; पर वह बहुत अशुद्ध छपा है। उसमें अन्य कवियों के भी बहुत से छन्द मिल गये हैं।

ये वल्लभ-सम्प्रदाय के थे। इनकी कविता बड़ी सरस, भक्तिरसपूर्ण होती थी। हिन्दी काव्य के रसिकों को इनकी पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहियें। इनकी कविता का कुछ नमूना देखिये —

१

उज्जल पख की रैन चैन उज्जल रस दैनी।
उदित भयो उडुराज अरुन दुति मन हर लैनी॥
महा कुपित ह्वै काम ब्रह्म अस्त्रहि छोड्यो मनु।
प्राची दिसि तें प्रजुलित आवति अगिनि उठी जनु॥
दहन मानपुर भये मिलन कों मन हुलसावत।
छावत छपा अमन्द चन्द ज्यों ज्यों नभ आवत॥
जगमगाति बन जोति सोत अमृत धारा से।
नव द्रुम किसलय दलनि चारु चमकत तारा से॥
स्वेत रजत की रैन चैन चित मैन उमहनी।
तैसी मन्द सुगन्ध पौन दिन मनि दुख दहनी॥
मधि नायक गिरिराज पदिक बृन्दावन भूषन।
फटिक सिला मनि शृङ्ग जगमगति दुति निर्दूषन॥
सिला सिला प्रति चन्द चमकि किरननि छबि छाई।
बिच बिच अम्ब कदम्ब झम्ब झुकि पायनि आई॥
ठौर ठौर चहुँ फेर ढेर फूलन के सोहत।
करत सुगन्धित पवन सहज मन मोहत जोहत॥
बिमल नीर निर्झरत कहूँ झरना सुख करना।
महा सुगन्धित सहज बास कुमकुम मद हरना॥

कहुँ कहुँ हीरन खचित रचित मण्डल सुरासि के।
जटित नगन कहुँ जुगल खम्भ झूलनि बिलास के।।
ठौर ठौर लखि ठौर रहत मनमथ सों भारी।
बिहरत बिविध बिहार तहाँ गिरि पर गिरधारी।।

२

इश्क चमन महबूब का, जहा न जावे कोय।
जावे सो जीवे नहीं, जिये सो बौरा होय।।

३

जामें रस सोई हरयो, यह जानत सब कोय।
गौर स्याम द्वै रंग बिन, हरयो रंग नहिं होय।।

४

ऐ तबीब उठि जाहु घर, अबस छुवै का हाथ।
चढ़ी इश्क की कैफ़ यह, उतरै सिर के साथ।।

५

अरे पियारे का करौं, जाहि रहो है लाग।
क्यों करि दिल बारूद में, छिवै इश्क की आग।।

६

फूले फूलनि स्वेत बिच, अलि बैठे मधु लैन।
दम्पति हित वृन्दा विपिन, धारे अगनित नैन।।

७

कलह कलपना काम कलेस निवारनौ।
परनिन्दा परद्रोह न कबहुँ बिचारनौ।।
जग प्रपंच चटसार न चित्त चढ़ाइये।
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइये।।

८

अन्तर कुटिल कठोर भरे अभिमान सों।
तिनके गृह नहिं रहैं सन्त सनमान सों।।

उनकी सङ्गति भूलि न कबहूं जाइये।
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइये।।

९

कहूँ न कबहूं चैन जगत दुख कूप है।
हरि भक्तन को संग सदा सुख रूप है।।
इनके ढिग आनन्दित समै बिताइये।
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइये।।

* * *

महाराजा नागरीदास की दासी बनीठनी जो भी कविता करती थी और कविता में अपना उपनाम रसिकबिहारी रखती थीं। ये सदा नागरी दासजी की सेवा में रहती थी। इनका देहान्त स० १८२२ में हुआ। इनके बनाये कुछ पद नीचे लिखे जाते हैं :—

१

रतनारी हो थारी आखड़ियाँ।
प्रेम छकी रस बस अलसाणी जाणि कमल की पाखड़ियाँ।।
सुन्दर रूप लुभाई गति मति हौ गई ज्यू मधु माँखड़ियाँ।
रसिकबिहारी वारी प्यारी कौन बसी निस काँखड़ियाँ।।

२

हो झालो दे छे रसिया नागर पनाँ।
साराँ देखै लाज मराँ छाँ आवाँ किण जतनाँ।।
छैल अनोखो कयो न मानै लोभी रूप सनाँ।
रसिकबिहारी ननद बुरी छै हो लाग्यो म्हारो मनाँ।।

३

पावस रितु वृन्दावन की दुति दिन दिन दूनी दरसै है, छवि सरसै है। लूम झूम सावन घनो घन बरसै है।।१।।

हरिया तरवर सरवर भरिया जमुना नीर कलोलै है, मन मोलै है। प्यारी जी रो बाग सुहावणो मोर बोलै है ॥२॥

आभा आया बीज चिमंकै जलधर गहरो गाजै है, रितुराजै है। स्यामा सुन्दर मुरली रली वन बाजै है ॥३॥

रसिकबिहारी जी रो भीज्यो पीताम्बर प्यारी जी री चूनर सारी है, सुखकारी है। कुंजाँ कुंजाँ भूल रया पिय प्यारी है ॥४॥

चरनदास

चरनदासजी दूसर बनिया थे। इनका जन्म भाद्रपद शुक्ला तृतीया, मंगलवार, सं० १७६० वि० में राजपूताना के डेहरा नामी गाँव में हुआ। इन्होंने ७९ वर्ष की अवस्था में, संवत् १८३९ में, दिल्ली में शरीर छोड़ा। इनका पहले का नाम रनजीतसिंह था। इनके पिता का नाम मुरलीधर, माता का कुंजो और गुरु का शुकदेव था। चरनदासजी ने सात वर्ष की अवस्था में घर छोड़ा। घर से ये दिल्ली चले आये और वहाँ अपने नाना के घर रहने लगे। वहीं १९ वर्ष की अवस्था में इन्हें वैराग्य हुआ। शिवसिंह सरोज में इनका जन्म-संवत् १५३७ और जन्मस्थान पंडितपुर, ज़िला फैजाबाद लिखा है; और उसी के आधार पर मिश्रबन्धुओं ने भी वैसा ही लिखा है जो नितान्त अशुद्ध है। हमने सहजोबाई की बानी और ज्ञान-स्वरोदय से इनके जीवन-चरित्र का संग्रह किया है।

उस समय इनके ५२ शिष्य थे, जिनकी ५२ गद्दियाँ अलग अलग आज-कल वर्तमान हैं, और उनके हजारों अनुयायी हैं। इनकी चेलियों में सहजोबाई और दयाबाई बड़ी प्रेमिणी थीं। वे बराबर इनकी सेवा में लगी रहती थीं। इन दोनों चेलियों ने भी कविता की है, जो उनकी बानी के नाम से प्रसिद्ध है।

चरनदास के दो ग्रन्थ मिलते हैं—एक ज्ञानस्वरोदय और दूसरा चरनदास की बानी। यहाँ इनके दोनों ग्रन्थों में से कुछ पद्य चुनकर लिखे जाते हैं :—

दोहा

चार वेद का भेद है, गीता का है जीव।
चरनदास लखु आपको, तो मे तेरा पीव ॥१॥
सब योगन को योग है, सब ज्ञानन को ज्ञान।
सबै सिद्धि को सिद्धि है, तत्त्व सुरत को ध्यान ॥२॥
इंगला पिंगला सुषुमणा, नाड़ी तीन विचार।
दहिने बायें स्वर चल, लखै धारना धार ॥३॥
पिंगला दहिने अंग है, इड़ा सु बायें होय।
सुषुमण इनको बीच है, जब स्वर चालै दोय ॥४॥
जब स्वर चालै पिंगला, मध्य सूर्य तहँ वास।
इड़ा सु बायें अंग है, चन्द्र करत परकास ॥५॥
चित्त अपनो स्थिर करै, बासा आगे नैन।
स्वाँसा देखै दृष्टि सों, जब पावै स्वर बैन ॥६॥
भोरहि जो सुषुमण चलै, राज होय उत्पात।
देखन वालो बिनसिहै, और काल पर नात ॥७॥

चौपाई

विवाह दान तीरथ जो करै। वस्तर भूषन घर पग धरै।
बायें स्वर मे ये सब कीजै। पोथी पुस्तक जो लिख लीजै ॥८॥
योगाभ्यास अरु कीजै प्रीत। औषध नाड़ी कीजै मीत।
दीक्षा मंत्र बोवे नाज। चन्द्रयोग थिर बैठे राज ॥९॥
चन्द्रयोग में स्थिर पुनि जानो। थिर कारज सबही पहिचानो।
करै हवेली छप्पर छावै। बाग बगीचा गुफा बनावै ॥१०॥
हाकिम जाय कोट में बरै। चन्द्रयोग आसन पग धरै।
चरनदास शुकदेव बतावै। चन्द्रयोग थिर काज कहावै ॥११॥

जो खाँड़ो कर लीयो चाहे। जाकर बैरी ऊपर बाहै।
युद्ध वाद रण जीते सोई। दहिने स्वर में चाले कोई ॥१२॥
भोजन करै करै अस्नान। मैथुन कर्म भानु परधान।
बही लिखै कीजै व्योहारा। गज घोड़ा वाहन हथियारा ॥१३॥
विद्या पढ़ै नई जो सार्धै। मंत्र सिद्धि औ ध्यान अराधै।
बैरो भवन गवन जो कीजै। अरु काहू को ऋन जो दीजै ॥१४॥
ऋन काहू पै तू जो माँगै। विष ओ भूत उतारन लागै।
चरनदास शुकदेव विचारी। ये चर कर्म भानुकी नारी ॥१५॥

दोहा

गाँव परगने खेत पुनि, इधर उधर मैं मीत।
सुषुमण चलत न चालिये, वरजत है रणजीत ॥१६॥
छिन बाँएँ छिन दाहिने, सोई सुषुमण जानि।
ढील लगै कै ना मिलै, कै कारज की हानि ॥१७॥
होय क्लेश पीड़ा कछु, जो कोई कहिँ जाय।
सुषुमण चलत न चालिये, दीन्हों तोहिं बताय ॥१८॥
पूरब उत्तर मत चलौ, बायें स्वर परकास।
हानि होय बहुरै नहीं, आवन की नहिं आस ॥१९॥
दहिने चलत न चालिये, दक्षिण पश्चिम जानि।
जो रै जाय बहुरे नहीं, औ होवे कछु हानि ॥२०॥
दहिने स्वर में जाइये, पूरब उत्तर राज।
सुख सम्पति आनँद करै, सभी होय सुभ काज ॥२१॥
बायें स्वर में जाइये, दक्षिण पश्चिम देस।
सुख आनँद मङ्गल करै, जो रे जाय परदेस ॥२२॥
दहिने सेती आयकर, बायें पूछै कोय।
जो बायें स्वर बन्द है, सफल काज नहिं होय ॥२३॥
बायें सेती आय कर, दहिने पूछै धाय।
जो दहिने स्वर बन्द है, कारज अफल बताय ॥२४॥

जब स्वर भीतर को चलै , कारज पूँछै कोय।
पैंज बाँध वासौं कहो , मनसा पूरण होय ॥२५॥
जब स्वर बाहिर को चलै , तब कोई पूँछै तोर।
वाको ऐसै भाषिये , नहिं कारज विधि कोर ॥२६॥
बाईं करवट सोइये , जल बायें स्वर पीव।
दहिने स्वर भोजन करै , तो सुख पावै जीव ॥२७॥
बायें स्वर भोजन करै , दहिने पीवै नीर।
दस दिन भूला यों करै , पावै रोग सरीर ॥२८॥
दहिने स्वर झाड़े फिरै , बायें लघु शंकाय।
युक्ती ऐसी साधिये , तीनों भेद बताय ॥२९॥
आठ पहर दहिनों चलै , बदलै नहि जो पौन।
तीन वर्ष काया रहै , जीव करै फिर गौन ॥३०॥
दिन को तो चंदा चलै , चलै रात को सूर।
यह निश्चय करि जानिये , प्राण गमन बहु दूर ॥३१॥
राति चले स्वर चन्द्र में , दिन को सूरज बाल।
एक महीना यों चलै , छठे महीना काल ॥३२॥
जब साधू ऐसी लखै , छठै महीना काल।
आगेही साधन करै , बैठ गुफा तत्काल ॥३३॥
ऊपर खैंचि अपान कों , प्राण अपान मिलाय।
उत्तम करै समाधि कों , ताकों काल न खाय ॥३४॥
पवन पिये ज्वाला पचे , नाभि तलै कर राह।
मेरु दण्ड को फोरि के , बसे अमरपुर माँह ॥३५॥
जहाँ काल पहुँचे नहीं , यम की होय न त्रास।
नभ मण्डल को जाय कर , उनमें करै निवास ॥३६॥
जहाँ काल नहिं ज्वाल है , छूटै सकल संताप।
होय उनमनी लीन मन , बिसरै आपा आप ॥३७॥

तीनो बंध लगाय के, या बाये को साध।
योग सुषुमणा ह्वै चले, देखै खेल अगाध ॥३८॥
शक्ति जाय शिव सों मिलै, जहाँ होय मन लीन।
महा खेचरी जो लगै, जाने जान प्रवीन ॥३९॥
आसन पद्म लगाय कर, मूल बंध को बाँध।
मेरु दण्ड सीधो करै, सुरग गगन को साध ॥४०॥
चन्द्र सूर्य दोउ सम करै, ठोढ़ी हिये लगाय।
पट चक्कर को बेध कर, सून्य सिखर को जाय ॥४१॥
इड़ा पिंगला साध कर, सुषुमण में करै बास।
परम ज्योति झिलिमिल वहाँ, पूजै मन विस्वास ॥४२॥
सूर्य उत्तरायन लखै, शुक्ल पक्ष के माहिं।
योगी काया त्यागिये, यामें संसय नाहिं ॥४३॥
मुक्त होय बहुरै नही, जीव खोज मिटि जाय।
बुन्द समुन्दर मिलि रहै, दुनिया ना ठहराय ॥४४॥
जो रण ऊपर जाइये, दहिने स्वर परकाम।
जीत होय हारै नही, करै सत्रु को नास ॥४५॥
सूक्षम भोजन कीजिये, रहिये ना पड़ सोय।
जल थोरा सा पीजिये, बहुत बोल मत खोय ॥४६॥
पावक सानी वायु है, धरती और अकास।
पाँच तत्व के कोट मे, आय कियो तै वास ॥४७॥
सतगुरु मेरा सूरमा, करै शब्द की चोट।
मारै गोला प्रेम का, ढहै भरम का कोट ॥४८॥
मै मिरगा गुरु पारधी, शब्द लगायो बान।
चरनदास घायल गिरे, तन मन बींधे प्रान ॥४९॥
धन नगरी धन देस है, धन पुर पट्टन गाँव।
जहँ साधू जन उपजियो, ताकी बलि बलि जाँव ॥५०॥

जग माही ऐसे रहो, ज्यों अबुज सर माहिं।
रहै नीर के आसरे, पै जल छूवत नाहिं।।५१।।
दया नम्रता दीनता, छिमा सील संतोष।
इन कूँ लै सुमिरन करै, निहचै पावै मोख।।५२।।
चरनदास यो कहत है, सुनियो सत सुजान।
मुक्ति मूल आधीनता, नरक मूल अभिमान।।५३।।
पहिले पहरे सब जगै, दूजे भोगी मान।
तीजे पहरे चोरही, चौथे जोगी जान।।५४।।

तोष

तोष का पूरा नाम तोषनिधि है। ये सिंगरौर, ज़िला इलाहाबाद के रहनेवाले चतुर्भुज शुक्ल के पुत्र थे। सं० १७९१ में इन्होंने सुधानिधि नामक नायिका-भेद का एक ग्रंथ रचा। इनके जन्म-मरण के ठीक-ठीक संवत् का पता नही चलता। इनके रचे हुए विनय-शतक और नखशिख नामक दो ग्रन्थों का और भी नाम सुना जाता है। इनकी कविता कहीं-कहीं बड़ी सरस हुई है। हम नीचे कुछ उदाहरण उद्धृत करते हैं--

एकै कहै हँसि ऊधव जौ ब्रज को जुवती तजि चन्द्र प्रभा सी।
जाइ कियो कहि तोष प्रभू एक प्रानप्रिया लहि कंसकी दासी।
जो हुते कान्ह प्रवीन महा सो हहा मथुरा मैं कहा मति नासी।
जीव नहीं उबि जात जबै ढिग पोढ़ति है कुबजा कछूहा सी।।१।।
श्रीहरि की छवि देखिबे को अँखियाँ प्रति रोमन मैं करि देतो।
बैनन के सुनिबे कहँ श्रौन जितै तित सो करतो करि हेतो।
मो ढिग छोड़ि न काम कछू कहि तोष यहै लिखितो विधि एतो।
तौ करतार इती करनी करि कै कलि मैं कलकीरति लेतो।।२।।

भूषण भूषित दूषणहीन प्रवीन महा रस में छबि छाई।
पूरी अनेक पदारथ तें जिहि में परमारथ स्वारथ पाई।
ओ उकतें मुकतें उलही कवि तोप अनोख भरी चतुराई।
होति सबै सुख की जनिता बनि आवति जो बनिता कबिताई ॥३॥
गोपिन के अँसुवान के नीर पनारे भये बहि के पुनि नारे।
नारे भये नदिया बहि के नदिया नद ह्वै गये काटि कगारे।
बेगि चलौ तो चलौ ब्रज को कवि तोप कहे ब्रजराज दुलारे।
वे नद चाहत सिंधु भयो अरु सिंधु ते ह्वै है जलाहल सारे ॥४॥

रघुनाथ

रघुनाथ बन्दीजन महाराज काशिराज बरिबंडसिंह के राजकवि थे। महाराज ने इनको काशी के समीप चौरा गाँव दिया था, उसी में ये सकुटुम्ब रहते थे। इनके रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ मिलते हैं—

काव्य-कलाधर, रसिक-मोहन और इश्क-महोत्सव। काव्य-कलाधर की रचना सं० १८०२ में हुई। ठाकुर शिवसिंह ने लिखा है कि इन्होंने सतसई की टीका भी बनाई है।

रघुनाथ ब्रजभाषा में कविता करते थे, परन्तु इश्क-महोत्सव में इन्होंने आजकल की-सी हिन्दी-भाषा में कविता लिखी है।

इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

देख हे देख या ग्वालिन की मग नेकु नहीं थिरता गहती है।
आनँद सों रघुनाथ पगी पगी रंगन सों फिरतै रहती है।
छोर को छोर तरौना को छ्वै कर ऐसी बड़ी छबि को लहती है।
जोवन आइबे की महिमा अँखियाँ मनो कानन सों कहती है ॥१॥
सूखति जाति सुनी जब सों कछु खात न पीवति कैसे धौं रैहै।
जाकी है ऐसी दसा अबही रघुनाथ सो ओधि अधार क्यों पैहै।

तातें न कीजिए गौन बलाइ ल्यो गौन करें यह सीस सँविहै।
जानति हौ दृग ओट भये तिय प्रान उसासहि के सँग जैहै ।।२।।

संपति के बढ़े सों प्रतिष्ठा बाढ़ै बाढ़ै सोच कहै रघुनाथ ताके राखिबे के रुख को। मन माँगे स्वादनि लपेटि पेट परयो तासों अङ्ग मे अपार संग प्रगटो कलुष को । दारा सुत सखा को सनेह सों सँतापकारी भारी है बचन यह बड़न के मुख को। जगत को जितनी प्रपंच तितनो है दुख सुख इतनो जो सुख मानि लेनो दुख को ।।३।।

देखिबे को दुति पूनो के चंद को हे रघुनाथ श्री राधिका रानी।
आई बुलाय कै चोतरा ऊपर ठाढ़ी भई सुख सोरभ सानी ।।
ऐसो गई मिलि जोन्ह की जोति में रूप की रासि न जाति बखानी।
बारन ते कछु भौहन ते कछु नैनन की छवि तें पहिचानी ।।४।।

ग्वाल संग जैबो ब्रज गायन चरैबो ऐबो अब कहा दाहिने ये नैन फरकत हैं। मोतिन की माल वारि डारौं गुंज माल पर कुंजन की सुधि आये हियो धरकत हैं। गोबर को गारो रघुनाथ कछू याते भारो कहा भयो महलन मनि मरकत हैं। मन्दिर है मन्दर ते ऊँचे मेरे द्वारिका के ब्रज के खरिक तऊ हिये खरकत हैं ।।५।।

सुधरे सिलाह राखै, वायु बेगी वाह राखै, रसद की राह राखै, राखे रहै बन को। चोर को समाज राखै, वजा औ नजर राखै, खबरि को काज बहुरूपी हरफन को। अगम भखैया राखै, सगुन लेवैया राखै, कहै रघुनाथ औ विचार बीच मन को। बाजी राखै कबहूँ न ओसर के परे जोन ताजी राखै प्रजन को राजी सुभटन को ।।६।।

फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन कहै रघुनाथ भरे चैन रस सियरे। दौरि आये भौंर से करत गुनी गुन गान सिद्ध से सुजान सुख सागर सों नियरे ।। सुरभी सी खुलन सुकवि की सुमति लागी चिरिया सी जागी चिन्ता जनक के हियरे। धनुष पै ठाढ़े राम रवि से लसत आजु भोर कैसे नखत नरिन्द भये पियरे ।।७।।

आप दरियाव पास नदियों के जाना नही दरियाव पास नदी होयगी सो धावैगी। दरखत बेलि आसरे को कभी राखत ना दरखत ही के आसरे को बेलि पावैगी। मेरे लायक जो था कहना सो कहा मैंने रघुनाथ मेरी मति न्यावही को गावैगी। वह मोहताज आप की है आप उसके न आप कैसे चलो वह आप पास आवैगी ।।८।।

गुमान मिश्र

गुमान मिश्र के जन्म-मरण का समय अभी तक ठीक-ठीक निश्चित नहीं हो सका। इनके विषय में केवल इतना ही पता चलता है कि इन्होंने सं० १८०१ में पिहानी के मोहमदी अधिपति अली अकबर खाँ की आज्ञा से श्रीहर्ष-कृत नैषध काव्य का विविध छंदों में अनुवाद किया था। इन बातों का पता इनके अनुवादित ग्रन्थ ही से चलता है। अब इनके रचे हुए अलंकार, नायिका-भेद, काव्य-रीति आदि विषयों के कई ग्रन्थ तथा कृष्ण-चन्द्रिका का पता लगा है, परन्तु नैषध काव्य के सिवाय और सब ग्रन्थ अप्रकाशित हैं।

इसमें संदेह नहीं कि गुमान संस्कृत और भाषा काव्य के अच्छे ज्ञाता थे, परन्तु नैषध का अनुवाद उनसे अच्छा नहीं हो सका। कहीं कहीं तो मूल से भी अधिक जटिल हो गया है। आजकल जो श्रीवेंकटेश्वर प्रेस का छपा हुआ गुमानकृत नैषध काव्य मिलता है वह तो नितान्त अशुद्ध है। संभवतः गुमान ने ऐसी अशुद्ध रचना न की होगी।

नैषध में से इनकी कविता के कुछ नमूने यहां दिये जाते हैं—

नल के यश तेज विराजत हैं। शशि भानु बृथा छवि छाजत हैं ।।
जबही जब यों विधि चित्त धरै। तब छेकन को परिवेश करै ।।१।।
विधि भाल दरिद्र लिख्यो जेहि के। नहिं कीजत अंक बृथा तेहि के ।।
नल येतिकु ताहि तुरन्त दियो। जिमि टारि दरिद्र को दूरि कियो ।।२।

दूलह

दूलह कवीन्द्र के पुत्र और कालिदास त्रिवेदी के पौत्र थे। इनके जन्म-मरण के ठीक-ठीक समय का अभी तक पता नहीं चला। अनुमान से इनका जन्मकाल सं० १७६१ के लगभग ठहरता है। दूलह का 'कवि-कुल कण्ठाभरण' नामक केवल एक ही ग्रन्थ मिलता है। उसमें कुल एक्यासी छंद हैं। इनके सिवाय कुछ स्फुट छंद भी मिलते हैं। दूलह का काव्य-गुण पैतृक है। कालिदास से कवीन्द्र की कविता अच्छी है और कवीन्द्र से दूलह की।

दूलह की कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं--

फल बिपरीत को जतन सो 'विचित्र' हरि ऊँचे हेत वामन में बलि के सदन मैं। आधार बड़े तें बड़ो आधेय 'अधिक' जानो चरन समानो नाहिं चौदहो भुवन मैं। आधेय अधिक तें आधार की अधिकताई दूसरो अधिक आयो ऐसो गणनन मैं। तीनों लोक तन मैं अमान्यो ना गगन मैं बसै ते संत मन मैं कितेक कहौ मन मैं।।१।।

उत्तर उत्तर उत्कर्ष बखानो 'सार' दीरघ ते दीरघ लघू ते लघू भारी को। सब तें मधुर ऊख ऊख तें पियूष ना पियूष हूँ ते मधुर है अधर पियारी को।। जहां कमिकन को क्रमैं तें यथा क्रम 'यथा संख्य' बैन, नैन नैनकोन ऐसे धारी को। कोकिल तें कल, कंजदल तें अदल भाव जीत्यो जिन काम की कटारी नोकवारी को।।२।।

धरी जब बाहीं तब करी तुम नाहीं पाइ दियो पलिकाही नाही नाही कै सुहाई हो। बोलत मैं नाही पट खोलत मैं नाही कवि दूलह उछाही लाख भाँतिन लहाई हौ। चुम्बन मैं नाही परिरम्भन मैं नाहीं सब आसन विलासन मैं नाहीं ठीक ठाई हौ। मेलि गलबाही केलि कीन्हीं चित चाही यह हाँ ते भली नाहीं सो कहाँ ते सीख आई हौ।।३।।

माने सनमाने तेई माने सनमाने सनमाने सनमाने सनमान पाइयतु है। कहै कवि दूलह अजाने अपमाने अपमान सों सदन तिनहीं को छाइयतु है । जानत है जेऊ तेऊ जात है बिराने द्वार जान बूझ भूले तिनको सुनाइयतु है। काम बस परे कोऊ गहत गरूर तो वा अपनी जरूर जाजरूर जाइयतु है ।।८।।

गिरिधर कविराय

गिरिधर कविराय का जन्म सं० १७७० में हुआ कहा जाता है। इन्होंने बहुत-सी कुंडलियाँ बनाई हैं, जो बड़ी लोकप्रिय हैं। इनकी कविता की भाषा से इनका जन्म-स्थान कहीं अवध में जान पड़ता है। इनके विषय में एक कहावत प्रसिद्ध है कि एक बार इनके पड़ोस में एक बढ़ई आ बसा। उसने एक ऐसा पलँग बनाया, जिसके चारों पावों पर पंखे लगे थे। जब कोई उस पलँग पर लेटता, तो पंखे आप से आप चलने लगते थे। बढ़ई ने वह पलँग ले जाकर राजा को दिया। राजा ने उससे वैसे ही और भी कई पलँग बना लाने को कहा। गिरिधर के आँगन में बेर का एक बड़ा सुन्दर वृक्ष था। बढ़ई और गिरिधर से कुछ खटपट हो गई थी। इसलिये बढ़ई ने राजा से वही बेर का पेड़ लकड़ी के लिये माँगा। राजा ने आज्ञा दे दी। गिरिधर ने राजा से बहुत प्रार्थना की, कि वह पेड़ न दिया जाय; परन्तु राजा ने नहीं सुनी। इससे रुष्ट होकर गिरिधर उस राज्य को त्याग कर भ्रमण करने लगे। उसी भ्रमण के समय में स्त्री-पुरुष ने मिलकर कुंडलियों की रचना की। कहा जाता है कि जिन कुंडलियों के प्रारम्भ में 'साँई' शब्द है, वे सब गिरिधर की स्त्री की बनाई हुई हैं। गिरिधर की कुंडलिया नाम से इनकी कुंडलियों का संग्रह छपा हुआ मिलता है।

हम गिरिधर की कुछ कविता यहाँ उद्धृत करते हैं—

साई बेटा बाप के, बिगरे भयो अकाज।
हरिनाकस्यप कंस को, गयउ दुहुन को राज॥
गयउ दुहुन को राज, बाप बेटा में बिगरी।
दुस्मन दावागीर, हँसै महिमंडल नगरी॥
कह गिरिधर कविराय, जुगन याही चलि आई।
पिता पुत्र के बैर, नफ़ा कहु कौने पाई॥१॥

बेटा बिगरे बाप सों, करि तिरियन सों नेहु।
लटापटी होने लगी, मोंहि जुदा करि देहु॥
मोंहि जुदा करि देहु, घरीमाँ माया मेरी।
लेहौं घर अरु द्वार, करौं मैं फजिहत तेरी॥
कह गिरिधर कविराय, सुनों गदहा के लेटा।
समय परचो है आय, बाप से झगरत बेटा॥२॥

साई ऐसे पुत्र से, बाँझ रहे बरु नारि।
बिगरी बेटे बाप से, जाय रहै ससुरारि॥
जाय रहै ससुरारि, नारि के नाम बिकाने।
कुल के धर्म नसायँ, और परिवार नसाने॥
कह गिरिधर कविराय, मातु झंखै वहि ठाई।
असि पुत्रनि नहिं होय, बाँझ रहतिउँ बरु साई॥३॥

काची रोटी कुचकुची, परती माछी वार।
फूहर वही सराहिये, परसत टपकै लार॥
परसत टपकै लार, झपटि लरिका सोंचावै।
चूतर पोंछै हाथ, दोउ कर सिर खजुवावै॥
कह गिरिधर कविराय, फुहर के याही धैना।
कजरौटा बरु होइ, लुकाठन आँजै नैना॥४॥

शुक ने कह्यो सँदेस, सेमर के पग लागिहौं।
पग न परै वहि देस, जब सुधि आवै फलन की॥५॥

साई बैर न कीजिये, गुरु पंडित कवि यार।
बेटा बनिता पँवरिया, यज्ञ करावनहार।।
यज्ञ करावनहार, राजमन्त्री जो होई।
विप्र परोसी वैद्य, आप को तपै रसोई।।
कह गिरिधर कविराय, जुगन ते यह चलि आई।
इन तेरह सों तरह, दिये बनि आवै साई।।६।।

सोना लादन पिय गये, सूना करि गये देस।
सोना मिले न पिय मिले, रूपा ह्वै गये केस।।
रूपा ह्वै गये केस, रोय रंग रूप गँवावा।
सेजन कों बिसराम, पिया बिन कबहुं न पावा।।
कह गिरिधर कविराय, लोन बिन सबै अलोना।
बहुरि पिया घर आव, कहा करिहौं लै सोना।।७।।

जाकी धन धरती हरी, ताहि न लीजै संग।
जो चाहै लेतो बनै, तो करि डारु निपङ्ग।।
तो करि डारु निपङ्ग, भूलि परतीति न कीजै।
सौ सौगन्दै खाय, चित्त में एक न दीजै।।
कह गिरिधर कविराय, खटक जैहै नहिं ताकी।
अरि समान परिहरिय, हरी धन धरती जाकी।।८।।

दौलत पाय न कीजिये, सपने में अभिमान।
चञ्चल जल दिन चारिको, ठाँउ न रहत निदान।।
ठाउँ न रहत निदान, जियत जगमें जस लीजै।
मीठे बचन सुनाय, विनय सबही की कीजै।।
कह गिरिधर कविराय, अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निसिदिन चारि, रहत सबही के दौलत।।९।।

गुन के गाहक सहस नर, बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुनै सब कोय।।

शब्द सुनै सब कोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को एक रंग, काग सब भये अपावन॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मनके।
बिनु गुन लहै न कोय, सहस नर गाहक गुनके॥१०॥

साँई सब संसार में, मतलब का व्यवहार।
जब लग पैसा गाँठ में, तब लग ताको यार॥
तबलग ताको यार, यार सँगही सँग डोलै।
पैसा रहा न पास, यार मुख से नहिं बोलै॥
कह गिरिधर कविराय, जगत यहि लेखा भाई।
करत बेगरजी प्रीति, यार बिरला कोई साँई॥११॥

रहिये लटपट काटि दिन, बरु घामें माँ सोय।
छाँह न वाकी बैठिये, जो तरु पतरो होय॥
जो तरु पतरो होय, एक दिन धोखा दैहै।
जा दिन बहै बयारि, टूटि तब जरसे जैहै॥
कह गिरिधर कविराय, छाँह मोटे की गहिये।
पाता सब झरि जाय, तऊ छाया में रहिये॥१२॥

साई घोड़े आछतहि, गदहन पायो राज।
कौआ लीजै हाथ में, दूरि कीजिये बाज॥
दूरि कीजिये बाज, राज पुनि ऐसो आयो।
सिंह कीजिये कैद, स्यार गजराज चढ़ायो॥
कह गिरिधर कविराय, जहाँ यह बूझि बधाई।
तहाँ न कीजै भोर, साँझ उठि चलिये साई॥१३॥

साईं अवसर के पड़े, को न सहै दुख द्वन्द।
जाय बिकाने डोम घर, बै राजा हरिचन्द्र॥
बै राजा हरिचन्द, करैं मरघट रखवारी।
धरे तपस्वी वेष, फिरे अर्जुन बलधारी॥

कह गिरिधर कविराय, तपै वह भीम रसोई।
को न करै घटि काम, परे अवसर के साई।।१४।।

साई ये न विरोधिये, छोट बड़े सब भाय।
ऐसे भारी वृक्ष को, कुल्हरी देत गिराय।।
कुल्हरी देत गिराय, मार के जमी गिराई।
टूक टूक कै काटि, समुद में देत बहाई।।
कह गिरिधर कविराय, फूट जेहि के घर आई।
हिरनाकस्यप कंस, गये बलि रावन साई।।१५।।

लाठी में गुन बहुत है, सदा राखिये संग।
गहिर नदी नारा जहाँ, तहाँ बचावै अंग।।
तहाँ बचावै अंग, झपटि कुत्ता कहँ मारै।
दुश्मन दावागीर, होयँ तिनहूँ को झारै।।
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो धूर के बाठी।
सब हथियारन छाँड़ि, हाथ महँ लीजै लाठी।।१६।।

कमरी थोरे दाम की, आवै बहुतै काम।
खासा मलमल बाफता, उनकर राखै मान।।
उनकर राखै मान, बुन्द जहँ आड़े आवै।
बकुचा बाँधै मोट, रात को झारि बिछावै।।
कह गिरिधर कविराय, मिलत है थोरे दमरी।
सब दिन राखै साथ, बड़ी मर्यादा कमरी।।१७।।

बिना बिचारे जो करै, सो पीछे पछिताय।
काम बिगारै आपनो, जग में होत हँसाय।।
जग में होत हँसाय, चित्त में चैन न पावै।
खान पान सन्मान, राग रँग मनहि न भावै।।
कह गिरिधर कविराय, दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय माँहि, कियो जो बिना बिचारे।।१८।।

बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेइ।
जो बनि आवै सहज में, ताही में चित देइ॥
ताही में चित देइ, बात जोई बनि आवै।
दुर्ज्जन हँसै न कोइ, चित्त में खता न पावै॥
कह गिरिधर कविराय, यहै करु मन परतीती।
आगे को सुख समुझि, होइ बीती सो बीती॥१९॥

साईं अपने चित्त की, भूलि न कहिये कोइ।
तबलगि मन में राखिये, जबलगि कारज होइ॥
जबलगि कारज होइ, भूलि कबहूँ नहिं कहिये।
दुरजन हँसै न कोय, आप सियरे ह्वै रहिये॥
कह गिरिधर कविराय, बात चतुरन के ताईं।
करतूती कहि देत, आप कहिये नहिं साईं॥२०॥

साईं अपने भ्रात को, कबहुँ न दीजै त्रास।
पलक दूरि नहिं कीजिये, सदा राखिये पास॥
सदा राखिये पास, त्रास कबहूँ नहिं दीजै।
त्रास दियो लंकेस, ताहि की गति सुनि लीजै॥
कह गिरिधर कविराय, राम सों मिलियो जाई।
पाय विभीषन राज, लंकपति बाज्यो साईं॥२१॥

साईं समय न चूकिये, जथाशक्ति उनमान।
को जाने को आइ है, तेरी पौरि प्रमान॥
तेरी पौरि प्रमान, समय असमय तकि आवै।
ताको तू मन खोलि, अंक भरि हृदय लगावै॥
कह गिरिधर कविराय, सबै यामें सधि आई।
सीतल जल फल फूल, समय जनि चूको साईं॥२२॥

पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥

यही सयानो काम, राम को सुमिरन कीजै।
परस्वारथ के काज, सीस आगे धरि दीजै।।
कह गिरिधर कविराय, बड़ेन की याही बानी।
चलिये चाल सुचाल, राखिये अपनो पानी।।२३।।
राजा के दरबार में, जैये समया पाय।
साईं तहाँ न बैठिये, जहँ कोउ देय उठाय।।
जहँ कोउ देय उठाय, बोल अनबोले रहिये।
हँसिये नही हहाय, बात पूछे ते कहिये।।
कह गिरिधर कविराय, समय सों कीजै काजा।
अति आतुर नहिं होय, बहुरि अनखैहैं राजा।।२४।।
कृतघन कबहुँ न मानहीं, कोटि करै जो कोय।
सर्बस आगे राखिये, तऊ न अपनो होय।।
तऊ न अपनो होय, भले की भली न मानै।
काम काढ़ि चुप रहै, फेरि तिहि नहिं पहिचानै।।
कह गिरिधर कविराय, रहत नितही निर्भय मन।
मित्र शत्रु सब एक, दाम के लालच कृतघन।।२५।।

सूदन

सूदन मथुरा-निवासी माथुर ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम बसन्त था। ये भरतपुर के महाराजा सूरजमल के आश्रय में रहा करते थे। इनके जन्म-मरण के ठीक-ठीक समय का पता नहीं है। इन्होंने २३४ पृष्ठों के सुजान-चरित्र नामक एक ग्रन्थ की रचना की है। उसे नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने प्रकाशित किया है। उसमें सं० १८०२ से १८१० तक सूरजमल के युद्धों का और विविध घटनाओं का वर्णन है। सूदन की कविता वीररस से पूर्ण है। प्राचीन कवियों में भूषण और लाल के पश्चात् वीररस की कविता रचने में सूदन ही सफल हुए हैं। इनका युद्ध की तैयारी का वर्णन उत्तम है। इनकी भाषा में ब्रजभाषा और खड़ीबोली का मिश्रण है। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

१

सेलनु धकेला तें पठान मुख मैला होत केते भट मेला हैं भजाये भुव भंग मैं। तंग के कसे तें तुरकानी सब तंग कीनी दंग कीनी दिली औ दुहाई देत बंग मैं। सूदन सराहत सुजान किरवान गहि धायो धीर धारि वीरताई की उमङ्ग मैं। दखिनी पछेला करि खेला तैं अजब खेल हेला मारि गङ्ग मैं रुहेला मारे जङ्ग मैं॥

२

एकै एक सरस अनेक जे निहारे तन भारे लाज भारे स्वामिकाज प्रतिपाल के। चङ्ग लौं उड़ायो निज दिली की वजीर भीर मारी बहु मीरन किये हे बे हवाल के। सिंह बदनेस के सपूत श्री सुजानसिंह सिंह लौं झपटि नख दीन्हें करवाल के। वेई पठनेटे सेल साँगन खखेटे भूरि धूरि सों लपेटे लेटे भेंटे महाकाल के॥

३

बंङ्गन के लाज मऊखेत की अवाज यह सुने ब्रजराज तें पठान वीर बबके। भाई अहमदखान सरन निदान जानि आयो मनसूर तौ रहै न अब

दबके। चलना मुझे तौ उठ खड़ा होना देर क्या है? बार बार कहे ते दराज सीने सबं के। चंड भुजदंड वारे हयन उदंड वारे कारे कारे डीलन सवारे होत रव के।।

४

महल सराय से रवाने बुआ बूबू करो, मुझे अफसोस बड़ा बड़ी बीबी जानी का। आलम में मालुम चकता का घराना यारो जिसका हवाल है तनैया जैसा तानी का।। खने खाने बीच से अमाने लोग जाने लगे आफत ही जानो हुआ औज दहकानी का। रव की रजा है हमें सहना बजा है वक्त हिन्दू का गजा है आया छोर तुरकानी का।।

५

आप बिस चाखै भैया पटमुख राखै देखि आसन में राखै बस बात जाको अचलै। भूतन के छैया आस पास के रखैया और काली के नथैया हूँ के ध्यान हूँ ते न चलै।। बैल बाघ बाहन बसन को गयन्द खाल भाँग को धतूरे को पसारि देत अँचलै। घर को हलाव यहै संकर की बाल कहै लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचलै।।

६

पूत मजबूत बानी सुनि कै सुजान मानी सोई बात जानी जासों उर में छमा रहै। जुद्ध रीति जानो मत भारत को मानो जैसो होइ पुठवार ताते ऊन अगमा रहै।। वाम और दच्छिन समान बलवान जान कहत पुरान लोक रीति मों रमा रहै। सूदन समर घर दोउन की एकैविधि घर में जमा रहै तो खातिर जमा रहै।।

सीतल

सीतल स्वामी हरिदास की टट्टी-सम्प्रदाय के महंत थे। इनका समय इस सम्प्रदाय के लोग सं० १७८० के लगभग बतलाते हैं; मरण काल का कुछ पता नहीं चलता। सीतल ने चार भागों में 'गुलज़ार-चमन' नामक ग्रंथ की रचना की थी। उसके तीन भाग मिलते हैं, जिनके नाम गुलज़ार-चमन, आनन्द-चमन और विहार-चमन हैं। इनके विषय में यह किम्वदन्ती सुनी जाती है कि ये शाहाबाद ज़िला हरदोई के समीप किसी ग्राम के निवासी थे, और लालबिहारी नाम के एक लड़के पर आसक्त थे। इनकी कविता प्रेमरस से सराबोर है। कुछ छंदों का भाव सांसारिक प्रेम और भगवत्प्रेम दोनों ओर लगाया जा सकता है। लालबिहारी का नाम इनके छंदों में प्रायः अधिक आया है। सम्भव है, इसी भ्रम में आकर लोगों ने उपर्युक्त कल्पना की हो।

सीतल हिन्दी के सिवाय संस्कृत और फ़ारसी भी जानते थे। इनकी कविता वर्तमान हिन्दी के ढंग की है। नीचे इनके कुछ छंद लिखे जाते हैं :—

१

शिव विष्णु ईश बहु रूप तुई नभ तारा चारु सुधाकर है।
अम्बा धारानल शक्ति स्वधा स्वाहा जल पौन दिवाकर है॥
हम अंशाअंश समझते हैं सब खाक जाल से पाक रहै।
सुन लालबिहारी ललित ललन हम तो तेरे ही चाकर हैं॥

२

कारन कारज लै न्याय कहै जोतिस मत रवि गुरु ससी कहा।
ज़ाहिद ने हक्क़ हसन यूसुफ़ अरहंत जैन छबि बसी कहा॥
रतिराज रूप रस प्रेम इश्क जानी छवि शोभा लसी कहा।
लाला हम तुमको वह जाना जो ब्रह्म तत्व त्वम असी कहा॥

३

मुख सरद चन्द्र पर ठहर गया जानी के बुद पसीने का।
या कुन्दन कमल कली ऊपर झमकाहट रक्खा मीने का।।
देखे से होश कहाँ रहवै जो पिदर बू अली सीने का।
या लाल बदख्शाँ पर खीचा चौका इल्मास नगीने का।।

४

हम खूब तरह से जान गये जैसा आनंद का कंद किया।
सब रूप सील गुन तेज पुज तेरे हो तन में बंद किया।।
तुझ हुस्न प्रभा की बाकी ले फिर विधि ने यह फरफंद किया।
चम्पक दल सोन जुही नरगिस चामीकर चपला चंद किया।।

५

मुख सरद चन्द्र पर स्रम सीकर जगमगै नखत गन जोती से।
कै दल गुलाब पर शबनम के है कनके रूप उदोती से।।
हीरे की कनियां मंद लगै है सुधा किरन के गोती से।
आया है मदन आरती को धर कनक थार मे मोती से।।

६

वरनन करने को क्यों वरनू वरनूँगा जेती बानी है।
ग्रह तीन उच्च के पड़े हुये जानी यह यूसुफ़ सानी है।।
ससि भवन जोव सफरी में गुर कन्या बुध जोतिस ज्ञानी है।
इस लालबिहारी की सीतल क्या अर्द्ध चन्द्र पेशानी है।।

७

चन्दन की चौकी चारु पड़ी सोता था सब गुन जटा हुआ।
चौके की चमक अधर विहँसन मानो एक दाड़िम फटा हुआ।
ऐसे में ग्रहन समै सीतल एक ख्याल बड़ा अटपटा हुआ।
भूतल ते नभ, नभ ते अवनी, अँग उछलै नट का बटा हुआ।।

ब्रजबासीदास

ब्रजवासीदास का जन्म सं० १७९० के आस पास हुआ । ये वल्लभ सम्प्रदाय के थे। इन्होंने सं० १८२७, माघ शुक्ला पंचमी, सोमवार को ब्रजविलास प्रारंभ किया था। इस ग्रंथ में कुल इतने छंद हैं :— दोहा ८८९, सोरठा ८८९, चौपाई १०६००, हरिगीतिक १०६। इस ग्रन्थ में भगवान् कृष्ण की ब्रजलीला का वर्णन है। तुलसीदास के रामायण के ढँग पर यह लिखा गया है। इसकी कविता कृष्ण-भक्तों को विशेष प्रिय है। इन्होंने प्रबोध-चंद्रोदय का भी विविध छंदों में अनुवाद किया है ।

यहाँ ब्रजविलास से चन्द्रमा के लिये कृष्ण के मचलने की कथा उद्धृत की जाती है :—

ठाढ़ी अजिर जसोदा रानी। गोदी लिये श्याम सुखदानी ।।
उदै भयो ससि सरद सुहावन। लागी सुत को मात दिखावन ।।
देखहु श्याम चंद यह आवत। अति सीतल दृग ताप नसावत ।।
चितै रहे हरि इक टक ताही। कर ते निकट बुलावत ताही ।।
भैया यह मीठो है खारो। देखत लगत मोहि यह प्यारो ।।
देहि मँगाय निकट मैं लैहौं। लागी भूख चंद मैं खैहौं ।।
देहि बेगि मैं बहुत भुखानो। माँगत ही माँगत बिरुझानो ।।
जसुमति हँसत करत पछतायो। काहे को मैं चंद दिखायो ।।
रोवत है हरि बिनही जाने। अब धौं कैसे करिके माने ।।
विविध भाँति करि हरिहि भुलावै। आन बतावै आन दिखावै ।।

कहत जसोदा कोन विधि , समझाऊँ अब कान्ह।
भूलि दिखायो चंद मैं , ताहि कहत हरि खान ।।
अनहोनी कहु होय , तात सुनी यह बात कहूँ।
याहि खात नहिं कोय , चंद खिलौना जगत को ।।

यही देत नित माखन मोको। छिन छिन देत तात सो तोको ।।
जो तुम श्याम चंद को खैहो। बहुरो फिरि माखन कहुँ पैहो ।।

देखत रहौ खिलोना चंदा। हठ नहिं कीजै बाल गोविन्दा।।
मधु मेवा पकवान मिठाई। जो भावै सो लेहु कन्हाई।।
पालागों हठ अधिक न कीजै। मैं बलि रिस ही रिस तन छीजै।।
खसि खसि कान्ह परत कनियां ते। दै ससि कहत नन्द रनियां तें।।
जसुमति कहत कहा धौं कीजै। मांगत चन्द कहाँ ते दीजै।।
तब जसुमति इक जलपुट लीनां। कर मैं लै तेहि ऊंचा कीना।।
ऐसे कहि श्यामहिं बहकावै। आव चन्द तोहि लाल बुलावै।।
याही में तू तन धरि आवै। तोहिं देखि लालन सुख पावै।।
हाथ लिये तोहिं खेलत रहिये। नेक नहीं धरनी पर धरिये।।
जलपुट आनि धरनि पर राख्यो। गहि आनहु सखि जननी भाख्यो।।

लेहु लाल यह चन्द्र मैं, लीनों निकट बुलाय।
रोवै इतने के लिये, तेरी श्याम बलाय।।
देखहु श्याम निहारि, या भाजन में निकट ससि।
करी इती तुम आरि, जा कारण सुन्दर सुवन।।

ताहि देखि मुसुकाय मनोहर। बार बार डारत दोऊ कर।।
चंदा पकरत जल के माहीं। आवत कछू हाथ में नाहीं।।
तब जलपुट के नीचे देखें। तहँ चन्दा प्रतिबम्ब न पेखें।।
देखत हँसी सकल ब्रजनारी। मगन बाल छवि लखि महतारी।।
तबहिं श्याम कुछ हँसि मुसुकाने। बहुरो माता सों बिरुझाने।।
लउँगौ री मा चन्दा लउँगौ। वाहि आपने हाथ गहूँगौ।।
यह तौ कलमलात जल माहीं। मेरे कर में आवत नाहीं।।
बाहर निकट देखियत माही। कहो तो मैं गहि लावौं ताही।।
कहत जसोमति सुनहु कन्हाई। तुव मुख लखि सकुचत उड़राई।।
तुम तिहि पकरन चहत गुपाला। ताते ससि भजि गयो पताला।।
अब तुम तें ससि डरपत भारी। कहत अहो हरि सरन तुम्हारी।।
बिरुझाने सोये दै तारी। लिय लगाय छतियाँ महतारी।।

लै पौढ़ाये सेज पर , हरि को जसुमति माय।
अति विरुझाने आज हरि , यह कहि कहि पछिताय ।।
करसों ठोंकि सुनाय , मधुरे सुर गावत कछुक।
उठि बैठे अतुराय , चटपटाय हरि चौंकि के ।।

सहजोबाई

सहजोबाई राजपूताना के एक प्रतिष्ठित ढूसर कुल की स्त्री थीं। इन्होंने अपने विषय मे एक स्थान पर लिखा है :—

हरि प्रसाद की सुता, नाम है सहजोबाई।
ढूसर कुल में जन्म, सदा गुरु चरन सहाई ।।

इनके जन्म-काल का ठीक-ठीक पता नही चलता। परन्तु इन्होंने अपने गुरु साधु चरनदासजी का जन्म-समय भादव सुदी ३ मङ्गलवार सं० १७६० विक्रमीय लिखा है। इससे केवल यह माना जा सकता है कि उन्ही दिनों के आसपास इनका भी जीवन-काल है।

सहजोबाई की कविता से प्रकट होता है कि उनमे बड़ी गुरु-भक्ति थी। उनकी कविता बड़ी मधुर और बड़े मर्म की है। हम उनकी रचना के कुछ नमूने यहाँ उद्धृत करते हैं :—

निसचै यह मन डूबता , मोह लोभ की धार।
चरनदास सतगुरु मिले , सहजो लई उबार ।।१।।
सहजो गुरु दीपक दियो , नैना भये अनन्त।
आदि अन्त मध एक ही , सूझ पड़ै भगवन्त ।।२।।
जब चेतै जब ही भला , मोह नींद सूं जाग।
साधू की संगत मिलै , सहजो ऊँचे भाग ।।३।।

दीर्घ बुद्धि जिनकी महा , सील सदा ही नैन।
चैतनता हिरदै बसै , सहजो सीतल बैन ।।४।।
ना सुख दारा सुत महल , ना सुख भूप भये।
साधु सुखी सहजो कहै , तृस्ना रोग गये ।।५।।
साधु वृक्ष बानी कली , चर्चा फूलं फूल।
सहजो सज्जन बाग में , नाना फल रहे झूल ।।६।।
बैठ बैठ बहुतक गये , जग तरवर की छाँहि।
सहज बटाऊ बाट के , मिलि मिलि बिछुड़त जाहिं।।७।।
अभिमानी नाहर बड़ो , भरमत फिरत उजार।
सहजो नन्ही बाकरी , प्यार करै संसार ।।८।।
सीस कान मुख नासिका , ऊँचे ऊँचे ठाँव।
सहजो नीचे कारने , सब कोउ पूजै पाँव ।।९।।
भली गरीबी नवनता , सकै न कोई मार।
सहजो रुई कपास की , काटै ना तरवार ।।१०।।
प्रेम दिवाने जो भये , पलट गयो सब रूप।
सहजो दृष्टि न आवई , कहा रंक कह भूप ।।११।।
मैं अखण्ड व्यापक सकल , सहज रहा भरपूर।
ज्ञानी पावे निकट ही , मूरख जानै दूर ।।१२।।
जोगी पावै जोग सूं , ज्ञानी लहै विचार।
सहजो पावै भक्ति सूं , जाके प्रेम अधार ।।१३।।
सील छिमा सन्तोष गहि , पांचो इन्द्री जीत।
राम नाम ले सहजिया , मुक्ति होन की रीत ।।१४।।
जब लग चावल धान में , तब लग उपजै आय।
जग छिलके कूं तजि निकस , मुक्ति रूप ह्वै जाय ।।१५।।

दयाबाई

दयाबाई भी साधु चरनदास की शिष्या और सहजोबाई की गुरु-बहन थी। ये चरनदासजी की सजाती अर्थात् दूसर जाति की थीं और चरनदास-जी के जन्म-स्थान मेवाड़ के डेहरा नामक गाँव में इनका भी जन्म हुआ था। वहाँ से ये अपने गुरुजी के साथ दिल्ली आकर भक्ति कमाती रहीं। दिल्ली ही में इन्होंने शरीर छोड़ा।

सं० १८१८ में इन्होंने अपना पहला ग्रन्थ दया-बोध रचा। सहजो बाई की तरह इन्होंने भी गुरु चरनदासजी की महिमा खूब गाई है। इनकी कविता बड़ी मधुर और प्रेम से युक्त है। हम यहाँ दया-बोध से कुछ दोहे उद्धृत करते हैं :—

जौ पग धरत सो दृढ़ धरत, पग पाछे नहिं देत।
अहंकार कूँ मार करि, राम रूप जस लेत ॥१॥
बौरी ह्वै चितवत फिरूँ, हरि आवें केहि ओर।
छिन उट्ठूं छिन गिरि परूँ, राम दुखी मन मोर ॥२॥
प्रेम पुंज प्रकटै जहाँ, तहाँ प्रकट हरि होय।
दया दया करि देत है, श्री हरि दर्शन सोय ॥३॥
'दया कुँवरि' या जगत में, नहीं रह्यो थिर कोय।
जैसो वास सराय को, तैसो यह जग होय ॥४॥
तात मात तुम्हरे गये, तुम भी भये तयार।
आज काल में तुम चलो, दया होहु हुसयार ॥५॥
बड़ो पेट है काल को, नेक न कहूँ अघाय।
राजा राना छत्रपति, सब कूँ लीले जाय ॥६॥
दुख तजि सुख की चाह नहिं, नहिं बैकुंठ बेवान।
चरन कमल चित चहत हौं, मोहि तुम्हारी आन ॥७॥
साधु संग में सुख बड़ो, जो करि जानै कोय।
आधो छिन सतसंग को, कलमख डारै खोय ॥८॥

ठाकुर

ठाकुर असनी के रहनेवाले ब्रह्मभट्ट थे । इनका जन्म सं० १७९२ के लगभग कहा जाता है। इनकी कविता इतनी लोकप्रिय है कि कभी-कभी उसका उपयोग कहावतों की तरह किया जाता है। ठाकुर नाम के कई कवि हुये; परन्तु सब से प्रसिद्ध असनीवाले ही हैं। प्रेम का वर्णन इनकी कविता का मुख्य गुण है। नीचे हम कुछ कविताएँ उद्धृत करते हैं; उनसे ठाकुर के हृदय का बड़ा सुन्दर परिचय मिलता है:—

बैर प्रीति करिबे की मन में न राखै संक राजा राव देखि कै न छाती धकधाकरी। अपनी उमंग की निबाहिबे की चाह जिन्हें एक सो दिखात तिन्हें बाघ और बाकरी। ठाकुर कहत मैं बिचार कै बिचारि देख्यों यहै मरदानन की टेक बात आकरी। गही जौन गही जौन छोड़ी तौन छोड़ दई करी तौन करी बात ना करी सो ना करी ।।१।।

सामिल मे पीर मे सरीर मे न भेद राखै हिम्मत कपट को उघारै तौ उघरि जाय। ऐसे ठान ठानै तौ बिनाहू जन्त्र मन्त्र किये साँप के जहर को उतारै तो उतरि जाय। ठाकुर कहत कछु कठिन न जानौ अब, हिम्मत किये तें कहो कहा न सुधरि जाय। चारि जने चारिहू दिसा तें चारो कोन गहि मेरु को हिलाय के उखारै तौ उखरि जाय ।।२।।

अन्तर निरन्तर के कपट कपाट खोलि प्रेम को झलाझल हिये में छाइयतु है। लटी भई आप सो भई है करतूत जौन विरह बिथा की कथा को सुनाइयतु है। ठाकुर कहत वाहि परम सनेही जान दुख सुख आपने विधि सों गाइयतु है। कैसो उतसाह होत कहत मते की बात जब कोऊ सुघर सुनैया पाइयतु है ।।३।।

जौलों कोऊ पारखी सों होन नहिं पाई भेंट तब ही लों तनक गरीब लों सरीरा है। पारखी सों भेंट होत मोल बढ़े लाखन को, गुनन के आगर सुबुद्धि के गँभीरा हैं। ठाकुर कहत नहिं निन्दो गुनवारन को देखिबे को दीन ये सपूत सूर बीरा हैं। ईश्वर के आनस तें होत ऐसे मानस जे मानस सहूरवारे धूर भरे हीरा हैं ।।४।।

सुकवि सिपाही हम उन रजपूतन के दान युद्ध बीरता में नेकहूँ न सुरकें। जस के करैया हैं मही के महिपालन के हिये के बिसुद्ध हैं सनेही साँचे उरके। ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के जालिम दमाद हैं अदेनिया ससुर के। चोजन के चोजी महा मौजिन के महाराज हम कविराज हैं पै चाकर चतुर के ॥५॥

हिलमिलि लीजिये प्रबीनन तें आठो जाम कीजिये अराम जासो जिय को अराम है। दीजिये दरस जाको देखिबे को हौस होय कीजिये न काम जासों नाम बदनाम है। ठाकुर कहत यह मन में बिचारि देखो जस अपजस को करैया सब राम है। रूप से रतन पाय चातुरी से धन पाय नाहक गँवाइबो गँवारन को काम है ॥६॥

कोमलता कंज तें गुलाब तें सुगन्ध लैकै चन्द तें प्रकाश कियो उदित उजेरो है। रूप रति आनन तें चातुरी सुजानन तें नीर लै निवानन तें कौतुक निबेरो है। ठाकुर कहत यों मसालौ विधि कारीगर रचना निहारि जन होत चित चेरो है। कंचन को रंग लै सवाद लै सुधा को बसुधा को सुख लूटि कै बनायौ मुख तेरो है ॥७॥

ग्वारन को यार है सिंगार सुख सोभन को साँचो सरदार तीन लोक रजधानी को। गाइन के संग देख आपनो बखत लेख आनंद विशेष रूप अकह कहानी को। ठाकुर कहत साँचो प्रेम को प्रसंगवारो जा लख अनंग रंग दग दधिदानी को। पुण्य नंद जू को अनुराग ब्रजबासिन को भाग जसुमति को सुहाग राधारानी को ॥८॥

आपने बनाइबे को और को बिगारिबे को सावधान ह्वै के सीखे द्रोह से हुनर है। भूल गये करुनानिधान स्याम मेरै जान जिनको बनायो यह विस्व को बितर है। ठाकुर कहत पगे सबै मोह माया मध्य जानत या जीवन को अजर अमर है। हाय! इन लोगन को कौन सो उपाय जिन्हैं लोक को न डर परलोक को न डर है ॥९॥

लगी अन्तर में करै बाहिर को बिन जाहिर कोऊ न मानतु है।
दुख औ सुख हानि औ लाभ सबै घर की कोउ बाहर भानतु है ॥

कवि ठाकुर आपनी चातुरी सों सबही सब भाँति बखानतु है।
पर बीर मिलै बिछुरै की बिथा मिलि कै बिछुरै सोई जानतु है ।।१०।।
वा निरमोहिनी रूप का रासि जो ऊपर कै उर आनत ह्वै है।
बार हू बार बिलोकि घरी घरी सूरति तौ पहचानति ह्वै है।।
ठाकुर या मन की परतीति है जो पै सनेह न मानति ह्वै है।
आवत है नित मेरे लिये इतनों तो बिसेसहू जानति ह्वै है ।।११।।
यह प्रेम कथा कहिये किहि सों सो कहे सों कहा कोऊ मानत हैं।
पर ऊपरी धीर बँधायो चहैं तन रोग न वा पहिचानत है।
कहि ठाकुर जाहि लगी कसकै सु तो को कसकै उर आनत है।
बिन आपने पाय बेवाय गये कोऊ पीर पराई न जानत है ।।१२।।
ये जे कहैं ते भले कहिबो करैं मान सही सो सबै सहि लीजै।
ते बकि आपुहि ते चुप होयँगी काहे को काहुवै उत्तर दीजै।।
ठाकुर मेरे मते की यहै धनि मान कै जोवन रूप पतीजै।
या जग में जनमें को जियै को यहै फल है हरि सों हित कीजै ।।१३।।
एक ही सों चित चाहिये और लों बीच दगा को परै नहिं टाँको।
मानिक सों चित बेंचि कै जू अब फेरि कहाँ परखावनो ताको।।
ठाकुर काम नहीं सब को इक लाखन में परबीन है जाको।
प्रीति कहा करिबे में लगै करिकै इक और निबाहनो वाको ।।१४।।
वह कंजसों कोमल अङ्ग गुपाल को सोऊ सबै पुनि जानती हो।
बलि नेक रुखाई धरे कुम्हिलात इतौऊ नहीं पहिचानती हौं।।
कवि ठाकुर या कर जोरि कह्यो इतने पै बनै नहि मानती हौ।
दृग बान यें भौंह कमान कहौ अब कान लौं कौन पै तानती हौ ।।१५।।

बोधा

बोधा का पहला नाम बुद्धिसेन था। ये सरवरिया ब्राह्मण थे। कोई कोई इनका निवास-स्थान राजापुर (ज़िला बाँदा) और कोई-कोई फ़ीरोज़ाबाद (ज़िला आगरा) बतलाते हैं। परन्तु फ़ीरोज़ाबादी बोधा एक भिन्न कवि हुए हैं। पन्ना से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। उनके वंशज अबतक फ़ीरोज़ाबाद में वर्तमान हैं। उन्होंने 'बागविलास' नामक काव्य-ग्रन्थ की रचना की थी, जो अब दुष्प्राप्य हो रहा है। जान पड़ता है कि पन्ना दरबार से सम्बन्ध रखनेवाले बोधा राजापुर ही के रहनेवाले थे। इनके जन्म-मरण का ठीक समय अभी निश्चित नहीं हो सका है। शिवसिंह सरोज में इनका जन्म-संवत् १८०४ लिखा है। अनुमान से यही ठीक जान पड़ता है।

पन्ना दरबार में इनके संबंधियों की अच्छी प्रतिष्ठा थी। बालकपन में ये उन्हीं के पास जाकर रहने लगे। ये हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत और फ़ारसी के भी अच्छे पंडित थे। इनके गुणों से प्रसन्न होकर पन्ना-नरेश इन्हें बहुत चाहने लगे। प्यार के कारण उन्हींने इनका नाम बुद्धिसेन से बोधा रख दिया। दरबार में सुभान नाम की एक वेश्या थी। बोधा ने उससे कुछ संबंध स्थापित कर लिया। जब इसका समाचार राजा साहब को मालूम हुआ, तब उन्होंने बोधा को छः महीने के लिये अपने राज से निकाल दिया। इस अवसर में इन्होंने उस वेश्या के विरह में 'विरह वारीश' नामक ग्रन्थ की रचना की। छः मास के उपरान्त जब ये फिर दरबार में गये, और राजा साहब को इन्होंने अपना 'विरह-वारीश' सुनाया, तब राजा ने प्रसन्न होकर इनसे वर माँगने को कहा। इन्होंने कहा—'सुभान अल्लाह'। राजा ने प्रसन्न होकर सुभान वेश्या इन्हें समर्पित कर दी। अपने 'इश्कनामा' में इन्होंने सुभान की बड़ी प्रशंसा की है। पन्ना ही में इनका देहान्त हुआ।

बोधा प्रेमी कवि थे। प्रेम के उपासक थे। प्रेम के मर्मज्ञ थे। इनकी कविता-तरंगिणी में प्रेम ही की लहरें उठती थीं। यहाँ हम इनके कुछ छंद उद्धृत करते हैं :—

अति खीन मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई बेह ते द्वार सकी न तहाँ परतीति को टाँड़ो लदावनो है।
कवि बोधा अनी घनी नेजहु ते चढ़ि तापै न चित्त डरावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो है।।१।।

एक सुभान के आनन पै कुरबान जहाँ लगि रूप जहा को।
कैयो सतक्रतु की पदवी लुटियै लखि कै मुसुकाहट ताको।
सोक जरा गुजरा न जहाँ कवि बोधा जहाँ उजरा न तहाँ को।
जान मिलै तो जहान मिलै नहिं जान मिलै तो जहान कहाँ को।।२।।

लोक की लाज औ सोक परलोक को वारिये प्रीति के ऊपर दोऊ।
गोत को गेह का देह को नातो सनेह में हाँतो कहै पुनि साऊ।
बोधा सुनीति निबाह करे घर ऊपर जाके नही सिर होऊ।
लोक की भीति डेरात जो मीत तौ प्रीति के पैंडे परै जनि कोऊ।।३।।

बोधा किसू सो कहा कहिये सो विथा सुनि पूरि रहै अरगाइ कै।
याते भलें मुख मौन धरै उपचार करै कहूँ औसर पाइ कै।
ऐसो न कोऊ मिल्यो कबहूँ जो कहै कछु रंच दया उर लाइ कै।
आवतु है मुख लौं बढ़ि कै फिरि पीर रहै या सरीर समाइ कै।।४।।

कबहूँ मिलिबो कबहूँ मिलिबो यह धीरज ही में धरैबो करै।
उर ते कढ़ि आवै गरे ते फिरै मन की मनहीं में सिरैबो करै।
कवि बोधा न चाउ सरी कबहूँ नितही हरवा सों हिरैबो करै।
सहते ही बनै कहते न बनै मन ही मन पीर पिरैबो करै।।५।।

बिछुरे दरद न होत, खर सूकर कूकुरन को।
हंस मयूर कपोत, सुघर नरन बिछुरन कठिन।।६।।
बोधा सब जग ढूँढ़्यो फिरि फिरि धाइ।
जेहि मनहीं मन चाहत सो न लखाइ।।७।।

हिलि मिलि जानै तासों मिलि कै जनावै हेत हित को न जानै ताको हितू न बिसाहिये। होय मगरूर तापै दूनी मगरूरी कीजै लघु ह्वै चलै जो तासों लघुता निबाहिये। बोधा कवि नीति को निबेरो यही भाँति अहै आपको सराहै ताहि आपहू सराहिये। दाता कहा सूर कहा सुन्दर सुजान कहा आपको न चाहै ताके बाप को न चाहिये ॥८॥

वह प्रीति की रीति को जानत थो तबही तो बच्यो गिरि डाहन तें।
गजराज चिकारि कै प्रान तज्यो न जरचो सँग होलिका दाहन तें॥
कवि बोधा कछू न अनोखी यहै का बनै नही प्रीति निबाहन तें।
प्रहलाद की ऐसी प्रतीति करै तब क्यों न कढ़ै प्रभु पाहन तें॥९॥

पद्माकर

पद्माकर का जन्म सं० १८१० में बाँदा में हुआ, और सं० १८९० में ये कानपुर में गङ्गा-तट पर स्वर्गवासी हुये। ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम मोहनलाल भट्ट था। पद्माकर संस्कृत और प्राकृत के अच्छे पंडित थे। ये कुछ दिनों तक जयपुर के महाराज जगतसिंह के पास भी रहे थे, और उन्हीं के नाम पर इन्होंने जगद्विनोद नामक बड़ा रोचक काव्य-ग्रंथ बनाया। इनके रचे हुये जगद्विनोद, गङ्गालहरी, हिम्मत बहादुर विरदावली, पद्माभरण, आलीजा प्रकाश, भाषा हितोपदेश और प्रबोध पाचासा-ग्रंथ हैं। इन्होंने राम-रसायन नाम से बाल्मीकि रामायण का पद्यानुवाद भी किया था। इनके प्रायः सब ग्रंथ भारत जीवन प्रेस बनारस में छपे थे। सं० १९९२ में काशी-विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, एम० ए० ने पद्माकर पंचामृत नाम से इनके पाँच ग्रंथों का संपादन करके प्रकाशित कराया है। कविता-द्वारा इन्होंने बड़ा मान और धन प्राप्त किया था। ये सदैव राजा-महाराजाओं की तरह

रहा करते थे। इनकी कविता में अनुप्रास का आनन्द खूब मिलता है। हम यहां इनकी कविता के कुछ नमूने प्रस्तुत करते हैं :—

१

जाहिरै जागत सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी।
त्यों पदमाकर हीरा के हारन गङ्ग तरङ्गन सी सुखदेनी।
पायन के रँग सों रँगि जात सी भाँतिही भाँति सरस्वति सेनी।
पैरे जहाँई जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल मे होति त्रिवेनी॥

२

ये अलि या बलि के अधरानि में आनि चढ़ी कछु माधुरई सी।
ज्यों पदमाकर माधुरी त्यों कुच दोउन की चढ़ती उनई सी।
ज्यों कुच त्यों ही नितम्ब चढ़े कछु ज्यों ही नितम्ब त्यों चातुरई सी।
जानि न ऐसी चढ़ाचढ़ि में किहि धौ कटि बीच ही लूटि लई सी॥

३

चौक में चौकी जराय जरी तिहि पै खरी वार बगारत सौधे।
छोरि परी है सु कचुकी न्हान को अंगन तेज में ज्योति के कौंधे।
छाइ उरोजन की छवि ज्यों पदमाकर देखत ही चकचौंधे।
भागि गई लरिकाई मनौ लरिकै करिकै दुहुँ दुन्दुभि औंधे॥

४

जाहि न चाह कहूँ रति की सु कछू पति को पतियान लगी है।
त्यों पदमाकर आनन में रुचि कानन भौंहें कमान लगी है।
देत तिया न छुवै छतियाँ बतियान में तो मुसकान लगी है।
पीतम पान खवाइबे को परयङ्क के पास लौं जान लगी है॥

५

आई जू चालि गुपाल घरै ब्रजबाल विसाल मृणाल सों बाहीं।
त्यों पदमाकर मूरति में रति छू न सकै कितहूँ परछाहीं।
सोभित सम्भु मनो उर ऊपर मौज मनोभव की मनमाहीं।
लाज बिराज रही अँखियान में प्रान में कान्ह जबान में नाहीं॥

६

सोरह सिँगार कै नवेली के सहेलिन हूँ कीन्ही केलि मन्दिर मे कलपित केरे हैं। कहै पदमाकर सु पास ही गुलाब पास खासे खसखास खसबोईन के ढेरे हैं। त्यों गुलाब नीरन सों हीरन के हौज भरे दम्पति मिलाप हित आरती उजेरे हैं। चोखी चाँदनीन पर चौरस चमेलिन के चन्दन की चौकी चारु चाँदी के चँगेरे हैं।।

७

चहचही चहल चहूँघा चारु चन्दन की चन्द्रक चमीन चौक चौकन चढी है आब। कहै पदमाकर फराकत फरसबन्द फहरि फुहारन की फरसी फबी है फाब। मोद मतमाती मनमोहन मिलैं के काज साजि मन मन्दिर मनोज कैसी महताब। गोल गुल गादी गुल गोल मे गुलाब गुल गजक गुलाबी गुल गिन्दुक गले गुलाब।।

८

कौन है तू कित जाति चली बलि बीती निशा अधराति प्रमाने।
हौं पदमाकर भावति हौं निज भावत पै अबहीं मुहि जाने।।
तौ अलबेली अकेली डरै किन क्यों डरौ मेरी सहायक के लाने।
है सखि मज्जन मनोभव सो भट कान लो बान सरासन ताने।।

९

झाकति है का झरोखा लगी लग लागिबे को यहाँ झेल नही फिर।
त्यों पदमाकर तीखे कटाच्छन की सर कौसर सेल नहीं फिर।।
नैन नहीं कि घलाघल के घन घावन को कछु तेल नही फिर।
प्रीति पयोनिधि में घँसिकै हँसिकै कढ़िबो हँसी खेल नहीं फिर।।

१०

बैन सुधा के सुधा सी हँसी बसुधा में सुधा की सटा करती है।
त्यों पदमाकर बारहिं बार सुबार बगारि लटा करती है।।
बीर बिचारे बटोहिन पै इक काज ही तौ यों लटा करती है।
बिज्जु छटासी अटा पै चढ़ी सु कटाछनि घालि कटा करती है।।

११

कूलन में केलि मे कछारन में कुंजन मे क्यारिन में कलिन कलीन किल-कंत है। कहै पदमाकर परागन मे पानहूँ में पानन मे पीक में पलासन पगंत है। द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में देखो दीप दीपन में दीपत दिगंत है। बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में बनन में बागन में बगरो बसंत है।

१२

पात बिन कीन्हें ऐसी भाँति गन बेलिन के परत न चीन्हें जेये लरजत लुंज हैं। कहै पदमाकर बिसासी या बसंत के सु ऐसे उतपात गात गोपिन के भुंज हैं। ऊधो यह सूधो सो सँदेसो कहि दीजो भलो हरि सों हमारे ह्यां न फूले वन कुंज है। किंसुक गुलाब कचनार और अनारन की डारन पै डोलत अँगारन के पुंज हैं।।

१३

ये ब्रजचन्द्र चलो किन वा ब्रज लूकैं बसंत की ऊकन लागी।
त्यों पदमाकर पेखो पलासन पावक सी मनो फूकैन लागी।
वै ब्रजनारी बिचारी बध बन बावरी लौं हिये हूकन लागी।
कारी कुरूप कसाइन पै सु कुहू कुहू क्वैलिया कूकन लागी।।

१४

फहरैं फुहारे नीर नहरैं नदी सी बहैं छहरैं छबीन छाम छीटिन की छाटी है। कहै पदमाकर त्यों जेठकी जलाकैं तहाँ पावैं क्यों प्रबेस बेस बेलिन की बाटी है। बारहू दरीन बीच चारहू तरफ तैसी बरफ बिछाई तापै सीतल सुपाटी है। गजक अँगूर की अँगूर से उचो हैं कुच आसव अँगूर को अँगूर ही की टाटी है।।

१५

मल्लिकान मंजुल मलिन्द मतवारे मिले मंद मन्द मारुत मुहीम मनसा की है। कहै पदमाकर त्यों नादत नदीन नित नागरि नबेलिन की नजरि निसा की है। दौरत दरेरे देत दादुर सुदूँदै दीह दामिनी दमंकनि दिसनि में दिशा की है। बद्दलनि बुन्दनि बिलोकी बगुलानि बाग बङ्गलनि बेलिन बहार बरसा की है।।

१६

तालन पै ताल तमालन पै मालन पै बृन्दाबन बीथिन बहार बंसी बट पै। कहै पदमाकर अखंड रासमंडल पै मण्डित उमड़ि महा कालिन्दी के तट पै। छिति पर छान पर छाजत छतान पर ललित लतान पर लाड़िली के लट पै। आई भले छाई यह सरद जुन्हाई जिहि पाई छबि आजुही कन्हाई के मुकट पै।।

१७

अगर की धूप मृगमद को सुगन्ध वर बसन बिसाल जाल अङ्ग ढाकियतु है। कहै पदमाकर सु पौन को न गौन जहाँ ऐसे भौन उमँगि उमँगि छाकियतु है। भोग औ सँयोग हित सुरति हिमंत ही में एते और सुखद सहाय बाकियतु है। तान की तरंग तरुनापन तरनि तेज तेल तूल तरुनी तमाल ताकियतु है।।

१८

गुलगुली गिलमै गलीचा है गुनी जन है चाँदनी है चिक हैं चिरागन की माला है। कहै पदमाकर त्यों गजक गिजा हैं सजी सेज है सुराही हैं सुरा है और प्याला हैं।। सिसिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हैं जिनके अधीन एते उदित मसाला है। तान तुकताला हैं बिनोद के रसाला हैं सुबाला है दुसाला है बिसाला चित्रसाला है।।

१९

जात हती निज गोकुल को हरि आवैं तहाँ लखिकै मग सूना।
तासों कहौं पदमाकर यों अरे साँवरे बावरे तैं हमें छू ना।
आज धौं कैसी भई सजनी उत वा विधि बोल कढ़्योई कहूँ ना।
आनि लगायो हियो सों हियो भरि आयो गरो कहि आयो कछू ना।।

२०

सोभित सुमनवारी सुमना सुमनवारी कौनहूँ सुमनवारी को नहीं निहारी है। कहै पदमाकर त्यौं बाँधनू बसनवारी वा ब्रज बसन वारी ह्यो हरन हारी है। सुबरनवारी रूप सुबरनवारी सजै सुबरनवारो काम कर की सँवारी है। सीकरनवारी स्वेद सीकरनवारी रति सीकरनवारी सो बसीकरनवारी है।।

२१

अंचल के ऐंचे चल करती दृगंचल को चंचला तैं चंचल चलै न भजि द्वारे को। कहै पदमाकर परै सी चौंक चुम्बन में छलनि छपावै कुच कुंभनि किनारे को। छाती के छुवे पै परी राती सी रिसाय गलबाँही किये करै नाहिं नाहिं पै उचारे को। ही करति सीतल तमासे तुग तौ करति सी करति रति में बसीकरति प्यारे को।।

२२

फाग के भीर अभीरनि त्यों गहि गोविन्द लै गई भीतर गोरी।
भाय करी मन की पदमाकर ऊपर नाय अबीर की झोरी।।
छीन पितम्मर कम्मर तैं सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाय कही मुसुक्याय लला फिर आइयो खेलन होरी।।

२३

कै रति रङ्ग थकी थिर ह्वै परयंक पै प्यारो परी मुँह बाय कै।
त्यों पदमाकर स्वेद के बुन्द रहे मुकताहल से तन छाय कै।।

बिन्दु रचे मेंहँदी के लसे कर तापर यों रहयो आनन आय कै।
इन्दु मनों अरविन्द पै राजत इन्द्रवधून के वृन्द बिछाय कै।।

२४

रे मन साहसी साहस राखु सु साहस सो सब जेर फिरैंगे।
त्यों पदमाकर या सुख में दुख त्यों दुख मे सुख सेर फिरैंगे।
वैसे ही वेनु बजावत श्याम सुनाम हमारो हू टेर फिरैंगे।
एक दिना नहिं एक दिना कबहूँ फिर वे दिन फेर फिरैंगे।।

२५

जैसो तैं न मोसों कहूँ नेकहूँ डरात हुतो तैसो अब हौहूँ नेकहूँ न तोसों डरिहौं। कहै पदमाकर प्रचड जो परैगो तो उमंड करि तोसों भुजदंड ठोंकि लरिहौं। चलो चलु चलो चलु बिचलु न बीच ही ते कीच बीच नीच तो कुटुम्ब को कचरिहौं। मेरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि गंगा के कछार में पछार छार करिहौं।।

२६

जग जीवन को फल जानि परयो धनि नैननि को ठहरैयतु है।
पदमाकर ह्यो हुलसै पुलकै तनु सिन्धु सुधा के अन्हैयतु है।।
मन पैरत सो रस के नद में अति आनन्द में मिलि जैयतु है।
अब ऊँचे उरोज लखे तिय के सुरराज के राज सों पैयतु है।।

२७

पाली पैज पन की प्रवेस करि पावक में पौन से सिताब सहगौन की गती भई। कहै पदमाकर पताका प्रेम पूरन की प्रकट पतिव्रत की सौगुनी रती भई। भूमिहू अकासहू पतालहू सराहै सब जाको जस गावत पवित्र सो मती भई। सुनत पयान श्री प्रताप को पुरन्दर पै धन्य पटरानी जोधपुर में सती भई।।

२८

चोरन गोरिन में मिलि कै डतै आई है हाल गुवाल कहाँ की।
कौन बिलोकि रह्यो पदमाकर वा तिय की अवलोकनि बाँकी।।
धीर अबीर की धूँधुरि में कछु फेर सों कै मुख फेरि कै झाँकी।
कै गई काटि करेजनि के कतरे कतरे पतरे करिहाँ की।।

२९

घर ना सुहात ना सुहात बन बाहिर हू बाग ना सुहात जो खुसाल खुसबोही सों। कहै पदमाकर घनेरे धन धाम त्योंहीं चैन ना सुहात चाँदनी हूँ जोग जोही सों। साँझ हूँ सुहात ना सुहात दिन साँझ कछु ब्यापी यह बात सो बखानत हों तोही सों।। रातिहु सुहात ना सुहात परभात आली जब मन लागि जात काहू निरमोही सों।।

३०

बगमि बितुण्ड दिये झुण्डन के झुण्ड रिपु मुडन की मालिका दई ज्यों त्रिपुरारी को। कहै पदमाकर करोरन को कोष दये पोड़सहू दीन्हें महादान अधिकारी को। ग्राम दये धाम दये अमित अराम दये अन्न जल दीने जगती के जीवधारी को। दाता जयसिंह दोय बातें तौ न दीनी कहूँ बैरिन को पीठि और दीठि परनारी को।।

३१

सम्पति सुमेर की कुबेर की जो पावै ताहि तुरत लुटावत बिलम्ब उर धारै ना। कहै पदमाकर सु हेम हय हाथिन के हलके हजारन के बितर बिचारै ना। दीन्हे गज बकसि महीप रघुनाथ राय याहि गज धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना। याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारै ना।।

३२

देव नर किन्नर कितेक गुन गावत पै पावत न पार जा अनन्त गुन पूरे को। कहै पदमाकर सु गाल के बजावत ही काज करि देत जन जाचक जरूरे को। चन्द की छटान जुत पन्नग फटान जुत मुकुट बिराजै जटा जूटन के जूरे को। देखो त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ पैये फल चारि फूल एक दै धतूरे को।।

३३

आनन्द के कन्द जग ज्यावत जगतबन्द्य दसरथनन्द के निबाहे निबहिये। कहै पदमाकर पवित्र पन पालिबे को चौर चक्रपानि के चरित्रन को चहिये। अवधबिहारी के बिनोदन में बीधि बीधि गीधा गुह गीधे के गुनानुवाद गहिये। रैन दिन आठो जाम राम राम राम राम सीताराम सीताराम सीताराम कहिये।।

३४

हानि अरु लाभ ज्यान जीवन अजीवनहूँ भोगहू वियोगहू सँयोगहू अपार है। कहै पदमाकर इते पै और केते कहों तिनको लख्यो न बेदहू में निरधार है। जानियत याते रघुराय की कला को कहूँ काहू पार पायो कोऊ पावत न पार है। कौन दिन कौन छिन कौन घरी कौन ठौर कौन जाने कौन को कहा धौं होनहार है।।

३५

व्याधहूँ ते बिहद असाधु हौं अजामिल लौं ग्राह तें गुनाही कहौ तिनमें गिनाओगे। स्योरी हौं न सूद्र हौं न केवट कहूँ को त्यों न गौतमी तिया हौं जापै पग धरि आओगे। राम सों कहत पदमाकर पुकारि तुम मेरे महा पापन को पारहू न पाओगे। झूठोहू कलंक सुनि सीता ऐसी सती तजी हौं तो साँचोहूँ कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे।।

लल्लू लाल जी

लल्लू लाल जी गुजराती ब्राह्मण, आगरे में रहते थे। ये सं० १८६० में वर्तमान थे। कुछ दिनों तक ये कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज में नौकर थे। वहीं इन्होंने ब्रजभाषा-मिश्रित वर्तमान बोलचाल की भाषा में भागवत दशम स्कंध की कथा के आधार पर प्रेमसागर नामक एक ग्रन्थ लिखा। कथा गद्य में है। कहीं-कहीं हिन्दी के कुछ दोहे चौपाइयाँ भी हैं। वर्तमान गद्य के जन्मदाता येही कहे जाते हैं। प्रेमसागर के सिवाय इनके रचे हुये निम्नलिखित ग्रन्थ हैं--लतायफ़ हिन्दी, भाषा हितोपदेश, सभाविलास, माधवविलास, सतसई की टीका, भाषा व्याकरण, मसादिरे भाषा, सिंहासन बत्तीसी, बैताल पच्चीसी, माधवानल और शकुंतला। इनके रचे पद्यों के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं :--

चूक कछू बालक सों परै। साधु न कबहूँ मन में धरै॥
घट घट माहिं ज्योति ह्वै रहे। ताही सों जग निर्गुन कहैं॥
आपहि सिरजै आपहि हरै। रहै मिल्यो बाँध्यो नहिं परै॥
भू आकाश वायु जल जोति। पंचतत्व ते देह जो होति॥
प्रभु की शक्ति सबनि में रहै। वेद माहिँ विधि ऐसे कहै॥
सहसबाहु अति बली बखान्यो। परसुराम ताको बल भान्यो॥
बेणु रूप रावण हो भयो। गर्व आपने सोऊ गयो॥
भौमासुर बाणासुर कंस। भये गर्व ते ते विध्वंस॥
श्रीमद गर्व करो जिन कोय। त्यागे गर्व सो निर्भय होय॥
सुनौ मुनीस सोई बड़ भागी। जो सुर धेनु विप्र अनुरागी॥
जा घर चरन साधु के परैं। ते नर सुख सम्पति अनुसरैं॥

जाचक कहा न माँगई, दाता कहा न देय।
गृह सुत सुन्दरि लोभ नहिं, तन धन दे जस लेय॥

जयसिंह

जयसिंह रीवाँ के महाराजा थे। इनका जन्म सं० १८२१ में हुआ। १८९१ तक इन्होंने राज्य किया। अपने जीवन-काल ही में इन्होंने राज्याधिकार अपने पुत्र विश्वनाथ सिंह को सौंप दिया था। ये लगभग १०० वर्ष तक जीवित रहे।

जयसिंह बड़े भक्त और सच्चे वैष्णव थे; यह इनकी रचना से अच्छी तरह बोध होता है। इन्होंने १८ ग्रन्थों की रचना की थी। उनमें से कुछ के नाम ये हैं :—कृष्णतरङ्गिणी, हरे चरितामृत, त्रय वेदान्त प्रकाश, निर्णय सिद्धान्त, गंगालहरी, हरिचरित्रचन्द्रिका। इनकी रचना सरस और अलंकारपूर्ण होती थी। इनके ग्रन्थों में हरिचरित्रचन्द्रिका इस समय हमारे सामने है। हम उसी में से कुछ छन्द उद्धृत करके पाठकों के सामने रखते हैं—

वर्षा गई सरद ऋतु आई। नवल वधू सम सुखद सोहाई॥
कमल बदन खञ्जन चख छ्राजै। सुरँग सुमन वर बसन बिराजै॥
कल मराल नव नूपुर बाजत। सुनि मुनि मानस मान बिभाजत॥
फूली काँस सु दुति धरि धाई। पतिव्रता कीरति जिमि पाई॥
बरसर लसहि सरोरुह फूले। सुकृती भूप प्रजागन तूले॥
महि जल सूखो प्रगटी महि इमि। नसत पखंड लसत श्रुति पथ जिमि॥
सरि सर जल इमि निर्मल छ्राजत। जिमि तजि विषय विरागी राजत॥

ककुभ कुटज आदिक बिना, विकसे कुसुम निकाय।
जिमि खल मद मथि नृप नगर, राख्यो सुजन बसाय॥

जल बिन जलद सेत छबि छाजत। सब धन दे जिमि दाता राजत॥
निर्मल भयो गगन घन फूटे। जिमि हिय विषय बासना छूटे॥
लसत इंदु उड़गन मिलि ऐसो। नृप नय निपुन प्रजा जुत जैसो॥
परसि चाँदनी यौं छिति सोही। सती सो सौति पाइ जिमि जोही॥

जन मनरञ्जन खञ्जन कैसे । पूरव पुण्य समय फल जैसे ।।
जलचर नित जल घटत न जानहिं । आयु कमत जिमि जन नहि मानहिं ।।
रवि संताप सरद ससि नासत । मोह नसत जिमि ज्ञान प्रकासत ।।
छन छवि छवि नहिं गगन प्रकासै । तोषित हिय जिमि तृष्णा नासै ।।

परसि कमल कुवलय वहत , वायु ताप नसि जाइ ।
सुनत बात हरि गुननि जुत , जिमि जन पाप पराइ ।।

कहुं कहुं बधुक सुमन सुहाये । जनु अनुरागी जन मन भाये ।।
मदन मराल मिलो तजि मोरनि । अलि तजि चित्र कुसुम जनि कोलनि ।।
बाल मराल मंजु धुनि करही । साम वेद मुनिवर उच्चरही ।।
प्रफुलित उपवन जूही जाती । मनु नभ उडु पाँती दरसाती ।।
घन समीप सुर धनु न देखाही । जिमि न सुजन ढिग दुर्जन जाही ।।
क्षुद्र नदी घटि चली बनाई । जिमि खल विभव नसे नै जाई ।।
सूखी कीच महीतल माही । ज्यो सत हिय कामादि सुखाही ।।
पूरण अन्न सहित छिति छाजै । जिमि धन युत दाता मति राजै ।।

बन बाटिका उपवन मनोहर फूल फल तरु मूल से ।
सर सरित कमल कलाप कुवलय कुमुद बन बिकसे गँसे ।।
सुख लहत यों फल चखत मनु पीयत मधुप सो नीति सों ।
मनु मगन ब्रह्मानन्द रस जोगीस मुनिगन प्रीति सो ।।

कूजि रहे खग कुल मधुप , गुञ्जि रहे चहुँ ओर ।
तेहि बन सिसु गोगन सकल , प्रविसे नन्दकिसोर ।।

रामसहायदास

रामसहायदास के पिता का नाम भवानीदास था। इनका जन्म और मरण किस संवत् में हुआ, इसका अभीतक कुछ पता नहीं चला है। भारत-जीवन प्रेस, काशी में इनका एक ग्रन्थ 'शृङ्गार सतसई' नाम से छपा है। वह प्रकाशक को सं० १८९२ का हस्तलिखित मिला था। इनका कविता-काल संवत् १८७७ माना जाता है। इन्होंने अपने विषय में अपने पिता के नाम के सिवाय और कुछ नहीं लिखा। शृङ्गार सतसई के सिवाय वृत्त तरंगिनी, ककहरा, राम सप्तसतिका और वाणी भूषण नामक ग्रन्थ भी रामसहायदास के रचे हुये सुने जाते हैं।

शृङ्गार सतसई में सात सौ दोहे बिहारी सतसई के टक्कर के हैं। वास्तव में ये बिहारी के दोहों को लक्ष्य करके बनाये गये मालूम होते हैं।

शृङ्गारसतसई से यहाँ कुछ दोहे उद्धृत किये जाते हैं :—

सतरोहैं मुख रुख किये, कहै रुखौहैं बैन।
रैन जगे को नैन ये, सने सनेहु दुरै न ॥१॥
खञ्जन कञ्ज न सरि लहैं, बलि अलि को न बखानि।
एनी की अँखियान तें, ये नीकी अँखियानि ॥२॥
गुलुफनि लौं ज्यों त्यों गयो, करि करि साहस जोर।
फिरि न फिरयो मुरवानि चपि, चित अति खात मरोर ॥३॥
पोंखि चन्दचूड़हि अली, रही भली विधि सेइ।
खिन खिन खोटति नखन छद, न खनहुँ सूखन देइ ॥४॥
सीस झरोखे डारि कै, झाँकी घूँघुट टारि।
कैबर सी कसकै हिये, बाँकी चितवनि नारि ॥५॥
बेलि कमान प्रसून सर, गहि कमनैत बसंत।
मारि मारि बिरहीन के, प्रान करै री अंत ॥६॥
मनरञ्जन तव नाम को, कहत निरञ्जन लोग।
जदपि अधर अञ्जन लगे, तदपि न नीदन जोग ॥७॥

सखि सँग जात हुती सु ती , भट-भेरो भो जानि।
सतरौंही भौंहन करी , बतरौंही अँखियानि ।।८।।
भोंह उँचै अँखिया नचै , चाहि कुचै सकुचाय।
दरपन मैं मुख लखि खरी , दरप भरी मुसुकाय ।।९।।
ल्याई लाल निहारिये , यह सुकुमारि बिभाति।
उचके कुच के भार तें , लचकि लचकि कटि जाति ।।१०।।

ग्वाल

ग्वाल मथुरा-निवासी ब्रह्मभट्ट सेवाराम के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १८४८ में और मरण १९२८ वि० में सुना जाता है। ये जगदम्बा के उपासक थे और शिवजी की भी आराधना किया करते थे। सं० १८७९ में इन्होंने एक शिव-मंदिर बनवाया था, जो मथुरा में अबतक है।

ग्वाल बालकपन में जब अपने गुरु दयालजी के पास पढ़ रहे थे, तब एक बार ये गुरुजी को प्रणाम करना भूल गये। गुरुजी ने इन्हें घमंडी कहकर निकाल दिया। इन्होंने बहुत अनुनय-विनय की; पर गुरुजी प्रसन्न न हुये। तब ये यमुना-तट के निकट गाय चराने लगे। कहा जाता है कि बन में इन्हें एक तपस्वी मिले, जिनकी ये तन-मन से सेवा करने लगे। उनके लिये ये घर से भोजन भी ले जाया करते थे। एक दिन यमुना बहुत बढ़ी थी, तब भी उसके प्रबल प्रवाह को पार करते हुये ये भोजन लेकर तपस्वी महाराज की सेवा में जा उपस्थित हुये। इनकी भक्ति से तपस्वी बहुत प्रसन्न हुये। उनकी कृपा से इनकी बुद्धि में अपूर्व विकास हुआ, और कवित्व-शक्ति जागृत हुई। इनकी प्रतिभा यहाँ तक बढ़ चली थी कि एक समय में ये आठ काम कर लेते थे; जैसे—ग्रंथ रचना, कविता बनाना, शिष्यों को पढ़ाना, जगदम्बा जगदम्बा कहते रहना, शतरंज खेलना, अदृष्ट कथन

करना, आगत पुरुषों से बातचीत का सिलसिला जारी रखना, समस्या-पूर्ति करना आदि। ये शतरंज के अच्छे खिलाड़ी थे।

इनके दो पुत्र थे, खेमचंद्र और रूपचंद्र। दोनों पिता के समान ही कविता करते थे। ग्वाल का जाना-आना पंजाब में बहुत रहता था। पंजाब के सिवा अन्य प्रान्तों में भी इन्होंने भ्रमण किया होगा, इसीसे प्रान्तीय भाषाओं में भी इनके छंद मिलते हैं। कहा जाता है कि महाराजा रणजीतसिंह के दरबार में भी इनकी पहुँच थी और महाराजा ने इनको कुछ ज़मीन-जायदाद भी दी थी, जो इनकी मृत्यु के बाद ले ली गई। ये कभी-कभी महाराजा के साथ भ्रमण में भी जाया करते थे।

इनके रचित ग्रंथों की संख्या ६०, ७० तक कही जाती है। जिनमें से निम्नलिखित ग्रंथ कहीं न कहीं से प्रकाशित हो चुके हैं :—

१—रसरंग २—भक्त भावन ३—नेह निबाहन, ४—कुब्जाष्टक, ५—कृष्णाष्टक, ६—रामाष्टक, ७—गणेशाष्टक, ८—गणेशाष्टक (दूसरा) ९—राधिकाष्टक, १०—गोपी पचीसी, ११—दृगशतक, १२—श्रीकृष्ण जी का नखशिख, १३—यमुना लहरी, १४—हमीरहठ, १५—कवि हृदय विनोद।

अप्रकाशित पुस्तकों में कुछ के नाम ये हैं :—रसिकानन्द, साहित्यानंद, कवि दर्पण, साहित्य दर्पण, साहित्य दूषण, शृंगार दोहा, शृंगार कवित्त, कवित्त ग्रंथमाला, वंशी बीसा।

इनकी कविता चमत्कारपूर्ण होती थी। यहाँ इनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते हैं :—

१

गीधे गीध तारि कै सुतारि कै उतारि कै जू धारि कै हिये में निज बात जटि जायगी। तारि कै अवधि करी अवधि सुतारिबे की बिपति विदारिबे की फाँस कटि जायगी। ग्वाल कवि सहज न तारिबो हमारो गिनो कठिन परैगी पाप पाँति पटि जायगी। यातें जो न तारिहो तुम्हारी सौंह रघुनाथ अधम उधारिबे की साख घटि जायगी॥

२

राम घनश्याम के न नाम तें उचारे कभूँ काम बसे ह्वै कै बाम गरे बाँह डाली है। एक एक स्वाँस ये अमोल कड़े जात हाय लोल चित यहै ढोल फोरत उताली है। ग्वाल कवि कहै तू विचारै वर्ष बढ़े मेरे एरे! घटे छिन छिन आयु की बहाली है। जैसे धार दीखत फुहारे की बढ़त आछे पाछे जल घटे हौज होत आवे खाली है।।

३

पूर्वीभाषा

मोरपखा सिर ऊपर सोहै अधर बसुरिया राजत बाय।
गाय बजाय नचावे अँखियन करिया कमरी साजत बाय।।
ग्वाल लिये सँग घाट बाट में छरा छइ मोर भाजत बाय।
हाय ननदिया का करिहौ मै कहत बात जिय लाजत बाय।।

४

गुजराती भाषा

तुम तौ कहो छो छैया मोटो ऊधमी छै म्हारी मटकी मठानी ढुरकावा नो निदान छै। सो तो म्हने जान यूँ तमे सगली जु भाषों झूँठ दीधी म्हने सीख मस्ती मोटी पहचान छै। ग्वाल कवि साने एवा चरित रचो छौ तमे सगली थई छौ गेली अड़को मा आन छै। घेर माँ रमे छै हवणां तौ दीकरान माहें तम तें सूँ दोस मोकलावा वाला जान छै।।

५

पंजाबी भाषा

जेड़ी थ्वांड़े चित्त बिच्च भाँउदी है आँउदी है ओहो तुसाँ करणाधिगाणे कानू कस्स दे। साड़ी खुशी ये हो आप आराँ दी खुशी दे बिच्च जेहो चाहो तेहो करो नेहो कानू नस्स दे। ग्वाल कवि होऊ करमाँ दा लिख्या लेख जेडा साडी वल्ल नैना नू पियारे रख्यो हंस्स दे। छल्लरल्ली गल्लाँ थ्वाँडी सोंहणी न हूँदी श्याम सिद्धी गल्ल साड्डे नाल क्यूँ कर न दस्स दे।।

६

फुटकर

ईरषा की सैन लिये कलिजुग भूप आयो झूंठ के नगारे सो बजत दिन रात है। काम क्रोध लोभ मोह तेग तीर धनु नेजा अदया अखंड तोप चड घहरात हैं। ग्वाल कवि गब्बर गसीले गोल गोला चलै टोला कूर बचनों के पूर लहरात हैं। हूजियो हुस्यार यार साँच के मवासे माँहि पाप की पताका आसमान फहरात है।।

७

देखो कलिजू के राजनीति को तमासो यह बासो कियो आय हर एक की अकल पै। खानदानवारे पानदान लिये दौरत हैं तान गानवारे बैठे जोवत महल पै। ग्वाल कवि कहै चारु चतुरन को चैन है न ऐस में रहत लैस कूर चढ़े बल पै। मलमल धारे जे वै धूर रहे मलमल मलखान वारे सोवै सेज मखमल पै।।

८

जाकी खूब खूबी खूब खूबन कै खूबी इहाँ ताकी खूब खूबी खूब खूबी नभ गाहना। जाकी बदजाती बदजाती इहाँ चारन में ताकी बदजाती बदजाती ह्वाँ उराहना। ग्वाल कवि ये ही परसिद्ध सिद्ध ते हैं जग वही परसिद्ध ताकी इहाँ ह्वाँ सराहना। जाकी इहाँ चाहना है ताकी वहाँ चाहना है जाकी इहाँ चाह ना है ताकी वहाँ चाह ना।।

९

चाहिये जरूर इनसानियत मानस कौ नौबत बजे पै फेर भेर बजनो कहा। जात औ अजात कहा हिन्दू औ मुसलमान जाते कियो नेह फेर ताते भजनो कहा। ग्वाल कवि जाके लिये सीस पै बुराई लई लाजहू गमाई कहो फेर लजनो कहा। यातो रंग काहू के न रँगिये सुजान प्यारे रँगे तो रँगेई रहै फेर तजनो कहा।।

१०

जिसका जितेक साल भर में खरच तिसे चाहिये तौ दूना पै सवायो तो कमा रहै। हूर या परी सी नूर नाजनी सहूर वारी हाजिर हमेस होय तौ दिल थमा रहै। ग्वाल कवि साहब कमाल इल्म सोहबत हो याद में गुसैयाँ के हमेस विरमा रहै। खाने को हमा रहै न काहू की तमा रहै जो गाँठ में जमा रहै तो खातिर जमा रहै।।

११

गङ्गा के न गौरि के गिरीस के न गोविन्द के गोत के न जोत के न जाये राहगीर के। काहू के न संगी रतिरंगी भैन भानजी के जी के अति खोटे सोटे खैहै जमवीर के। ग्वाल कवि कहैं देखो नारी को खसम जानै धर्म को पसम जानै पातक सरीर के। निमकहराम बद काम करै ताजे ताजे बाजे बाजे बेसहूर गुरू के न पीर के।।

१२

किये है करार सो बिसार दये दगादार नन्द के कुमार संग को सँजोगिनी बनै। कौन मुख लैकै तोहि ऊधव पठायो इहाँ कैसे कही बाने हाय लङ्क लोगिनी बनै। ग्वाल कवि यातें एक बात तूं हमारी सुन चुनि कै कही है यह तोय भोगिनी बनै। कूबरी को कूब काटि लाय दै सिताबी हमें टोपी करि ताकी तब गोपी जोगिनी बनै।।

१३

सुन्दर सरस सूहे सोसनी गुलाबी पीरे नाफर नरंगी आबी तूसी सजि लायो है। मूँगिया सबज काही कासनी सुन्हेरी सेत सन्दली सरवती औ नील दरसायो है। अगरई किसमिसी जोजई कपूरी स्याह तीजन कूँ वाम हेत काम वर छायो है। चतुर प्रवीन सखी अचरज भयो आज सावन में इन्द्र रँगरेज बनि आयो है।।

१४

दिया है खुदा ने खूब खुसी करो ग्वाल कवि खाव पिओ देव लेव यही रह जाना है। राजा राव उमराव केते बादसाह भये कहा तें कहाँ को गयो लाग्यो

ना ठिकाना है। ऐसी जिन्दगानी के भरोसे पै गुमान ऐसे देस देस घूमि घूमि मन बहलाना है। आये परवाना पर चले ना बहाना इहाँ नेकी करि जाना फेरि आना है न जाना है।।

षट्ऋतु-वर्णन

१

सरसों के खेत की बिछायत बसंती बनी तामें खड़ी चाँदनी बसंती रति कंत की। सोने के पलंग पर बसन बसंती साज सोनजुही मालै हालै हिय हुलसंत की। ग्वाल कवि प्यारो पुखराजन को प्याला पूर प्यावत प्रिया को करै बात बिलसंत की। राग में बसंत बाग बाग में बसंत फूल्यो लाग में बसंत वया बहार है बसंत की।।

२

ग्रीषम की गजब धुकी है धूप धाम धाम गरमी झुकी है जाम नाम अति तापिनी। भीजे खस बीजन झले हूँ ना सुखात स्वेद गात ना सुहात बात दावा सी डरापिनी। ग्वाल कवि कहै कोरे कुंभन तें कूपन तें लै लै जलधार बार बार मुख थापिनी। जब पियो तब पियो अब पियो फेर अब पीवत हू पीवत मिटै न प्यास पापिनी।।

३

जेठ को न त्रास जाके पास ये बिलास होंय खस के मवास पै गुलाब उछरयो करै। बिही के मुरब्बे डब्बे चाँदी के बरक भरे पेठे पाग केवरे में बरफ परयो करै। ग्वाल कवि चन्दन चहल में कपूर चूर चंदन अतर तर बसन खरयो करै। कंज मुखी कंज नैनी कंज के बिछौनन पै कंजन की पंखी कर कंज तें करयो करै।।

४

तरल तिलंगन के तुंग तेह तेजदार कानन कदंब को कदंब सरसायो है। सूबेदार मोर घोर दादुर हवलदार बग जमादार औ तंबूर पिक भायो है। ग्वाल कवि बाढ़े गरराट घन घट्टन की कंपनी को कंपू झलाझोर छवि

छायो है। भूपत उमंगी कामदेव जोर जंगी जान मुजरा को पावस फिरंगी बनि आयो है।।

५

मोरन के सोरन की नेकौ न मरोर रही घोरहूँ रही न घन घने'या फरद की। अम्बर अमल सर सरिता विमल भल पंक को न अंक औ न उड़नि गरद की। ग्वाल कवि चित मैं चकोरन के चैन भये पंथिन की दूर भई दूखन दरद की। जल पर थल पर महल अचल पर चाँदी सी चमक रही चाँदनी सरद की।।

६

झर झर झाँपैं बड़े दर दर ढाँपैं नापैं तऊ काँपैं थर थर बाजत बतीसी जाइ। फेर पसमीनन के चौहरे गलीचन पै सेज मखमली सौरि सोऊ सरदी सी जाइ। ग्वाल कवि कहै मृगमद के धुकाये धूम ओढ़ि ओढ़ि छार भार आगहू छरी सी जाइ। छाकै सुरा सीसी हू न सीसी पै मिटैगी कभू जौलौ उकसीसी छाती छाती सों न मीसी जाइ।।

दीनदयाल गिरि

बाबा दीनदयाल गिरि काशी के पश्चिम द्वार पर विनायक देव के पास रहते थे। ये दशनामी संन्यासियों में थे। इनके जन्मकाल का कुछ ठीक पता नहीं चलता। जाति का भी ठीक निश्चय नही। इतना अवश्य निश्चित है कि बनारस के आसपास के किसी ब्राह्मण या क्षत्रिय कुल में इनका जन्म हुआ था। ये बड़े सहृदय और उदार थे। साम्प्रदायिक दुराग्रह इनमें छू भी नहीं गया था। स्वभाव अत्यन्त सरल और विनोद-प्रिय था। ये बात-बात में लोकोक्तियों का प्रयोग करके लोगों को खूब हँसाते थे। बड़े दयावान थे। दूसरे का दुःख नहीं देख सकते थे; पर स्वात्माभिमान की मात्रा भी कम नही

थी। कितने ही दुःख मे रहने पर भी किसी से कुछ माँगते न थे। काशी-नरेश तथा तत्कालीन अन्य राजा-महाराजा समय-समय पर गुप्त-रूप से इनकी सहायता करते थे। कवियों का आना-जाना बराबर लगे रहने से इनकी आर्थिक दशा अच्छी न रहती थी। अमेठी के राजा साहब इन्हें अपने यहाँ ले जाना चाहते थे; पर ये काशी छोड़कर कहीं न गये। मणिकर्णिका घाट के निकट छप्पन विनायक पर इनका देहान्त हुआ। पंडित विजयानन्द त्रिपाठी ने इनका मृत्युकाल सं० १९२२ बतलाया है। अन्य जानकारों के कथन से भी यही ठीक जान पड़ता है। यह भी सुनने मे आया है कि ये बहुत वृद्ध होकर मरे।

बाबा दीनदयाल के ग्रन्थों से यह पता चलता है कि ये उच्च श्रेणी के कवि थे। इनकी कविता की भाषा और भाव दोनों सरस और स्वच्छ हैं। शिवसिंह सरोजकार ने इनके सम्बन्ध में लिखा है कि 'ये कवि बड़े महान् पंडित संस्कृत के थे और भाषा-साहित्य मे अन्योक्ति-कल्पद्रुम नाम ग्रन्थ बहुत ही सुन्दर बनाया है और अनुराग-बाग और बाग-बहार ये दो ग्रन्थ भी इनके बहुत विचित्र हैं।'

काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने इनकी एक ग्रन्थावली प्रकाशित की है। इनके जीवन की बहुत-सी बातें हमने उसी से ली हैं। ग्रन्थावली में कुल पाँच ग्रन्थ हैं—अनुराग-बाग, दृष्टान्त-तरङ्गिणी, अन्योक्ति-माला, वैराग्य-दिनेश और अन्योक्ति-कल्पद्रुम। शिवसिंह सरोज मे इनके एक और ग्रन्थ बागबहार का भी नाम दिया हुआ है, पर अभीतक उसका पता नहीं चला है। शायद अनुराग-बाग ही का दूसरा नाम बाग-बहार हो। अनुराग-बाग सं० १८८८ में, दृष्टान्त-तरंगिणी १८७९ में, वैराग्य-दिनेश १९०६ में और अन्योक्ति-कल्पद्रुम १९१२ में रचा गया। अन्योक्ति-माला का निर्माण-काल पुस्तक में वर्णित नहीं है। अन्योक्ति-कल्पद्रुम इसका परिवर्द्धित और संशोधित संस्करण जान पड़ता है।

इनकी कविता के कुछ नमूने आगे दिये जाते हैं—

घनाक्षरी

छोड़्यो गृहकाज कुललाज को समाज सबै एक ब्रजराज सों कियो री प्रीतिपन है। रहत सदाई सुखदाई पद पंकज में चंचरीक नाई भई छाँड़े नाहिं छन है। रतिपति मूरति विमोहन को नेम धरि लिखै प्रेम रँग भरि मति के सदन है। कुँअर कन्हाई की लुनाई लखि माई मेरो चेरो भयो चित औ चितेरो भयो मन है।।

दोहे

जा मन होय मलीन सो, पर संपदा सहै न।
होत दुखी चित चोर को, चितै चंद रुचि रैन।।१।।
तूठे जाके फल नही, रूठे बहु भय होय।
सेव जु ऐसे नृपति को, अति दुरमति तें लोय।।२।।
बहु छद्रन के मिलन तें, हानि बली की नाहिं।
जूथ जम्बुकन तें नहीं, केहरि कहुँ नसि जाहिं।।३।।
पराधीनता दुख महा, सुख जग में स्वाधीन।
सुखी रमत सुक बन विषे, कनक पीजरे दीन।।४।।
तहाँ नहीं कछु भय जहां, अपनी जाति न पास।
काठ बिना न कुठार कहुँ, तरु को करत बिनास।।५।।
नही रूप कछु रूप है, विद्या रूप निधान।
अधिक पूजियत रूप तें, बिना रूप विद्वान।।६।।
सरल सरल तें होय हित, नही सरल अरु बंक।
ज्यो सर सूधहि कुटिल धनु, डारै दूर निसंक।।७।।
केहरि को अभिषेक कब, कीन्हों विप्र समाज।
निज भुज बल के तेज तें, विपिन भयो मृगराज।।८।।
इक बाहर इक भीतरै, इक मृदु दुहु दिसि पूर।
सोहत नर जग त्रिविधि ज्यों, बेर बदाम अँगूर।।९।।
बचन तजै नहिँ सतपुरुष, तजै प्रान बरु देस।
प्रान पुत्र दुहुँ परिहरयो, बचन हेत अवधेस।।१०।।

कुंडलिया

१

जिन तरु को परिमल परसि , लियो सुजस सब ठाम।
तिन भञ्जन करि आपनो , कियो प्रभञ्जन नाम ।।
कियो प्रभञ्जन नाम , बड़ो कृतघन बरजोरी।
जब जब लगी दवागि , दियो तब झोंकि झकोरी ।।
बरनै दीनदयाल , सेउ अब खल थल मरु को।
ले सुख सीतल छाँह , तासु तोरयो जिन तरु को ।।

२

केतो सोम कला करो , करो सुधा को दान।
नहीं चन्द्रमनि जो द्रवै , यह तेलिया पखान ।।
यह तेलिया पखान , बड़ी कठिनाई जाकी।
टूटी याके सीस , बीस बहु बाँकी टाँकी।
बरनै दीनदयाल , चंद तुमही चित चेतो।
कूर न कोमल होंहि , कला जो कीजे केतो ।।

३

बरखैं कहा पयोद इत , मानि मोद मन माँहिं।
यह तो ऊसर भूमि है , अंकुर जमिहै नाहिं ।।
अंकुर जमिहै नाहिं , बरष शत जो जल दैहै ।
गरजै तरजै कहा , बृथा तेरो श्रम जैहै ।।
बरनै दीनदयाल , न ठौर कुठौरहि परखै।
नाहक गाहक बिना , बलाहक ह्याँ तू बरखै ।।

४

भौंरा अंत बसंत के , हैं गुलाब इहि रागि।
फिरि मिलाप अति कठिन है , या बन लगे दवागि ।।
या बन लगे दवागि , नहीं यह फूले लहैगो।
ठौरहि ठौर भ्रमात , बड़ो दुख तात सहैगो ।।

बरनै दीनदयाल, किते दिन फिरिहै दौरा।
पछतैहै कर दये, गये ऋतु पीछे भौरा।।

५

रंभा झूमत हौ कहा, थोरे ही दिन हेत।
तुम से केते ह्वै गये, अरु ह्वै है यहि खेत।।
अरु ह्वै है यहि खेत, मूल लघु साखा हीने।
ताहू पै गज रहै दीठि, तुम पै प्रति दीने।।
बरनै दीनदयाल, हमै लखि होत अचम्भा।
एक जन्म के लागि, कहा झुकि झूमत रम्भा।।

६

नाहीं भूलि गुलाब तू, गुनि मधुकर गुञ्जार।
यह बहार दिन चार की, बहुरि कटीली डार।।
बहुरि कटीली डार, होहिगो ग्रीषम आये।
लुवैं चलेंगी संग, अङ्ग सब जैहैं ताये।।
बरनै दीनदयाल, फूल जौलौं तो पाही।
रहे घेरि चहुँ फेरि, फेरि अलि ऐहैं नाही।।

७

टूटे नख रद केहरी, वह बल गयो थकाय।
हाय जरा अब आइ कै, यह दुख दियो बढ़ाय।।
यह दुख दियो बढ़ाय, चहूँ दिसि जंबुक गाजैं।
ससक लोमरी आदि, स्वतंत्र करैं सब राजैं।।
बरनै दीनदयाल, हरिन विहरैं सुख लूटे।
पंगु भयो मृगराज, आज नख रद के टूटे।।

८

पैहौ कीरति जगत में, पीछे धरो न पाँव।
छत्री कुल के तिलक हे, महा समर या ठाँव।।

महा समर या ठाँव, चलै सर कुंत कृपानै।
रहे वीर गन गाजि, पीर उर मैं नहिँ आनै॥
बरनै दीनदयाल, हरखि जौ तेग चलैहो।
ह्वै हौ जीते जमी, मरे सुरलोकहि पैहो॥

९

भारी भार भरचो बनिक, तरिबो सिंधु अपार।
तरी जरजरी फँसि परी, खेवनहार गँवार॥
खेवनहार गँवार, ताहि पर पौन झँकोरै।
रुकी भँवर में आय, उपाय चलै न करोरै॥
बरनै दीनदयाल, सुमिर अब तू गिरधारी।
आरत जन के काज, कला जिन निज संभारी॥

१०

आछी भाँति सुधारि कै, खेत किसान बिजोय।
नत पीछे पछतायगो, समै गयो जब खोय॥
समै गयो जब खोय, नहीं फिरि खेती ह्वै है।
लै है हाकिम पोत, कहा तब ताको दैहै॥
बरनै दीनदयाल, चाल तजि तू अब पाछी।
सोउ न सालि सँभालि, बिहंगन तें विधि आछी॥

११

सोई देस बिचारि कै, चलिये पथी सुचेत।
जाके जस आनन्द की, कविवर उपमा देत॥
कविवर उपमा देत, रंक भूपति सम जामे।
आवा गवन न होय, रहै मुद मङ्गल तामे॥
बरनै दीनदयाल, जहाँ दुख सोक न होई।
ए हो पथी प्रबीन, देस को जैयो सोई॥

१२

कोई सङ्गी नहिं उतै, है इतही को सङ्ग।
पथी लेहु मिलि ताहि ते, सब सों सहित उमङ्ग।।
सबसों सहित उमङ्ग, बैठि तरनी के माहीं।
नदिया नाव सँजोग, फेरि यह मिलिहै नाहीं।।
बरनै दीनदयाल, पार पुनि भेंट न होई।
अपनी अपनी गैल, पथी जैहैं सब कोई।।

१३

ग्राहैं प्रबल अगाध जल, या में तीछन धार।
पथी पार जो तू चहै, खेवनहार पुकार।।
खेवनहार पुकार, वार नहिं कोऊ साथी।
और न चलै उपाव, नाव बिन एहो पाथी।।
बरनै दीनदयाल, नहीं अब बूड़ै थाहैं।
रहे महा मुख बाय, ग्रसन को भारी ग्राहैं।।

१४

राही सोवत इत कितै, चोर लगे चहुँ पास।
तो निज धन के लेन को, गिनै नीद की स्वाँस।।
गिनै नींद की स्वाँस, बास बसि तेरे डेरे।
लिये जात बनि मीत, माल ये साँझ सबेरे।।
बरनै दीनदयाल, न चीन्हत है तू ताही।
जाग जाग रे जाग, इतै कित सोवत राही।।

१५

हारे भूली गैल में, गे अति पाँय पिराय।
सुनो पथी अब तो रह्यो, थोरो सो दिन आय।।
थोरो सो दिन आय, रहे हैं संग न साथी।
या बन है चहुँ ओर, घोर मतवारे हाथी।।

बरनै दीनदयाल, ग्राम सामीप तिहारे।
सूधे पथ को जाहु, भूलि भरमो कित हारे॥

१६

चारो दिसि सूझै नही, यह नद धार अपार।
नाव जर्जरी भार बहु, खेवनहार गँवार॥
खेवनहार गँवार, ताहि पर है मतवारो।
लिये भौंर में जाय, जहाँ जलजंतु अखारो॥
बरनै दीनदयाल, पथी बहु पौन प्रचारो।
पाहि पाहि रघुबीर, नाम धरि धीर उचारो॥

१७

देखो पथिक उघारि कै, नीके नैन विवेक।
अचरज है यह बाग मैं, राजत है तरु एक॥
राजत है तरु एक, मूल ऊरध अध साखा।
द्वै खग तहाँ अचाह, एक इक बहु फल चाखा॥
बरनै दीनदयाल, खाय सो निबल बिसेखो।
जो न खाय सो पीन, रहै अति अद्भुत देखो॥

विश्वनाथसिंह

रीवां-नरेश महाराजा विश्वनाथ सिंह महाराजा जयसिंह के पुत्र और महाराजा रघुराजसिंह के पिता थे। इनका जन्म सं० १८४६ में हुआ। ये सं० १८९१ में गद्दी पर बैठे और सं० १९११ तक राज करते रहे। ये अच्छे कवि थे और सुकवियों का अच्छा सत्कार करते थे। इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की है—

अष्टयाम का आन्हिक, आनन्द रघुनन्दन नाटक, उत्तम काव्य प्रकाश, गीता रघुनन्दन शतिका, रामायण, गीता रघुनन्दन प्रमाणिक, सर्वसंग्रह,

कबीर के बीजक की टीका, विनयपत्रिका की टीका, रामचन्द्र की सवारी, भजन, पदार्थ, धनुविद्या, परानीय तत्व प्रकाश, आनन्द रामायण, परम धर्म निर्णय, शांति शतक, वेदान्त पंच शतिका, गीतावली पूर्वार्द्ध, ध्रुवाष्टक, उत्तम नीति चन्द्रिका, अवाध नीति, पाखंड खंडिनी, आदि मङ्गल, बसन्त चौतीसी, चौरासी रमैनी, ककहरा, शब्द, विश्व भोजन प्रसाद, परमतत्व, सङ्गीत रघुनन्दन, गीता रघुनन्दन, तत्वमस्य सिद्धान्त भाषा, ध्यान मञ्जरी, विश्वनाथ प्रकाश। संस्कृत में—राधावल्लभी भाष्य, सर्व सिद्धान्त, आनन्द रघुनन्दन (दूसरा), दीक्षा निर्णय, भुक्ति मुक्ति सदानन्द सन्दोह, रामचन्द्राह्निक सतिलक, राम परत्व, धनुर्विद्या, सगीत रघुनन्दन (दूसरा)।

नमूने के रूप में इनका ध्रुवाष्टक यहाँ उद्धृत किया जाता है—

१

जो विन कामहि चाकर राखत ऐन अनेक बथा बनवावै।
आमद ते अधिको करै खर्च रिनै करि ब्यौहरै ब्याज बढ़ावै।
बूझत लेखा नहीं कछुऐ नहिं नीति की रीति प्रजानि चलावै।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै वहि भूपति के घर दारिद आवै॥

२

निश्चय धर्म विचार भयो दबि भाइन भृत्यनि नाहिं चलावै।
मंत्रिय आदि सुलच्छन हीन औ आलसी होय सलाह बतावै।
मानि सँकोच करै व्यवहार वृथाही इनाम की रीति बढ़ावै।
भाखत है बिसुनाथ ध्रुवै वह भूपति ना कबहूँ कल पावै॥

३

नारिन की जु सलाह करै अरु भाइन मंत्री स्वतंत्र बनावै।
बैर के चाकर राखे रहै औ अधर्म की राह सदा मन लावै।
मंत्री कह्यो हित मानै नहीं अरु साह को सासन नाम न आवै।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै कछु काल में भूप सुराज गँवावै॥

४

झूठी सुनै तहक़ीक़ करै नहिँ ओछेन सङ्गति में मन लावै।
रीझ पचाय डरे रन को बिसना जु अठारहौ खूब बढ़ावै।
ठट्ठा में प्रीति कुपात्र में दान कबीन हुँ जान गुमान जनावै।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै अस भूपति ना कबहूँ जस पावै।।

५

चाकर दै धन बाँचे जोई अठयों तिहिँ भागहि धर्म लगावै।
साह लिये धरै सातयों भाग छठे सुता व्याह हितै रखवावै।
पाँचएँ बित्त बढ़ै धरि चौथ्यहि तीन ते ख़र्च करै छ बढ़ावै।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै तेहि भूपति भौन न दारिद आवै।।

६

भाइन भृत्यन विष्णु सो रैयत भानु सो सत्रुन काल सो भावै।
सत्रु बली से बचै करि बुद्धि औ अस्त्र सों धर्महि नीति चलावै।
जीतन को करे केते उपाय औ दीरघ दृष्टि सबै फल पावै।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै नृप सो कबहूँ नहिँ राज गँवावै।।

७

होय नहीं कबहूँ बस काहु समैं सब में निज भाव जनावै।
राखे रहै हुकुमें सब पै कहुँ मित्र बनाय न तेज गँवावै।
साम औ दाम औ दंड औ भेद की रीति करै जु सबै बन भावै।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै कला पोड़सौ भूपति राज बढ़ावै।।

८

जो हरि आह्निक में मन लाय करै नृप आह्निक हू स्मृति भावै।
मानै अहै प्रभु को सब है प्रभु रूप सबै निज किंकर भावै।
देह ते आपुहि भिन्न गने करि सासन भक्ति प्रजान चलावै।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै दोउ लोक में भूपति सो सुख पावै।।

पजनेस

पजनेस का जन्म पन्ना में हुआ। शिवसिंह सरोज मे इनका जन्म-संवत् १८७२ लिखा है। इनका रचा हुआ कोई ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। स्वर्गीय बाबू रामकृष्ण वर्मा ने इनके कुछ छन्दों का एक संग्रह 'पजनेस प्रकाश' नाम से प्रकाशित किया था। उसके देखने से पजनेस एक प्रतिभाशाली कवि जान पड़ते हैं। ये शृङ्गारी कवि थे। इनकी कविता में कहीं-कहीं अश्लील वर्णन भी आ गया है। इनकी कविता से जान पड़ता है कि ये संस्कृत और फ़ारसी के भी ज्ञाता थे।

यहाँ हम इनकी कविता के कुछ उदाहरण उपस्थित करते हैं--

१

छहरैं छबीली छटा छूटि छितिमंडल पै उमग उजेरो महा ओज उजबक सी। कवि पजनेस कज मंजुल मुखी के गात उपमाधिकात कल कुदन तबक सी। फैली दीप दीप दीप दीपति दिपति जाकी दीपमालिका सी रही दीपति दबक सी। परत न ताव लखि मुख महताब जब निकसी सिताब आफ़ताब के भभक सी।।

२

नवला सरूप रूप रावरे रुचिर रूप रचना बिरंचि कीनी सकुच न लागी है। भन पजनेस लोल लोयन को लौकौ गोल गुलफ गोराई लाज सकुच न लागी है। सुन्दर सुजान सुखदान प्रीति प्रीतम की एकौ ना परेख अब सकुचन लागी है। औचक उचन लाग कंचुकी रुचन लागी सकुचन लागी आली सकुचन लागी है।।

३

कवि पजनेस केलि मधुप निकेत नव दर मुख दिव्य घरी घटिका लटीकी है। विधु पर बेष चक्र चक्र रविरथ चक्र गोमती के चक्र चक्रताकृत घटीकी है। नीवी तट त्रिबली बली पै दुति कोस तुण्ड कुंडली कलित लोमलतिका

बुटीकी है। उपटीकी टीकी प्रभाटीकी बधूटी की नाभिटीकी धुर्जटी की औ कुटी की संपुटी की है।।

४

संपुट सरोज कैधों सोभा के सरोवर में लसत सिङ्गार के निसान अधिकारी के। कवि पजनेस लोल चित्त वित्त चोरिबे को चोर इक ठौर नारि ग्रीव वरकारी के। मन्दिर मनोज के ललित कुंभ कंचन के कलित फलित कैधों श्रीफल बिहारी के। उरज उठौना चक्रवाकन के छौना कैधों मदन खिलौना ये सलौना प्रानप्यारी के।।

५

मानसी पूजा मई पजनेस मलेछन हीन करी ठकुराई।
रोके उदोत सबै सुर गोत बसेरन पै सिकराली बसाई।
जानि परै न कला कछु आज की काहे सखी अजया इक ल्याई।
पोखे मराल कहो किहि कारन ऐरी भुजंगिनी क्यों पोसवाई।।

६

पजनेस तसद्दुक़ता बिसमिल जुलफ़े फुरकत न क़बूल कसे।
महबूब चुनाँ मदमस्त सनम् अज़दस्त अलाबल जुल्फ़ बसे।
मज़मूये न क़ाफ़ सफ़ाक़ रुए सम क्यामत चश्म से खूँ बरसे।
मिज़गाँ सुरमा तहरीर दुताँ नुक़ते बिन बे किन ते किन से।।

शिवसिंह सेंगर

शिवसिंह सेंगर जिला उन्नाव में काँथा ग्राम के निवासी थे। इनके पिता जमीदार थे और उनका नाम रणजीतसिंह था। इनका जन्म सं० १८७८ में हुआ। ये पुलीस के इन्सपेक्टर थे। काव्य में अधिक रुचि होने के कारण इन्होंने हिन्दी, संस्कृत और फ़ारसी की बहुत-सी पुस्तकें इकट्ठी की थी।

सं० १९३४ में इन्होंने 'शिवसिंह सरोज' नामक एक बड़े ही उपयोगी ग्रन्थ की रचना की। इसमें लगभग एक हज़ार हिन्दी के पुराने कवियों की संक्षिप्त जीवनियाँ और उनकी कविताओं के स्वल्प संग्रह हैं। कविता-कौमुदी लिखते समय हमें इस पुस्तक से बड़ी सहायता मिली। इसके सिवाय शिवसिंह ने ब्रह्मोत्तर खंड और शिवपुराण का गद्यानुवाद भी किया था। ये कविता भी करते थे। नमूने के रूप में इनके दो कवित्त यहाँ उद्धृत किये जाते हैं:—

१

पियो जब सुधा तब पीबे को कहा है और लियो शिव नाम तब लेइबो कहा रह्यो। जान्यो निज रूप तब जानै को कहा है और त्याग्यो मन आश-तब त्यागिबो कहा रह्यो। भनै शिवसिंह तुम मन में विचारि देखो पायो ज्ञान धन तब पाइबो कहा रह्यो। भयो शिव भक्त तब ह्वैबे को कहा है और आयो मन हाथ तब आइबो कहा रह्यो॥

२

कहकही काकली कलित कल कठन की कंजकली कालिँदी कलोल कहलन मे। सेंगर सुकवि ठंढ लागती ठिठुरवारी ठाठ सब ठटे लगि लेते टहलन मे। फहरै फुहारे फबि रही सेज फूलनि सों फेन सी फटिक चौतरा के पहलन में। चाँदनी चमेली चम्पा चारु फूल बाग बीच बसिये बटोही मालती के महलन में॥

रघुराजसिंह

रघुराजसिंह रीवाँ के महाराजा थे। इनका जन्म संवत् १८८० में हुआ। सं० १९११ में अपने पिता महाराज विश्वनाथसिंह के स्वर्गवासी होने पर ये गद्दी पर बैठे। इनकी मृत्यु सं० १९३६ में हुई। इनके १२ विवाह हुए थे। कविता महाराज रघुराजसिंह को पैतृक सम्पत्ति थी। इनके पिता और पितामह भी अच्छे कवि और सत्कवियों के आश्रयदाता थे। रघुराजसिंह हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं के पंडित और कवि थे। दान और भक्ति में भी इनकी बड़ी प्रशंसा सुनी जाती है। शिकार खेलने का इन्हें बड़ा व्यसन था। शिकार में इन्होंने ९१ शेर, एक हाथी, १६ चीते और हजारों हरिण तथा अन्य पशुओं का वध किया था। मृत्यु-काल से ५ वर्ष पूर्व ही से इन्होंने राज्य-प्रबंध से सम्बन्ध छोड़ दिया था। उस समय बृटिश सरकार राज्य की देख-रेख करती थी। सं० १९३३ में इनको संतान-सुख प्राप्त हुआ।

इनके आश्रय में बहुत से कवि रहा करते थे। उनमें से कुछ के नाम ये हैं—रसिकनारायण, रसिकबिहारी, श्रीगोविन्द, बालगोविन्द और रामचन्द्र शास्त्री।

महाराज रघुराजसिंह के रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ हैं—

सुन्दर शतक, विनयपत्रिका, रुक्मिणीपरिणय, आनन्दाम्बुनिधि, भक्तिविलास, रहस्य पंचाध्यायी, भक्तमाल, रामस्वयंवर, यदुराज-विलास, विनयमाला, रामरसिकावली, गद्यशतक, चित्रकूटमाहात्म्य, मृगया-शतक पदावली, रघुराजविलास, विनयप्रकाश, श्रीमद्भागवत माहात्म्य, राम अष्टयाम, भागवत भाषा, रघुपति शतक, गंगा शतक, धर्म विलास, शंभु शतक, राजरंजन, हनुमतचरित्र, भ्रमर गीत, परम प्रबोध और जगन्नाथ शतक। रघुराजसिंह की कविता कहीं कहीं बड़ी मनोहर हुई है। ये रामभक्त थे। राम को दास-भाव से भजते थे। अपनी कविता में कहीं-कहीं तुलसीदास की छाया भी इन्होंने ली है।

यहाँ रुक्मिणी-परिणय और रघुराज-विलास से इनकी कुछ कविताएँ उद्धृत की जाती हैं—

१

केसव जन्म लै आज्ञा दई तब लै सिसु को बसुदेव सिधारे।
गोकुल में जसुदा के निकेत में राखि सुतै दुहिता लै पधारे।
बाल ही मे विकरार मुरारिन पूतना धेनुक आदि सँहारे।
शक्र के कोप ते राख्यो ब्रजै गिरिधारी सु सात दिनै गिरि धारे।।

२

जानि दुखी यदुवंशिनको सँग दानपती मथुरा कहँ आये।
कमहि कूटिकै मातु पिता को छोड़ाय कै बंधन मोद बढ़ाये।
आहुक को जदुराज दियो निज बंधुन के दुख द्वंद मिटाये।
मागध को मद मंथन कै अब द्वारका द्वारकानाथ बसाये।।

३

दीनन पालिबो सत्रुन सालिबो घालिबो भक्तन के दुख को है।
दीठि दया की प्रजा पै पसारिबो धर्म सुधारिबो चित्त बसो है।
पाप नसाइबो नीति चलाइबो कीरति बेलि बढ़ाइबो मोहै।
बृद्धन मानिबो जज्ञन ठानिबो यों जिनके गुन को सब जोहै।।

४

बुद्धि लखे हिय लाजै बृहस्पति रूप लखे हिय लाजत मार है।
धीरज दासरथी सो अरी नपै कोपिबो सम्भुसो सीलअगार है।
विक्रम जासु त्रिविक्रम के सम क्षोनी क्षमा सुख सिंधु को सार है।
तेज कृसानु प्रताप ते भानु जसै ते लजै सितभान अपार है।।

५

कोमल बोलै कठोरो कहै किये येकहू सेवा सतै करि मानत।
वाके सबै अपकार बिसारि निजै चितमें उपकारहिं आनत।
जोई कहै करै सोई सदा द्विजको निज देवता सों जिय ठानत।
दीनन दान मनीसन मान अरीन कृपान को देइबो जानत।।

६

कंचन दान में मेरु डरै गज दान मे गोवति गौरी गजानन।
दान तुरंग को देखि दिवाकर दाहिन बाम ह्वै जात दिमानन ।।
दान मही के मही के महीपति त्रासित जीके बिलोकत कानन।
हेरि कृसा हरि के कर में डर तो त्रयलोक करै चतुरानन ।।

७

माधुरी माधव की वह मूरति देखतही दृग देखे बनै री।
तीनिहूँ लोक की जो रुचिराई सुहाई अहै तिनही के घनेरी।
सोभा सचीपति औ रति के पति की कछु आई न मेरे मनै री।
हेरि मैं हारचो हिये उपमा छविहू छवि पाई बिराजित नैरी ।।।

८

ब्रज में जेहि के मुरली ध्वनि को सुनिकै यह कौतुक होत भयो।
परिवार बिसारि हिये हरि धारि सुगोपिका छोड़ि अवास दयो।
कर नूपुर कंकन पाँयन मे कटि किंकिनी को करि हारु लयो।
नँदनंदन के ढिग को यो गई सरितागन सागर को ज्यो गयो ।।

९

मुख देखत ही मनमोहन को अति सोहन जोहन लागी जबै।
नहि नैन हिलै नहि बैन चलै नहि धाय मिलै नहि सीस नवै।
ब्रज बालन हाल लख्यो अस लाल उताल कियो उर माल तबै।
रसरास विलास में हास हुलास सों पूरन कै दिय आस सबै ।।

१०

मथुरा के मनोहर मारग मे मुरली धरे मंडित ग्वालन सों।
लखि कूबरी मोहित दै अँगराग चह्यो मिलिबो हठि लालन सों।
अति रूप अनूप भयो तेहि को भई पूजित देवन बालन सों।
रति रंभा रमा सुख दुर्लभ जो छनही में दियो तेहि ख्यालनसों ।।

दोहे

कल किसलय कोमल कमल, पदतल सम नहि पाँय।
यक सोचत पियरात नित, यक सकुचत झरि जाँय ।।१।।
विलसति जदुपति नखततति, अनुपम द्युति दरसाति।
उडुपति युत उडु अवलि लखि, सकुचि सकुचि दुरि जाति ।।२।।
सविता दुहिता स्यामता, सुरसरिता नख ज्योति।
सुतल अरुनता भारती, चरन त्रिवेनी होति ।।३।।
गुलुफ गुलुफ खोलनि हृदय, हो नौं उपमा तूल।
ज्यों इंदीवर तट असित, द्वै गुलाब के फूल ।।४।।
लाली येंडी लालकी, अति अनुपम दरसाहिं।
काम बागकी नारँगी, सम कहि कवि सकुचाहिं ।।५।।
चारु चरनकी आँगुरी, मो पै बरनि न जाइ।
कमल कोस की पाँखुरी, पेखत जिनहि लजाइ ।।६।।
अहि अनुपम कहि जाति नहिं, जुगल जवकी ज्योति।
जिनहि जोहि कल कलभ की, सुड कुडलित होति ।।७।।
जुगल जानु जदुराज की, जोहि सुकवि रसभीन।
कहत मार शृंगार के, सपुट द्वै रचि दीन ।।८।।
उरू सलोने श्याम के, निरखत टरत न नैन।
जैन खभ शृगार के, मानहुँ विरच्यो मैन ।।९।।
जदुपति कटिकी चारुता, को करि सकै बखान।
जासु सुछवि लखि सकुचि हरि, रहत दरीन दुरान ।।१०।।
पद्मनाभ के नाभि की, सुखमा सुठि सरसाय।
निरखि भानुजा धारको, भ्रमि भ्रमि भवँर भुलाय ।।११।।
लली कान्ह रोमावली, भली बनी छवि छाय।
मनहुँ काम शृंगारकी, दीन्हीं लीक खँचाइ ।।१२।।
वर दामोदर को उदर, जेहि नहिं समता पाइ।
नवल अमल बल दल सुदल, डोलत रहत लजाइ ।।१३।।

उर अनुपम उनको लसै , सुखमा को अति ठाट।
मनहुँ सुछवि हिय भरि भये , काम सिंगार कपाट ।।१४।।
काम करभ कर उरग वर , रस सिंगार द्रुम डार।
भुजनि जोंहि जदुबीर के , देव पराभव पार ।।१५।।
श्री जदुपति के भुज जुगल , छाजि रहे छवि भौन।
निरखत जिनहिं भुजङ्ग वर , लज पताल किय गौन ।।१६।।
देवकि नन्दन कंठ को , रच्यो न विधि उपमान।
जे जड़ दर को पटतरहिं , तिन सम जड़ न जहान ।।१७।।
ग्रीवा गिरिधर लाल की , अनुपम रही विराजि।
निरखि लाज उर दरकि दर , बस्यो उदधि महँ भाजि ।।१८।।
मनमोहन के नैन वर , बरनि कौन विधि जाहि।
कंज खंज मृग मैन शर , मीनहुँ जेहि सम नाहिं ।।१९।।
जदुपति नैन समान हित , विधि ह्वै बिरचै मैन।
मीन कंज खंजन मृगहु , समता तऊ लहैं न ।।२०।।
भाल पटलि भगवंत की , भनति भारती नीठि।
वसीकरन जपकरन की , मन मनोज सिधि पीठि ।।२१।।
बाल लाल के भाल में , सुखमा बसी बिसाल।
सुछवि माल ससि अरध ह्वै , निरखत होत बिहाल ।।२२।।
यदुपति भौंहनकी सुछवि , मदन धनुष की सोभ।
जीति लसत है तिनहिं लखि , दृग न टरत रत लोभ ।।२३।।
भौंह बरुन जदुराजकी , रही अपूरुव सोंहि।
करहिं लजोहैं कामधनु , सरमन लेवै पोंहि ।।२४।।
हरिनासा की सुभगता , अटकि रही दृग माँह।
काम कीर के ठोरकी , सुखमा छुवति न छाँह ।।२५।।
गोल कपोल अतोल हैं , छाये सुछवि अमान।
मदन आरसी रसपसर , सम सर करत अजान ।।२६।।

स्रवन सलोने श्याम के , छहरति छटा नवीन ।
मदन महोदधि सीप की , सुखमा लीन्ही छीन ।।२७।।
राजत पुरट किरीट सिर , प्रगटत प्रभा अखंडि ।
उयो मनहुं गिरि नील पर , अनुपम रवि छवि मंडि ।।२८।।

गीत

१

भजु मनो देवकी जठर महोदधि पूर्ण मृगाकमुदारम् ।
यदुकुल कुमुद विनोद विकाशक विभु बसुदेव कुमारम् ।।
नलिन नयन नलिनीरुहाननं नव नीरद तनु नीलम् ।
समय विजय कर चारु चतुर्भुज शोभित सुन्दर शीलम् ।।
सुर सुरेन्द्र वैरञ्च विरंचि सुरर्षि महर्षि समाजम् ।
दीन दया वितरण सदानि वर पावित जनरघुराजम् ।।

२

सखि पश्य कोशल कान्त सुखद कुमारिमति सुकुमारकम् ।
मैथिलनिवास विलास विलसित मदनमनोऽपहारकम् ।
मणि मंडप सोहायुत सुषमाभरं सीतावरम् ।
सुविवाहकर्म्म विधान मतिकुर्वाणमद्भुत तारकम् ।
जनकात्मजार्प्पितदृष्टि कंकण कलितकर धृतचन्दनम् ।
रघुराज राजसमाज शोभित सानुजं रघुनन्दनम् ।।

३

सखि लखन चलो नृप कुँवर भलो , मिथिलापति सदन सिया बनरो ।।
शिर मौर बसन तन में पियरो , हठ हेरि हरत हमरो हियरो ।।
उर सोहत मोतिन को गजरो , रतनारी अँखियन में कजरो ।।
चितये चित चोरत सखि समरो , चितये बिन जिय न जियै हमरो ।।
अलकैं अलि अजब लसैं चेहरो , झपि झूलि रह्यो कटि लौं सिहरो ।।
युवती जन को जालिम जहरो , मन बैठत लखत मैन पहरो ।।
पुनि ऐहैं नाहिं जनक शहरो , ले रि लोचन लाहु न करु गहरो ।।

यक है वहि लखत बड़ो अनरो, पुनि रुकत न रोकेहु मन उन रो।।
चित चहत अरी लगि जाऊँ गरो, रघुराज त्यागि जग को झगरो।।

४

मोहिं तो भरोसो भूरि अपनी कमाई को।
कबहू काहू को नही कियो है भलाई को।।
कियो काम लोभ कोह मोह सों मिताई को।
रोज रोज पाल्यो निज नारि नाति भाई को।।
कबहूँ न पूज्यो साधु लैके आगुआई को।
पूरी प्रीति पापिन सों नारि हूँ पराई को।।
बाढ्यो है घमंड मोह माया ठकुराई को।
बेस बजवायो द्वार पाप ही बधाई को।।
रोज रुजगार कियो जीव ही सताई को।
सपन्यो न सोच्यो नाथ भक्ति सुखदाई को।।
धर्म कर्म कीन्ह्यो केते लोक की बड़ाई को।
कबहूँ न पायो पार विषै भोगताई को।।
बाकी न रह्यो है रघुराज पतिताई को।
मोहिं ना उधारे पतित पावन नाम गाई को।।

५

मूरुख मानत यही बड़ाई।
राजा भयो बिभौ धन आँधर नहिं सन्तन सिर नाई।
भोजन मैथुन ऐश करत नित दिय बय वृथा बिताई।।
ह्वै पंडित पढ़ि न्याय व्याकरण भरे घमंड महाई।
सन्त चरण परसत सकुचत शठ जोरत धन बहुताई।।
धनिक भयो धन धरचो गाड़ि महि जानत रही सदाई।
कबहुँ न हरि हर जन के हेतहिं कौड़िहु कान लगाई।।
कलि कुचालि कहँ लों मुख बरणों देखतही बनि आई।
गुरू होन सब कोउ जग चाहत शिष्य होत सकुचाई।।

सोई बड़ो गुरू सबको साइ ताको सत्य बड़ाई।
जो रघुराज सदा सन्तन की करत चरण सेवकाई॥

द्विजदेव

अयोध्या-नरेश महाराजा मानसिंह का उपनाम द्विजदेव था। द्विजदेव अवध के तालुकेदारों के एसोसियेशन के सभापति थे। इनका देहान्त लगभग ५० वर्ष की अवस्था में, सं० १९३० में हुआ।

ये शाकद्वीपी ब्राह्मण थे। कवियों और विद्वानों का ये बड़ा आदर करते थे। ये स्वयं एक अच्छे प्रतिभाशाली कवि थे। इनका रचा हुआ कोई ग्रन्थ हमारे देखने में नहीं आया। इनके उत्तराधिकारी महामहोपाध्याय महाराजा सर प्रताप नारायण सिंह, के० सी० आई० ई०, उपनाम ददुआ साहब ने 'रस-कुसुमाकर' नामक अलकार और रस सम्बन्धी हिन्दी-कविता का एक बड़ा सग्रह-ग्रन्थ प्रकाशित किया है। उसमें द्विजदेव के बहुत से छन्द मिलते हैं। उसमें से और कुछ अन्य कविता-संग्रहों में से इनके थोड़े से छन्द चुनकर हम नीचे प्रकाशित करते हैं :—

१

जावक के भार पग परत धरापै मन्द गन्ध भार कचनपरी हैं छूटि अलकैं।
'द्विजदेव' तैसियै विचित्र बरुनी के भार आधे आधे दृगन परी हैं अध पलकैं।
ऐसी छवि देखि अंग अंग की अपार बार बार लोल लोचन सु कौन के न ललकैं।
पानिप के भार न सँभारति न गात लंक लचि लचि जात कचभारन के हलकैं॥

२

भूले भूले भौंर बन भाँवरे भरेंगे चहूँ फूल फूल किंशुक जके से रहि जाय हैं। 'द्विजदेव' की सौ वह कूजनि बिसारि कूर कोकिल कलंकी ठौर ठौर पछताय हैं। आवत बसन्त के न ऐहैं जो पै स्याम तो पै बावरी!

बलाय सों हमारेऊ उपाय है। पीहै पहिले ही तें हलाहल मंगाय या कला-निधि की एकौ कला चलन न पाय हैं ।।

३

बाँके संक हीने राते कंज छवि छीने माते झुकि झुकि झूमि झूमि काहू को कछू गनै न। 'द्विजदेव' की सौं ऐसी बानक बनाइ बहु भाँतिन बगारे चित चाह न चहूँघा चैन। पेखि परे पात जो पै गात न उछाह भरे बार बार तातैं तुम्हैं बूझनी कछूक बैन। एहो ब्रजराज मेरे प्रेम धन लूटिबे को बीरा खाइ आए कितै आपके अनोखे नैन ।।

४

कारी नभ कारी निसि कारियै डरारी घटा झूकन बहत पौन आनंद को कन्द री। 'द्विजदेव' साँवरी सलोनी सजी स्याम जू पै कीन्हों अभिसार लखि पावस आनन्द री। नागरी गुनागरी सु कैसे डरै रैनि डर जाके संग सोहै ये सहायक अमन्द री। बाहन मनोरथ उमाहै संगवारी सखी मैन मद सुभट मसाल मुख चन्द री ।।

५

काहू काहू भाँति राति लागी ती पलक तहाँ सपने में आनि केलि रीति उन ठानी री। आप दुरे जाय मेरे नैननि मुदाय कछु हौंहूँ बजमारी ढूंढ़िबे को अकुलानी री। एरी मेरी आली या निराली करता की गति 'द्विजदेव' नेकऊ न परत पिछानी री। जौलों उठि आपनो पथिक पिय ढूंढ़ौ तौलौं हाय, इन आँखिन ते नींदई हेरानी री ।।

६

घहरि घहरि घन सघन चहूँघा घेरि छहरि छहरि विष बूंद बरसावै ना। 'द्विजदेव' की सौं अब चूक मत दावँ अरे पातकी पपीहा तू पिया की धुनि गावै ना। फेरि ऐसो औसर न ऐहै तेरे हाथ एरे मटकि मटकि मोर सोर तू मचावै ना। हौं तो बिन प्रान प्रान चहत तज्योई अब कत नभ चन्द तू अकास चढ़ि धावै ना ।।

७

बोलि हारे कोकिल बुलाय हारे केकी गन सिखे हारी सखीसब जुगत नई नई। 'द्विजदेव' की सौं लाज बैरिन कुसग इन अगिनिहीं आपने अनीती इतनी ठई। हाय इन कुजन ने पलटि पधारे स्याम देखन न पाई वह मूरति सुधामई। आवन समै मे दुखदाउनि भई री लाज चलन समै में चल पलन दगा दई॥

८

चित चाह अबूझ कहै कितने छवि छीनी गयन्दन की टटकी।
कवि केने कहे निज बुद्धि उदै यह लीनी मरालन की मटकी॥
'द्विजदेव' जू ऐसे कुतर्कन मे सब की मति योहीं फिरै भटकी।
वह मन्द चले किन भोरी भटू पग लाखन की अँखियाँ अँटकी॥

९

सोधे समीरन को सरदार मलिन्दन को मनसा फलदायक।
किसुक जालन को कलपद्रुम मानिनी बालनहूँ को मनायक॥
कन्त अनन्त अनन्त कलीन को दीनन के मन को सुखदायक।
साँचे मनोभव राज को साज सु आवत आज इनै ऋतुनायक॥

रामदयाल नेवटिया

सेठ रामदयाल नेवटिया का जन्म कार्तिक शुक्ल १३ सं० १८८२ में, मंडावा (शेखावाटी) में हुआ। आपके पिता का नाम सेठ मनसाराम था। जन्म के चालीस दिन पीछे आप फतहपुर, जो मंडावा से सात कोस पर है, लाये गये। फतहपुर ही आप के परिवार की निवास-भूमि है। सन् १९१० में संग्रहणी रोग से पीड़ित होकर मैं (लेखक) कई वर्षों तक फतहपुर में रहा, तब आपही के आश्रय में रहकर मैंने स्वास्थ्य लाभ किया था। मुझे आपके सत्संग-सुख का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

बालकपन से ही विद्या की ओर आपकी अधिक रुचि थी। थोड़ी ही अवस्था में आप व्यापारिक कामों में दक्ष हो गये। संवत १८९६ में आपके

पिता का देहान्त हो गया। सं० १९०७ में आप अजमेर के सेठ प्रतापमलजी मेहता के व्यापार के प्रधान संचालक होकर पूना गये। पूना मे व्यापारिक काम करते हुये भी आपने बड़े परिश्रम से हिन्दी, संस्कृत, गुजराती और उर्दू में अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। साधारण अंगरेज़ी भी आप समझ लेते थे।

स० १९१४ में आप अजमेर वापस गये और वहाँ से कुछ दिन बाद फतहपुर चले आये। तब से वहीं रहने लगे।

आप बड़े विद्या-व्यसनी थे। पुस्तकों से आप का बड़ा प्रेम था। गीताका प्रतिदिन पाठ करते थे। आपके पुस्तकालय मे हिन्दी और संस्कृत की पुस्तकों का बहुत अच्छा संग्रह था।

आप बड़े मिलनसार, सुशील, विनयी, सदाचारी, उदार, न्यायप्रिय और शांत पुरुष थे। अभिमान तो आपको छू भी नही गया था। मारवाड़ी जाति के आप रत्न थे। आपके समान विद्वान् मारवाड़ी जाति में उस समय तक कोई नही था। आप समाज-सुधार के बड़े पक्षपाती थे। गुणियो का आदर आप बड़े प्रेम से करते थे।

मुझे आपके समीप रहने का कई वर्षो तक अवसर मिला था। जब कोई शास्त्रीय चर्चा छिड़ जाती थी, तब आपके अगाध पांडित्य का चमत्कार देखकर मन में बड़ा आनन्द उमड़ आता था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के आप मित्रों में से थे। राजा शिवप्रसाद से भी आप का पत्र-व्यवहार था।

बालकपन में आपकी आर्थिक स्थिति बहुत साधारण थी। आपके सद्व्यवहार, कर्त्तव्य-परायणता, सत्याचरण और धर्म-निष्ठा पर लक्ष्मी भी मोहित हो गई और अपने जीवन-काल ही में आप अपने बृहत् परिवार को करोड़ों की संम्पत्ति से सुखी देखकर संवत् १९७५ की आश्विन-अमावास्या को स्वर्गवासी हुये।

आपका स्वास्थ्य बहुत सुन्दर था। सं० १९७० में आपने गङ्गोत्री और जमनोत्री की यात्रा की थी। सं० १९७४ के अंत में आप मथुरा आये।

वहीं मेरा आप से अंतिम साक्षात्कार हुआ। आप चार बजे प्रातःकाल उठते, शौच और स्नान से निवृत्त होकर पूजा पर बैठ जाते थे। पूजा-पाठ आपने अंतिम समय तक नहीं छुड़ा। आप महीन से महीन अक्षर भी वृद्धावस्था में बिना चश्मे की सहायता के पढ़ लेते थे।

आप हिन्दी के अच्छे कवि थे। आपके रचे हुये तीन ग्रन्थ हैं। तीनों छप चुके हैं। उनके नाम ये हैं :—१—प्रेमांकुर, २—बलभद्र-विजय, ३—लक्ष्मणा-मंगल। कविता में आप अपना उपनाम कृष्णदास रखते थे। आगे हम आप की कविता के कुछ नमूने उद्धृत करते हैं :—

१

बीत रही सब आयु तदपि बीती नहिं आशा।
अजहुँ चहूँ सुख भोग रोग भय बड़ा तमाशा॥
शिथिल हो गई देह बात पित कफ ने घेरा।
श्वेत केश संदेश समन का लाया नेरा॥
शक्ति-हीन इन्द्री भई, भक्ति लेश नहिं तनक मन।
तृष्णा कों तज रे! अधम, भजत क्यों न राधारमन॥

२

मैं कीनों बहु दोष, एक भरोसे आपके।
तुमही करिहौ रोष, तो पापी की कवनि गति॥

३

दूजो आदर ना करै, वाको कछु न दोस।
मैं तेरो तू ना सुनै, यह भारी अफ़सोस॥

४

सिंधु होय जल बिन्दु, इन्दु सम होय दिवाकर।
अनल कमल को फूल, तूल सम होय धराधर॥
माहुर मधुप समान, भूप भ्राता जिमि जानै।
शत्रु होय निज दास, लोक आज्ञा सब मानै॥

पाप होय हर जाप सम , को दुराय नहिं भू परै।
आनन्द कन्द ब्रजचन्द जब , करणानिधि किरपा करै।।

५

माधव तुम बिन सब जग झूठो।
रवि, ससि, अनिल, अनल, जल, थल में तुमरो ही तेज अनूठो।।
नन्दकिशोर और नहिं जांचूँ राजी रहो चाहे रूठो।
मैं हूँ अनन्य आपको सेवक "कृष्णदास" पै तूठो।।

६

जग मे हरि बिन कोइ न संगाती।
वाको मत बिसरो दिन राती।।
पल पल आयु घटै नर तेरी ज्यों दीपक बिच बाती।
चेत चेत नर चेत चतुर हो गइ न लोट फिर आती।।
सब अपने स्वारथ के संगी सुत वनिता अरु नाती।
'कृष्णदास' की त्रास मिटावें जनम मरन के साथी।।

लक्ष्मणसिंह

राजा लक्ष्मणसिंह यदुवंशी क्षत्रिय थे। जन्मभूमि आगरा, जन्म-संवत् १८८३, मृत्यु-संवत् १९५३।

राजा लक्ष्मणसिंह संस्कृत, हिन्दी, अरबी, फ़ारसी, बंगला और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। सन् १८५७ वाले सिपाही-विद्रोह में इन्होंने अंग्रेज़ों को बड़ी मदद पहुँचाई थी; इससे सन् १८७० के प्रथम दिल्ली-दरबार में इनको गवर्नमेंट ने राजा की पदवी दी। ये २० वर्ष तक ८०० रु० मासिक पर पहले दरजे के डिप्टी कलेक्टर रहे। कांग्रेस के जन्मदाता मिस्टर ह्यूम की इन पर बड़ी श्रद्धा थी। उन्हींकी कृपा से इनकी विशेष उन्नति हुई।

यद्यपि डिप्टी कलक्टरी के कामों से इन्हें अवकाश बहुत कम मिलता था, तो भी हिन्दी की ओर इनका ऐसा प्रेम था कि जो समय बचता, उसे ये इसी की सेवा में लगाते थे। गवर्नमेंट की बहुत-सी सरकारी किताबों का हिन्दी में उल्था करने के सिवाय इन्होंने शकुंतला, मेघदूत और रघुवंश का अनुवाद भी किया है। मेघदूत का अनुवाद पद्य में और रघुवंश का अनुवाद गद्य में है। ये ही पुस्तकें हिन्दी-जगत् में इनको अजर-अमर बनाये रक्खेंगी। इन पुस्तकों के अनुवाद में इन्होंने अपने पांडित्य का जो चमत्कार दिखाया है, वह किसी साहित्य-प्रेमी से छिपा नहीं है। भारतवर्ष तथा योरप के विद्वानों ने भी इनको हिन्दी का कवि माना है। इनके अनुवाद में यह विशेषता है कि पद्य की कौन कहे, गद्य में भी उर्दू, फारसी का एक शब्द नहीं आने पाया है। फिर भी एक-एक पद सरस, सुपाठ्य और सरलता से भरा हुआ है।

शकुंतला और मेघदूत के अनुवाद में से इनकी कविता की कुछ छटा हम दिखलाते हैं :—

शकुन्तला

१

कैसे भ्रमर चुम्बन करत।
नागकेसरि को सु अंकन रहसि रहसिहि भरत॥

सिरस फूलन कान धरि बन युवति मन को हरत।
देत शोभा परम सुन्दर सरस ऋतु लखि परत।।

२

रूखन तर मुनि अन्न परयो है। शुक कोटर तें यह जु गिरयो है।।
कहूँ धरी चिक्कन सिल दीसे। इंगुदि फल जिन पै मुनि पीसें।।
रहे हरिन हिल ये मनुषन तें। नैक न चौंकत बोल सुनन तें।।
सोहति रेख नदी तट बाटा। बनी टपकि जल बल्कल पाटा।।
पवन झकोरति है जल कूला। बिटप किये जिन उज्जल मूला।।
नव पल्लव दीखत धुँधराये। होम धुआँ जिन ऊपर छाये।।
उपवन अग्र भूमि के माही। कटि के दाभ रहे जहँ नाहीं।।
चरत फिरत निधरक मृग छौना। जिनके मन शंका नेकौ ना।।

३

अधर रुचिर पल्लव नये, भुज कोमल जिमि डार।
अंगन में यौवन सुभग, लसत कुसुम उनहार।।

४

तो मन की जानति नहीं, अहो मीत बेपीर।।
पै मो मन को करत नित, मनमथ अधिक अधीर।।

५

भानु मन्द कर देत, केवल गन्ध कमोदिनिहिं।
पै शशि मंडल स्वेत, होत प्रात के दरस ते।।

६

कहुँ दाभन तें मुख जाको छिद्यो जब तू दुहिता लखि पावत ही।
अपने कर तें तिन घावन पै तुही तेल हिंगोट लगावत ही।
जिहि पालन के हित धान समा नित मूठहिं मूठ खवावत ही।
मृग छौना सो क्यों पग तेरे तजैं जिहि पूत लौ लाड़ लड़ावत ही।।

७

प्रजा काजे राजा नित सुकृति पै उद्यत रहै।
बड़े वेद ज्ञानी हित सहित पूजें सरसुती।।
उमा स्वामी शम्भू जगतपति नीललोहित प्रभू।
छुटावें मोहू कों विपति अति आवागमन सों।।

मेघदूत

सुर युवती जुरि मिलि तहं आवैं। पकरि तोहि जल यन्त्र बनावैं।।
रघसि रघसि हीरा कङ्कन सों। नीर झरावें तो अङ्कन सों।।
इन खिलवारन ते यदि तेरो। छुटकारो नहिं होय सबेरो।।
श्रवन कठोर घोर तब कीजो। यों डरपाय उन्हें मग लीजो।।

२

तेरे हू आँसू सखा, देगी अवस बहाय।
सरस हृदय जन होत है, बहुधा मृदुल स्वभाय।।

३

तू बिन बोलेहू बरसि, मेटत चातक प्यास।
सज्जन जन उत्तर यही, पुजवत याचक आस।।

गिरिधरदास

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता बाबू गोपालचंद्र का उपनाम गिरिधरदास था। कविता में वे इसी नाम का प्रयोग करते थे। कहीं-कहीं गिरिधारी और गिरिधारन का प्रयोग भी मिलता है। इनका जन्म सं० १८९० में और मरण सं० १९१७ में हुआ। ये हिन्दी के अच्छे कवि थे। इन्होंने चालीस ग्रंथों की रचना की थी। उनमें जरासंध-वध की विशेष प्रशंसा की जाती है। यह महा-काव्य कहा जाता है। कुल २६ वर्ष ४ महीने की आयु में ४० ग्रंथों की रचना बड़ी प्रतिभा का काम है। इनके ग्रंथ प्रायः अप्रकाशित ही रहे एक ग्रंथ को बाबू हरिश्चन्द्र ने छपवाया था। और कई ग्रंथों का अब कहीं पता भी नहीं चलता। इनके रचित ३८ ग्रंथों के नाम ये हैं :—

१—वाल्मीकि रामायण—पद्यानुवाद, २—गर्ग संहिता, ३—भाषा एकादशी की चौबीसों कथा, ४—एकादशी की कथा, ५—छन्दार्णव, ६—मत्स्य कथामृत, ७—कच्छप कथामृत, ८—नृसिंह कथामृत, ९—वावन कथामृत, १०—परशुराम कथामृत, ११—रामकथामृत, १२—बलराम कथामृत, १३—बुद्ध कथामृत, १४—कल्कि कथामृत, १५—भाषा व्याकरण, १६—नीति, १७—जरासंधवध महाकाव्य, १८—नहुष नाटक, १९—भारती भूषण, २०—अद्‌भुत रामायण, २१—लक्ष्मी नखशिख, २२—रस रत्नाकर, २३—वार्ता संस्कृत, ३४—ककारादि सहस्रनाम, २५—गया यात्रा, २६—गयाष्टक, २७—द्वादश दल कमल, २८—स्तुति पंचाशिका, २९—संकर्षणाष्टक, ३०—दनुजारिस्तोत्र, ३१—वाराह स्तोत्र, ३२—शिवस्तोत्र, ३३—श्रीगोपालस्तोत्र, ३४—भगवत्‌स्तोत्र, ३५—श्री रामस्तोत्र, २६—श्रीराधास्तोत्र, ३७—रामाष्टक, ३८—कलिकालाष्टक।

ये अपनी रचना में श्लेष और जमक की अच्छी बहार दिखलाते थे। परन्तु नीति और शांति-रस की कविता इन्होंने बहुत सरल भाषा में लिखी है। संग्रह-ग्रंथों में कहीं-कहीं इनके रचे छन्द उद्‌धृत हुये हैं। उन्हीं में से चुनकर कुछ छन्द आगे लिखे जाते हैं:—

१

सब केसव केसव केसव के हित के गज सोहते शोभा अपार हैं।
जब सैलन सैलन सैलन ही फिरै सैलन सैलहिं सीस प्रहार है।
गिरिधारन धारन सों पद के जल धारन लै बसुधारन धार है।
अरि वारन वारन वारन पै सुर वारन वारन वारन बार हैं।।

२

गुरुन को शिष्यन सुपात्र भूमिदेवन को मान देहु ज्ञान देहु दान देहु धन सों। सुत को सन्यासिन को वर जिजमानन को सिच्छा देहु भिच्छा देहु दिच्छा देहु मन सो। सत्रुन को मित्रन को पित्रन को जग बीच तीर देहु छीर देहु नीर देहु पन सों। गिरिधरदास दासै स्वामी को अघी को आसु रुख देहु सुख देहु दुख देहु तन सों।।

३

बातनि क्यों समुझावति हौ मोहिं मैं तुमरो गुन जानति राधे।
प्रीति नई गिरिधारन सों भई कुंज में रीति के कारन साधे।
घूघट नैन दुरावन चाहति दौरति सो दुरि ओट ह्वै आधे।
नेह न गोयो रहै सखि लाज सों कैसे रहे जल जाल के बाँधे।।

४

धिक नरेश बिनु देस, देस धिक जहँ न धरम रुचि।
रुचि धिक सत्यबिहीन, सत्य धिक बिनु विचार सुचि।
धिक विचार बिनु समय, समय धिक बिना भजन के।
भजनहु धिक बिनु लगन, लगन धिक लालच मन के।।
मन धिक सुन्दर बुद्धि बिनु, बुद्धि सु धिक बिनु ज्ञान गति।
धिक ज्ञान भगति बिनु भगति धिक, नहिं गिरिधर पर प्रेम अति।

५

जाग गया तब सोना क्या रे।
जो नर तन देवन को दुर्लभ सो पाया अब रोना क्या रे।।

ठाकुर से कर नेह अपाना इंद्रिन के सुख होना क्या रे।
जब बैराग्य ज्ञान उर आया तब चाँदी औ सोना क्या रे।।
दारा सुवन सदन में पड़ के भार सबों का ढोना क्या रे।
हीरा हाथ अमोलक पाया काँच भाव में खोना क्या रे।।
दाता जो मुख माँगा देवे तब कौड़ी भर दोना क्या रे।
गिरिधरदास उदर पूरे पर मीठा और सलोना क्या रे।।

दोहे

धनहिं राखिये विपति हित , तिय राखिय धन त्यागि।
तजिये गिरधरदास दोउ , आतम के हित लागि।।१।।
लोभ न कबहूँ कीजिये , या मैं विपति अपार।
लोभी को बिस्वास नहिं , करे कौऊ संसार।।२।।
लोभ सरिस अवगुन नहीं , तप नहिं सत्य समान।
तीरथ नहिं मन शुद्धि सम , विद्या सम धन आन।।३।।
सकल वस्तु संग्रह करै , आवै कोउ दिन काम।
बखत परे पर ना मिलै , माटी खरचे दाम।।४।।
कारज करिय बिचारि कै , कर्म लिखी सो होय।
पाछे उपजै ताप नहिं , निन्दा करै न कोय।।५।।
पुन्य करिय सो नहिं कहिय , पाप करिय परकास।
कहिबे सो दोउ घटत हैं , बरनत गिरिधरदास।।६।।
पावक बैरी रोग रिन , सेसहु रखिये नाहिं।
ए थोरे हूँ बढ़हिं पुनि , महा जतन सो जाहिं।।७।।
अलस प्रमादी रागरमि , नीति न देखत जौन।
उर सद असद बिबेक नहिं , अधम अवनिपति तौन।।८।।
मिल्यो रहत निज प्राप्तिहित, दगा समय पर देत।
बन्धु अधम तेहि कहत हैं , जाको मुख पर हेत।।९।।

रूपवती लज्जावती , सीलवती मृदु बैन।
तिय कुलीन उत्तम सोई , गरिमा धर गुन ऐन ।।१०।।
अति चंचल नित कलह रुचि , पति सों नाहिं मिलाप।
सो अधमा तिय जानिये , पाइय पूरन पाप ।।११।।
जनक वचन निदरत निडर , बसत कुसंगति माँहि।
मूरख सो सुत अधम है , तेहि जनमें सुख नाहिं ।।१२।।
सुख दुख अरु विग्रह विपति , यामें तजै न संग।
गिरिधरदास बखानिये , मित्र सोइ वर ढङ्ग ।।१३।।
सुख मैं सङ्ग मिलि सुख करै , दुख में पाछो होय।
निज स्वारथ की मित्रता , मित्र अधम है सोय ।।१४।।
आप करै उपकार अति , प्रति उपकार न चाह।
हियरो कोमल सन्त सम , सुहृद सोइ नरनाह।।१५।।
मन सों जग को भल चहै , हिय छल रहै न नेक।
सो सज्जन संसार में , जाके विमल विवेक ।।१६।।
उद्यम कीजै जगत में , मिलै भाग्य अनुसार ।
मोती मिलै कि संख कर , सागर गोता मार ।।१७।।
बिन उद्यम नहिं पाइये , कर्म लिख्यो हू जौन।
बिनु जलपान न जाय है , प्यास गङ्ग-तट भौन ।।१८।।
उद्यम में निद्रा नहीं , नहिं सुख दारिद माँहि।
लोभी उर संतोष नहिं , धीर अबुध में नाहि ।।१९।।
सुख दरिद्र सों दूर है , जस दुरजन सों दूर।
पथ्य चलन सों दूर रुज , दूर सीतलहिं सूर ।।२०।।
अति सरसत परसत उरज , उर लगि करत बिहार।
चिन्ह सहित तन को करत , क्यों सखि हरि ? नहिं हार ।।२१।।
गौनो करि गौनो चहत , पिय बिदेस बस काजु।
सासु पासु जोहत खरी , आँखि आँसु उर लाजु ।।२२।।

पति देवत कहि नारि कहँ , और आसरो नाहिं।
सगे सिढ़ी जानहु यही , बेद पुरान कहाहिं ॥२३॥

लछिराम

लछिराम का जन्म पौष शुक्ल १०, सं० १८९८ को स्थान अमोढ़ा, ज़िला बस्ती में हुआ। इनके गाँव से लगा हुआ एक 'चरथी' गाँव है। अमोढ़ा-नरेश ने पुत्र-जन्म के उत्सव में इनकी कविता से प्रसन्न होकर वह गाँव सदा के लिये दे दिया, और रहने के लिये एक अच्छा मकान भी बनवा दिया। उसी में ये सपरिवार आनन्द-पूर्वक रहते थे।

१० वर्ष की अवस्था में लासाचक, ज़िला सुलतानपुर-निवासी ईश कवि के पास इन्होंने साहित्य पढ़ना आरम्भ किया। पाँच वर्ष वहाँ पढ़कर सं० १९१४ में अवध-नरेश महाराजा मानसिंह के पास चले गये और उन्हीं से साहित्य का मर्म समझने लगे। इनकी बुद्धि बहुत तीव्र थी, इससे थोड़े ही समय में इन्होंने साहित्य में अच्छी जानकारी प्राप्त कर ली।

महाराज मानसिंह इन्हें बहुत चाहते थे। उन्हींने इन्हें 'कविराज' की पदवी दी थी। उन्हीं के कारण अवध के सब राजा-रईस इनका बड़ा सम्मान करते थे। कविता-द्वारा इन्हें हाथी, घोड़ा, धन, वस्त्र, गाँव आदि वस्तुएँ समय-समय पर उपलब्ध होती रहती थीं। इन्होंने राजाओं की प्रशंसा में अनेक ग्रन्थों की रचना की। इनके रचे हुए ग्रन्थों के नाम ये हैं :—प्रताप रत्नाकर, प्रेम रत्नाकर, लक्ष्मीश्वर रत्नाकर, रावणेश्वर कल्पतरु, महेश्वर विलास, मनीश्वर कल्पतरु, महेन्द्र भूषण, रघुवीर विलास, कमलानन्द कल्पतरु, मानसिंह जङ्काष्टक, रामचन्द्र भूषण, सरजू लहरी, हनुमत शतक, राम रत्नाकर, नायिका भेद। इनके प्रायः सब ग्रन्थ भारतजीवन प्रेस, बनारस में छपे थे।

कविता तो इनकी ऊँचे दरजे की नही है; परन्तु सुनते है, कविता पढ़ने की इनमें विचित्र शक्ति थी। श्रोताओं के मन में ये शीघ्रही प्रभाव जमा लेते थे। सं० १९६१, भाद्रपद कृष्ण ११ को इन्होंने अयोध्याजी में शरीर छोड़ा।

इनके रचे कुछ छंद हम नीचे प्रकाशित करते हैं:—

१

भानुवंस भूषन महीप रामचन्द्र वीर रावरो सुजस फैल्यो आगर उमङ्ग मैं। कवि लछिराम अभिराम दूनो शेषहूँ सों चौगुनो चमकदार हिमगिरि गंग मैं। जाको भट घेरे तासो अधिक परे है और पचगुनो हीरा हार चमक प्रसंग मैं। चन्द मिलि नौगुनो नछत्रन सों सौगुनो ह्वै सहस गुनो भो छीरसागर तरङ्ग मैं।।

२

रावन बान महाबली ओर अदेव औ देवनहूँ दृग जोरचो।
तीनहूँ लोकन के भट भूप उठाय थके सबको बल छोरचो।
घोर कठोर चितै सहजै लछिराम अमी जस दीपन घोरचो।
रामकुमार सरोज से हाथन सों गहि संभु-सरासर तोरचो।।

३

भरम गँवावै झरबेरी सग नीचन ते कंटकित बेल केतकीन पै गिरत है। परिहरि मालती सु माधवी सभासदनि अधम अरूसन के अंग अभिरत है। लछिराम सोभा सरवर मे विलास हेरि मूरख मलिन्द मन पल ना थिरत है। रामचन्द्र चारु चरनाम्बुज बिसारि देस बन बन बेलिन बबूर में फिरत है।।

४

सजल रहत आप औरन को देत ताप बदलत रूप और बसन बरेजे मैं। ता पर मयूरन के झुंड मतवाले साले मदन मरोरैं महा झरनि मरेजे मैं। कवि लछिराम रंग साँवरो सनेही पाय अरज न मानै हिय हरष हरेजे मैं। गरजि गरजि बिरहीन के बिदारें उर दरद न आवै धरे दामिनी करेजे मैं।।

५

बदल्यो बसन सो जगत बदलोई करै आरस में होत ऐसो यामे कहा छल है। छाप है हरा की कै छपाए हौ हरा को छाती भीतर झगा के छाई छवि झलाझल है। लछिराम हौंहूँ धाय रचिहौं बनक ऐसो आँखिन खवाये पान जात क्यों अमल है। परम सुजान मनरञ्जन हमारे कहा अञ्जन अधर मे लगाये कौन फल है।।

गोविंद गिल्लाभाई

गोविन्द गिल्लाभाई का जन्म सिहोर रियासत भावनगर में, श्रावण सुदी ११, सोमवार सं० १९०५ में हुआ था। इनके पिता का नाम गिल्लाभाई और माता का सावित्री बाई था। ये चौहान राजपूत थे। इनके पूर्वज मारवाड़ के पीपलोद नामक स्थान में रहते थे। वहाँ से वे आपस के झगड़े के कारण काठियावाड़ मे जाकर बस गये। गोविन्दजी उसी कुल के रत्न थे। इन्हें बालकपन मे विद्यालय की शिक्षा बहुत कम मिल सकी। इन्होंने अपने उत्कट परिश्रम से साहित्य विषयक अद्भुत ज्ञान उपार्जन किया था। बहुत दिनों तक सरकारी नौकरी करने के पश्चात् पेंशन पाते थे। गुजराती साहित्य के ये अच्छे मर्मज्ञ और सुकवि थे। मातृभाषा गुजराती होने पर भी इन्होंने हिन्दी में अच्छे-अच्छे काव्य-ग्रन्थों की रचना की थी। सं० १९२५ से इन्होंने कविता करनी शुरू की थी। हिन्दी में इन्होंने ३२ ग्रन्थ लिखे थे, जिनमें साहित्य-चिंतामणि और गोविन्द-हजारा मुख्य है। भूषण की कविताओं का भी इन्होंने संग्रह किया था।

हमने इनके १४ ग्रन्थों का एक संग्रह (गोविन्द-ग्रन्थमाला) देखा है। उससे साहित्य पर इनका विशेष अधिकार जान पड़ता है।

इनके कुछ छंद आगे उद्धृत किये जाते है :—

१

कोऊ तो कहत छवि सर में सरोज भयो सुखमा सुभग ताकी नीकी निरधार है। कोऊ तो कहत गोल आरसी अमोल ताकी आभा अभिराम अति मोहे सुखकार है। कोऊ तौ कहत चन्द अवनी में उदै भयो ऐसे मुख उपमा को कहत अपार है । 'गोविंद' सुकवि पर मेरे मन जानि परयो कनकलता में फूल लाग्यो आवदार है।।

२

सुधा को छिनाइ धरे अपने अधर बीच ताकी मधुराई लखि मिश्री भई मंद है। षोड़श कला को काटि रदन ललित कला बत्तिस बनाई बैठी मंजु मसनंद है । पोषन की शक्ति पुनि बिमल बचन परी लीनी सब सम्पति यों राधे रचि फंद है। 'गोविंद' सुकवि तवे कालिमा कलंक धरि विचरत व्योम फरियाद हित चंद है।।

३

बेनी को बिलोकि व्याल पेट को घिसत सदा, मुख को बिलोकि इन्दु हीन कला करि है। काया को बिलोकि कलधौत परे पावक में स्रौन को निरखि सीप सागर में परि है। दसन की दुति देखि दारिम दरार खात 'गोविंद' गयंद गति देखि धूरि धरि है । ताहि तें कहत तोकों पेट तेरो ढाँप प्यारी पेट न दिखाव कोऊ पेट मार मरि है।।

४

बेर बेर पावक में कञ्चन तपाय तऊ, रचक ना रंग निज अंग को मिटावै है। चंदन सिलान पर घिसत अमित तऊ सुन्दर सुगन्ध चारों ओर सरसावै है। पेरत हैं कोल्हू माँहि ऊख को अधिक तऊ मंजुल मधुरताई नेक न नसावै है। 'गोविंद' कहत तैसे कष्ट काय पाय तऊ सुजन सुभाव नाहिं आप बदलावै है।।

५

दहिबो सरीर अरु लहिबो परम पद चहिबो छनिक माँहि सिन्धु पार पाइबो। गहिबो गगन अरु बहिबो बयारि संग रहिबो रिपुन संग

त्रास नाहिं लाइबो । सहिबो चपेट सिंह लहिबो भुजंग मनि कहिबो कथन अरु चातुर रिझाइबो । 'गोविंद' कहत सोई सुगम सकल पर कठिन कराल एक नेह को निभाइबो ।।

६

लोभन तें यश अरु क्रोधन तें गुन पुनि कपट तें सत्यता के वृन्द बिनसात हैं। भूखन ते मरजाद ब्यसन तें बित्त पुनि आपदा तें उर निज धीरज नसात हैं। ममता से ज्ञान अरु मद तें विनय पुनि चुगली तें सर्व महा बंस बिखरात हैं। 'गोविंद' कहत तैसे जानें जिय माँहि हमें दीनता से दुनिया में मान मिट जात हैं।।

७

सम्पति करन और दारिद दरन सदा, कष्ट के हरन भव तारन तरन हैं। भौन के भरन चारों फल के फरन महा ताप त्रै हरन असरन के सरन हैं । भक्त उद्धरन और बिघन हरन सदा जनम मरन महा दुःख के दरन हैं। "गोविंद' कहत ऐसे बारिज बरन वर मोद के करन मेरे प्रभु के चरन हैं।।

कौमुदी-कुञ्ज

घनाक्षरी

१

भोजन ज्यों घृत बिन पंथ जैसे साथी बिन हाथी बिन दल जैसे दास बिन बान है। राव रङ्क रानी बिन कूप जैसे पानी बिन कवि जैसे बानी बिन गर बिन तान है। रस रास रीति बिन मित्र ज्यों प्रतीति बिन ब्याह काज गीत बिन मान बिन दान है। रंग जैसे केसर बिन मुख जैसे बेसर बिन प्यारी बिन रैन ज्यो सुपारी बिन पान है॥

२

विद्या बिन द्विज औ बगीचा बिन आमन को पानी बिन सावन सुहावन न जानी है। राजा बिन राजकाज राजनीति सांचे बिन पुन्य की बसीठी कहां कैसे धौ बखानी है। कहै 'जयदेव' बिन हित को हित् है जैसे साधु बिन संगति कलंक की निशानी है। पानी बिन सर जैसे दान बिन कर जैसे शील बिन नर जैसे मोती बिन पानी है॥

३

गुन बिन कमान जैसे गुरु बिन ज्ञान जैसे मान बिन दान जैसे जल बिन सर है। कण्ठ बिन गीत जैसे हेत बिन प्रीत जैसे वेश्या बिन रीत जैसे फल बिन तर है। तार बिन यंत्र जैसे स्याने बिन मंत्र जैसे नर बिन नारि जैसे पुत्र बिन घर है। बानी बिन कवि जैसे मन में विचारि देखो धर्म बिन धन जैसे पच्छी बिन पर है॥

४

चन्द्र बिन रजनी सरोज बिन सरवर बेग बिन तुरँग मतंग बिना मद को। बिना सुत सदन नितंबिनी सु पति बिन बिन धन धरम नृपति बिन

पद को। बिन हरिभजन जगत सोहै जन कौन नोन बिन भोजन विटप बिना छद को। 'प्राननाथ' सरस सभा न सोहै कवि बिन विद्या बिन बात न नगर बिन नद को।।

५

केते भये यादव सगर सुत केते भये जातहू न जाने ज्यों तरैया परभात की। बलि बेनु अंबरीष मानधाता प्रहलाद कहाँ लौ गनाओं कथा रावन ययात की। तेऊ न बचन पाये काल कोनुकी के हाथ भाँति भाँति सेना रची घने दुख घात की। चार चार दिना को चबाउ चाहै करै कोऊ अत लुटि जैहै जैसे पूतरी बरात की।।

६

गो द्विज को पाले सन्त मारग में चालै निज शत्रु दल घालै रन में तें मन मोरै ना। सुखद सजीले बीरता में गरबीले कुल एकहन ढीले हीनताई के निहोरै ना। जाको मँग धारै ताको पार निरवारै दान दाया को मँचारै धर्म धारै तौन छोरै ना। युद्धन की पत्री सुनि मोद लहै अत्री अति ऐसे सूर छत्री समता मे और जोरै ना।।

७

ऐंठे ऐंठे बोलै अधिकार निज खोलै कहे काम को न डोलै समझाय जब हारिये। द्विज कौन होते कुल चीकने न मोते इहि भांति भाषि सोते में मसाल एक बारिये। तुरत जगाय ताके मुख में लगाय दीजे जनन भगाय छन एक लौं निहारिये। जानो महा खोटा चट पकरि कै झोंटा ताको ऐसे सूद सोंटा जोहि जूतन सुधारिये।।

८

न्याव नित साँचे 'बलदेव' रँगराचे मामिला को खूब जाँचे हाल बाँचे ते विशेखा मैं। रुचत न रारी उपकारी श्रुति भारी भाव वंश धन धारी कृतिकारी रीति रेखा मैं। जागो यश वेश त्यों बड़ाई देश देश काहू पच्छ को न पेश औ न लेश लोभ लेखा मैं। सम रङ्क भूप झगरे को करैं कूप तेई ईश्वर के रूप हैं अनूप पंच देखा मैं।।

९

भाँड़न को भेंटे तिमि मेटे मरजाद दुष्ट लोभ के लपेटे बेटे काके बने काजी हैं। न्याव मुख देखा कियो रोखन की रेखा कियो लुच्चन में लेखा कियो कैसे मूढ़ माजी हैं। लोक में न माल परलोक त्यों न पाल कछु पूछत न हाल ठये चाल जालसाजी है। दे तो ताहि राजी करै केतो कहो ना जी करै चेतो दगाबाजी करैं ए तो पंच पाजी है।।

१०

सुदर सुभग तन सुखद मुदित मन आनँद के घन धन छन हित साज हैं। दाया दानधारी 'बलदेव' उपकारी जग भारी भीर टारी सुचि सील के समाज हैं। देशकाल जानै तिमि औषधि विधानै सब ही को सनमानै ठानै गुन सिरताज हैं। विशद विचारै त्यों अचारै श्री सँचारै चारु सेई सिद्ध भेई लघु तेई वैद्यराज हैं।।

११

नारी नाहिं जानत अनारी कहे गारी देत तारी दै हँसत हैं हजारन को मारा मैं। झोली बीच गोली तौन गोली सी लगत यह तोली कई बार गई प्रानन को पारा मैं। करनी यही है घर घरनी रिझैबे जोग बसु बैत-रनी मिले हिये में बिचारा मैं। बैठे हैं बधिक से बिसारे बक रूप बनि ऐसे वैद्यराज को बहावै बारिधारा मैं।।

१२

आजु को कहैं तो आठ मास में न लागै ठीक काल्हि जो कहैं तो मास सोरह चलावही। पाँच दिन कहे पाँच बरस बिताय देहिं पाख जो कहैं तो ले पचास पहुँचावही। भाषत 'प्रधान' जो वै ताहू पै न त्यागै द्वार आप ने लजात फेर वाहू को लजावही। ऐसे सत्यभाषी सरदार हैं देवैया जहाँ काहे को पवैया तहाँ जीवत लौं पावही।।

१३

भाँड़न को भोज कलावंतन को कर्ण जैसे विश्वन को बेनु से उरोज रस लीबे को। बेड़िन के विक्रम औ रामजनी जयचंद चुगुल को चतुर-

भुज भारी मौज कीबे को। कहै 'अवसेरी' मसखरन को मग जैसे चलै विपरीत धिरकार ऐसे जीबे को। सूम के रहत दुइ बातन की तंगी एक ईश्वर निमित्त औ कवीश्वर को दीबे को।।

१४

जगत के कारन करन चारौ बेदन के कमल मे बसे वे सुजान ज्ञान धरि कै। पोखन अवनि दुख सोखन तिलोकन के समुद में जाय सोये सेज सेस धरि कै। मदन जरायो औ सँहारचा दृष्टि ही सों सृष्टि बसे है पहार वेऊ भाजि हरबरि कै। विधि हरि हर बढ इनते न कोऊ तेऊ खाट पै न सोवै खटमलन सो डरि कै।।

१५

जानै राग रागिनी कवित्त रस दाहा छद जप तप तेग त्याग एक सी गतन का। 'महबूब' उरझि न देखि सकै भित्रन की चित्त हर भांति मै रिझैया नुकतन का। जासे जो कबूलै सो न भूलै, भूलै माफ़ करै साफ़ दिल आकिल लिखैया हरफन का। नेकी से न न्यारा रहै बदी से किनारा गहै ऐसा मिलै प्यारा तो गुजारा चलै मन का।।

१६

कूर भये कुँवर मजूर भये मालदार सूर भये गुपत असूर भये जबरे। दाता भये कृपन अदाता कहै दाता हम धनी भये निधन निधन भये गबरे। साँचन की बात ना पत्यात कोऊ जग माँझ राज दरबारन बुलैये लोग लबरे। भनत 'प्रबीन' अब छीन भई हिम्मत सो कलियुग अदलि बदलि डारे सिगरे।।

१७

बारी औ खँगार नाऊ धीमर कुम्हार काछी खटिक दसाँधी ये हुजूर को सुहात हैं। कोल गोड़ गूजर अहीर तेली नीच सबै पास के रहे ते कहा ऊँचे भये जात हैं।। 'बुद्धिसेन' राजनि के निकट हमेस बसैं कूकर बिलार कहा गुण अधिकात हैं। दूरहिं गयंद बाँधे दूर गुनवान ठाड़े गज औ गुनी के कहा मोल घटि जात हैं।।

१८

मद के भिखारी मीन माँस के अहारी रहै सदा अनाचारी चारी लिखते लिखावते। नारी कुल धाम की न प्यारी परनारी आग विद्या पढ़ि पढ़ि हू कुविद्या मति धावते। आँखिन को काजर कलम से चुराय लेत ऐसे काम करै नेकु शंकहु न आवते। जो पै सिंहवाहिनी निवाहिनी न होती 'चंद' कायथ कलंकी काके द्वारे गति पावते॥

१९

सखी उरबसी सी गरे पहिरे उरबसी सी पिया उरबसी सी छवि देखे दुख सरकि जात। कंचुकी कसी सी बहु उपमा लसी सी रूप सुन्दर धसी सी परयंक पर थिरकि जात। कहै 'हरचरन' रही चमक बतीसी प्यारी जामें लगी मीसी हिये सौतिन दरकि जात। भुज में कसी सी सिंधु गङ्ग ज्यों धँसी सी जाके सीसी करिबे में सुधा सीसी सी ढरकि जात॥

२०

कुंद की कली सी दंत पाँति कौमुदी सी दीसी बिच बिच मीसी रेख अमी सी गरकि जात। बीरी त्यों रची सी बिरचि सी लखैं तिरछी सी रीसी आँखियाँ वै सफरी सी फरकि जात। रस की नदी सी 'दयानिधि' की नदी सी थाह चकित अरी सी रति डरी सी सरकि जात। फन्द में फसी सी भरि भुज में कसी सी जाकी सीसी करिबे में सुधा सीसी सी ढरकि जात॥

२१

सुनो हो विटप हम पुहुप तिहारे अहैं राखिहौं हमें तो शोभा रावरी बढ़ावेंगे। तजिहौ हरषि कै तो बिलग न मानैं कछू जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनो जस गावैंगे। सुरन चढ़ैगे नर सिरनि चढ़ैंगे नित सुकवि 'अनीस' हाथ हाथन बिकावेंगे। देश में रहैंगे, परदेश में रहैंगे, काहू भेस में रहैंगे तऊ रावरे कहावेंगे॥

२२

सुमन मैं बास जैसे सुमन मैं आवै कैसे ना कहयो चहत सो तो हाँ कहयो चहत है। सुरसरि सूरतनया में सुरसति जैसे बेद के बचन बाँचे साँचे निबहत है। परवा को इन्दु की कला ज्यों रहै अंबर मैं पर वाको अच्छ परतच्छ ना लहत है। बुद्धि अनुमान के प्रमान पर ब्रह्म जैसे ऐसे कटि छीन कवि 'मीरन' कहत हैं।।

२३

लट की लरक पर भौंह की फरक पर नैन की ढरक पर भरि भरि ढारिये। 'हरिकेस' अमल कपोल विहँसन पर छाती उकसन पर निसक पसारिये। गहरौंही गति पर गहरौंही नाभि पर हौं न हटकति प्यारे नैसुक निहारिये। एक प्रानप्यारी जू की कटि लचकीली पर ढीली ढीली नजरि सँभारे लाल डारिये।।

२४

आये सुख पावती न जाये सुख पावती है हिय की न बात कछू 'सेवक' जतावती। कहूँ रहौ कान्ह जू सुहागिन कहावती हैं चाहती मैं यही और बात न बनावतीं। जाके सुख पाये सुख पावो तुम प्यारे लाल वाहू सुख दीजिये न या मैं भरमावती। जामें सुख पावो तुम सोई हम करैं यातें हम तौ तिहारे सुख पाये सुख पावती।।

२५

खात हैं हरामदाम करत हराम काम घर घर तिनही के अपजस छावेंगे। दोजख में जैहैं तब काटि काटि कीड़े खैहैं खोपरी को गूद काग टोटनि उड़ावेंगे। कहैं 'करनेस' अबै घूसनि तें बाजि तजै रोजा औ निमाज अंत जम कढ़ि लावेंगे। कबिन के मामले में करैं जौन खामी तौन नमक-हरामी मरे कफ़न न पावेंगे।।

२६

उमड़ि घुमड़ि घन आवत अटान ओट छन घन जोति छटा छटकि छटकि जात। सोर करैं चातक चकोर पिक चहूँ ओर मोर ग्रीव मोरि मोरि

मटकि मटकि जात। सावन लौं आवन सुनो है घनश्याम जू को आँगन लौं आय पाय पटकि पटकि जात। हिये विरहानल की तपनि अपार उर हार गज मोतिन के चटकि चटकि जात ।।

२७

ऊँचो कर कहै ताहि ऊँचो करतार करै ऊनी मन आनै दूनी होती हरकति है। ज्यों ज्यों धन धरै सचै त्यों त्यों विधि खरो खैंचै लाख भाँति धरै कोटि भाँति सरकति है। दौलत दुनी में थिर काहू के न रही 'क्षेम' पाछे नेकनामी बदनामी खरकति है। राजा होइ राइ होइ साइ उमराइ होइ जैसी होति नेति तैसी होति बरकति है ।।

२८

तारे भये कारे तेरे नैना रतनारे भये मोती भये सीरे तू न सीरी अजहूँ भई। 'छीत' कहै पीतमैं चकैया मिली तू न मिली गैया तरु छूटी तेरी टेक न छुटी दई। अरुनई नई तेरी अरुनई नई भई चहचही बोली आली तून बोली ऐ बई। मंद छवि भये चंद फूले अरविन्द बुन्द गई री विभावरी न रिस रावरी गई ।।

२९

हाथी के दाँत के खिलौना बनै भाँति भाँति बाघन की खाल तपी शिव मन भाई है। मृगन की खालन को ओढ़त है जोगी जती छेरी की खाल थोरा पानी भरि लाई है। साबर की खालन को बाँधत सिपाही लोग गैंडा की खाल राजा रायन सुहाई है। कहै कवि 'दयाराम' राम के भजन बिन मानस की खाल कछू काम नहिं आई है।।

३०

जस को सवाद जो पै सुनो कवि आनन सों रस को सवाद जो पै और को पिआइये। जीभ को सवाद बुरो बोलिये न काहू कहूँ देह को सवाद जो निरोग देह पाइये। घर को सवाद घरनी को मन लिये रहै धन को सवाद सीस नीचे को नवाइये। कहै 'द्विजराम' नर जानि कै अजान होत खैबे को सवाद जो पै और को खवाइये ।।

३१

कौसल कुमार सुकुमार अति मारहू ते आली घिरि आई जिन्है सोभा त्रिभुवन की। फूल फुलवाई मैं चुनत दोऊ भाई 'प्रेम' सखी लखि आई गहे लतिका द्रुमन की। चरन लुनाई दृग देखे बनि आई जिन जीती कोमलाई औ ललाई पदुमन की। चलत सुभाई मेरो हियरा डराई हाय गड़ि मति जाय पाय पाँखुरी सुमन की ॥

३२

आजु आली माथे ते सु बेंदी गिरै बार बार मुख पर मोतिन की लरी खरकति है। धरत ही पग कील चूरे की निकसि जात जब तब गाँठि जूरे हू की सरकति है। जानि ना परत 'प्रहलाद' परदेस प्रिय उससि उरोजन सों आँगी दरकति है। तनी तरकनि कर चूरी चरकति अंग सारी सरकति आँख बाँई फरकति है ॥

३३

म्यान सों कलमदान करते निकारि तामें स्याही जल विष में बुझाई बार बार है। चारु युक्ति जौहर जगावत सनेह संग अकिल अनेक तामें सिकिल सुढार है॥ 'जुगुल किशोर' चलै कागद धरा पै धाय धारै ना दया को नेकु लागे वार पार है। पाइ कै गँवार गाइ साफ करैं साइति में मुनसी कसाई की कलम तरवार है॥

३४

बड़े बिभिचारी कुल कानि तजि डारी निज आतम बिसारी अघ ओघ के निकेत हैं। जटा सीस धारें मीठे बचन उचारें न्यारे न्यारे पंथ पारें सुभ पन्थ पीठ देत हैं। गावत कहानी पर वेद को न मानी ऐसे उमर बिहानी होत आये बार सेत हैं। कलि ठकुराई में बिराग की बड़ाई करैं माई माई कहिकै लुगाई करि लेत हैं।

३५

जोर परे जोर जात भर परे भूमि जात भूमि जात जोवन अनङ्ग रंग रस है। कहैं हेमनाथ सुख सम्पति बिपति जात जात दुःख दारिद समूह

रसबस है। गढ़ गिरि जात गरुआई औ गरब जात जात सुख साहिबी समूह सरबस है। बाग कटि जात कुवाँ ताल पटि जात नद्दी नद घटि जात पै न जात जग जस है।।

३६

पौर के किवार देत घरे सबै गारि देत साधुन को दोष देत प्रीति ना चहत हैं। माँगने को ज्वाब देत बात कहे रोय देत लेत भाँज देत ऐसे निवहत-हत हैं।। बागे हू के बंद देत बारन की गाँठ देत परदन की कांछ देत काम में रहत हैं। एते पै सबेई कहैं लाला कछु देत नाही लाला जू तो आठोजाम देतई रहत हैं।।

३७

अगन बचाये सुभ चारो गन नाये अरु उक्ति उपजाये के बिसारे नाम हरि का। लोभ के अजान मे सयान सब भूलि गये कीबे परे ऐसई अधम ऐसे अरि का। कहै 'कवि' लोग हम दान की कहाँ लौं कहौं माँगे मे न दियो जाय जासो द्वैक खरिका। सूम के कवित्त करि मन में गलानि होत परै पछितायबो छिनारि कैसो लरिका।।

३८

दाता घर होती तौ कदर तेरी जानी जाती आई है भले घर बधाई बजवाव री। खाने तहखानन में आनि के बसेरो लेहु होहु ना उदास चित चौगुनो बढ़ाव री। खैहौं ना खवैहौं मरि जैहौं तो सिखाय जैहौं यही पूत नातिन को आपनो सुभाव री। दमरी न दैहौं कबौ जाने में भिखारिन को सूम कहै सम्पति सों बैठी गीत गाव री।।

३९

राजन की नीति गई मीत की प्रतीति गई नारिन की प्रीति गई जार जिय भायो है। शिष्यन को भाव गयो पंचन को न्याव गयो साँचे को प्रभाव गयो झूँठ ही सुहायो है। मेघन की बृष्टि गई भूमि सो तौ नष्ट भई सृष्टि पै सकल विपराति दरसायो है। कीजिये सहाय हे कृपाकर गोबिन्द लाल कठिन कराल कलिकाल अब आयो है।।

८०

पन्ना के पंड़ोर गढ़ झन्ना के झवैया झरि झारुदार झांसी के भवैया भानपुर के। कहैं कवि 'कुन्दन' कमायूँ के कुम्हार भाँड़ दाउद के दरजी दमामी दानपुर के। तेली तिलँगान के तँबोली तेजगढ़ वाले भावज के भाँगड़ सोनार सानपुर के। येते मिलि मारैं जूती चुगुल चबाई सीस कालपी के कूँजड़े कसाई कानपुर के।।

८१

ह्वै कै महाराज हय हाथी पै चढ़ै तो कहा जोपै बाहुबल निज प्रजनि रखायो ना। पढ़ि पढ़ि पण्डित प्रवीन हूँ भये तो कहा विनय विवेक युत जोपै ज्ञान गायो ना। 'अम्बुज' कहत धन धनिक भयो तो कहा दान करि जोपै निज हाथ जस छायो ना। गरजि गरजि घन घोरनि कियो तो कहा चातक के चोंच में जो रंच नीर नायो ना।।

८२

जामें दू अधेली चार पावली दुअन्नी आठ तामें पुनि आना लखो सोरह समात है। बत्तिस अधन्नी जामें चौसठ पईसा होत एक सों अठाइस अधेला गुन मात है। जुग शत छप्पन छदाम तामे देखियत दमरी सु पाँच शत बारह लखात हैं। कठिन समैया कलिकाल को कुटिल दैया सलग रुपैया भैया कापै दियो जात है।।

८३

दानी कोउ नाहिं न गुलाबदानी पीकदानी गोंददानी घनी सोभा इनही मे लहे हैं। मानत गुनी को गुनही में प्रकटत देखो याते गुनी जन मन साव-धानी गहे है। हयदान हेमदान गजदान भूमिदान सुकवि सुनाये औ पुरा-नन में कहे हैं। अब तो कलमदान जुजदान जामदान खानदान पानदान कहिबे को रहे हैं।।

८४

चन्द्रमा पै दावा जिमि करत चकोर गन घनन पै दावा कै मयूर हर-षात है। भानु पर दावा कर बिकसत कंज पुज स्वाति बुन्द दावा कर चातक

चचात हैं। सुकवि 'निहाल' जैसे करी के कपोलन पै अलिन अवलि करि नित मड़रात हैं। ऐसे महाराजन पै दावा कबिराजन को धूतन के द्वारे कहूँ मूतन न जात है।।

४५

शाह भये सूमड़ा सु बादशाह हीन हद्द खग्गे खगरेटन दुशाला बीच खाई है। भोले भये भूपति कनौड़े धनवन्त सब मूरख महन्थ अन्ध देत ना दिखाई है। कायथ कपूत भये कूर रजपूत धूत बनिया बरूथ पेखि पुञ्ज पछिताई है। काके ढिग जाई काहि कबित सुनाई भाई अब कबिताई रही फजिहतिताई है।।

४६

सासु के बिलोके सिंहिनी सी जमुहाई लेइ ससुर के देखे बाघिनी सी मुँह बावती। ननँद के देखे नागिनी सी फुफकारे बैठि देवर के देखे डाँकिनी सी डरपावती। भगत 'प्रधान' मोछै जारती परोसिन की खसम के देखे खाँव खाँव करि धावती। कर्कसा कसाइन कुबुद्धिनी कुलच्छनी ये करम के फूटे घर ऐसी नारि आवती।।

४७

गृहिन बियोग गृह त्यागिन बिभूति दीन्ही योगिन प्रमोद पुनवंतन छलो गयो। ग्रहनि ग्रहेस कियो शनि को सुचित्त लघु व्यालनि स्वतंत्र सेस भारन दलो गयो।। 'फेरन' फिरावत गुनीन द्वार द्वार नीच गुनन बिहीन घर बैठे ही भलो भयो। कौन कौन बातें तेरी कहैं एक आनन तें नाम चतु-रानन पै चूकतै चलो गयो।।४७।।

४८

बार बार बैल को निपट ऊँचो नाद सुनि हुंकरत बाघ बिरझानो रस रेला में। 'भूधर' भनत ताकी बास पाइ सोर करि कुत्ता कोतवाल को बगानो बगमेला में। फुंकरत मूषक को दूषक भुजंग तासों जंग करिबे को झुक्यो मोर हद हेला में। आपस में पारषद कहत पुकारि कछु, रारि सी मची है त्रिपुरारि के तबेला में।।

४९

कंज वन मानि 'मून' हंस गन आइ फिरे गंध बन भृंग भीर भंग करि डारे तैं। पाके फल जानि सुक पुंज पछिताने आइ पाइ कै बसंत बात बृथा पात डारे तैं। दूरि तें बिलोकि अरुनाई अति फूलन की अमिष अकार गीध बायस बिडारे तैं। एरे तरु मेमर के सिफत तिहारे कहा आस दिये पच्छिन निरास करि डारे तैं।।

५०

समै को न जानै सीख काहू की न मानै रारि कठिन को ठानै सो अजानै भई जाति है। पीछे पछितैहै घात ऐसी नहिं पैहै टेक तेरी रहि जैहै कहा टेढ़ी भई जाति है। 'संगम' मनावै तोहिं हित की सिखावै सीख जा बिन न भावै भौन ताही सों रिसाति है। मोसों अठिलाति बिन काम को हठाति प्यारी त तो इतराति उत राति बीती जाति है।।

५१

काके गये बसन पलटि आये बसन सू मेरो कछु बस न रसन उर लागे हौ। भौहै तिरछी है कवि 'सुन्दर' सुजान सोहै कछु अलसौहै गो हैं जाके रस पागे हौ। परसों मै पाँयहु ते परसों मै पाय गहि परसों मैं पाय निसि जाके अनुरागे हौ। कौन बनिता के हौ जू कौन बनि ताके हौ सु कौन बनि ताकी बनिता के संग जागे हौ।।

५२

चोंथते चकोर चहुँ ओर जानि चन्दमुखी जौ न होती डरनि दसन दुति दम्पा की। लीलि जाते बरही बिलोकि बेनी बनिता की जौ न होती गूथनि कुसुम सर कम्पा की। 'पूखी' कवि कहै ढिग भौंहैं ना धनुष होती कीर कैसे छोड़ते अधर बिंब झम्पा की। दाख कैसो झौंरा झलकति जोति जोबन की चाटि जाते भौंरा जो न होती रङ्ग चम्पा की।।

५३

सोये लोग घर के बगर के केवार खोलि जानि मन माँहिँ निज गई जग जामिनी। चुप चाप चोरा चोरी चौंकति चकित चली पीतम के पास

चित चाह भरी भामिनी। पहुँची सकेत के निकेत 'संभ' सोभा देत ऐसी बन बीथिन बिराजि रही कामिनी। चामीकर चोर जान्यो चंपलता भौंर जान्यो चन्द्रमा चकोर जान्यो मोर जान्यो दामिनी।।

५४

तन पर भारती न तन पर भारती न तन पर भारती न तन पर भार है। पूजैं देवदार ती न पूजैं देवदार ती न पूजैं देवदार ती न पूजैं देवदार है। नीलकंठ दारुन दलेल खाँ तिहारी धाक नाघती न द्वार ते वै नाघतीं पहार हैं। आँधरेनि कर गहे बहिरेन संग रहे बार छूटे बार छूटे बार छूटे बार हैं।।

५५

सुनो दिलजानी मेरे दिल की कहानी तुम दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं। देव पूजा ठानी मैं निवाज हू भुलानी तजे कलमा कुरान साड़े गुनन गहूँगी मैं। स्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिये तेरे नेह दाग में निदाग ह्वै दहूँगी मैं। नन्द के कुमार कुरबान ताँड़ी सूरत पै ताँड़ नाल प्यारे हिन्दुवानी ह्वै रहूँगी मैं।।

५६

कोऊ कहै है कलंक कोऊ कहै सिन्धु पंक कोऊ कहै छाया है तमोगुन के भासकी। कोऊ कहै मृगमद कोऊ कहै राहु रद कोऊ कहै नीलगिरि आभा आस पास की। 'भंजन' जू मेरे जान चंद्रमा को छीलि विधि राधे को बनायो मुख सोभा के बिलास की। ता दिन ते छाती छेद भयो है छपाकर के वार पार दीखत है नीलिमा अकास की।।

५७

मलयज गारा करैं अंगन सिंगारा करैं गहि कर डारा करे माल मुकतान की। आरती उतारा करैं पंखा चौर ढारा करैं छाँहै बिसतारा करैं बिसद बितान की। मुख सों निहारा करे दुख को बिसारा करे मनसा इसारा करैं सारा अँखियान की। मानिक प्रदीपन सों थारा सजि ताराज़ की आरती उतारा करे दारा देवतान की।।

५८

कैधों दृग सागर के आसपास स्यामताई ताही के ये अंकुर उलहि दुति बाढ़े हैं। कैधों प्रेम क्यारी जुग ताके ये चहूँघा रची नीलमनि सरनि की बारि दुख डाढ़े है। 'मूरति' सुकवि तरुनी की बरुनी न होवै मेरे मन आवै ये बिचार चित गाढ़े हैं। जेई जे निहारे मन तिनके पकरिबे को देखो इन नैनन हजार हाथ काढ़े है।।

५९

भोरहि भुखात ह्वै हैं कन्द मूल खात ह्वै हैं दुति कुम्हलात ह्वै है मुख जलजात को। प्यादे पग जात ह्वै हैं मग मुरझात ह्वै हैं थकि जै है घाम लागे स्याम कृस गात को। 'पंडित प्रवीन' कहै धर्म के धुरीन ऐसे मन में न माख्यो पीन राख्यो प्रन तात को। मात कहै, कोमल कुमार सुकुमार मेरे छौना कहूँ सोवत बिछौना करि पात को।।

६०

आजु हौं गई ती 'संभु' न्योते नन्दगाँव तहाँ साँसति परी है रूपवती बनितान की। घेरि लियो तियनि तमासो करि मोहिँ लखै गहि गहि गुलुफ लुनाई तरवान की। एकै कल बोलि बोलि औरन देखावै रीझि रीझि कोमलाई औ ललाई मेरे पान की। घूँघुट उघारि एकै मुख देखि देखि रहैं एकै लगी नापन बड़ाई अँखियान की।।

६१

जैसी तेरी कटि है तू तैसी मान करि प्यारी जैसी गति तैसी मति हिय तें बिसारिये। जैसी तेरी भौंह तैसे पंथ पै न दीजे पाँव जैसे नैन तैसियै बड़ाई उर धारिये। जैसे तेरे ओंठ तैसे नैन कीजिये न जैसे कुच तैसे बैन नाहिँ मुखतें उचारिये। एरी पिक बैनी सुन, प्यारे मन मोहन सों जैसी तेरी बेनी तैसी प्रीति बिसतारिये।।

६२

गिरि कीजै गोधन मयूर नव कुंजन को पसु कीजै महाराज नन्द के बगर को। नर कीजै तौन जौन राधे राधे नाम रटै, तट कीजै बर कूल

कालिंदी कगर को। इतने पै जोई कछू कीजिये कुँवर कान्ह, राखिये न आन फेर हठी के झगर को। गोपी पद पंकज पराग कीजै महाराज, तृण कीजै रावरेई गोकुल नगर को।।

६३

बबुर बहेरे को बनाय बाग राखियत रूँधिबे को सोऊ सुरतरु काटियत है। गारी देत नीच हरिचंद हू दधीचहू को आपने चना चबाय हाथ चाटियत है। आप महा पातकी हँसत हरि हरहू को आप है अभागी भूरि भागी डाटियत है। कलि की कलुष मन मलिन किये महत मसक की पाँखुरी पयोधि पाटियत है।।

६४

डुबकी लै उझकी परचो है केस आनन पै मानो ससि मंडल पै स्याम घन घिरिगो। करन सँवारि कै उघारि दीनो 'मोतीराम' लोचन लोनाई वैसी पाई है न मिरगौ। विप्र को बुलाइ मुसुकाइ अधरानन में देन लागी दच्छिना तनिक चीर चिरिगो। गात की गोराई देखि भूली सुधि प्रोहित की लगी टकटका टका गोमती में गिरिगो।।

६५

सिंधु के सपूत सिंधु तनया के बंधु अरे बिरही जरै है रे अमंद तेरे ताप तें। तू तो दोषी दोष हूँ तें कालिमा कलंकी भयो धारे उर छाप रिपि गौतम के साप तें। 'लाल' कहे हाल तेरो जाहिर जहान बीच बारुनि को बासी त्रासी राहु के प्रताप तें। बाँधो गयो मथो गयो पीयो गयो खार भयो बापुरो समुद्र तोसे पूत ही के पाप तें।।

६६

फूस नही फाँस नही छप्पर पै घास न बँड़ेरी नही बाँस तहाँ झींगुर झरा करैं। दिवार आर पार है सुराख लाख चार हैं त्यों कोटिन प्रमान भूत भौन माँ फिरा करैं। मकरी के मेल है बिछौती तहाँ रेल पेल गिरगिट के खेल देखि जियरा डरा करैं। गोजर गिरो है साँप बिच्छू सिगरो है नाथ ऐसे ऐसे भौन हैं तो डेरा लै कहा करैं।।

६७

चंदकी मरीचिकान तोरि बिथराय दीन्ह्यों कैधों हीरा फोरि कै कनूका धरि धरि गये। कैधों काम मंदिर की झाँझरी बनाइ बिधि, कैधों सोनजुही के पुहुप झरि झरि गये। कामिनि मनोरथ के आलवाल 'सिवनाथ' मैन के मतंग माते बेलि चरि चरि गये। अमल कपोलन पै दाग नहिं सीतला के डीठि गड़ि गड़ि गई गाड़ परि परि गये।।

६८

हैं री लाल तेरे? सखी, ऐसी निधि पाई कहाँ? हैं री खगयान? कह्यो, हौं तो नहिं पाले है। हैं री गिरधारी? ह्वै है रामदल माँहि कहूँ, हैं री घनश्याम? ह्वैं हैं सीत सरसाले हैं। हैं री सखी कृष्णचंद्र? चंद्र कहूँ कृष्ण होत? तब हँसि राधे कही, मोर पच्छ वारे हैं? श्याम को दुराय चन्द्रावलि बहराय बोली मेरे कैसे आय हैं जो तेरे पच्छ वारे हैं?।।

६९

धर्म के न कर्म के सुकर्मन के मूल मूढ़ महामति मंदर हैं विषय समीर के। 'हेम' कहै हित्त के न पित्त के न मित्त के न चित्त के मलीन हे अधीन दिलगीर के। बानी वेद वान के न कलमा कोरान के न राम रहमान के न अजसी गँभीर के। विप्र के न ईश के न पंडित कवीश के सो बाजे बाजे बे सहूर गुरु के न पीर के।।

७०

दोहरा कवित्त बैन गजल सुनावै कोऊ छंदहु सुनावै ताहि देत न पसम है। पाहनो जो आवै ताहि पानिहू न देत सब जानत जहान यह कुल की रसम है। मोहर रुपैया कहा कौड़ी की चलावे कौन बाहिर न जान पावै भौन की भसम हैं। लेइबे को होइ तौ हजारन पै हाथ फिरै बाजे बाजे लोगन को देबे की कसम है।।

७१

दूध को कहत छीर दूब को सु धास कहैं, दाड़िम अनार नाम धरि के रहत है। दर्पन को आरसी त्यों दल को कहत पत्र दुनी को जहान कहि सुख

को लहत है। 'वल्लभ' दकार कहूँ कान परै वाके कभूँ छोड़िके मकान हूँ ते भागन चहत हैं। दाई हू को ताई ताई कहि के पुकारे और देइबे के डर तें वे ददा न कहत हैं।।

७२

देवता ते सुर औ असुर कहें दानव ते दाई को सु धाय दाल पहिती लहत है। दर्पन को मुकुर औ दाख को मुनक्का कहै दास को खवास कहि कहि निवहत हैं। देवी सों भवानी और देहरा सो कहै मठ रैन दिन घासीराम याही तो चहत हैं। दाना को चबेना त्योंही दीप को चिराक कहैं देइबे के डर तें सो ददा न कहत है।।

७३

दृग अँधियारी छाई सीस सित केस भये नित ही सिकायतें हैं पचन अनाज की। तऊ रंजि अंजन लगाय के खिजाब चलैं ढूँढ़त किताब दवा अंभन दराज की। जात अवलागन को देखत है घूरि घूरि हाय ना जवानी रही बात बे इलाज की। सौक साज बाज की मिटी न राज काज की सो मौज है इनोज हू मनोज महाराज की।।

७४

वेनी नैन रोमावलि यहै रंग कालिमा है कहत कलंक कवि जेते भोर वारे हैं। तरवा अधर नख अरुन बरन ये तो साँझ समै लाल रंग देखिये उघारे हैं। चाहि कहा रहे हौ अकास कै प्रकास हरि चाहो क्यों न जाय जग जाके उजिआरे हैं। प्यारी को बनाय विधि धोये हाथ ताको रंग जमि गयो चंद हाथ झारे भये तारे हैं।।

७५

जीवन है सार तासों सम्पति को बिसतार बिसतार तासों परिवार भौन भरिये। 'रघुनाथ' तासों ऊँचे नीचे को विचार सार तासों सार सबही को भार हिय धरिये। तासों सार विद्या को पसार कीबो वसुधा में तासों सार नेह कै नवीनता सों ठरिये। तासों सार शुद्ध भक्ति करिबो मुरारि जू की तासों सार काहू को जो उपकार करिये।।

सवैया

१

फूलन दे अब टेसू कदम्बन अम्बन मौरन छावन दे री।
री मधुमत्त मधूपन पुंजन कुंजन सोर मचावन दे री।
क्यों सहि है सुकुमारि 'किशोर' अली कल कोकिल गावन दे री।
आवत ही बनि है घर कन्तहिं बीर बसन्तहि आवन दे री।।

२

कानन लौं अँखियाँ ये तुम्हारी हथेरी हमारी कहाँ लगि फैलि हैं।
मूँदे तऊ तुम देखति हौ यह कोरै तिहारी कहाँ धौ सकेलि हैं।
कान्हर हू कौ सुभाव यहै उनको हम हाथन ही पर मेलि हैं।
राधे जू मानो भलौ कि बुरो अँखमूदनो साथ तिहारे न खेलि हैं।।

३

अंबुज कंज से सोहत हैं अरु कंचन कुंभ थपे से धये हैं।
बारे खरे गदकारे महा बटपारे लसे अरु मैन छये हैं।
ऊँचे उजागर नागर हैं अरु पीय के चित्त के मित्त भये हैं।
हैं तो नये कुच ये सजनी पर जौलौं नए नहिं तौ लौं नये हैं।।

४

खाय कै पान बिदोरत ओंठ हैं बैठि सभा में बने अलबेला।
धोती किनारी की सारी सी ओढ़त पेट बढ़ाय कियो जस थैला।
'वंसगोपाल' बखानत है सुनो भूप कहाय बने फिर छैला।
सान करैं बड़ी साहिबी की पर दान में देत न एक अधेला।।

५

होत ही प्रात जो घात करै नित पार परोसिन सों कल गाढ़ी।
हाथ नचावत मूड़ खुजावति पौंरि खड़ी रिसि कोटिक बाढ़ी।
ऐसी बनी नख ते सिख लौं 'ब्रजचन्द' ज्यों क्रोध समुद्र तें काढ़ी।
ईंट लिये बतराति भतार सों भामिनि भौन में भूत सी ठाढ़ी।।

६

लोहे की जेहरि लोहे की तेहरि लोहे की पाँव पयेंजनि गाढ़ी।
नाक में कौड़ी औ कान में कौड़ी त्यों कौड़िन की गजरा गति बाढ़ी।
रूप में वाको कहाँ लौं कहौं मनो नील के माठ में बोरि कै काढ़ी।
ईंट लिये बतराति भतार सों भामिनि भौन में भूत सी ठाढ़ी।।

७

'भूप' कहै सुनियो सिगरे मिलि भिच्छुक बीच परो जिन कोई।
कोई परौ तो निकोई करौ न निकोई करौ तौ रहौ चुप सोई।
जानत हौ बलि ब्राह्मण की गति भूलि कुपंथ भलो नहिं होई।
लेइ कोऊ अरु देइ कोऊ पर शुक्र ने आँखि अकारथ खोई।।

८

राधिका माधव एक ही सेज पै धाइ लै सोई सुभाय सलोने।
पारे 'महाकवि' कान्ह के मध्य में राधे कहै यह बात न होने।
साँवरे सों मिलि ह्वै है न साँवरी बावरी बात सिखाई है कौने।
सोने को रंग कसौटी लगै पै कसौटी को रङ्ग लगै नहिँ सोने।।

९

बात चली चलिबे की जहाँ फिर बात सुहानी न गात सुहानो।
भूषन साज सकै कहि को 'महराज' गयो छूटि लाज को बानो।
दो कर मीड़ति है बनिता सुनि प्रीतम को परभात पयानो।
आपने जीवन को लखि अन्त सु आयु की रेख मिटावति मानो।।

१०

कोऊ न आयो उहाँ ते सखी री जहाँ 'मुरलीधर' प्राणपियारे।
याही अंदेसे में बैठी हुती उहि देस के धावन पौरि पुकारे।
पाती दई धरि छाती लई दरकी अँगिया उर आनँद भारे।
पूछन को पिय की कुसलात मनो हिय द्वार किँवार उघारे।।

११

मङ्गल होत कहे 'शिवराज' कहो केहि के दुख होत बिसेखो।
कौन सभा महँ बैठि न सोहत को नहिं जानत चित्त परेखो।
कौन निसा ससि को न उदोत भो का लखि कै बिरही दुख पेखो।
बाँझ क पूत बिना अँखियान कुहू निसि में ससि पूरन देखो।।

१२

जोग अजोग बिचारे बिना सिर सौंपत भार महा अति तापैं।
गाड़र ऊंट किसान करै यह बात कहा कहि जात है कापैं।
'सिंह' जू काग सुहावन होइ तो काहे को कोऊ मरालहि थापैं।
काम परे पछिताहिंगे वे जे गयंद को भार धरें गदहा पैं।।

१३

सासु रिसाति भकै ननदी सखि तू सिखवै सिख सीख के बैना।
दै ब्रजबास चबाव महा चहुँ ओर चलै उपहास की सैना।
देखत सुन्दरी साँवरी मूरति लोक अलोक की लीक लखै ना।
कैसी करौं हटके न रहैं चलि जात तऊ लखि लालची नैना।।

१४

जाके लगै गृह-काज तजै अरु मात पिता हित तात न राखै।
'सागर' लीन ह्वै चाकर चाहकै धीरज हीन अधीन ह्वै भाखै।
व्याकुल मीन ज्यों नेह नवीन में मानो दई बरछीन की साखैं।
तीर लगै तरवारि लगै पै लगै जनि काहू से काहू की आँखैं।।

१५

जाके लगै सोइ जानै व्यथा पर पीर में कोइ उपहास करै ना।
'सागर' जो चुभि जात है चित्त तौ कोटि उपाय करै पै टरै ना।
नेकसी कंकरी जाके परै वह पीर के मारे सु धीर धरै ना।
कैसे परै कल ऐ री भटू जब आँखि में आँखि परै निकरै ना।।

१६

पेट पिराय तौ पीठहिं टोवत पीठ पिराय तौ पाय निहारैं।
दै पुरिया पहले विष की पुनि पीछे मरे पर रोग बिचारैं।
बीस रुपैया करैं कर फ़ीस न देत जवाब न त्यागत द्वारैं।
भाखैं 'प्रधान' ये वैद्य कसाई ह्वै दैव न मारें तो आपही मारैं।।

१७

सूल सुजाक छई लकवा ज्वर पीनस पील को घाव घनेरे।
और जलंधर हू परमेह कहै कवि 'राम' कहाँ लगि हेरे।।
जाके बिलोकत ही ततकाल चहूँ दिसि तें दुख आवत घेरे।
जापै दया करि हाथ गहैं तिहि माथ गहैं जमराज सबेरे।।

१८

साल छः सात की दाल दराय कै साहु कह्यो यह लेहु नई है।
फूंक दई लकड़ी बहुतेरिक साँझ ते आधिक रात लई है।
खाय लियो अकुताय कै काचही चाकरी चूल्हे निहारि गई है।
खोय दियो मुजरा दरबार को दाल दधीच की हाड़ भई है।।

१९

घोड़ गिरचो घर बाहरही महाराज कछू उठवावन पाऊँ।
एंड़ो परो बिच पैंडोई माँझ चलै पग एक न कैसे चलाऊँ।
होय कहाँरन को जुपै आयसु डोली चढ़ाय यहाँ तक लाऊँ।
जीन धरौं कि धरौं तुलसी मुख देउँ लगाम कि राम कहाऊँ।।

२०

अर्थ है मूल भली तुक डार सु अच्छर पत्र को देखिकै जीजै।
छंद है फूल नवो रस हैं फल दान के वारि सों सीचिबो कीजै।
'दान' कहै यों प्रवीनन सों कवि की कविता रस राखि कै पीजै।
कीरति के बिरवा कवि हैं इनको कबहूँ कुम्हिलान न दीजै।।

२१

ज्ञान घटै ठग चोर की संगति मान घटै पर गेह के जाये।
पाप घटै कछु पुन्य किये अरु रोग घटै कछु औषध खाये।
प्रीति घटै कछु माँगन तें अरु नीर घटै रितु ग्रीषम आये।
नारि प्रसंग तें जोर घटै जम-त्रास घटै हरि के गुन गाये।।

२२

ईंट को बन्दन, नीम को चन्दन, नीच को नन्दन, बाम को घूँसा।
माते की गान, डफाली की तान, औ गूँगा को गान, कपूत को रूसा।
रंक की रीझ, जुआरी की खीझ, अजान की प्रीति, जुवार को चूसा।
राजा को दूसरो, छेरी को तीसरो, रेंड़ को मूसरो, खासर खूसा।।

२३

साँप सुसील, दयायुत नाहर, काक पवित्र औ साँचो जुआरी।
पावक सीतल, पाहन कोमल, रैन अमावस की उँजियारी।
कायर धीर, सती गनिका, मतवारो कहा मतवारो अनारी।
'मोतियराम' बिचारि कहैं नहिँ देखी सुनी नरनाह की यारी।।

२४

ब्याकुल काम सतावत मोहिँ पिया बिन नीक न लागत कोई।
प्रीतम से सपने भई भेंट भली बिधि सों लपटाय कै सोई।
नैन उघारि पसारि कै देखौं तो चौंकि परी कतहूँ नहिँ कोई।
एरी सखी दुख कासों कहों मुसकाय हँसी हँसि कै फिरि रोई।।

२५

पौढ़ी हुती पलँगा पर मैं निसि ज्ञानरु ध्यान पिया मन लाये।
लागि गईं पलकैं पल सों पल लागत ही पल में पिय आये।
ज्यों हीं उठी उनके मिलिबे कहँ जागि परी पिय पास न पाये।
'मीरन' और तो सोय कै खोवत मैं सखि प्रीतम जागि गँवाये।।

२६

भात में लोन पहीति में पाथर डारि करैं सब छूति ही छूकर।
माँगेहूँ सों परसें न कछू खल मैले महा मल को मनो सूकर।
व्यंजन या विधि के हैं रचे मुख सौंह किये मन आवत थूकर।
ये कबहूँ नहिं दूबर होत रसोई के विप्र कसाई के कूकर।।

२७

दाम की दाल छदाम के चाउर घी अँगुरीन लै दूरि दिखायो।
टोनों सो नोन धरयो कछु आनि सबै तरकारी को नाम गनायो।
विप्र बुलाय पुरोहित को अपनी बिपती सब भाँति सुनायो।
साहसी आज सराध कियो सो भली बिधि सों पुरखा फुसलायो।।

२८

बधु विरोध करें सिगरो झगरो नित होत सुधारस चाटत।
मित्र करै करनी रिपु की धरनीधर देखि न न्याउ निपाटत।
'राम' कहै विष होत सुधा घर नारि सती पति सों चित फाटत।
भा विधिना प्रतिकूल जबै तक ऊँट चढ़े पर कूकर काटत।।

२९

बारह मास लों पथ्य कियो षट मास उपास कियो फिर ऐंठ्यो।
"माधो" कहै नित मैल छुड़ावत दाँतन दीन्हे तुराय धौं कैठ्यो।
कोऊ कहूँक जो देइ खवाइ तौ कै कर डारत सोच में पैठ्यो।
मूड़ घुटाय औ मूछ मुड़ाय त्यों फस्त खुलाय तुला चढ़ि बैठ्यो।।

३०

चींटि न चाटत मूसे न सूँघत बास ते माछी न आवत नेरे।
आनि धरे जब ते घर में तब ते रहै हैजा परोसिन घेरे।
माटिहू में कछु स्वाद मिलै इन्है खाय सो ढूँढ़त हरें बहेरे।
चौंकि परयो पितुलोक में बाप सो पूत के देखि सराध के पेरे।।

३१

आपु को बाहन बैल बली बनिताहू को बाहन सिंहहि पेखि कै।
मूसे को बाहन है सुत एक सु दूजो मयूर के पच्छ बिसेखि कै।
भूषन है कवि 'चैन' फनिंद के बैर परे सब ते सब लेखि कै।
तीनहुँ लोक के ईश गिरीश सु जोगी भये घर की गति देखि कै।।

३२

सूरज के रथ लागे रह्यो याके आगे भयो कई बार कन्हैया।
लोमश के लरिकाई के खेल के भूलि गयो जग को उपजैया।
ऐसो तुरंग मँगाय के भूपति दान को काढ़्यो दरिद्र को छैया।
झुंडन काक लगे फिरैं संग मनो यह काकभुसुंडि को भैया।।

३३

गंग नहीं मुकता भरी माँग है चन्द्र नही यह उद्यत भाल है।
नील नहीं मखतूल को पुंज है शेष नहीं शिर बेनी बिशाल है।
भूति नहीं मलयागिरि है बिजया है नहीं बिरहा से बेहाल है।
ए्रे मनोज सँभारि के मारियो ईश नहीं यह कोमल बाल है।।

३४

पीनसवारो प्रबीन मिलै तौ कहाँ लौं सुगन्धी सुगन्ध सुँघावै।
कायर कोपि चढ़ै रन में तौ कहाँ लगि चारण चाव बढ़ावै।
जैसे गुनी को मिलै निगुनी तो 'पुखी' कहै क्यों करि ताहि रिझावै।
जैसे नपुसक नाह मिलै तौ कहाँ लगि नारि सिंगार बनावै।।

३५

जौ सहजै सब काम करैं सहमैं त्यहि हेरि हिये कहला कर।
ना तौ जवान की नोकैं बसैं निरखे परैं औगुन के अति आकर।
लागैं नहीं सँग जागैं न नौकरी भागैं कहूँ नृप को लखि साँकर।
चोर चटोर ये चूल्हे परैं यहि भाँति चमार से चूतिया चाकर।।

३६

सीस कहै परि पाय रहौं भुज यों कहै अंक तें जान न दीजै।
जीह कहै बतियाई कियौ करौं स्रौन कहै उनहीं की सुनीजै।
नैन कहै छवि सिन्धु सुधारस को निसिबासर पान करीजै।
पायहुँ प्रीतम चित्त न चैन यों भावतो एक कहा कहा कीजै।।

३७

अम्बर बीच पयोधर देखि कै कौन को धीरज सो न गयो है।
'भंजन' जू नदिया यहि रूप की नाव नहीं रवि हू अथयो है।
पंथिक रात बसो यहि देस भलो तुमको उपदेस दयो है।
या मग बीच लगै वह नीच जु पावक में जरि प्रेत भयो है।।

३८

तुम नाम लिखावती ही हम पै हम नाम कहा कहो लीजिये जू।
अब नाव चले सिगरे जल में थल में न चले कहा कीजिये जू।
कवि 'किंचित' औसर जो अकती सकती नहीं हाँ पर कीजिये जू।
हम तो अपनो बर पूजती हैं सपने नहि पीपर पूजिये जू।।

३९

खाने को भंग नहाने को गंग चढ़ै को तुरंग ओढ़ै को दुसाला।
धर्म धुरन्धर औ महिषी पति द्वार झुले गज यूथक हाला।
पान पुरान सोहगिनि सुन्दरि गोद बिराजत सुन्दर बाला।
दो महँ एक तो देहु कृपानिधि दो मृगनैनी कि दो मृगछाला।।

४०

नित बैठे रहैं अपने पलका रिषिराजन का जिन ज्ञान गहा।
विषयादिक भोजन छाँड़ि सबै परमारथ पै जिन चित्त गहा।।
हरि के जन जान सनेही सुजान अलीन को सुंदर रूप लहा।
अलि जो बहिरा तो हमारो पिया अरु जो अँधरा तो तिहारो कहा।।

४१

आनन पूरन चंद लसै अरविन्द विलास बिलोचन पेखे।
अम्बर पीत हँसै चपला छबि अम्बुद मेचक अंग उरेखे।
कामहुँ तें अभिराम महा मतिराम हिये निहचै करि लेखे।
तै बरन्यो निज बैनन सों सखि मैं निज नैनन सों मनो देखे।।

४२

बैद को बैद गुनी को गुनी ठग को ठगठू मयक को मन भावै।
काग को काग मराल मराल को काँध गधा को गधा खजुआवै।।
'कृष्ण' भनै बुध को बुध त्यों अरु रागी को रागी मिले सुर गावै।
ज्ञानी सों ज्ञानी करै चरचा लबरा के ढिँगा लबरा सुख पावै।।

४३

दान औ मान को जानै नही सब दूर भई गुन की परिपाटी।
हैं बिभिचारी अचारी बड़े जिन्हें लागी नहीं दरबार में साँटी।
बारी कबारी कहारनी राखत इष्ट बिरोधी कुबुद्धिन राटी।
लोक में सोई बड़ो भगता धरे कंठ में काठ कपार में माटी।।

४४

चतुरानन बाप पँचानन आप पड़ानन बेटो गजानन भाई।
सेवक एक दसानन सो सहसानन अंग रहे लपटाई।
गोद में लीन्हे बरानन को अरु सीस सितानन है सुखदाई।
काहे न होय सदा सुखिया बरदा धर एक सबै बरदाई।।

४५

राग वही जामें राम बसें अरु ध्यान वही जु धनी के धरे को।
प्रीति वही जो सदा निबहै अरु प्रेम वही जिमि दाग जरे को।
काहे को आदम सोचत है अब नाहिंन है कोउ दुक्ख परे को।
सम्पति में तो करोर मिलें पर मित्र वही जो बिपत्ति परे को।।

४६

आँधरे को प्रतिबिम्ब कहा बहिरे को कहा सुर राग की तानै।
आदी को स्वाद कहा कपि को नर नीच कहा उपकार को मानै।
भेड़ कहा लै करै बुकवा हरवाह जवाहिर का पहिचानै।
जानै कहा हिजड़ा रति की गति आखर की गति का खर जानै।।

छप्पय

१

जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू जग सुयश न लीनो।
जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू पर काज न कीनो।
जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू पर पीर न जानी।
जिहि मुच्छन धरि हाथ दीन लखि दया न आनी।।
मुच्छ नाहिं वे पुच्छ सम, कवि 'भरमी' उर आनिये।
नहिं बचन लाज नहिं दान गति, तिहि मुख मुच्छ न जानिये।।

२

तिमिरलंग लई मोल चली बाबर के हलके।
रही हुमाऊँ साथ गई अकबर के बलके।।
जहाँगीर जस लियो पीठ को भार छुड़ायो।
साहजहाँ करि न्याव ताहि को माँड़ चटायो।।
बल रहित भई पौरुष थक्यो, भगी फिरत बन स्यार डर।
औरङ्गजेब करिनी सोई, लै दीन्ही कविराज कर।।

३

मरे बैल गरियार मरै वह कट्टर टट्टू।
मरे हठीली नार मरै वह पुरुष निखट्टू।।
सेवक मरै सु तौन जौन कछु समै न सुझै।
स्वामी मरे जु कौन जौन सेवा नहिं बुझै।।
जजमान सूम मरि जाहि तौ, काहि सुमिरि दुख रोइये।
कवि 'गडु' कहै मरि जाय सो, जाहि सुने सुख सोइये।।

४

ससि कलंक रावन विरोध हनुमत्त सो बनचर।
कामधेनु ते पसू जाय चिन्तामनि पत्थर॥
अति रूपा तिय बाँझ गुनी को निरधन कहिये।
अति समुद्र सो खार कमल बिच कण्टक लहिये॥
जाये जु व्यास खेवट्टिनी, दुर्वासा आसन डिग्यो।
कवि 'गीध' कहै सुनु रे गुनी, कोउ न कृष्ण निर्मल गढ़्यो॥

५

हंसहिं गज चढ़ि चल्यो करी पर सिंह बिरज्जै।
सिंहहिं सागर धरचो सिंधु पर गिरि द्वै सज्जै॥
गिरिवर पर इक कमल कमल पर कोंयल बोलै।
कोयल पर इक कीर कीर पर मृगहू डौलै॥
ता ऊपर शिशु नाग के, निसुदिन फनिय धरे रहैं।
कवि गड्डु कहै गुनि जनन सों, हंस भार केतो सहैं॥

६

तिलक भाल बनमाल अधिक राजत रसाल छवि।
मोर मुकुट की लटक छटक बरनत अटकत कवि॥
पीताम्बर फहराय मधुर मुसुकान कपोलन।
रच्यो रुचिर मुख पान तान गावत मृदु बोलन॥
रति कोटि काम अभिराम अति, दुष्ट निकन्दन गिरिधरन।
आनन्दकन्द ब्रजचन्द प्रभु, जय जय जय असरन सरन॥

७

चतुरानन सम बुद्धि बिदित जौं होय कोटि धर।
एक एक धर प्रतिन सीस जौं होय कोटि वर॥
सीस सीस प्रति बदन कोटि करतार बनावै।
एक एक मुख माँहि रसन फिरि कोटि लगावै॥

रसन रसन प्रति सारदा, कोटि बैठि बानी कहहिं।
महिजन अनाथ के नाथ की, महिमा तबहुँ न कह सकहिं ।।

८

गई भूमि फिर मिलै बेलि फिर जमै जरे तें।
फल फूलन ते फले फूल फूलन्त झरे तें ।।
'केशव' विद्या निकट विकट बिसरो फिरि आवे।
बहुरि होय धन धर्म गई सम्पति फिरि पावे ।।
होइ जो सील सुसील मति, जगत हेतु इमि गाइये।
प्रान गयो फिर मिलत पै, पत न गई फिरि पाइये ।।

दोहे

प्रीतम नहीं बजार में , वहै बजार उजार।
प्रीतम मिले उजार में , वहै उजार बजार ।।१।।

कहा करौं बैकुंठ लै , कल्पबृक्ष की छाँह।
'अहमद' ढाँक सुहावने , जहँ पीतम गलबाँह ।।२।।

गमन समै पटुका गह्यो , छाड़न कह्यो सुजान।
प्रान पियारे प्रथम ही , पटुका तजो कि प्रान ।।३।।

सरस कविन के हृदय को , बेधत है सो कौन।
असमझवार सराहिबो , समझवार को मौन ।।४।।

पिता नीर परसै नहीं , दूर रहै रवि यार।
ता अम्बुज में मूढ़ अलि , अरुझि परै अविचार ।।५।।

'व्यास' बड़ाई जगत की , कूकर की पहिचान।
प्यार करे मुख चाटई , बैर करे तन हानि ।।६।।

'व्यास' कनक औ कामिनी , ये है करुई बेलि।
बैरी मारै दाँव दै , ये मारैं हँसि खेलि ।।७।।

तन ताजी असवार मन , नयन पियादे साथ।
योवन चलो शिकार को , बिरह बाज लै हाथ ।।८।

तन कंचन को महल है , तामें राजा प्रान।
नयन झरोखा पलक चिक , देखै सकल जहान ।।९।।

डीठि डोरि सों मन कलस , काम कुआँ मैं डारि।
ये नयना तुव नागरी , भरत प्रेमरस बारि ।।१०।।

'रज्जब' जाकी चाल सों , दिल न दुखाया जाय।
यहाँ खलक खिजमति करै , उत हैं खुशी खुदाय ।।११।।

वह बृन्दाबन सुख सदन , कुंज कदम की छाँहि।
कनकमयी यह द्वारिका , ताकी रज सम नाहिं ।।१२।।

जस जाग्यो सब जगत मे , भयो अजीरन तोय।
अपजस की गोली दऊँ , ततकाले सुधि होय ।।१३।।

तब के नरपति वे रहे , रीझैं तो कछु देयँ।
अब के नरपति ये भये , रीझैं औ लिखि लेयँ ।।१४।।

जो मेढ़ा पीछे हटै , केहरिया छपकन्त।
जो दुर्जन हँसि के मिलै , तबै बचैयो कन्त ।।१५।।

दगाबाज की प्रीति यों , बोलत ही मुसकात।
जैसे मेंहदी पात में , लाली लखी न जात ।।१६।।

खेती बारी बीनती , औ घोड़े की तङ्ग।
अपने हाथ सँवारिये , लाख होय कोउ सङ्ग ।१७।।

तन तलवाराँ तिलछियो , तिल तिल ऊपर सीव।
आलाँ घावाँ ऊठसौ , मत कर साज नकीब ।।१८।।

ना हँस करके कर गहे , ना रिस करके केस।
जैसे कन्ता घर रहे , वैसे रहे विदेस ।।१९।।

निकट रहे आदर घटै , दूरि रहे दुख होय।
'सम्मन' या संसार में , प्रीति करौ जनि कोय ।।२०।।

'सम्मन' चहु सुख देह को , तौ छोड़ो ये चारि।
चोरी चुगुली जामिनी , और पराई नारि ।।२१।।

'सम्मन' मीठी बात सों , होत सबै सुख पूर।
जेहि नहिं सीखो बोलिबो , तेहि सीखो सब धूर ।।२२।।

गोरे मुख पै तिल लसत , मैं जान्यो यह हेत।
रूप खजाने को मनो , हबसी चौकी देत ।।२३।।

दन्तकथा वा दन्त की , और कही नहिं जात।
फूलझरी सी छुटत जब , हँसि हँसि बोलत बात ।।२४।।

लाल माँग पटिया नहीं , मार जगत को मार।
असित फरी पै लै धरी , रकत भरी तरवार ।।२५।।

करनी पार उतारिहै , 'धरनी' कियो पुकार।
साकित बाह्मन नहिं भला , भक्ता भला चमार ।।२६।।

माँस अहारी जीयरा , सो पुनि कथै गियान।
नाँगी ह्वै घूंघट करै , 'धरनी' देखि लजान ।।२७।।

'पलटू' ऐना संत हैं , सब देखै तेहि माँहि।
टेढ़ सोझ मुँह आपना , ऐना टेढ़ा नाहिं ।।२८।।

'पलटू' ऐसी प्रीति करु , ज्यों मजीठ को रंग।
टूक टूक कपड़ा उड़ै , रंग न छोड़ै संग ।।२९।।

'पलटू' बाजी लाइहौं , दोऊ विधि से राम।
जो मैं हारौं राम को , जो जीतौं तौ राम ।।३०।।

जैसे काठ में अगिनि है , फूल में है ज्यों बास।
हरिजन में हरि रहत हैं , ऐसे 'पलटूदास' ।।३१।।

दुष्ट मित्र सब एक हैं , ज्यों कंचन त्यों काँच।
'पलटू' ऐसे दास को , सपने लगै न आँच ।।३२।।

काम क्रोध जिनके नहीं , लगै न भूख पियास।
'पलटू' तिनके दरस सो , होत पाप को नास ।।३३।।

खोजत खोजत मरि गये , तीरथ वेद पुरान।
'पलटू' सूझत है नहीं , भेस में है भगवान ।।३४।।

जिन देखा सो बावला , को अब कहै सँदेस।
दीन दुनी दोउ भूलिया , 'पलटू' सो दरवेस ।।३५।।

सुनि लो 'पलटू' भेद यह , हँसि बोले भगवान।
दुख के भीतर मुक्ति है , सुख में नरक निदान ।।३६।।

मरते मरते सब मरे , मरै न जाना कोय।
'पलटू' जो जियतै मरै , सहज परायन होय ।।३७।।

'पलटू' पलक न भूलिये , इतना काम जरूर।
खाविंद कब गोहरावई , चाकर रहै हजूर ।।३८।।

'पलटू' भेद न दीजिये , यह जग बुरी बलाय।
लिहे कतरनी काँख में , करै मित्रता धाय ।।३९।।

'दरिया' सोता सकल जग , जानत नाहीं कोय।
जागे में फिर जागना , जागा कहिये सोय ।।४०।।

'बुल्ला' चल्ल सुनार दे , जित्थे गहना गढ़िये लाख।
सूरत आपो आपनी , तू इको रूप ये आख ।।४१।।

धन जननी धन भूमि धन , धन नगरी धन देस।
धन करनी धन सुकुल धन , जहाँ साधु परबेस ।।४२।।

स्वर्ग सात असमान पर , भटकत है मन मूढ़।
खालिक तो खोया नहीं , उसी महल में ढूँढ़ ।।४३।।

ज्ञान ध्यान तहवाँ नहीं , सहज सरूप अपार।
जन 'गुलाल' दिलसों मिलो , सोई कंत हमार ।।४४।।

'भीखा' केवल एक है , किरतिम भयो अनन्त।
एकै आतम सकल घट , यह गति जानहि संत ।।४५।।

प्रीतम प्रीति लगाइकै , दूरि देस मत जाव।
बसो हमरी नागरी , हम माँगें तुम खाव ।।४६।।

जो जन जाकी सरन है , सरन गहे की लाज।
मीन धार सन्मुख चलै , वहे जात गजराज ।।४७।।

आप छके नैना छके , और छके सब गात।
जा तन चितवत नैन भरि , रोम रोम छकि जात ।।४८।।

साँझ भई दिन अथवा , चकई दीन्हा रोय।
चलो पिया उस देस को , जहाँ साँझ नहिं होय ।।४९।।

ब्रज समुद्र मथुरा कमल , बृन्दाबन मकरन्द।
ब्रज बनिता सब पुष्प हैं , मधुकर गोकुलचन्द ।।५०।।

कदम कुंज ह्वै हौं कबै , श्री वृन्दाबन माँह।
'ललित किशोरी' लाड़िले , बिहरेंगे तिहि छाँह ।।५१।।

प्रीतम तुव गुन बेलरी , पसरी मो उर माहिं।
नेह नीर सों नित बढ़ै , क्यों हूँ सूखत नाहिं ।।५२।।

कागद भीजत नयन जल , कर काँपत मसि लेत।
पापी बिरहा मन बसत , बिथा लिखन नहिं देत ।।५३।।

बायस राहु भुजंग हर , लिखत तिया ततकाल।
लिखि लिखि पोंछति फिर लिखति , कारन कौन जमाल ।।५४।।

पालक मेथी धानिया , सोवा चाहत यार।
सकुची मुरी पियाज सँग , गाजर अस व्यवहार ।।५५।।

कच्चौरी पिय ऐ सखी , पक्कौरी पिय नाहिं।
बराबरी कैसे करौं , पूरी परती नाहिं ।।५६।।

अमिली बरसों हो रही , पीपर पास न जाँउँ।
जामुनि भेद न पावहीं , तासों मैं हठलाउँ ।।५७।।

नारंगी हौं पीय सों , यह अनारपन मोंहि।
जो मैं पीवै सेवती , सदा सदाफल होंहि ।।५८।।

तोता कत निस दिन रटौं , तूती निपट अजान।
लाल कहैं सो कीजिये , तज मैना की बान ।।५९।।

सूख छुहारा तन भयो , गिरी परैं सब देह।
किसमिस लिखूं सँदेसरा , नौज लग्यो यह नेह ।।६०।।

कर छइ बरटोई नहीं , तवा टोकनी नाहिं।
चौके गरुवे थारियाँ , रस न रसोई माहिं ।।६१।।

पान झरंते इमि कहैं , सुन तरवर बनराय।
अब के बिछुरे कब मिलैं , दूर परेंगे जाय ।।६२।।

अलकावलि में देखिये , गोरे मुख की लोय।
ज्यों रूखनि में चाँदनी , झिलमिल झिलमिल होय ।।६३।।

गुंजा ऐसे हो रहे , मुकता बेसर बाल।
नैन ओर के स्याम सब , अधर ओर के लाल ।।६४।।

आजु सखी इमि सुन्यो हम , पहु फाटक पिय गौन।
पहु अरु हियरे होड़ है , पहले फाटै कौन ।।६५।।

आजु दुइज परदेस पिय , ससि निकस्यो इहि ओर।
मम नयना अरु पीय के , आइ भये इक ठौर ।।६६।।

मुख ग्रीषम पावस नयन , जिय महियाँ जड़ काल।
पिय बिनु तन तें तीन ऋतु , कबहुँ न मिटति जमाल ।।६७।।

जब लगि हिय में धर सकी , तब लगि धरी जु धीर।
'मीरन' अब कैसी बनी , अधिक पिरानी पीर ।।६८।।

तेरे बिरह समुद्र में , हौं जहाज भई कन्त।
तन मन जोबन डूबियो , प्रेम ध्वजा फहरन्त ।।६९।।

बिरह दही पनघट गई , तपन न तऊ सिराय।
भरै धरै सिर गागरी , रीती ह्वै ह्वै जाय ।।७०।।

तुम बिन एती को करै , कृपा जु मेरे नाथ।
मोहि अकेली जानि कै , दुख राख्यो है साथ ।।७१।।

'मीरन' प्यारे इमि कह्यो , सपने देखौ मोहिं।
तुम बिन नींद न आवई , कैसे देखौं तोहिं ।।७२।।

कीकर पाकर तार , जामन फलसा आमिला।
सेव कदम कचनार , पीपल रत्ती तू न तज ।।७३।।

सारँग लै सारँग चली , सारँग पै गई दीठ।
सारँग लै सारँग धरी , सारँग गई पईठ ।।७४।।

सारँग ने सारँग गह्यो , सारँग बोल्यो आय।
जो सारँग सारँग कहै , सारँग मुख ते जाय ।।७५।।

बसे बनज बिकसे बनज , निकसे बनज निसंक।
बनज माल बिन लगति है , बन ज माल हरि अंक ।।७६।।

का नहिं अबला करि सकै , का न समुद्र समाय।
काह न पावक जरि सकै , काल काहि नहिं खाय ।।७७।।

सुत नहिं अबला करि सकै , मन न समुद्र समाय।
धर्म न पावक में जरै , नाम काल नहिं खाय ।।७८।।

पान पुराना घी नया , औ कुलवन्ती नारि।
चौथी पीठ तुरङ्ग की , सरग निसानी चारि ।।७९।।

चंपा तोमें तीन गुन , रूप रंग औ बास।
औगुन तोमें एक है , भँवर न आवै पास ।।८०।।

जाको ऊँचा बैठना , जाको खेत निचान।
ताको बैरी क्या करे , जाके मीत दिवान ।।८१।।

फूटे से बहि जात हैं , ढोल गँवार अँगार।
फूटे से बनि जात हैं , फूट कपास अनार ।।८२।।

जाको मारा जाहिये , बिन लाठी बिन घाव।
वाको यही बताइये , घुइयाँ पूरी खाव ।।८३।।

काँटा बुरा करील का , औ बदरी का घाम।
सौत बुरी है चून की , औ साझे का काम ।।८४।।

अम्बा नींबू बानिया , गर दाबे रस देयँ।
कायथ कौवा किलहटा , मुर्दा हूँ सों लेयँ ।।८५।।

पाही खेती अजा धन , बिटिअन कै बढ़वारि।
एतनेहु पै धन ना घटै , तो करै बड़े से रारि ।।८६।।

बिन बैलन खेती करै , बिन भैयन के रार।
बिन मेहरारू घर करै , चौदह साख लबार ।।८७।।

आगम बुद्धी बानिया , पच्छिम बुद्धी जाट।
तुरत बुद्धी तुरकड़ा , बाम्हन संपट पाट ।।८८।।

परदेसी की प्रीति को , सबका मन ललचाय।
दुई बात की खोट है , रहै न सँग ले जाय ।।८९।।

जेहि घर साले सारथी , औ तिरिया कै सीख।
सावन में हर बैल बिन , तीनों माँगे भीख ।।९०।।

चंदन परा चमार घर , नित उठि कूटै चाम।
चंदन रोवै सिर धुनै , परा नीच से काम ।।९१।।

चना चिरौंजी हो गये , गेहूँ हो गये दाख।
घर में गहने तीन हैं , पीढ़ा चरखा खाट ।।९२।।

जब तुम जनमें जगत में , जगत हँसा तुम रोय।
ऐसी करनी कर चलो , तुम बिहँसो जग रोय ।।९३।।

नीलकंठ कीड़ा भखै , मुखे बिराजै राम।
जात पाँत से क्या पड़ी , दरसन हीं सों काम ।।९४।।

पारस से चक्की भली , आटा देवै पीस।
फूहड़ से मुरगी भली , अंडा देवै बीस ।।९५।।

काछ दिढ़ा कर बरसणा , मन चंगा मुख मिट्ठ।
रण सूरा जग बल्लभा , सो मैं बिरला दिट्ठ ।।९६।।

समन पराये बाग में , दाख तोरि खर खात।
अपनो कछू न बीगरै , असही सही न जात ।।९७।।

मोती फारचो बेधतौं , मन फारचो इक बोल।
मोती मिलै बजार में , मन नहिं आवै मोल ।।९८।।

गज मुख तें इक कन गिरचो , घटचो न तासु अहार।
ताको चीटी लै चली , पालन को परिवार ।।९९।।

हाय करूँ तो जग हँसै , चुपके लागै घाव।
ऐसे कठिन सँदेस को , किस बिध करूँ दुराव ।।१००।।

विद्या पठचो न रिपु दल्यो , रह्यो न नारि समीप।
जोबन तो यों ही गयौ , ज्यों सूने घर दीप ।।१०१।।

बड़े भये तो का भये , जैसे तार खजूर।
पंछी को छाया नहीं , फल लागे अति दूर ।।१०२।।

बरवै

अधम उधारन नमवा सुनि कर तोर।
अधम काम की बटियाँ गहि मन मोर ।।१।।

मन बच कायक निसि दिन अधमी काज।
करत करत मन भरिगा हो महराज ।।२।।

बिलगराम का बासी मीर जलील।
तुम्हरि सरन गहि गाहे ये निधिशील ।।३।।

बालमु हेरि हियरवा उपजै लाज।
पाख मास मो जानि न परिहै गाज ।।४।।

पिय से अस मन मिलयूं जस पय पानि।
हंसिनि भई सवतिया लै बिलगानि ।।५।।

पीतम तुम कचलोहिया हम गज बेलि।
सारस कै अस जोरिया फिरहुँ अकेलि ।।६।।

पात पात करि ढूंढ़यों सब बन बीनि।
किहि बन बस मो बालम परयो न चीनि।।७।।

बालम सुरति बिसरिगै कहत संदेस।
एकहु पथिक न बहुरा कस वह देस ।।८।।

पात पात करि लूटिसि बिपिन समाज।
राजनीति यह कसि कसि कस ऋतुराज ।।९।।

भावै चन्द न चन्दन सुरभि समीर।
भावै सेज सुहावनि बालम तीर ।।१०।

ऋतु कुसुमाकर आकर बिरह बिसेखि।
ललित लतान मितान बिताननि देखि ।।११।।

जेठ मास सखि सीतल बर कै छाँह।
करुई नींद सिहनवाँ पिय कै बाँह ।।१२।।

पिय कर परस सरस अति चन्दन पंक।
भावक रजनि सुहावन दरस मयंक ।।१३।।

यदि च भवति बुध मिलनं किं त्रिदिवेन।
यदि च भवति शठ मिलनं किं निरयेन ।।१४।।

अहिरिन मन कै गहिरिन उतरु न देइ।
नैना करै मथनिया मन मथि लेइ ।।१५।।

तपन तपै ऋतु ग्रीषम तीषन घाम।
ताकि तरुनि तन सीतल सोवै काम ।।१६।।

छाँह सघन तरु भावै बालम साथ।
की प्रिय परम सरोवर सीतल पाथ ।।१७।।

हरिपद रुचिर तरनियाँ चढ़ु मन मोर।
तर भवसागर अबही दिन रहे थोर ।।१८।।

हलुआ अस हलवनियाँ गलवा लाल।
लाल लाल ह्वै जोबना नैन रसाल ।।१९।।

खेल फाग धन बहुरी धूरि उड़ानि।
गावौं बालम बरवा ऋतु नियरानि ।।२०।।

निसि दिन बसै हिरदवा मिलन न होय।
जिमि पानी के चन्दहि छुवै न कोय ।।२१।।

पात पात करि ढूंढ्यो सब बन बीन।
घटहि हुते मोरे बालम परे न चीन ।।२२।।

सूरज पै सिर ऊपर कतहुँ न छाँह।
ठाढ़ी पथहि निहारौं कत मेरो नाह ।।२३।।

बालम की सुधि आवत यह गति मोर।
निकसि निकसि जिय पैसत ज्यों चक डोर ।।२४।।

बिरहिन ढूंढ़न बन गई बाघ भिटान।
बघवा सूँघि न खायसि बिरहिन जान ।।२५।।

नित उठि जाहुँ पनघटवा आवहुँ रोय।
बालम की अनुहरवा दिखहुँ न कोय ।।२६।।

बोली आनि कोइलिया मधुरी बानि।
महुवा रोवै ठाढ़ आम बौरान ॥२७॥
हरद बरन मोरी देहिआ पियहि बियोग।
कौन बिथा मोहि बूझहु बाउर लोग ॥२८॥
भइ न भेंट बालम सन भटकिहु आइ।
धाइ धाइ बन खाय देखि नहिं जाइ ॥२९॥

पद

प्राणी तूँ हरि सों डर रे॥
तूं क्यों रहा निडर रे॥

गाफ़िल मत रह चेत सबेरा, मन में राख फिकर रे।
जो कुछ करे बेग तू कर ले, सिर पर काल जबर रे॥
काले गोरे तन पर भूला, तन जायेगा जर रे।
यम के दूत पकर कर घीसें, काढ़ें बहुत कसर रे॥
'ब्रजधूले' प्रभु पद नौका चढ़ि, भौसागर को तर रे।
हर भज हर भज हर भज प्राणी, हरि को भजन तू कर रे॥

ब्रजधूलि

२

हुआ है मस्त मन्सूरा चढ़ा सूली न छोड़ा हक़।
पुकारा इश्कबाज़ों को अहै मरना यही बरहक़॥
जो बोले आशिकाँ यारां हमारे दिल में है जी शक।
अहै यह काम शूरों का लगाये पीर से अब तक॥
शमस तबरेज़ की सीफ़त जहाँ में जाहिरा अब तक।
निज़ामुद्दीन सुलताना सभी मेटे दुनी में धक॥
निरख रहे नूर अल्लाह का रहे जीते रहे जब तक।
हुआ हाफ़िज़ दिवाना भी भये ऐसे नहीं हर एक॥

सुना है इश्क मजनूं का लगी लैला की रहती ज़क।
जला कर ख़ाक तन कीन्हा हुये वह भी उसी माफ़िक ।।
'दुलन' जन को दिया मुरशिद पियाला नाम का छकछक।
वही है शाह जगजीवन चमकता देखिये लक़लक़ ।।

दूलनदास

३

गाँठि परी पिय बोलै न हम से।
निसिदिन जागौं मैं पिया की सेजियाँ, नैना अलसाने निकरिगै घर से।
जो मैं जनतिउँ पिय रिसिअइहै, काहेक प्रीति रगउतिउँ अस ठग से ।।
अपने पिया को मैं बेगि मनैहों, सौ तकसीर होत प्रभु जन से।
सुनि मृदु बचन पिया मुसुकाने, 'पलटूदास' पिय मिले बड़े तप से ।।

पलटूदास

४

समझ बूझ रन चढ़ना साधो खूब लड़ाई लड़ना है।
दम दम क़दम परै आगे को पीछे नाहि पछरना है।
तिल तिल घाव लगै जो तन में खेत सेती क्या टरना है ।।
सबद खैंचि समसेर जेर करि उन पाँचों को धरना है।
काम क्रोध मद लोभ कैद करि मन कर ठौरै मरना है ।।
खड़ा रहै मैदान के ऊपर उनकी चोट सँभरना है।
आठ पहर असवार सुरत पर ग़ाफ़िल नाही परना है ।।
सीस दिहा साहिब के ऊपर किसकी डर अब डरना है।
'पलटू' बाना रुंड के ऊपर अब क्या दूसर करना है ।।

पलटूदास

५

कोइ सफ़ा न देखा दिल का।
साँचा बना झिलमिल का ।।

कोइ बिल्ली कोइ बगुला देखा पहिरे फ़क़ीरी खिलका।
बाहर मुख से ज्ञान छाँटते भीतर कोरा छिलका।।
भजन करन में गजब आलसी जैसे थका मँजिल का।
औरन के पीसन में सुरमा जैसे बट्टा सिल का।।
पढ़े लिखे कुछ ऐसोहि वैसे बड़ा घमंड अकिल का।
जहरी बचन यों मुँह से निकलें साँप निकलता बिल का।।
भजन बिना सब जप तप झूठा झूठ तवक्का फजल का।
क्या कहिये गुरु 'देव' न पाया महरम आँख के तिलका।।

काष्ठजिह्वा स्वामी (देव)

६

समझ बूझ जिय में बन्दे क्या करना है क्या करता है।
गुन का मालिक आपै बनता दोष राम पर धरता है।।
अपना धरम छोड़ि औरों के ओछे धरम पकरता है।
अजब नशे की ग़फ़लत आई साहिब को नहि डरता है।।
जिनके ख़ातिर जान माल से बहि बहि के तू मरता है।
वे क्या तेरे काम पड़ेंगे उनका लहना भरता है।।
'देव' धरम चाहे सो करि ले आवागमन न टरता है।
प्यारे केवल राम नाम से तेरा मतलब सरता है।।

काष्ठ जिह्वा स्वामी (देव)

७

हरि-जन हरि के हाथ बिकाने।
भावै कहो जग धृग जीवन है भावै कहौ बौराने।।
जाति गँवाय अजाति कहाये साधु सँगति ठहराने।
मेटो दुख दारिद्र परानो जूठन खाय अघाने।।
पाँच जने परबल परपंची उलटि परे बँदिखाने।
छूटी मजूरी भये हजूरी साहिब के मनमाने।।

निरमंता निरबैर सभन तें निरसंका निरबाने।
'धरनी' काम राम तें अपने चरन कमल लपटाने।।

धरनीदास

८

अबके बार बकस मोरे साहिब तुम लायक सब जोग हे।।
गुनह बकसिहौ सब भ्रम नसिहौ रखिहौ अपने पास हे।
अछै बिरछि तर लै बैठैहौ तहवाँ धूप न छाँह हे।।
चाँद न सुरुज दिवस नहिं तहवाँ नहिं निसु होत बिहान हे।
अमृत फल मुख चाखन दैहौ इतनी अरज हमार हे।।
भवसागर दुख दारुन मिटिहै छुटि जैहै कुल परिवार हे।
कह 'दरिया' यह मंगल मूला अनूप फूलै जहाँ फूल हे।।

दरियादास

९

रासरस गोविंद करत विहार।
सूर-सुता के पुलिन रम्य महँ फूले कुंद मदार।।
अद्भुत सतदल विकसित कोमल मुकुलित कुमुद कल्हार।
मलय पवन बह सारद पूरन चंद मधुप झंकार।।
सुघर राय संगीत कलानिधि मोहन नन्द कुमार।
ब्रज भामिनि सँग प्रमुदित नाचत तन चरचित घनसार।।
उभय स्वरूप सुभगता सीवाँ कोक कला सुख सार।
'कृष्णदास' स्वामी गिरिधर पिय पहिरे रसमें हार।।

कृष्णदास

१०

कहा करौं बैकुंठहिं जाय।
जहँ नहिं नँद जहँ नहीं जसोदा जहँ नहिं गोपी ग्वाल न गाय।।

जहँ नहिं जल जमुना को निरमल और नही कदमन की छाँय।
'परमानंद' प्रभ चतुर ग्वालिनी ब्रज रज तजि मेरी जाय बलाय ।।

परमानंददास

११

संतन का सिकरी सन काम।
आवत-जात पनहियाँ टूटी बिसरि गयो हरि नाम ।।
जिनको मुख देखे दुख उपजत तिनको करिबे परी सलाम।
'कुम्भनदास' लाल गिरिधर बिन और सबै बेकाम ।।

कुम्भनदास

१२

जसोदा कहा कहौं हौं बात।
तुम्हरे सुत के करतब मोपै कहत कहे नहिं जात ।।
भाजन फोरि ढोरि सब गोरस लै माखन दधि खात।
जौ बरजौं तौ आँखि देखावै रंचहुँ नाहि सकात ।।
और अटपटी कहँ लौं बरनौं छुवत पानि सों गात।
'दास चतुर्भुज' गिरिधर गुन हौं कहत कहत सकुचात ।।

चतुर्भुजदास

१३

भोर भये नव कुंज सदन ते आवत लाल गोवर्द्धनधारी ।।
लटपट पाग मरगजी माला सिथिल अङ्ग डगमग गति न्यारी ।।
बिनु गुन माल बिराजत मुख पर नख छत द्वैज चंद अनुहारी।
'छीत स्वामि' जब चितये मो तन तबहौं निरखि गई बलिहारी ।।

छीत स्वामी

१४

प्रात समै उठि जसुमति जननी गिरिधर सुन को उबटि न्हवावति।
करि शृङ्गार बसन भूषन सजि फूलन रचि पचि पाग बनावति ।।

छुटे बंद बागे अति सोभित बिच बिच चोव अरगजा लावति।
सूथन लाल फूंदना सोभित आजु कि छवि कछु कहति न आवति।।
विविध कुसुम की माला उर धरि श्री कर मुरली बेत गहावति।
लै दरपन देखे श्रीमुख को 'गोविंद' प्रभु चरननि सिर नावति।।

गोविन्ददास

१५

हम भक्तन के भक्त हमारे।
सुन अर्जुन परतिज्ञा मेरी यह ब्रत टरत न टारे।।
भक्तन काज लाज हिय धरि के पाँय पियादे धाये।
जहँ जहँ भीर परी भक्तन को तह तहँ होत सहाये।।
जो भक्तन सों बैर करत है सो निज बैरी मेरो।
देख विचार भक्त हित कारन हाँकत हों रथ तेरो।।
जीते जीत भक्त अपने को हारे हार विचारों।
'सूरस्याम' जो भक्त विरोधी चक्र सुदर्सन मारों।।

सूरदास

१६

सब सों न्यारे सब के प्यारे ऐसी रहनी रहिये।
स्तुति अरु निन्दा छोड़ पराई युगल जीभ जस गहिये।।
दुख सुख हानि लाभ सम वर्तन आनि परे सो सहिये।
'भगवत चरन' सरन गहि गोविंद मन वांछित सुख लहिये।।

भगवतचरण

१७

सखी मेरे मन की को जानै।।
कासों कहू सुनै जो चित्त दै हित की बात बखानै।।
ऐसो को है अन्तर्यामी तुरत पीर पहिचानै।
'नारायण' जो बीत रही है कब कोई सच मानै।।

नारायण

१८

पीछे ललिता आगे स्यामा प्यारी
ना आगे पिय मारग फूल बिछावत जात।
कठिन कली बीन बीन न्यारी करत,
प्यारी के चरन कोमल जानि सकुचत जिय गड़िबेऊ डरात।।
दीरघ लता कर सों निरुवारत पाछे
गहे डारि सीस नाहिं परसत पल्लव पात।
'सूरदास मदन मोहन' पिय की आधीनताई
देखत मेरे री नैन सिरात।।

१९

गौर स्याम बदनारविंद पर जिसको नीर मचलते देखा।
नैन बान मुसकान संग फँस फिर नहिं नेक सँभलते देखा।
ललित किसोरी जुगल इश्क में बहुतों का घर जलते देखा।
डूबा प्रेम सिंधु का कोई हमने नहीं उछलते देखा।।

२०

अवधू रहिय हाटे बाटे रूख बिरिख की छाया।
तजिबो काम क्रोध लोभ मोह संसार की माया।।

गोरखनाथ

२१

सुनरी सहेली ! मेरी पहेली , बाबल घर में रही अलबेली।
माता पिता ने लाड़ से पाला , समझा मुझे बस घर का उजाला।।
एक बहन थी एक बहनेली।।१।।

योंहीं बहुत दिन गुड़िया में खेली , कभी अकेली कभी दुकेली।
जिससे कहा चल तमाशा दिखला , उसने उठाकर गोदी में ले ली।।२।।

कुछ कुछ मोहे समझ जो आई , एक जा ठहरी मोरी सगाई।
आवन लागे बाह्मन नाई , कोई ले रुपया कोई ले धेली।।३।।

ब्याह का मेरे समाँ जब आया , तेल चढ़ाया मढ़ा छवाया
साल् सूहा सभी पिन्हाया , मेहदी से रँग दिये हाथ हथेली ।।४।।
सासरे के लोग आये जो मेरे , ढोल दमामे बजे घनेरे ।
सुभ घड़ी सुभ दिन हुए जो फेरे , सैयाँ ने मोहे हाथ में ले ली ।।५।।
आये बराती सब रस रँग के , लोग कुटुम के सब हँस हँस के ।
चावत थे यही घर से निकसे , और के घर में जाय धकेली ।।५।।
ले के चली थी साथ जब अपने , रोवन लागे फिर सब अपने ।
कहा कि तू नहिं बस की अपने , जा बच्ची ! तेरा दाता ही बेली ।।७।।
सखा ! पिया के साथ गई मैं , ऐसे गई फिर वहीं रही मैं ।
किससे कहूँ दुख हाय दई ! मैं , सैयाँ ने मोरी बाहै गहेली ।।८।।
सास जो चाहे सोही सुनावे , ननँद भी बैठी बातें बनावे ।
क्या है ! करूँ कुछ बन नहिं आवे , जैसी पड़ी मैं वैसी ही झेली ।।९।।
जिया बियाकुल रोवत अँखिया , कहाँ गई सब सँग की सखियाँ ।
शौक़ रँग गुड़िया ताक पै रखियाँ , न वो घर है न वो हवेली ।।१०।।

बहादुरशाह "ज़फ़र" (दिल्ली के अन्तिम बादशाह)

पहेलियाँ बुझौवल

१

हाथी हाथ हथिनिया काँधे । चले जात हैं बकुचा बाँधे ।।

गज और गजी ।

२

आधा नर आधा मृगराज । जुद्ध बिआहे आवै काज ।।
आधा टूटि पेट माँ रहै । बासू केरि खगिनिया कहै ।। नरसिंहा

३

लंबी चौड़ी आँगुरि चारि । दुहू ओर तें डारेनि फारि ।।
जीव न होय जीव का गहै । बासू केरि खगिनिया कहै ।। कंघी

४

भीतर गूदर ऊपर नाँगि । पानी पियै परारा माँगि ।।
तिहि की लिखी करारी रहै । बासू केरि खगिनिया कहै ।। दवात

५

अगहन पैठ चइत के प्याट । तेहि पर पंडित करैं झप्याट ।।
है नेरे पइहौ ना हेरे । पंडित कहैं बिगहपुर केरे ।। कचौरी

६

जल में रहै झूठ नहिं भाखै, बसै सु नगर मँझार ।
मच्छ कच्छ दादुर नही, पण्डित करौ विचार ।। घड़ी

७

स्याम बरन पर हरि नहीं, जटा धरे नहिं ईस ।
ना जानूं पिया कौन है, पंक लगाये सीस ।। कसेरू

८

सीस जटा पोथी गहे, सेत बसन गल माहिं।
जोगी जंगम है नहीं, ब्राह्मन पंडित नाहिं।। लहसन

९

सिर पर सोहै गंगजल, मुंड माल गल माहिं।
बाहन वाको वृषभ है, शिव कहिये कै नाहिं।। रहंट

१०

देखी एक अनोखी नारी। गुन उस में एक सब से भारी।
पढ़ी नहीं अरु अचरज आवै। मरना जीना तुरत बतावै।। नाड़ी

११

फाटचो पेट दरिद्री नाम। उत्तम घर में वाको ठाम।।
श्री को अनुज विष्णु को सारौ। पंडित होय सो अर्थ विचारौ।। शङ्ख

१२

नर के पेंट जो नारी बसै। पकड़ हिलाये खिल खिल हँसै।।
पेट फाड़ जो नारी गिरी। मोको लागी प्यारी खरी।। गिरी

१३

चहूँ ओर फिर आई। जिन देखी तिन खाई।। खाई

१४

एक नारी वह है बहुरंगी। घर से बाहर निकसे नंगी।।
उस नारी का यही सिंगार। सिर पर नथुनी मुँह पर बार।। तलवार

१५

आधा भक्तन मुख बसै, आधा गनियन साथ।
वाहि पसारी देत है, पुड़ी बाँधि कै हाथ।। हरताल

१६

एक थाल मोतियों से भरा। सब के सिर पर औंधा धरा।।
चारों ओर थाल वह फिरै। मोती उससे एक न गिरै।।

आकाश और तारे

१७

थरिया भर लावा । आँगन भर छितरावा ।। तारे

१८

एक राजा मरा कोई रोया नहीं । एक सेज बिछी कोई सोया नहीं ।।
एक फूल खिला कोई तोड़ा नहीं । एक हार टुटा कोई जोड़ा नहीं ।।
सूर्य, बादल, चन्द्रमा, तारे

१९

चार खूँट का एक खेत । कचरी घनी मतीरा एक ।।
तारे और चन्द्रमा

२०

तनक सी राई । सारे गाँव छितराई ।। तारे

२१

गज भर कपड़ा बारह पाट । बंद लगे हैं तीन सौ साठ ।।
वर्ष, महीना, दिन

२२

आठ पाँव का अबलक घोड़ा । चलै रैन दिन फिरै न मोड़ा । समय

२३

नभ तें गिरो न भुइँ दयो, जननी जनी न ताहि
देखि उजेरा जो कोई भागे, पकरि ले आओ ताहि । अँधेरा, छाया

२४

एक संदूक में बारह खाने । हर खाने में तीस तीस दाने ।।
वर्ष, महीना, दिन

२५

एक पेड़ सरगौवा । न चढ़ै चील न बैठे कौवा ।। धुवाँ

२६

लाल गाय खर खाय । पानी पियै मर जाय ।। आग

२७

बरषा बरसी रात में, भीजे सब बन राय।
घड़ा न डूबै लोटिया, क्यों पंछी प्यासा जाय।। ओस

२८

सर्र सर्र सतरी, सरकाने वाला कौन?
सीता चली सासरे, लौटाने वाला कौन? नदी

२९

एक ताल माँ गगरी न बूड़ै, हाँथी ठाढ़ नहाय।
पात पात पेड़न के भीजै, पुरुष पियासो जाय।। ओस

३०

संध्या को पैदा भई, आधी रात जवान।
बड़े सबेरे मर गई, घर हो गया मसान।। ओस

३१

एक शहर है ऊँचा बना। यक यक घर में यक यक जना।।
चीन्हि न परत पुरुष औ नारी। पहिरे सभी बसन्ती सारी।। बर्र

३२

सोने की चटक। बहादुर की सी मटक।
बहादुर गये भाग। लगा गये आग।। बिच्छू

३३

एक जीव असली। जिसके हाड़ न पसली।। जोंक

३४

तन के कोमल मुँह के जोर। चाल चलै जस तुरकी घोड़। खटमल

३५

एक पंछी ऐसा। जिसकी दुम में पैसा।। मोर

३६

पुरुब दिसा से आई चिड़िया। अन्न खाय पानी कै किरिया।। घुन

३७

एक कुयें में घाट हजार । एक हजार घुसे पनिहार ।।
मधु-मक्खी का छत्ता

३८

चार घड़े हैं रस से भरे । बिन ढक्कन के औंधे धरे ।।
गाय भैंस का थन

३९

लड़का पेट में । दाढ़ी उड़े हवा में ।। मक्का

४०

सोने की डिबिया में सालिकराम । अर्थ करो या छोड़ो ग्राम ।। खिरनी

४१

इधर खूंटा उधर खूंटा । गाइ मरकनी दूध मीठा ।। सिंघाड़ा

४२

पहिले भई थीं बहनें, फिर भये थे भइया ।
भइया ऊपर बाप भये, फिर भई थी अइया ।।
महुवे की कली, फूल फल और बीज

४३

एक खेत में ऐसा हुआ । आधा बकुला आधा सुआ ।। मूली

४४

नीचे उजली ऊपर हरी । खड़ी खेत में उलटी परी ।। मूली

४५

हरी डंडी लाल कमान । तोबा तोबा करै पठान ।। मिर्चा

४६

तनक सो लरिका बाह्मन को । तिलक लगावै चन्दन को ।। उड़द

४७

एक संदूक काँटे जड़ी । जब खोलो तब चंपा कली ।। कटहल

४८

एक तमाशा देखा प्रात । नाच उलटि के घोड़ा खात ।। चना

४९

गोल गोल गुटिया , सुपारी जैसा रग ।
ग्यारह देवर लेन आये , गई जेठ के संग ।। अरहर

५०

मूंड़ काटि भुइं मा धरी , लोथी गंग नहाइ ।
हाड़न का कोइला भवा , खालै गई बिकाइ ।।
पटसन (पटुवा)

५१

आठ पहर चौंसठ घड़ी । ठाकुर पर ठकुराइन चढ़ी ।। तुलसी

५२

काजर का कजरौटा , ऊधो का सिंगार ।
हरी डाल पर मुनिया बैठी , को है बूझनहार ।। जामुन

५३

एक चिड़िया अर्र । ओकै चमड़ी बोलै चर्र ।
ओकर मांस मुरदार । खून खूब मजेदार ।। गन्ना

५४

सब पंचन कै एकै चूतर । मूड़ महीन पेट धमधूसर ।। लहसुन

५५

छोटे से मेरे छोटकदास । कपड़ा पहिरे सौ पचास ।। प्याज

५६

नर के पेट में नारी बसै । पकड़ हिलाये खिल खिल हँसै ।
पेट फारि जो नारी गिरी । मोको लगी प्यारी खरी ।।
नारियल की गिरी

५७

तनक सा मटुकल तनक सा पेट ।।
जैये न मटुकल राजा के देश , राजा है बेईमान, फोरि खाये पेट ।।
इलायची

५८

एक पुरुष के नारी चार । सबै चतुर मिलि करै बिहार ।।
काहू के घर जात न कोई । खान पान यक साथहि होई ।।
एक अँगूठा, चार उँगलियाँ

५९

राम नही, रावन नही , नही कृश्न भगवंत ।
एक हाथ के आगे देखा , चारि नारि को कंत ।।
हाथ का अँगूठा

६०

राम न दीन्ही रावनहिं , ना भीमैं भगवंत ।
त्रिपुर न दीन्ही संकरहि , सो दीन्ही मोहि कंत ।। पीठ

६१

नाव के भीतर नदी नदी के भीतर नाव ।। आँख

६२

आये तो दुख दे , जाये तो दुख दे ।
उठे तो दुख दे , बैठे तो दुख दे ।। आँख

६३

चार पुरुष औ सोलह नारी । चार चार मिलि जोरे यारी ।।
दिन में चले एक ही साथ । रात में सोवें एकै साथ ।।
अँगूठे और अँगुलियाँ

६४

कर बोले कर ही सुने , स्रवन सुनै नहिं ताहि ।
कहैं पहेली बीरबर , बूझैं अकबर साहि ।। नाड़ी

६५

ककरहवा तारा मैन घाट । बत्तिस पीपर एक पात ।।
दाँत और जीभ

६६

पाथर चाटि रहे दिन राति । जिंदा छोड़े मुरदा खाति ।।
पाँच सखी जब पकरि उठावै । घर के बाहर नंगी आवैं ।।
नाई की नहन्नी

६७

जाली खाली जल गई , बचा न एकौ धागा ।
जल के स्वामी पकड़ि लिये , घर खिरकी खिरकी भागा ।। जाल

६८

चार अंगुल का पेड़ सवा मन का पत्ता ।
फल लागे अलग पकें सब इकट्ठा ।।
कुम्हार का चाक

६९

अत्थर सिल पत्थर संगमरमर खजूर ।
पांचो बहिनी लौट जाओ हम जावै बड़ी दूर ।। कौर

७०

काली नदी कलूटा पानी । डूब मरीं चन्द्रावलि रानी ।। पूरी

७१

कारी पोनी तागा सेत । भैंस का थन और दूध

७२

चलीं सखी सब मार झुण्ड । आई नहानें शीतल कुन्ड ।।
कपड़े पहिने भीतर गईं । नंगी होकर बाहर भईं ।।
उड़द या मूंग की दाल

७३

बाप का नाम और नाती पूत का नाम और।
यह पहेली बूझ कर पीछे उठाओ कौर।। भात

७४

पीली नदी में पीला अंडा । नहीं बताओ तो मारू डंडा ।।
बड़ी-पकौड़ी

७५

चार कबूतर चार रंग । दरबा भीतर एकै रंग ।।
पान, सुपारी, कत्था, चूना

७६

अगहन पइठ चैत के पेट। ता पर पंडित करें झपेट ।। कचौड़ी

७७

पिया बजारे जात हो , चीजें लइयो चार।
सुवा परेवा किलहँटा , बगुला कौ उन हार।।
पान, सुपारी, कत्था, चूना

७८

हौज भरा था । हिरन खड़ा था।
हौज सूख गया । हिरन भाग गया ।। दिया

७९

कमर बाँधि कोने में पड़ी । पड़ी सबेरे अब है खड़ी। बढ़नी

८०

तेली को तेल कुम्हार को हंडा। हाथी की सूँड़ नवाब का झंड़ा ।। दिया

८१

दुबली पतली गुन भरी , सीस चलै निहुराय।
वह नारी जब हाथ में आवै , बिछड़े [illegible] देय मिलाय ।। सुई

८२

चाची के दुइ कान, चचा के कानै न।
चाची चतुर सुजान, चचा कुछ जानै न॥
कढ़ाई और तावा

८३

दिन को लटकी। रात को छपटी।
किवाड़े की साँकल

८४

बिन दादे का पोता। भीती भीती रोता। पोतना

८५

छः पैर, पीठ पर पूँछ। तराजू

८६

तन की नस नस देखिये, नारी अति बलहीन।
चट आई पट परि गई, ऊपर पिउ को लीन॥ चटाई

८७

एक मन दाना चारि बाट। जितना तौलो परै न घाट।
१, ३, ६, २० सेर के बाट

८८

एक नारि दक्खिन से आई। सोरह बेटी तीन जमाई। चौपड़

८९

चिक्कन खेत पटुक्कन पीढ़ा। तापर बैठ कराइत कीरा। पुस्तक

९०

कच्चे अधिक सुहावने, गद्दर अधिक मिठायँ।
वे फल जग में कौन हैं, पाकत ही करुवायँ॥ मनुष्य

९१

इधर गई उधर गई। और न जाने किधर गई। सड़क

९२

खड़े तो खड़े । बैठे तो खड़े । सींग

९३

हाथ से बोवै । मुँह से बिनै । अक्षर

९४

एक सखी हम आवत देखा । स्याम घटा बदरी में रेखा ।
हाथ सिरोही मंगल गावै । ब्याही है वर खोजत आवै ।
रेलगाड़ी

९५

परी रहै बिन् पंख न टरै । उठै तो बात हवा से करै ।। धूल

९६

साथे आवै साथे जाइ । खाइ न पिअइ न परइ दिखाइ ।
कछु न रेल की करै सहाय । साथ लिये बिन रेल न जाय ।
रेल की घरघराहट

९७

भरे ताल में तिरै पसेरी । झटपट बूझो करो न देरी ।
मट्ठे में मक्खन

९८

दुइ मुँह छोट एक मुँह बड़ा । आधा मनई लीले खड़ा ।
बीचो बीच लगावे फाँसी । नाम सुने आवत है हाँसी ।। पाजामा

९९

बूँची गगरिया , न तोसे उठै न तोरे बाप से । कुआँ

१००

दिनभर घमै पिय के संग । छपटी रहै रातभर अंग ।
दिया देखि के वह सरमाय । झट से सरकि दूर होइ जाय ।। छाया

१०१

एक लई । दो फेंक दई । चक्की

१०२

चौंसठ घोड़ा एक सवार। पैसा रुपया

१०३

बाप बड़ो बेटा बड़ो, नाती बड़ो अमोल।
पै पनाति पैदा भयो, दो कौड़ी को मोल॥

दूध, दही, मक्खन, मट्ठा

१०४

लाल कोठरिया टिकुलिन भरी। लाल मर्चा

खेती की कहावतें

१

अग्नि कोन जब बहै समीरा । पड़ै काल दुख सहै सरीरा ।।

२

उत्तर से जल फूहों पड़ै । मूस साँप दोनों अवतरै ।।
पच्छिम समया नीको जानो । आगे बहैं तुषार प्रमानो ।।
जो कहुँ बहै ईसान को कोना । आवे बिस्वा दो दो दोना ।।
जो कहुँ हवा अकासै जाय । पड़े न बूंद काल पड़ जाय ।।

३

सावन सूखे धान, भादौं सूखे गेहूँ ।

४

अद्रा बरसे पुनर्वसु जाय । दीन आन कोऊ नहिं खाय ।।

५

पानी बरसे आधा पूस । आधा गेहूँ आधा भूस ।।

६

सावन सूखा स्यारी । भादौं सूखा उन्हारी ।।

७

सावन पहिली चौथ में, जो मेघा बरसाय ।
तो भाखें यों भड्डरी, साख सवाई जाय ।।

८

हथिया पूंछ डोलावे । घर बैठे गेहूँ आवे ।।

९

हथिया बरसे चित्रा मड़राय । घर बैठै किसान रिरियाय ।।

१०

कर्क बुवावे काकरी, सिंह अबोनो जाय।
ऐसा बोलै भड्डरी, कीड़ा फिर फिर खाय॥

११

जो कहुँ मघा में बरसे जल। सब नाजों में होगा फल॥

१२

चित्रा गेहूँ स्वाती भूसा। अनुराधा में नाज न भूसा॥

१३

जो कहुँ बरसै पूस। आधा गेहूँ आधा भूस॥

१४

अद्रा रेंड़ पुनरबस पाती। लगै चिरैया दिया न बाती॥

१५

चटका मघा न चटका उत्तर। दूध भात में परगा मूसर॥

१६

मघा, भुम्मि अघा।

१७

मघा न मारे पूर्वा सवारे। उत्तर भर खेत निहारे॥

१८

जब जेठ चले पुरवाई। तब सावन धूल उड़ाई॥

१९

आये मेख, हरी न देख। आये मेघ, हरी हरी देख॥

२०

चैत में हुई फसल तैयार। काट दाँय घर लाओ यार॥
बेर किये होवे नुक़सान। बेर में नाहीं भला किसान॥

२१

गेहूँ जौ जब पछिवाँ पावे। तब जल्दी से दाँवा जावे॥

२२

दो दिन पछिवाँ छः पुरवाई। गेहूँ जौ को लेव दँवाई॥
ताके बाद ओसावे जोई। भूसा दाना अलगे होई॥

२३

चना अधपका जौ पका काटे। गेहूँ बाली लटका काटे॥

२४

सात स्वाती धान उपाट।

२५

लगा बसन्त, ऊख पकन्त।

२६

भादों मास तीज अँधियारी। मेह न बरसे खेत बहारी॥
न बरसे न गरजे, न चमके अधरात।
तुम पिय जावो मालवा, हम जायें गुजरात॥

२७

काहे पंडित पढ़ पढ़ मरो। पूस अमावस की सुधि करो॥
मूल बिसाखा पूरवाखाड़। भूरा जान लो बहरे ठाढ़॥

२८

ढोकी बोले जाय अकास। देशी ठहरें उड़ें अकास॥

२९

लाल पियर जब होय अकास। तब नाहीं बरसा की आस॥

३०

चमकै पश्चिम उत्तर ओर। नित जानो पानी है जोर॥

३१

चीत के बरसे तीन जाय, मोथ मास उखार।

३२

न होय करम लिख पूरा। पर न टरै खेत का घूरा॥

३३

छिन पुरबैया छिन पछियाव । छिन छिन बहै बबूला बाव ।।
बादल ऊपर बादल धावै । तब भडुर पानी बरसावै ।।

३४

पूरबा बादल पच्छिम जाय । वासे बृष्टि अधिक बरसाय ।।
जो पश्चिम से पूरब जाय । वर्षा बहुत न्यून हो जाय ।।

३५

जब निकले लंका का राय । धेनु दूध न बेलो जाय ।।

३६

हस्त के बरसे तीन होय, साली सक्कर मास ।
हस्त के बरसे तीन जाँय, तिल कोदौ कपास ।।

३७

जो बरसे स्वाति । चरखा चलै न बोले ताँत ।।

३८

माघ महावट पूस बिनौरा । फागुन बरसे न खीरा ।।

३९

ससि ऊगत औ मङ्गल, पूस अमावस होय ।
दुगुना तिगुना चौगुना, नाज महेंगो होय ।।

४०

वायु चलेगी पच्छिमा । माँड कहाँ से चखना ।।
वायु चलै जो उत्तरा । माँड पिवेंगे कुत्तरा ।।
वायु चलेगी दखिना । डोला पानी लखना ।।
वायु चलेगी पुरवा । पियो मांड का कुरवा ।।

४१

बुद्ध बृहस्पति दो भले, शुक्र न भले बखान ।
रबि मङ्गल बौनी करै, द्वार न आवै धान ।।

४२

नैऋत भूम बूद ना परै। राजा परजा भूखौं मरै।।

४३

पछिवाँ आई बादली, राँड कुसुम्बी जाव।
वह बरसै यह घर करै, उनको यही स्वभाव।।

४४

पुरवाई कहर चले, राँड मूंड़ से न्हाय।।
वह लै आवै बादली, यह कोऊ लै जाय।।

४५

बिन भादों के बरसे। बिन माता के परसे।।

४६

ढेले पर जब चील बोले। गली गली में पानी डोलै।।

४७

माघ मास जो पड़ै न सीत। महँगा नाज जानियो मीत।।

४८

धनुष पड़ै बंगाली। मेह साँझ या सकाली।।

४९

रात में बोले काकुला, दिन में बोले स्याल।
तो यों भाखे भड्डुरी, निश्चय पड़ै अकाल।।

५०

दूर गुड़सा दूर पानी, नियर गुड़सा नियर पानी।।

५१

कातिक अमावस देखै जोसी। मंगल शनी भौम को होसी।।
स्वाती नखत और पुष्प योग। काल पड़े और नासैं लोग।।

५२

सावन बदी एकादसो, बादल ऊगै सूर।
तो बतावे भड्डुली, घर घर बाजै तूर।।

५३

सर्व तपै जो रोहिनी, सर्व तपै जो मूल।
पड़वा तपै जो जेठ की, उपजै सातो फूल।।

५४

सोम सुक्र सनीचरी, पूस अमावस होय।
घर घर होय बधावरी, बुरा न माने कोय।।

५५

पूस उजेली सप्तमी, अष्टमी नौमी गाज।
मेघ होय तो जान लो, अब सुभ होइहै काज।।

५६

पुष्प पुनरबस ना भरे ताल। सो फिर भरिहै अगली साल।।

५७

वायु चले ईसान। तो खाना खाय किसान।।

५८

पवन चले पुरवाई। बादल काट लगाई।।

५९

पूस मास की सप्तमी, जो पानी नहिं देय।
आरद्रा बरपै सही, जल थल एक करेय।।

६०

पूस अंधेरी सप्तमी, भिन भिन बादल होय।
सावन सुदी पूनो, बरषा अच्छी होय।।

६१

पूस बदी दसमी दिवस, बादल चमके बीज।
तो बरषे भरे भादौं, साधो खेलो तीज।।

६२

पाँच मंगल होवे फागुनो, पूस पाँच शनि होय।
काल पड़े कह भड्डुरी, बीज बोओ मति कोय।।

६३

पुरवाई बहुतै बहै, बिधवा पान चबाय।
वे ले आवें नीर को, वे काहू सँग जाँय।।

६४

सावन शुक्ला सत्तमी, चन्दा छिटिक करै।
के जल देखे कूप में, कि कामिनि सीस धरै।।
सावन सुक्ला सत्तमी, उगत जो देखे भान।
या जल मिलिहै कूप में, या गङ्गा अस्नान।।

६५

प्रथम बयार पूरब की लीजै। ऊंचे आन महाजर कीजै।।
पच्छिम ब्यार चलै मरदाना। सीचो खेती आय किसाना।।

६६

सावन पहिली पंचमी, जोर की चलै बयार।
तुम जाना पिय मालवा, हम जायें पितुसार।।

६७

सावन सुक्ला सत्तमी, उभरे निकले भान।
हम जायें पिय माइकें, तुम कर लो गुजरान।।

६८

अद्रा भरनी रोहनी, मघा उत्तरा तीन।
आन मङ्गल आँधी चले, तब लों बरसा छीन।।

६९

अद्रा तो बरसे नही, मृगसिरा पौन न जोय।
भापै ऐसा भड्डरी, बरषा बूँद न होय।।

७०

कृष्ण अषाढ़ी प्रतिपदा, जो उत्तर गरजन्त।
शास्त्री शास्त्री यों भखैं, निश्चय काल पड़न्त।।

७१

धूर अषाढ़ी बिज्जुली, चमक निरन्तर जोय।
सोम सुक्र और गुरु परै, भारी बरसा होय॥

७२

धुर अषाढ़ की अष्टमी, ससि निर्मल जो दीख।
पीव जाय के मालवा, माँगत फिरिहैं भीख॥

७३

नवी असाढ़ी बादली, जो गरजै घनघोर।
कहें भड्डरी ज्योतिषी, काल पड़ै चहुँ ओर॥

७४

दशी असाढ़ी कृष्ण को, मङ्गल रोहिनी होय।
सस्ता धान बिकायगो, हाथ न छुइहै कोय॥

७५

असाढ़ी पूनो के दिना, गाज बीज बरसन्त।
भाषै लक्षण कालिका, आनन्द मानो सन्त॥

७६

दिवस बादरा रात को तारे। चलो कन्त जहँ जीवें वारे॥

७७

दिन को बादर रात में चंदर। बहै पूरबी भद्दर भद्दर॥
कहें भड्डरी बरषा नाहीं। सिगरी जिन्सें जाहिं सुखाहीं॥

७८

तीतर पंखी बादरी, विधवा कज्जल रेख।
ये बरषै वह घर करै, यामे मीन न मेख॥

७९

दिन को बादल रात तरैयाँ। ये नारायन काह करैयाँ॥

८०

काले बादल डरावने, धौले बरसनहार।

८१

दिना सात चले जो बाँड़ा । सूखे जल सातों खाँडा ।।

८२

खेती करै खाद से भरै । मो मन कोठला में लै धरै ।।

८३

वही किसानी में है पूरा । जो छोड़ै हड्डी का चूरा ।।

८४

जेकर खेते पड़ा न गोबर । उहि किसान को जानो दूबर ।।

८५

जोत न माने अरसी चना । कहा न माने हरामी जना ।।

८६

मैदै गेहूँ, ढेले चना ।

८७

गेहूँ बाहे, धान बिदाहे ।

८८

गेहूँ गवा काहें । कातिक के चौबाहें ।।

८९

जोते खेत घास ना टूटै । ताकर भाग साँझ ही फूटै ।।

९०

एक बात तुम सुनी हमारी । एक बैल ले भली कुदारी ।।

९१

कच्चा खेत न जोतै कोई । नाहीं बीज न अंकुरे होई ।।

९२

गेहूँ भवा काहे । सोलह दाँय बाँहे ।।

९३

दखिनी कुलाखिनी । माघ पूस सुलाखिनी ।।
माघ पूस में दखिना । भले मेंह को लखना ।।

९४

माघ उजाली तीज को, बादल बिजली देख।
गेहूँ जौं संयम करो, मँहगो होवे पेख॥

९५

चैत मास उजाले पाख। अठवें दिवस बरसता राख॥
नवें दिवस जब बिजली होवे। ता देश काल हलाहल होवे॥

९६

चित्रा स्वाती विसाखरी, जो बरखे आसाढ़।
चलो पिया परदेस अब, भारी परिहै काल॥

९७

आसाढ मास पूनो दिवस, बादल घेरै चंद।
तो भडुर जोसी कहै, होवे परम अनंद॥

९८

चढ़ते बरसे आद्रा, उतरत बरसे हस्त।
कितनौ राजा डाँड ले, आनन्द करे गृहस्त॥

९९

मंगल पड़े तबाही, बुद्धे पड़े अकाल।
जो अन्त होवे सनीचरी, निश्चय परिहै काल॥

१००

भूलो बावल फिरै गँवारा, कातिक माँगे मेह।

१०१

पुरबा पूनो गरजै, दिना बहत्तर बरसै॥

१०२

सावन केरे प्रथम दिन, उगत न दीखै भान।
चार महीना बरसै पानी, याको है परमान॥

१०३

माघ मास में बेचो बोई । फिर बैसाख में तमसो धोई ।।
जेठ मास जो तपै निरासा । तो जानो बरषा की आसा ।।

१०४

सावन पहिली पंचमी, चन्दा छिटिक करै ।
की जल देखे कूप में, कि सुन्दरि कूप भरै ।।

१०५

चना चित्रा चौगुना, स्वाती गेहूँ होय ।

१०६

कोठी चढ़े पुकारै जई । खिचड़ी खाकर क्यों ना बई ।।
जो कहुँ बोते बीघा चार । तो मैं डरती कुठिला फार ।।

१०७

अगहन बवा । कहुँ मन कहुँ सवा ।।

१०८

पूस न बोये, पीस खाये ।

१०९

अगाई, सो सवाई ।

११०

कातिक बोये अगहन भरे । ताको हाकिम फिर का करे ।।

१११

रोहिनी मृगसिरा जो बोये मका । उर्द मड़ुआ नहिं आवे टका ।।
मिरगसीर में बोये चैना । जमींदार को कुछ नहिं दैना ।।
बोये बाजरा आये पुक्ख । फिर मन कैसे भोगे सुक्ख ।।

११२

बुध बोनी, सुक लवनी ।

११३

हथिया में हाथ गोड़ चित्रा में फूल । चढ़त सवाती झप्पा झूल ।।

११४

जब वर्र बरोठे आई। तब रबी की होय बोवाई॥

११५

जौ छीछी गेहूँ सौंसलो, मेढ़क छप्पे ज्वार।
जिन के छीछी ऊख है, वे फिरते घर बार॥

११६

दिवाली को बोवे दिवालिया।

११७

आगे गेहूँ पीछे धान। उसको कहिये बड़ा किसान॥

११८

भुइ भई काली काहे। जीव अंश अधिकाहे॥

११९

पुक्ख पुनर्बस बोवे धान। मघ असलेखा खेती आन॥

१२०

आधी हथिया मूर मुराई। आधी हथिया सरसों राई॥

१२१

अगहन बोवे जौवा। होय तो होय नहीं खाय कौआ॥

१२२

पहिले काँकरि पीछे धान। उनको कहिये पूर किसान॥

१२३

सावन सावा अगहन जो। जितना बोवे उतना लौ॥

१२४

मका जोंधरी औ बजरी। उनको बोवे कुछ बिररी॥

१२५

गाजर गंजी और मूरी। इनको बोवे कुछ दूरी॥

१२६

धनी धनी जो सनई बोवे। तो सुतरी की आसा होवे॥

१२७

गेहूँ गिरुई चरका धान। बिना आन के मरा किसान॥

१२८

माघ में बादर लाल धरै। तब जानो सच पाथर परै॥

१२९

ऊख लवाई काहे से। स्वाती पानी पाये से॥

१३०

जब बरषा चित्रा में होय। सिगरी खेती जाये खोय॥

१३१

खादी कूड़ा ना टरै, कर्म लिखा टरि जाय।
'रहिमन' कहे बुझाय के, खेत पास पर जाय॥

१३२

फागुन माहिं बहै पुरवाई। तब गेहूँ में गिरुई बाई॥

१३३

चित्रा गेहूँ अद्रा धान। इनके गेरुई न उनके घाम॥

१३४

अद्रा धान पुनर्बसु पैया। गये किसान जब बई चिरैया॥

१३५

मघा मकड़ी पुरवा डाँस। उत्तरा में है सब की नास॥

१३६

हरिन फलाँगन काकरी, पैंगे पैंग कपास।
कहियो जाय किसान से, बोवे घनी उखार॥

१३७

पुक्ख पुनर्बस बोवे धान। असलेखा जुधरी, परमान॥
मघा मसीना बोवे रेल। तब दीजे परहल में ठेल॥

१३८

पुक्ख पुनर्बस बोवे धान। असलेखा जोंधरी परमान॥
मघा मसीनो बरसे झार। हल दीजै कोठल में डार॥

१३९

कोठिला बैठे बोलै जई। आधे अगहन काहे न बई॥

१४०

नरसी गेहूँ सरसी जौ। अति के बरसे चना बौ॥

१४१

कदम कदम पर बाजरा, मेंढक कूदे ज्वार।
ऐसे जो बोवे कोई, घर घर भरे कोठार॥

१४२

आलू बोवे अँधेरे पाख। खेत में डारे कूड़ा राख॥
समय समय पर करै सिंचाई। दूना आलू घर में आई॥

१४३

छीछी भली जौ चना, छीछी भली कपास।
जिनकी छीछी ऊखड़ी, उनकी छोड़ो आस॥

१४४

जो तेरे कुनबा घना। तो क्यों न बोवे चना॥

१४५

दो नौई, घर खोई।

१४६

मकड़ा घासा पूरा जाला। बीज चने का भर भर डाला॥

१४७

छीछा सालिम सालटा, छीछी भली कपास।
जिनकी छीछी ऊँख है, उनकी छोड़ो आस॥

१४८

सन घना बन बेगरा, मेढ़क फन्दे ज्वार।
पैर पैर पर बाजरा, करै दरिद्रै पार॥

१४९

जौ गेहूँ बोवै पांच पसेर। मटर की बीघा तीन सेर॥
बोवे चना पसेरी तीन। सेर तीन की जुंधरी कीन्ह॥
दो सेर मोथी अरहर मास। डेढ़ सेर बीघा बीज कपास॥
पाँच पसेरी बीघा धान। तीन पसेरी जड़हन मान॥
डेढ़ सेर बजरा बजरी सवा। कोदों काकुन सवैया ववा॥
सवा सेर बीघा सावाँ जान। तिल्ली सरसों अंजुरी मान॥
बिर्रे कोदों सेर बोआव। डेढ सेर बीघा तीसी नाव॥
यहि विधि से जब बवै किसान। दूना लाभ खेत में जान॥

१५०

गोहूँ भवा काहें। असाढ के दो बाहें॥

१५१

तेरह कातिक, तीन असाढ़।

१५२

नौ नसी, न एक कसी। नौ आहन, एक बाहन॥

१५३

बाली मोटी भई काहे। असाढ़ के दो बाहे॥

१५४

बीज पड़े फल अच्छा देत। जितना गहरा जोते खेत॥

१५५

जोंधरी जोते तोड़ मरोर। तो वह डारे कोठला फोर॥

१५६

बाहे क्यों न असाढ़ एक बार। अब क्यों बाहे बारम्बार॥

१५७

दस बाहों का मांड़ा। बीस बाहों का गाँड़ा।।

१५८

तीन क्यारी तेरह गोड़। देखो ईख तबै भुइ तोड़।।

१५९

जो ढेले दे तोर मरोर। ताको कोठिला दूगी फोर।।

१६०

मेंड़ बाँध दस जोतन दे। दस मन बीघा मोसे ले।।

१६१

सावन न मारे लीट क बेटा। अब देखें क्या खाओ बेटा।।

१६२

अषाढ़ जोते लड़के बारे, सावन भादों हरवाहे।
क्वार जोते घर का बेटा, तब ऊँचे उनहारे।।

१६३

भैंसा बरद की खेती करे, करजा काढ़ि बिरानो खाय।
बधिया ऐंचत है येहरी को, भैंसा ओहरी को लै जाय।।

१६४

थोड़ा जोतै बहुत हेंगावै, ऊँची बाँधे आड़।
ऊँचे पर खेती करै, पैदा होवै भाड़।।

१६५

खाद पड़े तो खेत। नहीं तो कूड़ा रेत।।

१६६

खाद देय तो होवे खेती। नहीं तो रहे नदी की रेती।।

१६७

अषाढ़ में खाद खेत में जावे। तब भर मूठी दाना पावे।।

१६८

गोबर मेला नीम की खली। यहि से खेती दूना फली।।

१६९

गोबर राखी पानी सड़े। तब खेती में दाना पड़े॥

१७०

जेहि के उखड़े लगी लवाइ। तेहि पर आवे बड़ी तबाह॥

१७१

करमहीन खेती करै। बधिया मरै कि सूखा परै॥
करम हीन खेती करें। पाला पड़े कि ओला गिरें॥

१७२

माघै पूस बहै पुरवाई। तब सरसों को माहूँ खाई॥

१७३

बैल बगोदा निरधिन जोय। वहि घर उरहन कबहुँ न होय॥
बैल मरखना चमकुल जोय। वा घर उरहन नित उठि होय॥

१७४

बरद मुसरहा जो कोई लें। राजभङ्ग पल में कर दे॥
तिरिया बाल सब कुछ छुटि जाय। भीख माँगि के घर घर खाय॥

१७५

मत कोई लीजे मसुरिहा वाहन। खसम मार के डाले पावन॥

१७६

बड़सिगा जनि लीजो मोल। कुएँ में डालो रुपया खोल॥

१७७

ताका भैसा निठरा बैल। नारि कुलच्छनि बालक छैल॥
इनसे बाचें चतुरा लोग। राज छोड़ के साधे जोग॥

१७८

ना मोहिँ नाधो उलिया कुलिया, ना मोहिँ नाधो दायें।
बीस बरस तक करौं बरदई, जो ना मिलिहै गायें॥

१७९

सन्थर जोते पूत चरावे । लगते जेठ भुसौला छावे ।।
भादौ मास उठे जो गरदा । बीस बरस तक जोतो बरदा ।।

१८०

है उत्तम खेती वाकी । होय मेवाती गोई जाकी ।।

१८१

पतली पिण्डुरी मोटी रान । पूँछ होय भुइँ में तरियान ।।
जाके होवै ऐसी गोई । वाको तकै और सब कोई ।।

१८२

करिया काछी धौरा बान । इन्हैं छाड़ि जनि बेसहो आन ।।
कार कछौटी सुनरे बान । इन्हैं छोंड़ि जनि बिसह्यो आन ।।

१८३

जोते का पुरबी, लादे का दमोय ।
हेंगा को काम दे, जो देवहा होय ।।

१८४

सींग मुड़े माथा उठा, मुँह का होवे गोल ।
रोम नरम चंचल करन, तेज बैल अनमोल ।।

१८५

एक हल हत्या, दो हल काज ।
तीन हल खेती, चार हल राज ।।

१८६

मुँह का मोट माथ का महुआ । इनही का कुछ कहिये रहुआ ।।
परती नही हराई जोतै । बैठ मेंड़ पर पागुर करै ।।

१८७

मुँह का मोट माथ का महुआ । इन्हैं देखि जनि भूल्यो रहुआ ।।
चरक भरौती माथे में महुआ ।
दाम परे तो आधे तरे । नहीं रुपया पानी में परे ।।

१८८

जहाँ परे फुलवा की लार। झाड़ू लेके बुहारो सार॥

१८९

कान कछोटा झबरे कान। इन्हें छाँड़ि जनि लीजो आन॥

१९०

निटिया बरद छोकरा हारी। दूब कहै मोर काह उखारी॥

१९१

बैल लीजै कजरा। दाम दीजै अगरा॥

१९२

बैल बिसाहन जाओ कन्ता। भूरे का मत देखो दन्ता॥

१९३

लम्बे लम्बे कान, औ ढीला मुतान।
छोड़ो छोड़ो किसान, न तो जात हैं प्रान॥

१९४

बिन बैलन खेती करै, बिन भैयन के रार।
बिन मेहरारू घर करै, चौदह साख लबार॥

१९५

सात दाँत उदन्ता को, रङ्ग जो काला होय।
उन्हे कबहुँ न लीजिये, दाम चहें जो होय॥

१९६

हिरन मुतान और पतली पूछ। बैल बेसाहो कन्त बे पूँछ॥

१९७

बाँधा बछड़ा जाय मठाय। बैठा ज्वान जाय तुंदियाय॥

१९८

फेंट बँधीला देह गठीला, आँखों का चमकीला।
भाषै नानकचन्द मर्द है, बर्द कन्ध का नीला॥

१९९

बरद बिसाहन जाओ कन्ता। कुबरा का मत देखो दन्ता॥

२००

घोंची देखे वहि पार। थैली खोलै यहि पार॥

२०१

छद्दर कहै मैं आऊँ जाऊँ। सद्दर कहै गुसैये खाऊँ॥
नौदर कहै नेवो दिसि धाऊँ। हित कुटुम्ब उपरोहित खाऊँ॥

२०२

स्वेत रङ्ग और पीठ बरारी। ताहि देखि जनि भल्यो लारी॥

२०३

सौख कहे मोर देख कला। बे मेहरी का करूं बरा॥

२०४

छोट सींग और छोटी पूँछ। ऐसे को ले लो बे पूँछ॥

२०५

उदन्त बरदे उदन्त ब्याये। आप जाँय या खसमे खाये॥

२०६

दाँत गिरे और खुर घिसे, पीठ बोझ नहिं लेय।
ऐसे बूढ़े बैल को, कौन बाँध भुस देय॥

२०७

भैंस कन्देलिया पिय लाये। माँगे दूध कहाँ से आये॥

२०८

बाँसड़ और मुँह धौरा। उन्हें देख चरवाहा रौरा॥

२०९

बूढ़ा बैल बिसाहे, भिन्ना कपड़ा लेय।
आपुन करै नसौनी, दैवै दूषन देय॥

२१०

नीले कन्धा बैंगन खुरा। कबहुँ न निकले कन्था बुरा॥

२११

छोटा मुँह औ ऐंठा कान। यहीं बैल की है पहिचान॥

२१२

मियनी बैल बड़ो बलवान। तनिक में करे ठाढ़े कान॥

२१३

सींग गिरेला बरद के, औ मनई का कोढ़।
यह नीके ना होंयगे, चाहे बद लो होड़॥

२१४

बैल तरकना टूटी नाव। ये काहू दिन दैहैं दाँव॥

२१५

बैल चौकना जोत में, औ चमकीली नार।
ये बैरी हैं जान के, लाज रखैं करतार॥

२१६

पूँछ छिया छोटे कान। ऐसे बरद मिहनती जान॥

२१७

उजर बरौनी मुँह का महुआ। वाका देख हरवाहा रोवा॥

२१८

जब देखो पिय सम्पति थोड़ी। बिसहो गाय बिआउर घोड़ी॥

२१९

वह किसान है पातर। जो बरदा राखै गादर॥

२२०

बरद बगौदा मरकहा होय। वह घर उरहन नित नित होय॥

२२१

बरद बिसाहन जाओ कन्ता। खीरे का जनि देखो दन्ता॥
जहाँ परे खीरे की खुरी। तो कर डारें चपरा पुरी॥
जहाँ परे खीरे की लार। बढ़नी लेके बुहारो सार॥
जहाँ देखो पटवा की डोर। तहाँ दीजो थैली छोर॥

२२२

दो हर खेती एक हर वारी। एक बैल से भली कुदारी॥

२२३

दस हल राव आठ हल राना। चार हलों का बड़ा किसाना॥

२२४

पाँच सनीचर पाँच रवि, पाँच मङ्गल जो होय।
छत्तर टूट धरनी पड़े, की अन्न महँगो होय॥

२२५

या तो बोये कपास अरु ईख। नाही माँग के खाये भीख॥

२२६

जो हल जोते खेती वाकी। और नही तो जाकी ताकी॥

२२७

जो तू भूखा माल का। तो ईख कर लो नाल का॥

२२८

बहु बोना बहु कटियान, और बहुतै बोया चना।
कहै मनोहर जंगली, जावेंगे ये तीनों जना॥

२२९

चना, चैत घना।

२३०

गेहूँ बाहा, धान गाहा। ईख गुड़ाई से है आहा॥

२३१

मंगल वारी पड़े दिवारी। रहै किसान रोये व्योपारी॥

२३२

साठी पके साठवें दिन। जो पानी पावे आठवें दिन॥

२३३

सबी किसानी हेठी। अगहनियाँ पानी जेठी॥

२३४

अगहन में सरवा भर। फिर करवा भर।।

२३५

कदम कदम पीपल मुकदम, गेहूं ठाकुर जौ दीवान।
अरहर चेरी चना गुलाम, सरसों ठाढ़े करे सलाम।।

२३६

अहिर मिताई बादर की छाई। होवे होवे नाही नाई।।

२३७

गेहूँ बाह से, चना दलाये मे। धान गाहे से, मक्की निराये से—
ईख कसाये से।।

२३८

दो पत्नी क्यों न निराये। अब बीनत क्यों पछिताये।।

३२९

नित्तै खेती दुसरे गाय। नाही देखें तेकर जाय।।

२४०

मीन सनीचर कर्क गुरु, जो अव्वल मंगल होय।
गेहूँ गोरस गुडारी, बिरलै बिलसे कोय।।

२४१

ठाढ़ी खेती गाभिन गाय। तब जानों जब मुँह में जाय।।

२४२

बबूल का पाटा सिरस का हल, हरयानी का बैल।
छुछे हाथे लेय के, बैठे चौसर खेल।।

२४३

ईख करै सब कोई। जो बीच में जेठ न होई।।

२४४

प्रीति तो कीजै ईख सी, जामें रस की खानि।
जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यही प्रीति की बानि।।

२४५

ईख तक खेती , हाथी तक बनिज ।

२४६

आस पास रबी , बीच में खरीफ ।
नोन मिरच डाल के , खा गया हरीफ ।।

२४७

परहथ बनिज सन्देसे खेती । बे बर देखे व्याहे बेटी ।।
द्वार पराये गाड़े थाती । ये चारों मिल पीटें छाती ।।

२४८

अगहन में ना दी थी कोर । तेरे बैल क्या ले गये चोर ।।

२४९

तीन कियारी तेरह गोड़ । तब बाढ़े ऊख की पोर ।।

२५०

उठ के बजरा यों हँस बोले । खाये बूढ जुवा हो जाय ।।

२५१

इतवार करे धनवन्तर होय । सोम करे सेवा फल होय ।।
बुध बीफै शुक्रै भरै बखार । शनि मगल बीज न आवे द्वार ।।

२५२

ऊँचे चढ़के बोला मडुआ । सब नाजों का मैं हूँ भँडुआ ।।
आठ दिना मुझ को जो खाय । भले मर्द से उठा न जाय ।।

२५३

साठी में साठी बोवे , बाड़ी में बाड़ी ।
ईख में जो धान बोवे , फूंको बाकी डाढ़ी ।।

२५४

कमती करै गाजा बाजा । जौनै लागै तौनै राजा ।।

२५५

भली जाति कुरमिन की, खुरपी हाथ।
आपन खेत निरावें, पिय के साथ॥

२५६

जिसका ऊँचा बैठना, जिसका खेत निचान।
उसका बैरी का करै, जाके मीत दिवान॥

२५७

बाढ़ पुत्र पिता के धर्मा। खेती उपजे अपने कर्मा॥

२५८

घर की खुन्स ज्वर की भूख। छोट दमाद बराहे ऊँख।
पातर खेती भकुआ भाई। घाघ कहें दुख कहाँ समाई॥

२५९

धान पान उखेरा। ये पानी का चेरा॥

२६०

रूँध बाँध के फाग दिखाये। सो किसान मोरे मन भाये॥

२६१

खेती करै ऊख कपास। घर करै ब्योहरिया पास॥

२६२

उर्द मोथी की खेती करियो। कुरिया तोड़ ऊसर में धरियो॥

२६३

खेती करे अधिया। न बैल मरै न बधिया॥

२६४

अगसर खेती अगसर मार। घाघ कहें ये कबहूँ न हार॥

२६५

ऊँख सरौती दिवला धान। इन्हें छाँड़ जनि बोओ आन॥

२६६

असाढ़ मास जो घूमा कीन। ताकी खेती होवै छीन॥

२६७

एक वायु जो वह है ऊता। मेढ़े बाँध पिआओ पोता।।

२६८

एक मास ऋतु आगे धावै। आधा जेठ असाढ़ कहावै।।

२६९

साठी होवे साठ दिना। जब पानी बरसे रात दिना।।

२७०

ईख तो कर ले राँड़। और पेरे उसे साँड़।।

२७१

काँटा बुरा करील का, औ बदरी का घाम।
सौत बुरी है चून की, औ साझे का काम।।

२७२

रड़हे गेहूँ कुसहे धान। गड़रा की जड़ जड़हन जान।।
फूली घास रो देंय किसान। उसमें होय आन का तान।।

२७३

गेहूँ गिरे अभागे का। धान गिरे सौभागे का।।

२७४

जब सैल खटाखट बाजे। तब चना खूब ही गाजे।।

२७५

सरसे अरसी, निरसे चना।

२७६

चार छोंवँ छः निरावें। तीन खाट दो बाँट।।

२७७

बाह न जाने मसुरी चना। हित न जाने हरामी जना।।

२७८

बिररै जोत पुराने बिया। ताकी खेती कुछ न हुआ।।

२७९

छाँड़ै खाद जोत गहराई। तब खेती का मजा दिखाई।।

२८०

खूब जोतै औ नावै खाद। तब देखे गेहूँ का स्वाद।।

२८१

माघ मास की बादरी, और कुवार को घाम।
यह दोनों जो कोउ सहे, करे पराया काम।।

२८२

मर्द निकौनी बरदै दाँय। दुबरी चलने में दुख पायँ।।

२८३

ऊँख गोड़ के तुरत हें गावै। तो फिर ऊख बहुत सुख पावै।।

२८४

सावन भादौं खेत निरावे। तब गृहस्थ बहुतै सुख पावै।।

२८५

पानी बरसे बहन न पावे। तब खेती को मजा दिखावे।।

२८६

जब बरसे तब बाँधो क्यारी। पुरा किसान जो हाथ कुदारी।।

२८७

खेती करे साँझ घर सोवै। काटै चोर हाथ धरि रोवै।।

२८८

खेत बे पनिया जोतो तब। ऊपर कुआँ खुदाओ जब।।

२८९

खेत बे पानी बुड्ढा बैल। सो गृहस्थ साँझै गहे गैल।।

२९०

बाँध कुदारी खुरपी हाथ। लाठी हँसिया राखै साथ।।
काटै घास निरावै खेत। पूरा किसान वही कह देत।।

२९१

चना सींच पर जब हो आवै। ताको पहिले तुरत खुटावै॥

२९२

कुड़हल भदई बोओ यार। तब चिउरा की होय बहार॥

२९३

पहिले छाओ तीन घरा। सार भुसौला औ बड़हरा॥

२९४

अति ऊँचे भुइँ धरन पै, भुजगन के असथान।
तुलसी अति नीचे सुखद, ऊँख अन्न अरु पान॥

२९५

कामिन गरभ औ खेती पकी। ये दोनो हैं दुर्बल बदी॥

२९६

जो तुम देव नील की जूठी। सब खादों में रहे अनूठी॥

२९७

सन के डण्ठल खेत छिटावें। तिनते लाभ चौगुनो पावें॥

२९८

जो कपास न गोड़ी। उहि के हाथ न लागे कौड़ी॥

२९९

कपास चुनै, खेत खनै।

३००

हल लगा पताल। तो टूट गया काल॥

३०१

बाहन कीन्हों मोटा। बीज बतावें खोटा॥

३०२

गेहूँ आये बाल। खेत बनाओ ताल॥

३०३

बोओ गेहूँ काट कपास। फिर होवें ना ढेला घास॥

३०४

काले फल न आया पानी। धान मरा अधबीच जवानी।।

३०५

दक्खिन घेरे पुरबा बरसै। पछवा चलते किसान तरसै।।

३०६

तरकारी है तर कारी। यामें पानी की अधिकारी।।

३०७

छोटी नसी, धरती हँसी।

३०८

तोड़ दीन क्यारी। खेत गा उजारी।।

३०९

चना में सर्दी अधिक समाई। ताको जान गदहिला खाई।।

लोकोक्तियाँ

१

अपनी करनी पार उतरनी।

२

औसर चूकी डोमनी, गावे ताल बेताल।

३

अरहर की टट्टी गुजराती ताला।

४

अपनी नींद सोना अपनी नींद उठना।

५

अति का भला न बरसना, अति की भली न धुप्प।
अति का भला न बोलना, अति की भली न चुप्प॥

६

अपनी अपनी ढापुली, अपना अपना राग।

७

अनमाँगे मोती मिलें, माँगे मिले न भीख।

८

अमानत में खयानत।

९

अयाना जाने हीया सयाना जाने किया।

१०

अस्सी की आमद चौरासी का खर्ज।

११

आगे नाथ न पीछे पगहा। सबसे भला कुम्हार का गदहा।

१२

आधी छोड़ पूरी को धावे। ऐसा डूबे थाह न पावे।

१३

आग फूस में बैर।

१४

आप मरे जग परलय।

१५

आँखों के अन्धे, नाम नैनसुख।

१६

आप डूबा तो जग डूबा।

१७

आदमी का आदमी ही शैतान है।

१८

आती बहू जनमता पूत सब को अच्छा लगता है।

१९

आग लगंते झोंपड़ा, जो निकले सो लाभ।

२०

आम के आम गुठलियों के दाम।

२१

इस हाथ दे उस हाथ ले।

२२

उल्लू की दुम फ़ाख़्ता।

२३

उधार का खाना, फूस का तापना।

२४

उत्तम खेती मध्यम बान। निकृष्ट चाकरी भीख निदान।।

२५

उलटा चोर कोतवाल को डाँटे।

२६

उघरे अन्त न होय निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू।।

२७

ऊँट के मुंह में जीरा।

२८

ऊधौ का लेना न माधौ का देना।

२९

ऊँची दूकान, फीका पकवान।

३०

ऊँट की चोरी निहुरे निहुरे।

३१

ऊँट के गले बिल्ली।

३२

ऊँट बिलाई ले गई तब हाँजी हाँजी करना।

३३

एक नारी, सदा ब्रह्मचारी।

३४

एक पंथ दो काज।

३५

एक तो गिलोय, दूसरे नीम चढ़ी।

३६

एक तवे की रोटी। क्या मोटी क्या छोटी।

३७

एक अनार सौ बीमार।

३८

ओछे की प्रीति बालू की भीति।

३९

ओखली में सिर दिया तो मूसलों का क्या डर।

४०

अन्धेर नगरी अनबूझ राजा। टके सेर भाजी टके सेर खाजा।।

४१

अन्धी पीसे कुत्ते खाँय।

४२

अन्धा क्या चाहे, दो आँख।

४३

अन्धे के हाथ बटेर।

४४

अन्धा बाँटे रेवड़ी अपनो ही को दे।

४५

अन्ते मता सो गता।

४६

कतहुँ सुधाइहुँ तें बड़ दोषू।

४७

कर ले सो काम, और भज ले सो राम।

४८

कभी नाव लढ़े पर, कभी लढ़ा नाव पर।

४९

करघा छोड़ तमासे जाय। नाहक चोट जुहाला खाय।

५०

करे तो डर, और न करे तो भी डर।

५१

कहाँ राजा भोज कहाँ गँगुवा तेली।

५२

कारज धीरे होत है, काहे होत अधीर।

५३

काला अक्षर भैंस बराबर।

५४

काम परे ही जानिये जो नर जैसो होय।

५५

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, फेर करोगे कब्ब॥

५६

कागा चलै हंस की चाल।

५७

काल के हाथ कमान। बूढ़ा बचै न ज्वान।

५८

काजर की कोठरी में धब्बे का डर।

५९

काम जो आवै कामरी का लै करे कमाँच।

६०

काबुल गये मुग़ल बनि आये बोलन लागे बानी।
आब आब करि बाबा मरि गये खटिया तर रहा पानी।

६१

काजी जी क्यों लटे, शहर के अँदेशे से।

६२

किस बित्ते पर तत्ता पानी।

६३

किसी को बैंगन पथ बराबर, किसी को बिष बराबर।

६४

कानी के ब्याह में सौ जोखों।

६५

कै हंसा मोती चुगै, कै लंघन करि मरि जाय।

६६

कोयले की दलाली में हाथ काले।

६७

पैसा नहीं हो पास। तो मेला लगे उदास।

६८

कौन किसी के आवे जावे दाना पानी लावे।

६९

गरीबी में आटा गीला।

७०

का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछताने।

७१

खरी मजूरी चोखा काम।

७२

खाना शराकत, रहना फराकत।

७३

खुशामद से आमद होती है।

७४

खेती खसम सेती।

७५

खौरई कुतिया मखमली भूल।

७६

खोदा पहाड़ और निकली चुहिया।

७७

खूँटे के बल बछड़ा नाचे।

७८

गधे को गुलकंद गँवार को पापड़।

७९

गाय न बाछी। नींद आवे आछी।

८०

गाँव का जोगी जोगना, आन गाँव का सिद्ध।

८१

गुरू तो गुड़ ही रहे चेला चीनी हो गये।

८२

गुड़ खाय गुलगुलों से परहेज।

८३

गुरू कीजै जान। और पानी पीजै छान।

८४

घर की खाँड़ किरकिरी लागे, बाहर का गुड़ मीठा।

८५

घर की मुरगी साग बराबर।

८६

घर का भेदी लंका ढावे।

८७

घर ब्याह, बहू कंडों को डोले।

८८

घोड़ों को घर कितनी दूर।

८९

घोड़ा घास से यारी करे तो खाय क्या?

९०

घर आये नाग न पूजिये, बामी पूजन जाय।

९१

घुसिया हाकिम रुसिया चाकर।

९२

घोड़े का गिरा सम्हल सकता है, नज़र का गिरा नहीं।

९३

चतुर को चौगुनी, मूरख को सौगुनी।

९४

चमड़ी जाय, पर दमड़ी न जाय।

९५

चना और चुगुल मुँह लगे अच्छे नहीं।

९६

चमार को अरस पर भी बेगार।

९७

चार दिना की चाँदनी, फेर अँधेरी रात।

९८

चाकरी में ना करी क्या?

९९

चिराग़ तले अँधेरा।

१००

चीज़ न राखै आपनी, चोरै गाली देय।

१०१

चोरी और मुँह-जोरी।

१०२

चोर की माँ कोठी में मूँड़ देकर रोती है।

१०३

चोर की दाढ़ी में तिनका।

१०४

चोर से कह तू चोरी कर, और शाह से कह तू घरपै रह।

१०५

चोर चोर मौसाइत भैया।

१०६

जूआ मीठी हार।

१०७

चौबे छब्बे होने गये, दुबे रह गये।

१०८

छछूँदर के सिर में चमेली का तेल।

१०९

छींकते ही नाक कटी।

११०

छोटे मुंह बड़ी बात।

१११

छोटे गाँव से नाता क्या?

११२

चन्दन की चुटकी भली, गाड़ी भरो न काठ।

११३

झगड़े की जड़। जन, जमीन, जर।

११४

जबतक स्वासा, तबतक आसा।

११५

जहाँ जाय भूखा, तहां पड़े सूखा।

११६

जहाँ रूख न बिरिख उहाँ रेंड़ महापुरुख।

११७

ज़र है तो नर है। नही तो पूरा ख़र है।

११८

जन्म के दुखी, नाम चैनसुख।

११९

जान है तो जहान है।

१२०

जाकर जिहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु संदेहू॥

१२१

जा मन होय मलीन सो, पर संपदा सहै न।

१२२

जाको राखै साइयाँ, मारि न सकिहै कोय।

१२३

जाके पाँय न फटी बिवाई। सो क्या जाने पीर पराई॥

१२४

जिसकी लाठी उसकी भैंस।

१२५

जिसकी जूती उसका सिर।

१२६

जिसको पिया चाहे वही सुहागिन।

१२७

जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।

१२८

जिसका खाइये, उसका गाइये।

१२९

जिसके हाथ लोई, उसका सब कोई।

१३०

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। जैसेहि नाथ पुरुष बिनु नारी॥

१३१

जैसे कंथा घर रहे, तैसे गये विदेस।
जैसी तेरी तोमरी, तैसे मेरे गीत।

१३२

जैसे गंगा नहाये। तैसे फल पाये।

१३३

जैसे नागनाथ। तैसे साँपनाथ।

१३४

जैसी बहे बयारि पीठ तब तैसी दीजै।

१३५

जैसा देस, वैसा भेस।

१३६

जो बिध गया सो मोती।

१३७

जो धन दीखे जात, आधा दीजै बाँट।

१३८

जो गरजता है सो बरसता नहीं।

१३९

जो चोरी करता है, वह मोरी रखता है।

१४०

जोरू चिकनी, मियाँ मजूर।

१४१

जो तोकूँ कांटा बुवै, ताहि बोइ तू फूल।

१४२

जो बोले सो घी को जाय।

१४३

जोड़ जोड़ मर जाँयगे। माल जमाई खाँयगे।

१४४

जोगी था सो उठ गया, आसन रही भभूत।

१४५

जब ओढ़ लीनी लोई। तो क्या करेगा कोई?

१४६

जन्म न देखा बोरिया, सपने आई खाट।

१४७

टके की बुढ़िया नौ टका मूंड़ मुड़ाई।

१४८

डूबा वंश कबीर का, उपजे पूत कमाल।

१४९

तमाम रात पीसा और पारी में सकेला।

१५०

तन पर नहिं लत्ता। पान खायँ अलबत्ता।

१५१

ताजी मारे तुरकी कांपे।

१५२

तिरिया तेल, हमीर हठ, चढ़े न दूजी बार।

१५३

ताकी न रक्खे बाकी।

१५४

तीन बुलाये तेरह आये।

१५५

तीन पाव आटा पुल पर रसोई।

१५६

तीरथ गये मुड़ाये सिद्ध।

१५७

तीन लोक से मथुरा न्यारी।

१५८

तेली का तेल जले मसालची का सिर दूखे।

१५९

तुझ की पराई क्या पड़ी अपनी निबेड़ तू।

१६०

तुरत दान महा कल्यान।

१६१

तुम डार डार हम पात पात।

१६२

दया बिनु सन्त कसाई।

१६३

दान वित्त समान।

१६४

दिल को करार तब सूझे त्यौहार।

१६५

दुबले मारे शाह मदार।

१६६

दूर के ढोल सुहावने।

१६७

दूध का जला छाछ को फूँक फूँक पीता है।

१६८

न्यारा पूत परोसी दाखिल।

१६९

नई नाइन बाँस का नहन्ना।

१७७

नया नौ दिन, पुराना सौ दिन।

१७१

नक्कारखाने में तूती की आवाज़।

१७२

न नाम लेवा, न पानी देवा।

१७३

नज़र चूकी माल दोस्तों का।

१७४

नाई बाल कितने? जिजमान आगे आ जाँयगे।

१७५

नाच न जाने आँगन टेढ़ा।

१७६

नाम बड़े दर्शन थोड़े।

१७९

नाना के आगे ननिहाल की बातें।

१७८

नाम भानमती औ झोली में सिर।

१७९

नानी तो क्वारी मर गई, नवासे के नौ नौ ब्याह।

१८०

नौ नगद न तेरह उधार।

१८१

नौ दिन चले अढ़ाई कोस।

१८२

नीम हकीम खतरे जान। नीम मुल्ला खतरे ईमान।

१८३

नौ सौ चूहे खाय बिलाई हज्ज को चली।

१८४

पढ़े न लिखे और नाम विद्यासागर।

१८५

पराधीन सपनेहु सुख नाही।

१८६

पढ़े तो है पर गुने नहीं।

१८७

परदेसी को प्रीति फूस का तापना।

१८८

पाचों घी में।

१८९

पौ बारह है।

१९०

पानी पीकर पूछना, नाही भलो बिचार।

१९१

प्रीति का निबाहना खाँड़े की धार है।

१९२

पाँसा पड़े सो दाँव। राजा करे सो न्याव।

१९३

पाँच पंच तहाँ परमेश्वर।

१९४

पैसे की हाँडी गई तो कुत्ते की जाति तो जानी।

१९५

पंच कहें बिल्ली तो बिल्ली।

१९६

बन्दर क्या जाने आदी का स्वाद?

१९७

बन्दर के गले में मोतियों की माला।

१९८

धनी के सब साथी।

१९९

बगल में तोशा। किसका भरोसा।

२००

बार बार चोर की, तो एक बार साहु की।

२०१

बद अच्छा बदनाम बुरा।

२०२

बाहर वाले खा गये, घर के गावें गीत।

२०३

बाप न मारी पीदड़ी, बेटा तीरन्दाज।

२०४

बावन तोले पाव रत्ती।

२०५

बारह वर्ष दिल्ली में रहे क्या भाड़ झोंका ?

२०६

बारे की माँ न मरे और बूढ़े की जोरू।

२०७

बावरे गाँव में ऊँट आया, लोगों ने कहा ब्रह्म है।

२०८

बाजार किसका ? जो लेकर दे उसका।

२०९

बाँह गहे की लाज।

२१०

बिच्छू का काटा रोवे। साँप का काटा सोवे।

२११

बाँझ क्या जाने प्रसूत की पीड़ा ?

२१२

बूर का लड्डू खायगा सो पछतायगा, न खायगा वह भी पछतायगा।

२१३

वे ही मियाँ दरबार को, वे ही चल्हा फूँकने को।

२१४

बैठे से बेगार भली।

२१५

बैले दीजे जायफल, क्या बोले क्या खाय ?

२१६

बैल न कूदा कूदी गौन।

२१७

भरी जवानी माँझा ढीला।

२१८

भरभूजे की लड़की केसर का तिलक।

२१९

भीख के टुकड़े बाजार में डकार।

२२०

भले बनिया भेड़ खाई। अब खाऊँ तो राम दोहाई॥

२२१

भूख में किवाड़ ही पापड़।

२२२

भूख में गूलर ही पकवान।

२२३

भूखा बंगाली भात भात।

२२४

भूलि गई राव रङ्क भूलि गई जिकड़ी।
तीन चीज़ याद रही नून तेल लकड़ी।

२२५

भेड़ की लात घोंटू तक।

२२६

मन में राम बगल में ईंटें।

२२७

मरना बिचारा तो हटना कैसा?

२२८

मरता क्या न करता?

२२९

मन चङ्गा तो कठौती में गंगा।

२३०

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

२३१

मन उमराव करम दरिद्री।

२३२

मक्खी बैठी शहद पर, पङ्ख रह्यो लपटाय।
हाथ मलै और सिर धुनै, लालच बुरी बलाय॥

२३३

माह नंगे बैसाख भूखे।

२३४

मार मार तो किये जा, नामर्दी तो ईश्वर ने दी ही है।

२३५

मान का बीड़ा हीरा के समान।

२३६

मान न मान मैं तेरा मेहमान।

२३७

मानो तो देव नहीं तो पत्थर।

२३८

मान का पान बहुत है।

२३९

मीठा और भर कठौता।

२४०

मीठा मीठा गप गप, कड़ुवा कड़ुआ थू थू।

२४१

मुल्ला की दौड़ मसजिद तक।

२४२

मुड़ा जोगी पिसी दवा।

२४३

मूरख की सारी रैन, छैल की एक घड़ी।

२४४

मूल से ब्याज प्यारा होता है।

२४५

मेंड़की को जुकाम।

२४६

यथा राजा तथा प्रजा।

२४७

यथा नाम तथा गुण।

२४८

रसोई का विप्र कसाई का कूकर।

२४९

रख पत, रखा पत।

२५०

राजा किसके पाहुने, जोगी किसके मीत।

२५१

राम राम जपना। पराया माल अपना।।

२५२

राम भरोसे जे रहें, परबत पर हरियाँय।

२५३

राई से पर्वत करै, पर्वत राई माँहि।

२५४

रोग का घर खाँसी। लड़ाई का घर हाँसी।।

२५५

राँड़, साँड़, सीढ़ी संन्यासी। इनसे बचे तो सेवै काशी।।

२५६

लकीर के फ़कीर।

२५७

कमज़ोर की जोरू सब की सरहज।

२५८

लड़का बगल में, ढँढोरा नगर में।

२५९

लातों के देव बातों से नहीं मानते।

२६०

लीक लीक गाड़ी चलै, लीक हि चलै कपूत।
लीक छाँड़ि तीनों चलें, सायर, सिंह, सपूत॥

२६१

देश चोरी परदेश भीख।

२६२

देह धरे का दण्ड है, सब काहू को होय।

२६३

देखी तेरी कालपी, बामनपुरा उजार।

२६४

दोनों दीन से गये पाँड़े। हलुवा मिला न माँड़े।

२६५

दाल-भात में मूसरचन्द।

२६६

दुविधा में दोऊ गये, माया मिली न राम।

२६७

देखा देखी साधे जोग। छीजै काया बाढ़ै रोग॥

२६८

धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का।

२६९

नये चिकनियाँ अंडी का फुलेल।

२७०

नदी में रहकर मगर से बैर।

२७१

लिखें मूसा, पढ़ें ईसा।

२७२

लूट के मूसर भी भले हैं।

२७३

लोहू लगाकर शहीदों में दाखिल।

२७४

शाम के मरे को कबतक रोवें?

२७५

शिकार के समय कुतिया हगासी।

२७६

सब के दाता राम।

२७७

सत मति छोड़े बावरे, सत छोड़े पति जाय।

२७८

सेत सेत सब एक से, कर्र कपूर कपास।

२७९

सखी से सूम भला, जो तुरतै देय जवाब।

२८०

सखी के माल पर पड़े सूम की जान पर।

२८१

सब दिन जात न एक समान।

२८२

सभी बात खोटी। मुख्य दाल रोटी।

२८३

सदा दिवाली साधु की, जो घर गेहूँ होय।

२८४

साँप मरै न लाठी टूटे।

२८५

साँच को आँच नही।

२८६

सावन सूखे न भादों हरे।

२८७

सावन के अन्धे को हरा ही हरा सूझता है।

२८८

सिर पर पड़ी बजाये सिद्धि।

२८९

सूरदास कारी कामरि पै चढ़ै न दूजौ रंग।

२९०

सुनु खगेस अस को जग माँही। प्रभुता पाय जाहि मद नाहीं।।

२९१

सौकीन बुढ़िया चटाई का लहँगा।

२९२

सो घर सत्यानास जहाँ है अति बल नारी।

२९३

हर्रा लगै न फिटकरी, आवै चोखा रंग।

२९४

हम तुम राजी, तो क्या करैगा काजी।

२९५

हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस विधि हाथ।

२९६

हाथ पाँव की काहिली, मुँह में मूछें जाँय।

२९७

हाथ कंगन को आरसी क्या?

२९८

हाथी के दाँत दिखाने के और होते हैं और खाने के और।

२९९

हिमायत की गधी ऐराकी को लात मारती है।

३००

हिसाब जौ जौ का, दान सौ सौ का।

३०१

हुक्के की मारी आग बाकी का मारा गाँव।

३०२

हाथी के पैर मे सब का पैर।

३०३

होनहार बिरवान के, होत चीकने पात।

३०४

अति भक्ति चोर के लच्छन।

३०५

अँटका बनिया देय उधार।

३०६

अपना वही जो आवे काम।

३०७

अपनी फूटी न देखे दूसरे की फूली निहारे।

३०८

अन्नदान, महादान।

३०९

आदमी में नउआ, जानवर में कउआ।

३१०

आदमी जानिये बसे। सोना जानिये कसे।

३११

आशा का मरे निराशा का जिये।

३१२

आँत भारी तो माथ भारी।

३१३

आमों की कमाई, नीबुओं में गमाई।

३१४

आँख का अंधा गाँठ का पूरा।

३१५

आँख हुई चार, तो दिल में आया प्यार।

३१६

आँख हुई ओट, तो दिल में आया खोट।

३१७

आसमान से गिरा खजूर में अंटका।

३१८

इक लख पूत सवा लख नाती। ता रावन घर दिया न बाती।।

३१९

उतावला सो बावला। धीरा सो गम्भीरा।

३२०

उखली में सिर दिया तो मूसलों का क्या डर?

३२१

ऊजड़ खेड़ा, नाम निबेड़ा।

३२२

ऊँट बहै गदहा थाह ले।

३२३

ऊँची दूकान का फीका पकवान।

३२४

एकान्त बासा, झगड़ा न झाँसा।

३२५

टाट का लँगोटा, नवाब से यारी।

३२६

तिल गुड़ भोजन तुरुक मिताई। आगे मीठ पीछे कड़ुआई।

३२७

तेली जोरे परी परी, महमान लुटावे कुप्पा।

३२८

दमड़ी की बुलबुल नौ टका हलाली।

३२९

दिया तले अँधेरा।

३३०

दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम।

३३१

नामी बनिया कमाय खाय। नामी चोर मारा जाय।

३३२

नाक कटी पर हठ न हटी।

३३३

नौकरी की पत्थर पर जड़ है।

३३४

नौ की लकड़ी, नब्बे खर्च।

३३५

पर उपदेस कुसल बहुतेरे।

३३६

पराये पीर को मलीदा, घर के देव को धतूरा।

३३७

पराये धन पर लछमीनरायन।

३३८

पढे पारसी बेचें तेल। ये देखो कर्ता के खेल।

३३९

पर धन राखे मूरखचंद।

३४०

संतोषी सदा सुखी।

३४१

पराई हँसी गुड़ से मीठी।

३४२

पैसा करे काम, बीबी करे सलाम।

३४३

फिर पछताये क्या हुआ, जब चिड़ियाँ चुग गई खेत।

३४४

बहती गंगा हाथ धो लो।

३४५

बड़े मियाँ सो बड़े मियाँ छोटे मियाँ सुभान अल्ला।

३४६

बात गये कुछ हाथ नहीं।

३४७

बाप मरा घर बेटा हुआ। इसका टोटा उसमें गया।

३४८

बिच्छू का मन्तर न जाने साप के बिल मे हाथ डाले।

३४९

बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि ले।

३५०

मरी बछिया बाह्मन के नाम।

३५१

मच्छड़ मार के ऐंठा सिंह।

३५२

मन में बसे तो सुपना देखे।

३५३

मरद की बात और गाड़ी का पहिया आगे को चलता है।

३५४

माँगे न आवे भीख, तो सुर्ती खाना सीख।

३५५

मारे सिपाही, नाम सरदार का।

३५६

मिजाज क्या है तमाशा। घड़ी में तोला घड़ी में माशा।

३५७

मिस्सों से पेट भरता है, किस्सों से नहीं।

३५८

मियाँ रोते क्यों हो? सूरत ही ऐसी है।

३५९

मियाँ के मियाँ गये, बुरे बुरे सुपने आये।

३६०

रहै न बाँस, न बजे बाँसुरी।

३६१

राँड साँड और नकटा भैंसा। ये बिगड़ें तो होवे कैसा?

३६२

लड़ना दे पर बिछुड़ना न दे।

३६३

लेना देना कुछ नहीं, लड़ने को मौजूद।

३६४

वक्त पड़ै बाँका। गधे को कहे काका।

३६५

बेस्या बरस घटावही, जोगी बरस बढ़ाव।

३६६

सुख कहना मित्त से। दुख कहना चित्त से।

३६७

हाथ कंगन को आरसी क्या।

३६८

आधा तजे सों पंडित, सरबस तजै गँवार।

३६९

आधे गाँव दिवाली, आधे गाँव फाग।

३७०

अधेला न दे, अधेली दे।

३७१

आधे माघे कमरी काँधे।

३७२

आदमी आदमी अंतर। कोई हीरा कोई कंकर।

३७३

इधर न उधर, ये बला किधर?

३७४

उधार देना, झगड़ा लेना।

३७५

उधार दीजै दुश्मन कीजे । उधार दिया गाहक खोया।

३७६

एक दिन का पाहुना , दूसरे दिन अनखावना।

३७७

करनी खाक की । बात लाख की।

३७८

करनी न करतूत । चलियो मेरे पूत।

३७९

करनी न करतूत । लड़ने को मौजूद।

३८०

कड़ुआ स्वभाव । डूबती नाव।

३८१

कलाल की बेटी डूबने चली, लोगों ने कहा मतवाली है।

३८२

काली घटा डरावनी, धौली बरसनहार।

३८३

खाय तो घी से । नहीं जाय जी से।

३८४

खाली बनियाँ क्या करै । इस कोठी का धान उस कोठी धरे।

३८५

खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है।

३८६

खावै बकरी की तरह और सूखै लकड़ी की तरह।

३८७

गधा गिरा पहाड़ से, मुर्गी के टूटे कान।

३८८

गाल वाला जीतै। माल वाला हारै।

३८९

ऐसा काम हमेशा कर। जिसमें कभी न होवे डर।

३९०

ऐसी कहो न बात, कि सबका हिले हाथ।

३९१

अन्ध के आगे रोये। अपने दीदा खोये।

३९२

काम प्यारा कि चाम?

३९३

काम रहे तो काजी। न रहे तो पाजी।

३९४

किसी का मुँह चले किसी का हाथ।

३९५

कफन सिर से बाँधे फिरता है।

३९६

खर गुड़ एक ही भाव बिकाय।

३९७

खाली चना। बाजे घना।

३९८

गया वक्त फिर हाथ आता नहीं।

३९९

गगरी दाना। सूद उताना।

४००

गाडर राखी ऊनको लागी चरन कपास।

४०१

गों निकली, आँख बदली।

४०२

घर में मडुआ की रोटी, बाहर लम्बी धोती।

४०३

घड़ी भर की बेसरमी सब दिन का आराम।

४०४

घी खाना शक्कर से। दुनियाँ ठगिये मक्कर से।

४०५

घर बैठे गंगा आई।

४०६

जहाँ न पहुँचे रवि। तहाँ पहुँचे कवि।

४०७

जबान शीरी, मुल्क गीरी।

४०८

जगन्नाथ का भात। जगत पसारे हाथ।

४०९

जाका कोडा, ताका घोड़ा।

४१०

जागे सो पावे, सोवे सो खोवे।

४११

जाके घर में नोसे गाय। सो क्या छाछ पराई खाय?

४१२

जाके घर में माई। ताकी राम बनाई।

४१३

जोगी काके मीत कलंदर किसके भाई।

४१४

जब आया देही का अन्त। जैसा गदहा वैसा सन्त।

४१५

जब भये सौ, तब भाग गया भौ।

४१६

झरबेरी के जंगल में बिल्ली शेर।

४१७

टके की मुर्गी छै टके महसूल।

४१८

नाचे कूदे तोड़े तान। ताको दुनिया राखे मान॥

४१९

हसुआ हाकिम खसुआ चोर। इनका धड़के गहिरे बोर॥

४२०

माँ से पूत पिता से घोड़ा। बहुत नहीं तो थोड़म थोड़ा॥

४२१

लरिका ठाकुर बूढ़ दिवान। ममिला बिगरै साँझ बिहान॥

४२२

खेती करै बनिज को धावै। ऐसा डूबै थाह न पावै॥

४२३

कीड़ी सचं तीतर खाय। पापी को धन पर ले जाय॥

४२४

अकिलि न मिलै उधार। प्रेम न बिकै बजार॥

४२५

चाकर है तो नाचा कर। ना नाचै तो ना चाकर॥

४२६

देखी पर नारि। तो फूट गईं चारि।।

४२७

बिन घरती घर भूत का डेरा।।

४२८

बिन घरनी का घर। जैसे नीमी का तर।।

४२९

खाओ मन भाता। पहिरो जग माता।।

४३०

गरीब की जवानी गरमी का घाम।।
जाड़े की चाँदनी आवै न काम।।

४३१

जोरू टटोलै गठरी। माँ टटोलै अँतड़ी।।

४३२

तरवार मारे एक बार। एहसान मारे बार बार।।

४३३

नया धोबी, नाई पुराना।।

४३४

फूहरि के घर लागि किवारी। कुकुरन में भइ चिता भारी।।
बाँड़ा कूकुर चितवै मौन। लागि तो बा पर देये कौन।।

४३५

चटोरी कुतिया, नई सिल।

४३६

एक बार डहँकावै। बावन वीर कहावै।।

४३७

सो जीतै जो पहिले मारै। ज्ञान गथै सो मूरख हारै।।

४३८

खेती चरै गदहा। मारा जाय जोलहा।।

४३९

तेली का बैल ले कोहाँइन सती भई।

४४०

नाम निरमल दास। देह भर दादै दाद।

४४१

जब उठाय लिहेस भोरी। तब का बाह्मन का कोरी।

४४२

साहु का दाँव हाट में। चोर का दाँव घाट मे।

४४३

बनिया से करै यारी। तो खाय सरी सोपारी।

४४४

अधजल गगरी छलकत जाय।

४४५

आग लगंते झोपड़ा जो निकसै सो सार।

४४६

खौरही कुतिया रेशम का झूल।

४४७

केरा बीछी बाँस। अपने जनमे नास।

४४८

आग खाये मुँह जरै। उधार खायै पेट जरै।

४४९

इन नयनों का यही बिसेख। वह भी देखा यह भी देख।

४५०

एक तो करेला, दुसरे नीम चढ़ा।

४५१

कमान से निकला तीर। मुँह से निकली बात।

४५२

कातिक कुतिया माघ बिलाई। चैत चिरैया सदा लुगाई।

४५३

सावन भैसा माघ सियार। अगहन दरजी चैत चमार।

४५४

छटाँक सतुवा, मथुरा में भंडारा।

४५५

जात का बैरी जात। काठ का बैरी काठ।

४५६

जात पाँत पूछै ना कोय। हरि को भजै सो हरि का होय।

४५७

जैसी देखै गाँव की रीति। वैसी उठावै आपनि भीति।

४५८

जोरू न जाँता। खुदा से नाता।

४५९

तन पर नाही धागा। नाम चंद्रभागा।

४६०

थोथा चना। बाजै घना।

४६१

देसी चिड़िया, मराठी भाषा।

४६२

निकली होठों। चढ़ी कोठों।

४६३

नीम न मीठी होय सिंचो गुड़ घी से।

४६४

पहले पहरे सब कोई जागै, दुसरे पहरे भोगी।
तिसरे पहरे चोरवा जागै, चौथे पहरे जोगी॥

४६५

पेट पिटारी। मुँह सुपारी।

४६६

बंदर की आशनाई। घर में आग लगाई।

४६७

बनिये से सयाना, सो दिवाना।

४६८

गरीबी, सब की बीबी।

४६९

राजा से कौन कहे कि ढाँकि लेउ। रानी से कौन कहे कि झाँकि लेउ॥

४७०

जानहार धन ऐसे जाय। जैसे बेलै कुंजर खाय॥
रहनहार धन ऐसे रहै। जैसे दूधू नरियर गहै॥

४७१

क्या भूख को बासन। क्या नींद को आसन।

४७२

चील के घर में मांस की धरोहर।

४७३

बैठे से बेगार भली।

४७४

मारै घुटना, फूटै आँखि।

४७५

गौं निकली। आँख बदली।

४७६

हाथ सुमिरनी। बगल कतरनी।

४७७

कंत न खरचै दाम। धरे सुहागिन नाम।

४७८

सौ सुनार की। एक लोहार की।

४७९

सौ में सती। लाख में जती।

४८०

सूधे का मुँह कुत्ता चाटै।

४८१

हाथी का पेट पिराय। गदहा दागा जाय।

४८२

सबै सयाने एक मत।

४८३

सात पाँच की लकड़ी, एक जने का बोझ।

४८४

हाथी को गन्ने का पहरा।

४८५

मन मन भावै। मूँड़ी हिलावै।

४८६

बगुला मारे पखना हाथ।

४८७

बड़ी फ़जर। चूल्हे पर नजर।

४८८

पेट में परा चारा। तो कूदन लाग बेचारा।

४८९

पहिले लिख और पीछे दे। कमती हो काग़ज मे ले।

४९०

नंगी होके काता सूत। बूढ़ी होके जाया पूत।

४९१

धन नाते हुक्का, पोशाक नाते जुल्फ।

४९२

जीता सो हारा। हारा सो मरा।

४९३

आटे का दिया, घर में रक्खे तो चूहा खाय।
बाहर रक्खे तो कौआ ले जाय॥

हिन्दी के इतिहास सम्बन्धी सहायक ग्रंथ

शिवसिंह सरोज—शिवसिंह सेंगर।

हिन्दी की खोज सम्बन्धी रिपोर्टें, नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, नागरी-प्रचारणी-ग्रन्थमाला—नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी।

मिश्रबंधु-विनोद—मिश्रबंधु।

हिन्दी-नवरत्न— ,,

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की लेखमालायें—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कार्यालय, प्रयाग।

संतबानी पुस्तकमाला—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

दि मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ़ हिन्दुस्तानी (अंग्रेज़ी) सर जार्ज ए० ग्रियर्सन।

लिंग्वस्टिक सर्वे आफ़ इंडिया (**अंग्रेज़ी**)—सर जार्ज ए० ग्रियर्सन।

हिन्दी लिटरेचर—(अंग्रेज़ी)—एफ़० ए० के, एम० ए०।

हिन्दी-भाषा—स्व० बालमुकुन्द गुप्त।

हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति—महावीरप्रसाद द्विवेदी।

ब्रज-माधुरी-सार—वियोगी हरि।

सरस्वती, माधुरी, सुधा, वीणा, विशाल भारत आदि मासिक पत्र।

सर्वश्री आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० वासुदेवशरण, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि हिन्दी के विद्वानों के हिन्दी-भाषा और साहित्य-विषयक ग्रंथ और लेख।

सम्मतियाँ

(१)

शांतिनिकेतन।

आपनार संकलित "कविताकौमुदी" ग्रंथखानि पाठ करिया परितृप्ति लाभ करियाछि। हिन्दी कबितार ए रूप सुन्दर एवं धारावाहिक संग्रह आमि आर कोथाओ देखा नाई। अपनी एई कवितागुलि प्रकाश करिया भारतीय साहित्यानुरागी व्यक्तिमात्र केइ चिरकृतज्ञता पाशे आवद्ध करियाछेन। इति, १९ आषाढ़, १३२६।

भवदीय

श्री रवीद्रनाथ ठाकुर

[२]

Ruthfarnham, Camberley (England)

Surrey, 19-9-19.

Dear Sir,

I am much obliged to you for your letter of August 21, 1919, and for the copy of the "**कविता-कौमुदी**," which has also arrived by the same post. I have read the book with much interest, and it is a valuable introduction to the study of Hindi literature. I wish such a book had been available when I began my studies in that language fifty years ago.

Yours faithfully,

GEORGE A. GRIERSON.

[३]

England,
9th June, 1919.

Dear Sir,

I thank you very much for the very interesting Hindi book, named "Kavita Kaumudi," which you have kindly sent me. I am reading parts of it already with great interest, and I hope when I have more leisure to read the whole of it.

Yours faithfully,
R. P. DEWHURST
I. C. S., M. A., F. R. G. S.

[४]

Oxford,
December 3rd, 1919.

Dear Mr. Tripathi,

It was a great surprise to receive from you a copy of your "Kavita Kaumudi". I thank you very sincerely and warmly for the gift. I will do what I can to make your book known in European circles; so far as I can see, it is the very type of the book which a student of the literature ought to use.

I hope to sail for India in a few days, and I expect to visit Allahabad some time during the next few months. In that case, I hope to have the pleasure of making your personal acquaintance.

With renewed thanks, and very kind regards.

I remain,
Yours most truly,
J. N. FARQUHAR,
M. A., D. LITT.

[५]

London,
3rd December, 1919.

Dear Panditji,

I am indeed most grateful to you for having sent to me a copy of your excellent little volume on Hindi literature. The scheme which you have in hand of bringing out in Hindi a series of volumes on the literature of various Indian and other languages is one which commends itself very much to me, etc.

I am expecting to sail for India in about ten days and to reach Jubbulpore before the middle of January. I shall be so grateful if you would honour me by coming to call on me as there are several points with regard to Hindi literature which I shall be glad of talking over etc. etc.

With best wishes and very many thanks for your kind thought.

I remain,
Yours Sincerely,
(Rev.) FRANK E. KEAY.